CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गरुड़ पुराण

(एक अध्ययन)

4680

डा० अवधबिहारी लाल अवस्थी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गरुड़ पुराण

(एक अध्ययन)

डा० अवधबिहारी लाल अवस्थी
रीडर, प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

कैलाश प्रकाशन, लखनऊ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकाशक
श्रीमती आशा अवस्थी
कैलाश प्रकाशन,
लखनऊ

प्रथम संस्करण १९६८

State ... Library • Lucknow •

4686

(C)

मुद्रक
रोहिताश्व प्रिंटर्स
ऐशबाग रोड,
लखनऊ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भूमिका

'गरुड़ पुराण—एक अध्ययन' में इस महापुराण के आधार पर भारतीय इतिहास और संस्कृति के विभिन्न पक्षों-भूगोल, इतिहास, राजनीति, समाज, आर्थिक जीवन, धर्म और दर्शन, मूर्तिकला और प्रासाद-वस्तु पर इससे उद्धृत सामग्री का विवेचन किया गया है। इसके महत्व पर प्रारम्भ (अ० १) में ही विचार प्रस्तुत किए गए हैं। राजनीति पर बिचार करते हुए राष्ट्र-भंग (देश-विप्लव) का भी संकेत किया गया है (अ० ५)। धर्म के विविध स्वरूपों का वर्णन करते हुए (अ० ८) तीर्थों की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है। दर्शन (अ० ९) पर दृष्टिपात करते हुए क्षात्रदर्शन (राजपूत फ़िलासफ़ी ऑफ लाइफ) पर भी विचार प्रस्तुत किए गए हैं। स्थानाभाव के कारण तीर्थ-संग्रह ही दिया गया है। उनकी पहचान आदि पर बिचार नहीं हो सका है।

पुराणों के अध्ययन की विभिन्न परिपाटियां और परम्पराएं हैं। विभिन्न दृष्टिकोणों से भी पुराणों का अध्ययन विभिन्न विद्वानों ने किया है। विल्सन-पार्जिटर की धारा के बाद डा० हज़रा ने पुराणों का दो भागों में अध्ययन किया (देखिए पुराणिक रिकर्डस आन हिन्दू राइट्स एन्ड कस्टम्स)। उन्होंने प्रथम खंड में महापुराणों के विभिन्न स्तरों की कालक्रमानुसार शास्त्रीय समीक्षा की है और यह आज तक अपने महत्व को अक्षुण्ण बनाये हुए है। इस ग्रन्थ के द्वितीय खंड के पांच अध्यायों में— हिन्दू समाज (२०० ई० से पूर्व, अ० १; और ईसा की तीसरी शताब्दी से छठी शताब्दी तक, अ० २) का वर्णन किया गया है। हिन्दू समाज संबंधी इन अध्यायों की सामग्री अब बहुत ही पुरानी पड़ गई है और इसको सुधारने की आवश्यकता है, जिसकी पूर्ति वायु (कल्चरल हिस्ट्री आफ दि वायु पुराण, लेखक डा० डी० आर० पाटिल) और मत्स्य (डा० यस०जी० कन्टवाला—कल्चरल हिस्ट्री फ्राम दि मत्स्य पुराण, डा० अग्रवाल मत्स्य पुराण अ स्टडी दीक्षितार —मत्स्य पुराण अ स्टडी) के अध्ययन इसी कमी की पूर्ति करने में सहायक होंगे। डा० राघवन ने भी शास्त्रीय ढंग से और डा० पुसल्कर ने ऐतिहासिक समीक्षा से पुराणों के अध्ययन-क्षेत्र को समृद्ध किया है। डा० अग्रवाल की बहुमुखी प्रतिभा-कला, साहित्य और वैदिक अनुशीलन-ने आधुनिक युग में पुराणव्यास को जन्म दिया। सम्भवतः काशी के कलेवर को सजाने के लिए ही काशी नरेश ने 'पुराण' की स्थापना की और वहां इस अध्ययन प्रक्रिया में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अग्रवाल जी ने सक्रिय शक्ति और स्फूर्ति दी । दूर अरण्य में, मैंने भी स्कन्द पुराण का अध्ययन प्रारम्भ किया ।

देवासुर-संग्राम में देव-सेनापति स्कन्द की सहायता अन्य देवताओं ने भी की । अतः स्कन्द के साथ-साथ अन्य पुराणों को भी देखना पड़ा पद्म पुराण से तुरुष्कों की अवतारण सिद्ध हो चुकी थी (देखिए, पुराणिक रिकर्ड्स्, पृ० १२४ आदि) । फिर इन म्लेच्छों का हिन्दू समाज पर क्या प्रभाव पड़ा ? इस समस्या पर डा० हजरा ने विचार क्यों नहीं किया ! देवल स्मृति स्पष्टतः उस समय के समाज का चित्रण और विशेष रूप से म्लेच्छों से अभिभूत हिन्दू समाज का चित्रण करता है, जब सिंध में अरब विजेता जम चुके थे और उनके आघातों से त्रस्त समाज कराह रहा था । गरुड़ पुराण न केवल 'देवलमतं' (१।४६।२६।२) का उल्लेख कर सिन्ध में देवल-पतन की याद दिलाता है, प्रत्युत सैन्धव म्लेच्छों को भी पश्चिम में और तुरुष्कों को उत्तर पश्चिम में बसा हुआ बताता है । 'नाग-भय' से राष्ट्र को बचाने के लिए गारुड़ी विद्या का विभिन्न स्वरूपों में वर्णन गरुड़ संहिता में हुआ है भारतीय इतिहास की बहुत सी समस्यायें ऐतिहासिक बुद्धि और दृष्टि (हिस्टारिकल पर्सपेक्टिव) के बिना सुलझाई नहीं जा सकती । इसी दृष्टि से यह लघु प्रयास है । गरुड़ पुराण विश्वकोष है । यह साहित्य, कला और इतिहास की त्रिवेणी है । मैं सर्वज्ञ ने होकर अकिंचन अज्ञ हूं । त्रुटियां सम्भव हैं—

सर्वः सर्वं न जानाति सर्वज्ञो नास्ति कुत्रचित् ।

न सर्ववित्कश्चिदिहास्ति लोके नात्यन्तमूर्खो भुवि चापिकश्चित् ।।

हमारे अध्ययन क्रम में कला को भी आराध्य माना गया है । मूर्तिकला के विद्वानों ने इस दृष्टिकोण से इसकी उपेक्षा की है । इसीलिए गरुड़ पुराण के अध्ययन में मूर्तिकला (अ० ११) और प्रासाद-वास्तु (अ० १२) को भी स्थान दिया गया है । प्रासाद-वास्तु का सम्यक विवेचन यहां नहीं हो सका है, यह मेरी दुर्बलता है ।

डा० बी०यच० कपेडिया और गरुण पुराण

पुराणम् (जिल्द ८, सं० १, जनवरी १९६६) में (पृ० १०१-११४) डा० बी० यच० कपेडिया (रीडर, संस्कृत विभाग, वल्लभ विद्यापीठ, वल्लभनगर, गुजरात) ने गरुड़ पुराण पर एक लेख लिखकर इस पुराण के स्वरूप, रचना, विषय और रचनाकाल का निर्धारण किया है । इस लेख के अन्त में लेखक ने कहा है :—

"Before bringing this small article to a close, I would be failing in my duty if I were not to mention my indebtedness

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

to the source which I have made use of in the composition of this article. In particular, I ought to express my special debt to Dr. Abegg. To a large extent, I have drawn upon the material from Dr. Phil Emil Abegg's "Der Pretakalpa des Garuḍa-Purāṇa", 1921which is his Habilitations-schrift submitted by him to the Hohen philosophischen facultat I der Universitat Zurich......... If scholars are able to make use of this article, I think my purpose of writing this article will be fruitful... ..." (Purāṇam, Vol. VIII, No. 1, pp. 113-114).

अस्तु इस महत्वपूर्ण लेख पर विचार करना आवश्यक ही है ।

विद्वान लेखक के अधिकांशत: विचार गरुड़ पुराण के अंग्रेजी अनुवाद में श्री यम०यन० दत्त शास्त्री के 'प्रिफेस (पृ० i-vi) पर आधारित हैं। देखिए—

गरुड़ पुराण अंग्रेजी अनु० की भूमिका	**पुराणम्, ८–१, में गरुड़ पुराण**
p.i, The Garuḍa Purāṇam may be safely described as sister work to Agni Purāṇam. Each one *treats* Parā Vidyā and Aprā Vidyā.........We may be admitted to look upon the Rāmāyaṇa and Mahābhārata as the model of that class of literature."	p. 106, lines 4–8 अक्षरश: नकल की है और चोरी छिपाने के लिए 'ट्रीट्स' के स्थान पर 'डील्स विद' तथा 'टु लुक अपान' को पैसिव वायस बदल कर 'बी लुक्ड' कर दिया गया है ।
p. iv, lines 17 ff. "Tāntrik rites..... ...Prāyaś Chitta etc."	p. 106, 17ff Tāntrik rites... ...Prāyaścitta etc."
p. v,ll. 14 ff. Garuḍa Purāṇam contains three samhitas... minerologists.	p. 106 Para 3, The Garuḍa Purrāṇa.......mineralogists. यहाँ पर लेखक ने 'undying' के स्थान पर immortal or'we doubt not के स्थान पर surely के भाष्य लिखे हैं ।
p. v–vi—The Samhitā..... ....Bṛihaspati Sambitā observes...............Bacon's essays.........a long healthy life."	pp. 106–107 In the Bṛihaspati Saṁhitā...... .... a long life. यहां पर भी astonished के स्थान पर surprised बदला है ।
pi. It is.........futile to attempt to lay down the precise date of G. P.........Halāyudhas' ....Vishṇudharmottarma.... .Victorious Brahmanism.	p. 107, 14 ff. It is futile.. ....victorious Brahmanism.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अ० ६—ऊपर के अध्याय में राजत्व के दैवी स्वरूप का परिचय दिया गया है। इस अध्याय में बताया गया है कि ऋषियों ने नास्तिक और अधार्मिक वेण को मारकर विष्णुस्वरूप-पृथु को राज-पद पर प्रतिष्ठित किया। सम्भवतः इतिहास के प्राचीन युग की यह महान् राजक्रान्ति थी। पृथु ने प्रजा पोषण के लिए ही पृथिवी-दोहन भी किया।

अ० ७—सूर्य व अन्य ग्रहों की पूजा का वर्णन है।

अ० ८—मण्डलस्थ हरि और उनके स्वरूपों (सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध) की पूजा का वर्णन किया गया है। मण्डल के विभिन्न कोणों और कोष्ठकों में देव रूपों की प्रतिष्ठा की जाती हैं। मण्डप और पञ्चरङ्गिक चूर्ण से मण्डल की रचना प्राचीन भारतीय वास्तु, चित्र और मूर्ति-कला पर प्रकाश डालती हैं।

अ० ९—इसमें हरि के ध्यान का वर्णन करते हुए मंडल-पूजा और शिष्य-दीक्षा का वर्णन किया गया है।

अ० १०—इसमें श्री और सरस्वती की पूजा का उल्लेख है।

अ० ११ और १२—नवव्यूहार्चन का वर्णन है।

अ० १३—इसमें वैष्णव—पञ्जर का वर्णन है।

अ० १४—इसमें योग और ध्यान का वर्णन है। विष्णु निरञ्जन और निराकर है। परन्तु उनके कार्य सगुण और साकार हैं।

अ० १५—विष्णु सहस्रनाम का वर्णन है।

अ० १६—शंखचक्रगदाधर विष्णु के ध्यान का वर्णन हैं। १६।९।१ में सूर्यार्चन का उल्लेख है।

अ० १७—सूर्य और ग्रहों की पूजा का वर्णन है।

अ० १८—मृत्युञ्जय की पूजा का वर्णन है। अमृत और अमृतादेवी की पूजा का वर्णन है।

अ० १९—गारुड़ी-विद्या का उल्लेख हैं।

अ० २०—मंत्रों और आयुधों से शत्रु को जीते।

अ० २१-२३—इन आध्यायों में शिवार्चन का वर्णन मिलता है।

अ० २४—इसमें गणपति, अष्टशक्तियों और त्रिपुरा आदि शक्तियों की पूजा का वर्णन है।

अ० २५—अनन्तशक्ति की पादुकाओं की पूजा के साथ-साथ पृथिवी पूजा का उल्लेख है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अ० २६—(कुब्जिका पूजा), करन्यास, मन्त्र, मुद्रा और मण्डल पूजा का वर्णन है।

अ० २७--ग्रहशत्रुविष को दूर करने वाली तान्त्रिक उपासना और रौद्र शक्ति का आवाहन वर्णित है।

अ० २८—कृष्ण श्री-सहित गोपाल पूजा।

अ० २९—त्रैलोक्यमोहन पूजन।

अ० ३०—श्रीधर पूजा।

अ० ३१—विष्णु पूजा।

अ० ३२—पंचतत्व (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और नारायण) की पूजा।

अ० ३३—विष्णुशस्त्र सुदर्शन चक्र की पूजा।

अ० ३४—हयग्रीव पूजा का वर्णन है।

अ० ३५, ३७—गायत्री माहात्म्य।

अ० ३६—सन्ध्या, प्राणायाम, और गायत्री-जप का वर्णन है।

अ० ३८—दुर्गा पूजन।

अ० ३९—सूर्य-पूजन के साथ-साथ ग्रह-पूजन।

अ० ४०—उमा-महेश्वर पूजा। महेश्वर-परिवार-गणपति, सरस्वती, नन्दी महाकाल, आदि की पूजा।

अ० ४१—कालरात्रि पूजा। तान्त्रिक-धर्म।

अ० ४२—पवित्रारोहणं। कार्पासिक सूत्र (१।४२।३) से सूत की कताई का परिचय मिलता है।

अ० ४३—पवित्रारोपणं का वर्णन करते हुये विभिन्न धार्मिक क्रियाओं का वर्णन है। कौषेय, पट्टसूत्र, कार्पास, क्षौम, कौषेय पट्टकं, और और्णक से वस्त्रोद्योग (टेक्सटाइल-इन्डस्ट्री) पर प्रकाश पड़ता है।

अ० ४४—ब्रह्म स्वरूप हरिध्यान और शालग्रामस्थ हरि की २४ मूर्तियों का संकेत।

अ० ४५ – चौबिस मूर्तियों का वर्णन करते हुए ब्रह्मा, महेश्वर देवियों और दिवाकर की मूर्तियों का प्रासाद में पूजन।

४६—वास्तु-यज्ञ—वास्तु देवताओं का पूजन। भारतीय वास्तुकला का स्वरूप।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विष्णवाश्रम (विष्णुमन्दिर) के अतिरिक्त महानस, सत्रमंडप, गन्धपुष्पगृह, भांडागार, गोष्ठागार, उदगाश्रय, अभ्यागतालय आदि का निर्माण ।

अ० ४७—प्रासाद लक्षणं । प्रासादों के पंच स्वरूप—इक्यासीवास्तुपदिक, चौंसठवास्तुपदिक, सोरह भाग वाला, लिंगमान और द्वार मान पर आधारित । पंच वंश—

वैराज-चतुरस्र, पुष्पक-आयत, कैलाश-वृत्त, मालिक (मालक या मणिक)—वृत्तायत, और त्रिपिष्टप-अष्टास्र—जिनको पुनः नौ नौ भागों में बांट कर ४५ प्रसादों का वर्णन । प्रासाद के विविध अंग-प्रत्यंगों की मान-योजना और सज्जा । प्रासादों में मठों का भी निर्माण होता था ।

अ० ४८—सर्व देव प्रतिष्ठा का वर्णन है । शिल्प और स्थापत्य पर प्रकाश डालता है । प्रासाद के आगे सोलह खंभों पर दस या बारह हाथ चौड़ा (या लम्बा) मंडप बनाकर उसके बीच में चार हाथ की बेदी बनाये । कुंड बनाकर होम करे । वृक्ष और पशुओं का शिल्पीकरण तथा पूजन होता था ।

मध्यदेश का आचार्य ही वरेण्य माना जाता था ।

अ० ४९—हरि-माहात्म्य का वर्णन करते हुए सामाजिक जीवन और संस्थाओं का परिचय दिया गया है । वर्ण और आश्रम धर्म का वर्णन किया गया है । योग का वर्णन किया गया है ।

अ० ५०—करणीय दैनिक क्रियाओं का वर्णन है । ब्राह्म मुहूर्त्त में उठ कर सर्वशक्तिमान् परमेश्वर का चिन्तन करता हुआ दिनचर्या को व्यतीत करना समाजोन्नति का आदर्श स्वरूप है । स्वधर्म पर लगा हुआ नागरिक ही सच्चा नागरिक होता है । धर्म-चिन्तक ऋषियों ने तीर्थों, और दानधर्म का महत्व बताया है । भूमि-दान का विशेष महत्व बताया गया है ।

अ० ५२—प्रायश्चित्त-विधि का वर्णन करते हुए अनशन का भी उल्लेख किया गया है । पुण्य तीर्थों का भी उल्लेख मिलता है ।

अ० ५३—अष्ट निधियों का वर्णन किया गया है ।

अ० ५४-५७—भुवनकोष का वर्णन किया गया है ।

अ० ५८-५९—सूर्य चक्र और ज्योतिष चक्र का वर्णन किया गया है ।

अ० ५९-६२—ज्योतिष शास्त्र का वर्णन किया गया है ।

अ० ५९/१९—में वापी (बावली), तड़ाग, कुंआ, देवालय आदि का बनने का समय, ५९/२० बीज बोने या विदेश यात्रा, और ५९/२१ में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नाव पर यात्रा आदि करने के समय पर विचार किया गया है। इसी प्रकार तिथियों और दिनों में कार्य करने के शुभाशुभ पर विचार किया गया है।

अ० ६३-६४—पुरुष-स्त्री लक्षणों पर विचार किया गया है।

अ० ६५—सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार नर-स्त्री लक्षणों का वर्णन किया गया है।

अ० ६६—शालग्राम शिला और द्वारवती शिला का वर्णन करते हुए तीर्थों का भी उल्लेख किया गया है। विष्णु के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन मिलता है। पाँच स्वरों आ, ई, ऊ, ऐ और औ का भी उल्लेख मिलता है।

अ० ६७—पवन-विजय। वायु के संचरण से शुभाशुभ और जयपराजय आदि पर विचार किया गया है।

अ० ६८-८०—रत्नशास्त्र से सम्बद्ध रत्न, विद्रुम, मुक्ता आदि के उत्पत्ति-स्थान, गुण, लक्षण, मान और मूल्य का विवेचन किया गया है। यहीं हमको प्राचीन सिक्कों का भी उल्लेख मिलता है। बृहत्संहिता अ० ८०-८३ में भी यही सूचनायें मिलती हैं। रूपक नामक सिक्का विशेष रूप से दृष्टव्य है (गरुड़, १।१०३।२६; बृहत्संहिता, ८१।१२, १४, १६)

अ० ८१—तीर्थ वर्णन

अ० ८२-८६—गया माहात्म्य

अ० ८७-९०—अ० ८७ में चौदह मनुओं का वर्णन करते हुए विष्णु के पशु-स्वरूपों का वर्णन किया गया है। आगे के अध्यायों में मन्वन्तरों का वर्णन है।

पितृ-पूजन और श्राद्धों का भी वर्णन है।

अ० ९१—ध्यानं।

अ० ९२—विष्णु ध्यान और उनकी मूर्ति-कल्पना

अ० ९३-१०६—याज्ञवल्क्य उपदेश (याज्ञवल्क्य स्मृति)

अ० १०७—पराशरोपदेश (पराशर स्मृति)

अ० १०८-११५—बृहस्पति संहिता या नीति सार

अ० ११६-१३७—विविध व्रतों का वर्णन

अ० १३८—राजवंशानुचरित-सूर्यवंश कीर्तन

अ० १३९-१४०—चन्द्रवंश कीर्तन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अ० १४१—विविध राजवंश

शाक्य, शुद्धोदन, सेनजित (प्रसेनजित), क्षुद्रक (विरुद्धक या विडूडभ) का उल्लेख मिलता है।

अ० १४२—विष्णु के अवतारों का वर्णन।

अ० १४३—रामायण

अ० १४४—हरिवंश

अ० १४५—महाभारत वर्णन

अ० १४६-१७७, १७९-१९४—आयुर्वेद शास्त्र

रोगों, औषधियों और नानायोगमन्त्रादिकों का वर्णन।

अ० १७८—वशीकरण, उच्चाटनादिमन्त्रों के साथ साथ वन्ध्यागर्भधारण करने की मन्त्रौषधि। यहां कामशास्त्र की ६४ कलाओं का उल्लेख है (१।१७८।१८)।

अ० १९४—वैष्णव कवच का वर्णन करते हुए विष्णु के विविध अवतारों का वर्णन किया गया है।

अ० १९५-१९६—विष्णुधर्म विद्या का वर्णन करते हुए विष्णु के अवतारों का वर्णन किया गया है।

अ० १९७—'गारुडं संप्रवक्ष्यामि गरुड़ेन उदीरितम्' (१।१९७।१)। गारुड़ मन्त्र अथवा गारुड़ी विद्या का वर्णन किया गया है। इससे ही नाग-नाश संभव है।

अ० १९८—त्रिपुरा माहात्म्य। देवी भक्ति। तान्त्रिक धर्म।

अ० १९९—लौकिक और पारलौकिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए चूड़ामणि विधान के अनुसार सूर्य, देवी, गण, और सोम का स्मरण कर तीन रेखाओं को बनाये और प्रश्न के साथ ही ध्वज, धूम (ऊंट), सिंह, श्वान्, वृष, खर आदि को क्रम से मंडलों में गिने।

अ० २००—वायु जय। प्राण वायु के संचरण से विभिन्न शुभाशुभों का विचार।

अ० २०१—हयार्युवेद और गजार्युवेद का संक्षिप्त परिचय। तुरुष्क देश का घोड़ा उत्तम होता है।

गजार्युवेद (१।२०१।२३-३९)

अ० २०२—विभिन्न औषधियों के नाम।

अ० २०३-२०४—कात्यायन व्याकरण।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अ० २०५—श्रौत-स्मार्त्त कर्म। सदाचार-शिष्टाचार लक्षण। वर्णाश्रमधर्म। वृत्तियाँ। अर्थ-और त्रिविध धन। दस जीविका-साधन।

अ० २०६—स्नानविधि। वरुण-पूजन। गायत्री जप। अध्यात्म विद्या।

अ० २०७—तर्पणं।

अ० २०८—होम।

अ० २०९—सन्ध्याविधि और गायत्री।

अ० २१०-२१२—श्राद्ध-वर्णन

अ० २१३—धर्मसार—दान, होम, जप, स्नान, देवतार्चन, सत्य, क्षमा, दया युक्त धार्मिक जीवन से ही सौख्य की प्राप्ति। सनातनधर्म, दानधर्म-भूमिदान। 'धार्मिकं पूजयन्तीह न धनाढयं न कामिनं"।

अ० २१४—प्रायश्चित्त।

अ० २१५—विष्णु-धर्म। युगावस्था। पुराण और उपपुराण। कलि-रूप। कृष्णकीर्तन।

अ० २१६—नैमित्तिक प्रलय।

अ० २१७—पाप मीमांसा।

अ० २१८—सांग योग-वर्णन। दत्तात्रेय-दर्शन, ज्ञानमहातरु। ब्रह्मरस। धर्म लक्षण और अनन्य नारायण भक्ति।

अ० २१९-२२०—विष्णुभक्ति।

अ० २२१-२२२—हरि-आराधना और नारायण ध्यान।

अ० २२३—शिवोक्त नारसिंह-स्तुति। नरसिंह-मूर्ति का ध्यान।

अ० २२४-२२७—तत्वज्ञान। ज्ञानामृत। विष्णु-सेवा।

अ० २२५—दामोदर-स्तोत्र

अ० २२६—अच्युत-स्तोत्र

अ० २२७—दर्शन, सांख्य, योग, वेदान्त। आत्म दर्शन। वैष्णव धर्म।

अ० २२८—आत्मज्ञान

अ० २२९—गीतासार। आत्मलाभ। हरि भक्ति। ध्यान।

उत्तरार्ध (प्रेतकल्प)

अ० १—प्रेत मुक्ति

अ० २—मानुषत्व। जातिभेद। धर्म देश (मध्यदेश)। धर्म-सखा।

अ० ३—अप्रेतत्व कर्म। वृषोत्सर्ग, दान, पिंडपातन आदि। यावत्स्वास्थ्यं धर्माचरणं।

अ० ४—दान और धार्मिक कार्य।

अ० ५-६—यम लोक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अ० ७—धर्ममार्ग, अर्थमार्ग, काममार्ग, और मोक्षमार्ग
अ० ८—दीपदान । अन्यदान । प्रेतमार्ग । नरक ।
अ० ९—चित्रगुप्तपुर और पाप-पुण्य को देखने वाले कायस्थ । मानुष्यं ।
अ० १०—नरक और नरकगामी कर्म ।
अ० ११—प्रेतमुक्ति । विष्णु बलि ।
अ० १२—प्रेतत्व और उससे मुक्ति ।
अ० १३—धर्माचरण और स्वधर्म-पालन ।
अ० १४—बिना मनुष्य देह के सुख नहीं मिलता । व्रत-दान प्रभाव ।
अ० १५—संस्कार-क्रियायें विशेषतः देहदाह और षोडशश्राद्ध ।
अ० १६—सपिण्डीकरण ।
अ० १७—प्रेतमुक्ति । ऊर्ध्व देहादिक विधि ।
अ० १८—प्रेतमुक्ति और दान ।
अ० १९—और्ध्व देहिक कर्म
अ० २०—दान । दशावतार (२।२०।३१) ।
अ० २१—गोदान तथा अन्य दान
अ० २२—मनुष्य जन्म और मानव-स्वरूप । भौगोलिक विवरण ।
अ० २३—यमलोक
अ० २४—धर्माधर्म लक्षण । दानधर्म । तीर्थ ।
अ० २५—श्राद्ध । सपिण्डीकरण । नारायण बलि ।
अ० २६—अनशन
अ० २७—उदकुंभ प्रदान
अ० २८—तेरह जातियाँ । सप्तमोक्षपुरियाँ । सती ।
अ० २९—सूतक विधि ।
अ० ३०—अपमृत्यु मार्ग । तीर्थ ।
अ० ३१—दान । धेनुदान । भूमिदान ।
अ० ३२—धेनु और वृष दान । वार्षिक श्राद्ध
अ० ३३—नित्य श्राद्ध
अ० ३४—पुण्य कर्म और धर्म का महत्व । दिगम्बरों की निन्दा ।
अ० ३५—दान-माहात्म्य । वैतरणी ।

इस अध्याय से गरुण पुराण समाप्त होता हैं और अन्त में वैष्णवी वाक्सुधा का अमृत फल भी यही है कि—

सर्वेषां मंगलं भूयात्सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ॥

गरुड़, २।३५।५१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अस्तु स्पष्ट है कि गरुण पुराण दो खण्डों में विभक्त है। पूर्वार्द्ध में २२९ और उत्तरार्द्ध में ३५ अध्याय हैं।

एक निराकार हरि की वन्दना के बाद ही (साकार) हरि, शिव, ब्रह्मा, गणेश और देवी सरस्वती की वन्दना उस युग का प्रतिनिधित्व करती है जब शंकराचार्य ने इन देवताओं की आराधना के साथ साथ वेदान्त का प्रचार किया।

सम्पूर्ण पूर्व खण्ड ही निम्नांकित प्रश्नों का उत्तर है।

प्रश्न है :—

देवतानां हि को देव ईश्वरः पूज्य एव कः।
को ध्येयः को जपत्स्रष्टा जगत्पाति च हन्ति कः।
कस्मात् प्रवर्त्तते धर्मो दुष्टहन्ता च कः स्मृतः।।
तस्य देवस्य किं रूपं जगत्सर्गः कथं मतः।
कैंर्व्रतैः स तुष्टः स्यात् केन योगेन वाप्यते।।
अवताराश्च के तस्य कथं वंशादि संभवः।
वर्णाश्रमादिधर्माणां कः पाता कः प्रवर्त्तकः।।
एतत्सर्वं तथान्यच्च ब्रूहि सूत महामते।
नारायणकथाः सर्वाः कथयास्माकमुत्तमाः।।
नारायणकथाः सर्वाः कथयास्माकसुत्तमाः।।

गरुड़, १।१।६-१०

इस प्रकार यह वैंष्णव पुराण है जो विष्णु-कथा से संवलित है। इस अध्याय में विष्णु के विभिन्न अवतारों का उल्लेख किया गया है।

नारदीय पुराण में उल्लिखित विषय-सूची (गारुड़ानुक्रमणी) वर्तमान गरुड़ पुराण से मिलती है। नारदीय पुराण के अनुसार सर्ग, सूर्यादिपूजन विधि, दीक्षाविधि, श्राद्ध, पूजा, नवव्यूहार्चन, पूजाविधान, वैष्णव-पञ्जर, योग, विष्णुसहस्रनाम, विष्णु-ध्यान, सूर्य-पूजा, मृत्युंजय पूजा, मालामंत्र, शिवार्चा, गणपूजा, गोपाल-पूजा, त्रैलोक्यमोहन-श्रीधर पूजा, विष्णवर्चा, पंचतत्वार्चन, चक्रपूजा, देवपूजा, न्यासादि संध्योपासन, दुर्गा पूजा, सुरार्चन, माहेश्वरीपूजा, पवित्रारोपण, मूर्तिध्यान, वास्तुमान, प्रासाद लक्षण, सर्व-देव-प्रतिष्ठा, पूजा, अष्टांगयोग, दानधर्म, प्रायश्चित्तविधि, द्वीपेश, नरकाख्यान, सूर्यव्यूह, ज्योतिष, सामुद्रिक शास्त्र, स्वरज्ञान, नवरत्न परीक्षा, तीर्थ माहात्म्य, गया माहात्म्य, मन्वन्तराख्यान, पित्राख्यान, वर्णधर्मों का वर्णन, द्रव्य शुद्धि, समर्पण, श्राद्ध, विनायक पूजा, ग्रहयज्ञ, आश्रमों का वर्णन, जनन, प्रेतशौच, नीतिशास्त्र, व्रत-वर्णन, सूर्य-सोम वंश और विष्णु के अवतारों का वर्णन, रामायण, हरिवंश,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महाभारत, आयुर्वेद-निदान, रोगनाशक-विष्णुकवच, गारुड़ मन्त्र, त्रैपुर (त्रिपुरा माहात्म्य), मनु, प्रश्नचूड़ामणि, हयायुर्वेद, व्याकरण, छंद शास्त्र, सदाचार, स्नान, तपर्ण, होम, सन्ध्या, पार्वणकर्म, नित्यश्राद्ध, सपिंड, धर्मसार, अघनिष्कृति, युगधर्मों का वर्णन, योगशास्त्र, विष्णुभक्ति, हरिनमस्कृतिफल, वैष्णव माहात्म्य, नारसिंहस्तव, ज्ञानामृत, गुहाष्टक स्तोत्र, विष्णु-पूजन, वेदांत सांख्य सिद्धान्त, ब्रह्मज्ञान, आत्मज्ञान, गीतासार और फलोत्कीर्तिः।[1] लगभग सभी विषयों का ऊपर संकेत मिलता है। यहां गजायुर्वेद को छोड़ दिया गया है जिसका वर्णन हयायुर्वेद के अध्याय में ही पाते हैं। साथ ही गरुड़ में छन्द शास्त्र का उल्लेख नहीं मिलता है।

इसके उत्तर खंड के प्रेतकल्प की गारुड़ी-विषयानुक्रमणी में धर्मप्रकटन, योगियों की गति, दान, और्द्धदेहिक, यम-मार्ग, षोडश-श्राद्ध, यममार्ग-निष्कृति, धर्मराज-वैभव, प्रेतपीडा निर्देश, प्रेत चिह्न वर्णन, प्रेत-चरिताख्यान, प्रेत कृत्य विचार, सपिंडीकरण, प्रेतत्व-मोक्ष, दान, यमलोक वर्णन, प्रेतत्वोद्धार, मृत्यु के पूर्व और पश्चात् क्रियाओं का वर्णन, मध्यषोडशक श्राद्ध, स्वर्गप्राप्ति क्रिया, सूतक संख्यान, नारायण-बलि, वृषोत्सर्ग, कर्म विपाक, कृत्याकृत्य-विचार, विमुक्ति के लिए विष्णुध्यान, स्वर्ग सौख्य वर्णन, भूलोक और सप्तपाताल लोक वर्णन, पंचोर्ध्व लोक वर्णन, ब्रह्मांड स्थिति, प्रलय, और फलस्तुति वर्णन मिलता है। ये सभी विषय प्रस्तुत गरुड़ पुराण में उपलब्ध है।

ऊपर की नारदीय विषयानुक्रमणी से इतना सिद्ध होता है कि गरुड़ पुराण जिस स्वरूप में इस समय उपलब्ध है, उसी रूप में उस समय विद्यमान था। अस्तु इसकी रचना नारदीय पुराण से पहले हो चुकी थी। डा० हज़रा के मान्य मतानुसार नारदीय पुराण का रचना काल ईसा की नवीं शताब्दी के अन्तिम पाद से पहले नहीं माना जा सकता है (पुराणिक रिकर्ड्स, पृ० १३१)। नारदीय अध्याय १०८ का ई० ८७५-१००० से भी बाद का है (पु० रि०, पृ० १३२)। इस प्रकार गरुड़ पुराण का समय पूर्व मध्यकाल में रखा जा सकता है। डॉ० हज़रा ने इसका रचना काल ८०० ई० और १००० ई० के बीच माना है (पु० रि०, पृ० १४३)।

गुप्तोत्तर काल-प्रवृत्ति—परस्पर संघर्ष और राज्य विजय से उत्पन्न कलि स्वभाव का दर्शन होता है:—

क्षत्रियः पर सैन्यानि जित्वा पृथ्वीं प्रपालयेत् (गरुड़, १।१०७।५) इसी प्रवृत्ति ने राजपूत युग को जन्म दिया।

---

१. नारदीय पु० १।१०८।३-२० (१)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भुवन कोष से ज्ञात होता है कि 'पश्चिमे यवनाः (पश्चिम में यवन), और तुरुष्कास्त्वपि चोत्तरे (उत्तर में तुरुष्क लोग) बसे हुए थे। ये यवन और तुरुष्क कौन थे ? आगे मूर्तिकला के अध्याय में बताया गया है कि पद्म पुराण और गरुड़ पुराण का कुछ निकट सम्बन्ध था। पद्म पुराण में तुरुष्कों को म्लेच्छ (२।७८।४०) और मुक्तकक्षः (कांच रहित धोती या तहमद पहनने वाले) पापी, गोघ्नः (२।७८।२३) वायव्य दिशा में स्थित थे—

वायव्यां च तुरुष्काश्च श्मश्रुपूर्णा गवाशिनः।
अश्वपृष्ठसमारूढाः प्रयुद्धेष्वनिर्वतिनः ॥

पद्म, ५।४४।७४

उत्तरस्यां च गिरयो म्लेच्छाः पर्वतवासिनः।
सर्वभक्षा दुराचारा वधबन्धरताः किल ॥

वही, ५।४४।७५

इन्हीं तुरुष्कों-म्लेच्छों के साथ म्लेच्छ यवनों का भी उल्लेख है(५।४४।७१) अतः तुरुष्क और यवन क्रमशः तुर्क और अरब विजेता थे। सिन्ध के नास्तिक म्लेच्छों को ही यवन कहा गया है सैन्धवा म्लेच्छा नास्तिका यवनास्तथा; गरुड़ १।५५।१५ (१)।

अतः गरुड़-युग अरबों द्वारा सिन्ध-विजय के बाद उत्तर-पश्चिम में तुरुष्कों के प्राबल्य के युग ई० ९००-१००० का परिचायक है।

इतिहास और राजनीति सम्बन्धी विचार भी गरुड़ युग को संकट-युग ही बताते हैं जब नाग-भय और देशभंग अत्यासन्न था। नागभय को दूर करने वाला गरुड़ ही था जिसे हम परमार ताम्रपत्रों में नाग को पकड़ कर खाने के लिए उद्यत देखते हैं। उपेन्द्र (विष्णु का स्वरूप) परमार ने राष्ट्र और धर्म की रक्षा के लिए ही अवतार लिया था। संभवतः अवन्तिनगरी के महाकाल वन में ही इसका पुनः संस्करण किया जा रहा था और पुराणकार सूत चाहता था कि नाग-नाश के लिये सभी क्षत्रिय संघटित हो जाय। परन्तु ऐसा न हुआ और हुआ राष्ट्र पराभव जिसका मूल कारण भारतेश्वर पृथिवीराज चौहान की विलासिता और राजनैतिक अदूरदर्शिता थी—

वैरिणा सह सन्धाय विश्वस्तो यदि तिष्ठति।
स वृक्षाग्रे प्रसुप्तो हि पतितः प्रतिबुध्यते ॥

गरुड़, १।११४।४८

इस प्रकार राष्ट्र-स्वातंत्र्य सूर्य अस्त हो रहा था और देश पराधीनता के पाश में बंधता जा रहा था। अब तो दास्यमोक्ष ही अभीष्ट था। इसी तथ्य को विनता की निदर्शन कथा से समझाया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामाजिक और धार्मिक जीवन में भी भक्ति-क्रान्ति ने समता का धर्मघोष किया—

शूद्रं वा भगवद्भक्तं निषादं श्वपचं तथा।
द्विजजातिं समं मन्ये न याति नरकं नरः॥

गरुड़, १।२२२।४९

भक्ति क्रान्ति ने ही शत्रु-पराभव का बीड़ा उठाया—

अवाप जप्त्वा चेन्द्रत्वं विष्णुधर्माख्यविद्यया।
सर्वान् शत्रून्विनिर्जित्य ताञ्चवक्ष्ये महेश्वर॥

गरुड़, १।१९६।१

इस प्रकार मुस्लिम सत्ता की स्थापना से उत्पन्न नये संकट युग से भक्ति के नवोन्मेष को गरुड़ मे देखते हैं।

बौद्ध पाषण्डिकों की निन्दा की गयी हैं। संभवतः सिन्ध में देश-भंग में इनके कार्य की स्मृतियां ताजी थी।

गरुड़ में वर्णित प्रतिमाएं और प्रासाद भारतीय शिल्प और स्थापत्य के गौरवमय युग का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनके प्राप्त निदर्शन देवगढ़ (झांसी प्रान्त, उ० प्र०), एलोरा, भुवनेश्वर, खजुराहों और हलबीड (मैसूर) में देखे जा सकते हैं। यही चन्देल-परमार युग का कला सौष्ठव था।

अतः हमारे विचार से गरुड़ पुराण पूर्वमध्य कालीन भारतीय जीवन की विविध वीथियों को देखने का महत्व पूर्ण साधन है।

अवधबिहारी लाल अवस्थी

२५—१२—१९६८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संकेत सूची

अ० पृ०	अपराजितपृच्छा (भुवनदेव) बड़ौदा
अर्ली हिस्ट्री	वी० स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया
इ० प०	डा० बी० यन० पुरी, इण्डिया इन दि टाइम ऑफ पतंजलि
उप०	उपनिषद
उ० सु० क०	उदय सुन्दर कथा (सोड्ढल)
ए० हि० आ०	गोपीनाथराव, एलिमेन्ट्स ऑफ हिन्दू आइकनोग्राफ़ी
कथा० स० सा०	कथा सरित सागर (सोमदेव)
कलेक्टेड वर्क्स	कलेक्टेड वर्क्स ऑफ सर आर० जी० भन्डार्कर, पूना
क० सं०	कला और संस्कृति (वासुदेवशरण अग्रवाल)
कार्पस कार्पस इन्स० इन्ड०	कार्पस इन्सक्रिप्शनम इन्डेकेरम
का० मी०	काव्य मीमांसा (राजशेखर)
कैम्ब्रिज हि० इ०	कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग १
ख० दे०	खजुराहो की देव प्रतिमाएं
ख० स्क०	खजुराहो स्कलपचर्स ऐन्ड दियर सिगनीफ़िकेन्स
ज० यू० पी० हि० सो०	जर्नल ऑफ यू० पी० हिस्टारिकल सोसाइटी
जाग० ए० मेड० इ० ज्या० ए० मे०इ० ज्याग्रफ़ी ऑफ ए०मे०इ०	डॉ० डी० सी० सरकार, ज़्याग्रफ़ी ऑफ ऐन्शेन्ट एन्ड मेडेवेल इण्डिया
डा० क० ए०	डाइनेस्टीज़ ऑफ दि कलि एज
डे० जाग० डिक० जाग डि०	यन० एल० डे, ज्याग्रफ़िकल डिक्शनरी ऑफ ऐन्शेन्ट एण्ड मेडेवेल इण्डिया
पा० का० भा० पा० भा०	पाणिनि कालीन भारत (अग्रवाल)
पु०	पुराण
पुराणिक रिकर्ड्स(पु०रि०)	पुराणिक रिकर्ड्स ऑन हिन्दू राइट्स ऐन्ड कस्टम्स (हज़रा)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रबोध च०	प्रबोध चन्द्रोदय (कृष्ण मिश्रा)
पृ० रा० वि०	पृथिवीराज विजय (जयानक)
प्र० चि०	प्रबन्धचिन्तामणि
पौ० ता० रे०	पौराणिक ऐन्ड तान्त्रिक रेलिजन (डा० बनर्जी)
बु० फि०	बुद्धिस्ट फ़िलासफ़ी (कीथ)
बृ० सं०	बृहत्संहिता (वराह मिहिर)
ब्र० वै०	ब्रह्म वैवर्त पुराण
महा० (म० भा०)	महाभारत
मा० अ०	मार्कण्डेय पुराण(एक सांस्कृतिक अध्ययन), अग्रवाल
यश० ति० (यश ति०)	यशस्तिलक (सोमदेव सूरी)
वि० ध० / विष्णु ध० / विष्णु धर्म०	विष्णुधर्मोत्तर
स्ट० इ० हि० क०	स्टडीज़ इन इण्डियन हिस्ट्री ऐन्ड कल्चर (डा० घोषाल)
स्ट० उप०	स्टडीज़ इन उपपुराणाज़ (डा० हज़रा)
हि० इ० फि०	हिस्ट्री ऑफ़ इण्डियन फिलासफ़ी (दास गुप्त)
हि० जा० ऐ० इ०	(ला) हिस्टारिकल जागर्फ़ी ऑफ ऐन्शेन्ट एन्ड मेडेवेल इण्डिया
हिस्ट० जाग० बिहार	हिस्टारिकल जागर्फ़ी ऑफ बिहार (डा० यम०यस० पांडे
HCIP. V. S.	Vāstu Śāstra, vol. II Hindu Canons of Iconography & Painting (Dr. D. N. Shukla)
PVD. III, Vol. II	Vishṇudharmottara Purāṇa Third Khaṇḍa, Vol. II. by Dr. Priyabala shah.

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
भूमिका	i—xvi
संकेत सूची	xvii—xviii
१—अध्याय	
गरुण पुराण का महत्व	१—४
२—भूगोल	**५-५०**
भूगोल-पृथ्वी-लोक संस्थिति, जम्बूद्वीप	५—८
भारतवर्ष-नवभेद	९—१०
देश-विभाग	१०—११
जनपद	११—३७
नगर	३७—४०
पर्वत श्रेणियाँ—	
वर्षपर्वत, कुलपर्वत	४०—४२
अन्य पर्वत	४२—४५
नदियाँ	४५—४९
वन और झील	५०
३—इतिहास और राजवंश	**५१-७५**
(१) पूर्व मध्यकालीन युग-तुरुष्कविजय और देश-भंग	५१—५५
(२) सूर्य वंश	५५—५८
(३) चन्द्रवंश	५८—६५
तुर्वसु वंश, द्रुह्यवंश, अनुवंश,	६५
पुरुवंश	६५—७१
कुरुवंश	७१—७४
मागध राजवंश	७५
रघुवंश	७५
४—नीतिसार	**७६-१०५**
गरुड़-नीति	७६—८२
बार्हस्पत्य नीति	७६—७९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय	पृष्ठ
राजत्व	८२—९६
मंत्री	९६
कोष	९६—९७
कर व्यवस्था	९७—९९
दुर्ग	९९
बल	९९—१००
राष्ट्र	१००—१०१
मित्र	१०१—१०२
सहाय-संपत्ति (राजपुरुष)	१०२—१०५
५—देश-विप्लव	**१०६-१११**
६—समाज-संस्थान	**११२-१५२**
चार्तुवर्ण्य-वर्णधर्म	११२—१२०
चातुराश्रम	१२०—१२६
संस्कार	१२६—१२९
विवाह	१२९—१३३
समाज और स्त्रियाँ	१३३—१३५
कुल-कुटुम्ब-परिवार	१३५—१३६
पुत्र	१३६—१३८
सामाजिक धर्म-सदाचार	१३८—१४२
दानधर्म	१४२—१४७
भूमिदान	१४५—१४६
आमोद-प्रमोद	१४७—१४८
खाद्य-पेय	१४८—१५०
वस्त्राभरण	१५०—१५१
दास-दासी व्यवस्था	१५१—१५२
७—आर्थिक-जीवन	**१५३-१७०**
धर्म-अर्थ	१५३—१५४
अर्थ-इसकी व्याख्या	१५४
अर्थ का महत्व	१५४—१५६
सम्पत्ति-साधन	१५६—१५८
आर्थिक संस्थाएँ-वार्ता	१५९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय	पृष्ठ
तीन प्रकार का धन	१५९—१६०
कृषि, उपज	१६०—१६१
पशु-पालन	१६१—१६३
वाणिज्य	१६३—१६४
विनिमय (सिक्के)	१६४—१६६
वृत्तियाँ	१६६—१६८
उद्योग-धन्धे	१६८—१७०
रत्न-मणि-मौक्तिक	१७०
८—धार्मिक जीवन और संस्थाएं	**१७१-२७६**
पुराण-धर्म	१७१—१७३
धर्म और इसका स्वरूप	१७३—१७७
गरुड़युग की समन्वयात्मक दृष्टि	१७७—१८२
सुख-दुख	१८२—१८३
वैदिकधर्म	१८३—१८६
यज्ञ	१८६—१८७
ज्ञानामृत	१८७—१८८
देवार्चन	१८८—१८९
विष्णु-वैष्णवधर्म	१८९—२१५
अवतार	१९६—२०२
विष्णु-भक्ति—नवधाभक्ति	२०२—२१५
शैवधर्म	२१६—२२९
शाक्तधर्म	२३०
शक्ति और देवीभक्ति	२३३—२३५
प्रकृतिव्याख्या	२३५—२३८
देवी आराधना	२३८—२३९
अष्टशक्तियाँ	२३९
नवशक्तियाँ	२३९
वैष्णवी शक्तियाँ	२३९—२४०
शैव शक्तियाँ	२४०
ब्राह्मी	२४०
सौर धर्म (सूर्यार्चन)	२४१—२४५
पूजाविधि	२४२—२४३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय	पृष्ठ
भास्कर गायत्री	२४४
गाणपत्य	२४६—२४९
उमा-महेश्वर	२५०
ब्रह्म-पूजा	२५१
त्रिमूर्ति	२५१
कार्तिकेय उपासना	२५२—२५४
द्वार देवता	२५४
गरुड़ उपासना	२५५
नाग-यक्ष पूजा	२५६
शिलार्चन	२५७
अनशन प्राणत्याग	२५८—२५९
नास्तिक सम्प्रदाय	२६०—२६४
बौद्धधर्म	२६१—२६३
दिगम्बर (जैनधर्म)	२६३
लोकायत	२६४
तान्त्रिक धर्म	२६५—२६८
पाप-पुण्य और प्रायश्चित्त	२६९—२७०
तीर्थ-संग्रह	२७१—२७६
९—गरुड़ दर्शन	**२७७-२८८**
योग	२८०—२८२
गीतादर्शन	२८३
क्षात्र-दर्शन	२८४—२८८
१०—विद्या, शिक्षा और वाङ्मय	**२८९-३०५**
शिक्षा तथा विद्या का महत्व	२८९—२९०
उपनयन और विद्यारम्भ	२९०
शिष्य	२९०—२९१
गुरु	१९१—२९२
वाङ्मय	२९२—३०५
अठारह पुराण और उपपुराण	२९२—२९३
धर्मशास्त्र	२९३
अर्थशास्त्र	२९४
विविध शास्त्र	२९४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय	पृष्ठ
रत्न शास्त्र	२९५—२९६
व्याकरण शास्त्र	२९६—२९८
वैद्यक शास्त्र	२९९—३०५
भास्करसंहिता	३००—३०१
धान्वन्तरं वैद्यकं	३०१—३०२
रोग-विज्ञान	३०३—३०५
११—मूर्तिकला और देव प्रतिमाएं	**३०६-३९२**
(१) मूर्तिकला, देवप्रतिमाएँ और देवार्चन	३०६—३११
प्रतिमा-द्रव्य	३११—३१२
(२) ब्रह्मा	३१३—३१४
(३) विष्णु	३१५—३६३
दोरूप-सूक्ष्म और स्थूल मूर्त रूप	३१५
शंखचक्रगदाधर	३१६—३१८
द्विभुज-चतुर्भुज	३१७
विष्णु-चिन्ह और आभरण	३१८—३२०
आयुध-पुरुष	३२०—३२२
सुदर्शन प्रतिमा	३२२
विष्णु मूर्तियाँ	३२२
सामान्य विष्णु (वासुदेव) मूर्त्ति लक्षण	३२३—३२५
बहुरूप वासुदेव चतुर्व्यूह, पचरूप, नवव्यूह, दशावतार द्वादशात्मा, चतुर्विशति मूर्ति	३२५—३२६
पंचतत्वार्चन-वासुदेव संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, और नारायण	३२७—३३२
वासुदेव मूर्ति	३२८
सांकर्षणी मूर्त्ति	३२९
प्रद्युम्न मूर्ति	३३०
अनिरुद्ध	३३०—३३१
नारायण	३३१—३३२
नवव्यूह	३३२—३३३
दशात्मक (दशावतार), द्वादशात्मक, चतुर्विशति	३३३—३३४
चतुर्विंशति मूर्तियाँ	३३४—३३८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय	पृष्ठ
भास्कर गायत्री	२४४
गाणपत्य	२४६—२४९
उमा-महेश्वर	२५०
ब्रह्म-पूजा	२५१
त्रिमूर्ति	२५१
कार्तिकेय उपासना	२५२—२५४
द्वार देवता	२५४
गरुड़ उपासना	२५५
नाग-यक्ष पूजा	२५६
शिलार्चन	२५७
अनशन प्राणत्याग	२५८—२५९
नास्तिक सम्प्रदाय	२६०—२६४
बौद्धधर्म	२६१—२६३
दिगम्बर (जैनधर्म)	२६३
लोकायत	२६४
तान्त्रिक धर्म	२६५—२६८
पाप-पुण्य और प्रायश्चित्त	२६९—२७०
तीर्थ-संग्रह	२७१—२७६
९—गरुड़ दर्शन	**२७७-२८८**
योग	२८०—२८२
गीतादर्शन	२८३
क्षात्र-दर्शन	२८४—२८८
१०—विद्या, शिक्षा और वाङ्मय	**२८९-३०५**
शिक्षा तथा विद्या का महत्व	२८९—२९०
उपनयन और विद्यारम्भ	२९०
शिष्य	२९०—२९१
गुरु	१९१—२९२
वाङ्मय	२९२—३०५
अठारह पुराण और उपपुराण	२९२—२९३
धर्मशास्त्र	२९३
अर्थशास्त्र	२९४
विविध शास्त्र	२९४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय	पृष्ठ
रत्न शास्त्र	२९५—२९६
व्याकरण शास्त्र	२९६—२९८
वैद्यक शास्त्र	२९९—३०५
भास्करसंहिता	३००—३०१
धान्वन्तरं वैद्यकं	३०१—३०२
रोग-विज्ञान	३०३—३०५
११—मूर्तिकला और देव प्रतिमाएं	**३०६-३९२**
(१) मूर्तिकला, देवप्रतिमाएँ और देवार्चन	३०६—३११
प्रतिमा-द्रव्य	३११—३१२
(२) ब्रह्मा	३१३—३१४
(३) विष्णु	३१५—३६३
दोरूप-सूक्ष्म और स्थूल मूर्त रूप	३१५
शंखचक्रगदाधर	३१६—३१८
द्विभुज-चतुर्भुज	३१७
विष्णु-चिन्ह और आभरण	३१८—३२०
आयुध-पुरुष	३२०—३२२
सुदर्शन प्रतिमा	३२२
विष्णु मूर्तियाँ	३२२
सामान्य विष्णु (वासुदेव) मूर्त्ति लक्षण	३२३—३२५
बहुरूप वासुदेव चतुर्व्यूह, पचरूप, नवव्यूह, दशावतार द्वादशात्मा, चतुर्विंशति मूर्ति	३२५—३२६
पंचतत्त्वार्चन-वासुदेव संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, और नारायण	३२७—३३२
वासुदेव मूर्ति	३२८
सांकर्षणी मूर्त्ति	३२९
प्रद्युम्न मूर्ति	३३०
अनिरुद्ध	३३०—३३१
नारायण	३३१—३३२
नवव्यूह	३३२—३३३
दशात्मक (दशावतार), द्वादशात्मक, चतुर्विंशति	३३३—३३४
चतुर्विंशति मूर्तियाँ	३३४—३३८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय	पृष्ठ
चतुर्विंशतिमूर्ति तालिका	चार्ट—१
पद्मासन	३३९—३४०
विष्णु-मूर्तियाँ	
द्विभुज रूप	३४१
चतुर्भुज रूप	३४१—३४३
दशावतार रूप	३४३—३५८
मात्स्य रूप	३४३
कूर्म	३४४
वराह-रूप	३४४—३४५
नरसिंह	३४५—३५०
वामन	३५०—३५१
परशुराम	३५१
दाशरथि राम	३५१—३५२
राम-कृष्ण	३५२
कृष्ण	३५३—३५४
बलराम (संकर्षण, अनन्त, नाग)	३५४—३५७
बुद्ध	३५७—३५८
कल्कि	३५८
धन्वन्तरि	३५८
हयग्रीव	३५९
श्रीधर	३५९
त्रैलोक्यमोहन	३६०—३६२
विष्णु की तिर्यङ् मूर्तियाँ हंस, अश्व, हस्ति और मयूर	३६२—३६३
लक्ष्मी	३६३
३—शिव-स्वरूप	३६४—३६५
सदाशिव, महेश्वर	३६४
अमृतेश्वर, भैरव, रति-अनंग	३६५
४—गणेश मूर्तियाँ	३६५—३६८
विनायक के बारह नाम	३६६
गजवक्रश्चतुर्भुजः, कृष्णावतार गणेश	३६७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लौहित्य तट पर लिंग रूपी विनायक ३६८
गणपति स्तोत्र में प्रतिमालक्षण ३६८
५—कार्तिकेय ३६८—३६६
चतुर्मूर्ति कुमार
स्कन्द: षण्मुखो
६—सूर्य मूर्ति ३७०—३७३
द्विभुज आदित्य
पद्महस्तो दिवाकर:
रेवन्त ३७३
नवग्रह ३७३-३७४
७—लोकपाल (अष्टदिक्पाल) २७५—३९०
८—देवियाँ ३९०—३९२

१२—प्रासाद स्थापत्य ३६३—४०२

१—शिल्प और स्थापत्य ३९३—३९४
२—वास्तु-पूजा ३९५—३९८
इक्यासी पद वास्तु
चौंसठ पद वास्तु
सोलह पद वास्तु
लिंगमान
द्वारमान
३—प्रासाद लक्षण ३९८—४००
४—प्रासाद वर्ग और उनकी विशिष्टताएँ ४०२—४०२
ग्रन्थ सूची ४०३
अनुक्रमणिका
चित्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१–गरुड़ पुराण का महत्व

पुराणों की पर्याप्त पूजा हो रही है। आधुनिक विद्वानों में भी पठन-पाठन की परंपरा प्रचलित है। परन्तु उनकी गर्हणा भी होती है। यह अवांछनीय है। यदि कोई बात हमारी समझ के बाहर है तो पुराणों पर दोषारोपण नहीं कर सकते। यद्यपि पुराणों के यथार्थ रूप को जानने के लिये उनका "क्रिटिकल एडिशन" होना आवश्यक है और जब तक यह सम्भव नहीं है तब तक हम उन ग्रन्थों का अध्ययन रोक नहीं सकते। यदि रोक देंगे तो सारा शोध कार्य ही रुक जायगा। वैदिक साहित्य को छोड़कर अन्य ग्रन्थों में समय-समय पर उन ग्रन्थों के लेखकों ने बहुत कुछ समसामयिक बातें भी जोड़ दीं। इस प्रकार स्पष्ट है कि पुराणों के अध्ययन और अनुसंधान की दो प्रमुख आवश्यकताएँ—अध्ययन और उनका प्रामाणिक संस्करण—हैं। डा० हज़रा, डा० अग्रवाल, डा० राघवन, डा० पांडे प्रभृति विद्वान पुराणों का अनुशीलन कर रहे हैं। काशीराज-ट्रस्ट उनके प्रामाणिक संस्करण में भी संलग्न है। यहां पर गरुड़ पुराण का ऐतिहासिक अध्ययन भारती के चरणों पर निवेदित है। मैंने यथाशक्ति और यथा मति इसकी आत्मा को पहचानने का प्रयास किया है। मुझे निम्नांकित उद्धरण ही गरुड़पुराण की ऐतिहासिक प्रतिष्ठा का मूलाधार जान पड़ा—

सैन्धवा म्लेच्छा नास्तिका यवनास्तथा ॥ गरुड़ १। ५५। १५

भारत के पश्चिम देश में 'सैन्धवा म्लेच्छा नास्तिका यवनास्तथा' की स्थिति सिन्ध देश में प्रतिष्ठापित अरब सत्ता की परिचायिका है। दो एक बार फिर जब इसी पुराण को अधिक औत्सुक्य और ध्यान से पढ़ा तो इसमें वर्णित राजसिद्धान्त और राजनय के स्वरूप से भी पूर्व मत ही पुष्ट हुआ। भौगोलिक दृष्टिकोण से भी पुराण दो क्षेत्रों में म्लेच्छों को रखता है—

सैन्धवा म्लेच्छा। गरुड़, पूर्व० ५५। १५
हिमाचलालया म्लेच्छा ॥ गरुड़, पूर्व० ५५। १७

इससे इस पुराण का युग ईसा की ८वीं शताब्दी से कम से कम ११वीं शताब्दी तक जाता है। भक्ति-केन्द्र श्रीरंग (श्रीरंगश्च हरेस्तीर्थं, गरुण, १। ८१। २६) की प्रसिद्धि हो चुकी थी। दाशरथीराम (गरुण १। ८६। ११) और अन्य वैष्णव अवतार 'गोब्राह्मण हिताय' (गरुड़ १। १३१। ११–१९) हो रहे थे। दैत्यों का विनाश कर वेद–धर्मों की सुरक्षा करना आवश्यक थी—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दैत्यान्निहतवान्वेदधर्मादीनभ्यपालयत् ।। गरुड़ १ । १४२ । ७

भक्ति-क्रान्ति का श्रीगणेश हो चुका था—

विष्णुधर्माख्यविद्यया सर्वान्शत्रून्विनिर्जित्य ।।

गरुड़ १ । १९६ । १

स्पष्टत: राष्ट्र-संपात (गरुड़ १ । २१४ । ३७) और देश-भंग हो चुका था। इसका मूल कारण राष्ट्र की सुरक्षात्मक नीति थी। हम आक्रामक न होकर आक्रान्त होते रहे और अपनी रक्षा के लिये ही लड़ते रहे, यही हमारी हार का मूल कारण था। अमरीका के नेता श्री बैरी गोल्डवाटर (रिपब्लिकन सिनेटर) की धारणा है कि—

"A defensive war is never won"

Hindustan Times (Delhi May 25, 1964, p. 1, Column 1)

सुरक्षात्मक युद्ध से विजय नहीं मिलती है। इस युग के मनीषियों ने भी राष्ट्र-रक्षक-क्षत्रियों को बताया था—

सनह्य प्रथमंयाति यः सैन्यं शत्रुभूमिषु ।
स क्षत्रियो विजयते तस्य राज्यं च वर्धते ।।

स्कन्द पु० ७ । ४ । १७ । ८१

गरुड़ पुराण भी बताता है—

क्षत्रियः परसैन्यानि जित्वा पृथ्वीं प्रपालयेत् ।।

गरुड़ १ । १०७ । ५

हिन्दू स्वाधीनता का सूर्य अस्त हो चुका था। अत: उसकी प्राप्ति के लिये पराधीनता की निन्दा और स्वाधीनता का गौरव-घोष हो रहा था—

स्वाधीनवृत्तेः साफल्यं न पराधीनवृत्तिता ।
ये पराधीन कर्माणो जीवन्तोऽपि च ते मृताः ।।

गरुड़ पु० १ । ११५ । ३७

अत: क्षत्रिय को प्रोत्साहित किया जा रहा था—

मर्त्याः स्त्रीवशगाः स्त्रियश्च चपला नीचा जना उन्नताः ।
हा कष्टं खलु जीवितं कलियुगे धन्या जना ये मृताः ।।

गरुड़ १ । ११५ । २

कलियुग (हाथी-म्लेच्छ मातंग का युग) आ चुका था। अत: वे धन्य थे जो मर चुके थे और उन्हें राष्ट्र-पराभव नहीं देखना पड़ा—

धन्यास्ते ये न पश्यन्ति देशभंगं कुलक्षयम् ।
परचित्तगतान्दारान्पुत्रं कुव्यसने स्थितम् ।।

गरुड़ १ । ११५ । ३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अल्प जीवन भी प्रथित ही है यदि यह विज्ञान, विक्रम, यश और सम्मान पूर्ण रहा है। इसके प्रतिकूल चिरकालिक जीवन भी निन्द्य है। कौआ भी उच्छिष्ट खाकर चिरायु होता है, परन्तु उसका जीवन प्रथित नहीं होता है—

सज्जीवितं क्षणमपि प्रथितं मनुष्यैर्विज्ञानविक्रमयशोभिरभग्नमानैः।
तन्नामजीवितमिति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः।
काकोऽपि जीवति चिरञ्च बलिञ्च भुङ्क्ते॥ गरुड़ १। ११५। ३३

ऐसे जीवन से लाभ ही क्या ? क्षत्रिय को सिंह के समान ही आचरण करना चाहिये—

किं जीवितेन धनमानविवर्जितेन मित्रेण किं भवतीति सशंकितेन च।
सिंहव्रतञ्चरत गच्छत मा विषादं काकोऽपि जीवति चिरञ्च बलिञ्च भुङ्क्ते॥
गरुड़ १। ११५। ३४

सिंहव्रत की परम्परा भी इसी युग का राष्ट्रीय आदर्श था। गरुड़ पुराण भी क्षत्रियों को सिंह के समान मृगेन्द्रता (सिंहस्य······नित्यमूर्जितसत्त्वस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता)[१] अपने ही पौरुष-पराक्रम द्वारा प्राप्त करने को प्रोत्साहित करता है। यह तो हाथियों का उष्ण रुधिर पीने से ही सम्भव था—

यदि विभव विहीनः प्रच्युतो वाग्यु दैवान्नतु खलजन सेवां काङ्क्षयेन्नैव नीचम्।
न तृणमदनकार्य्ये सुक्षुधार्त्तोऽस्ति सिंहः। पिबति रुधिरमुष्णं प्रायशः कुञ्जराणाम्॥
गरुड़ पु० १। ११०। १८

यद्यपि गज-सिंह का सहज बैर रहा है, परन्तु मध्य युग में गज-सिंह का युद्ध म्लेच्छ-मात्तंग और क्षत्रियसिंह के बीच होने वाला राष्ट्रीय-युद्ध था, जिसके आधार पर भी इस पुराण को ईसा की ९ वीं और १२ वीं शताब्दी के बीच रखा जा सकता है।

स्वाधीनता प्राप्ति के लिये नीति, बल, विक्रम और उद्यम के अतिरिक्त राष्ट्रीय एकता की परमावश्यकता थी। गरुड़ पुराण भी अन्य संस्कृत ग्रन्थों की भाँति एकता और संघ-शक्ति का महत्व बतलाता है :—

बहूनामल्पसाराणां समुदायो हि दारुणः।
तृणैरावेष्टिता रज्जुस्तया नागोऽपि बध्यते॥
गरुड़ पु० १। ११४। ६६

अर्थात् बहुत से दुर्बलों का संघ भी कठिन होता है। यथा घास के तिनकों से बंटी हुई (मिली हुई) रस्सी से हाथी भी बँध जाता है। यहाँ पर

---

१. गरुड़ पु० १। ११५। १५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'नाग' शब्द पर श्लेष है और यह एक ओर तो साधारण हाथी का बोधक है परन्तु अभीष्ट अर्थ में पुराण बताता है कि संघ शक्ति से ही तुरुष्क-म्लेच्छ का निराकरण हो सकता है। नाभा दास जी का भक्तमाल अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रंथ है परन्तु इसकी पूर्ण रूप से उपेक्षा हुई है। यह स्वदेश भक्तों की नाम माला है। ग्रन्थ के आरम्भ में ही प्रियादास ने इसके क्रान्ति-स्वरूप का परिचय दिया है:—

"भक्ति तरु पौधा ताहि विघ्न डर छेरिहू को,
बारदे बिचारवारि सींच्यो सतसंग सों।
लग्योई बढ़न गोदा चहुँ दिशि कढ़न सो
चढ़न आकाश जस फैल्यो बहुरंग सों॥
संत उर आल बाल शोभित विशाल
छाया जिये जीव जाल ताप गये यों प्रसंग सों॥
देखो बढ़वार जाहि अजाहू की शंका हुती
ताही पेड़ बँधे झूलैं हाथी जीते जंग सों॥"

प्रियादास टीका ६

इस प्रकार यहाँ भी हाथी म्लेच्छ-सम्राट का ही परिचायक है जो भक्ति क्रान्ति के वशीभूत होकर स्वयं भक्त बन गया था। अत: स्पष्ट है कि गरुड़ पुराण का ऐतिहासिक व सांस्कृतिक अध्ययन मध्य कालीन भारतीय इतिहास व संस्कृति को जानने का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

अभी तक ऐसा माना जाता है कि हर्ष की मृत्यु के बाद हिन्दू राज-शास्त्र का कोई विकास नहीं हुआ है।[१] गारुड़ नीतिसार से इस विचार की असत्यता सिद्ध हो जाती है। राजनैतिक चेतना के साथ ही साथ भक्ति-क्रान्ति और समता तथा समवाय का राष्ट्रीय दर्शन गरुण पुराण की महान देन है। साहित्य, वैद्यक-शास्त्र, व्याकरण और दार्शनिक प्रक्रिया तथा धार्मिक जीवन का सुन्दर वर्णन मिलता है, जो उपेक्षित पूर्व मध्य कालीन इतिहास को जानने का प्रामाणिक वृत्तान्त है।

---

१. स्मिथ अर्ली हिस्ट्री, पृ० ३७१—"In political institutions no evolution took place."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२–भूगोल

ॐ पृथिव्यै नमः (गरुड़ १ । ३२ । १७)

प्राचीन भारतीय भूगोल के अध्ययन करने में पुराणों का यथेष्ट महत्व है । अधिकांशतः यह सामग्री भुवन-कोष में उपलब्ध होती है । इसके अतिरिक्त अन्यत्र भी देशों, नगरों, ग्रामों, पर्वतों, नदियों, वनों और तीर्थों तथा द्वीपों के नाम प्राप्त होते हैं । गरुड़ पुराण के महत्व पर अभी तक विद्वानों का ध्यान कम गया है । यहाँ भी हमें पूर्वार्ध के अध्यायों ५४-५६ में भुवन-कोष (गरुण, १ । ५३ । १३) का वर्णन मिलता है । इसके अतिरिक्त पूर्वार्ध अ० ६६, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, १२७, १४३ और उत्तरार्ध के अ० २२, २४, २८ और ३० में तीर्थों का वर्णन प्राप्त होता है । अ० ८१—८६ तो केवल गया माहात्म्य से ही सम्बन्धित हैं । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि इस पुराण का मुख्य अधिष्ठान गया प्रान्त में धर्मारण्य ही था । पूर्वार्ध के अ० ६८ में रत्नों की प्राप्ति होने वाले प्रदेशों का वर्णन––"वज्रस्याष्टविहारकाः" (गरुड़ पु० १ । ६८ । १७) मिलता है । यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है । इसी प्रकार पूर्वा० अ० ६९ में मौक्तिकों का वर्णन करते हुए उनकी ८ खानों (आकरास्त्वष्टौ––गरुड़ १ । ६९ । २३) का वर्णन भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है । इसी अध्याय (१ । ६९ । २४) में उल्लिखित "पाताल लोकान्तर सिंहलेषु" पद से भारतीय भूगोल पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है । अभी तक पुराणों और अन्य ग्रन्थों में उल्लिखित 'पाताल' क्षेत्र को काल्पनिक ही माना गया है । यह हमारा ही भ्रम और प्रमाद है । योरप में समुद्र तल से निचले स्थानों को नीदरलैंड कहते ही हैं । परन्तु पाताल को अज्ञतावश 'फ़ेबुलस' माना जाता रहा है । ऊपर के उद्धरण से स्पष्ट ही है कि दक्षिण समुद्र में स्थित द्वीपों को–सैंहलकादिभिश्च––पाताल में स्थित बताया गया है । प्रसिद्ध पुरावृत्त है कि विष्णु ने बलि से सारा राज्य लेकर उसे पाताल या द्वीपान्तर में रहने के लिये भेज दिया था ।[१] स्पष्टतः यही बलि (या बाली) द्वीप के उपनिवेश-स्थापना

---

१. स्कन्द पु० ७ । २ । १९ । २९-३० :

गृहीत्वेति बले राज्यं मनुपुत्रे नियोजितम् ।
द्वीपांतरे च ते दैत्याः प्रेषिताश्चाज्ञयास्वयम् ॥ २९ ॥
पातालनिलया ये तु तत्रैव निवेशिताः ।
देवानां परमो हर्षो संजातो बलिनिग्रहे ॥ ३० ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की पौराणिक कथा है। अतः पाताल से प्रथित द्वीपान्तर लोक का ही बोध होता है। फ़ारस (पारशव और पारसीक, गरुड़ १। ६९। २३-२४) में भी मोती होते थे। इससे यही सिद्ध होता है कि भारत अपनी प्राकृतिक सीमाओं के बाहर स्थित देशों और उनकी विशिष्टताओं से परिचित था। यही तथ्य इस कथन से भी सिद्ध होता है कि तुर्किस्तान का घोड़ा सर्वश्रेष्ठ होता है (उत्तमोऽश्वस्तुरुष्कजः—गरुड़ १। २०१। ४)। गरुड़ पूर्व० अ० ७० में मणि-प्रबोध का विवेचन करते हुए कुछ देशों का उल्लेख किया गया है यथा—सिंहल, कलसपुर आदि। इनसे भी तत्कालीन भारत का व्यापक दृष्टिकोण और विकसित भौगोलिक ज्ञान का पता चलता है।

भौमिक विस्तार—स्पष्टतः गरुड़ पुराण का भौगोलिक विस्तार अत्यन्त व्यापक है। उत्तर में हिमाचल (गरुड़ १। ५। १७) और कैलास १। ३८। ५) से लेकर दक्षिण में ताम्रपर्णी (१। ५२। ६) और सिंहल तक विस्तृत था। उत्तर पश्चिम में वाह्लीक, लम्बक (लमग़न) और गान्धार (१। ५५। १७) से लेकर ब्रह्मपुत्र की घाटी (ब्रह्मपुत्राः, १। ५५। १८) तक फैला हुआ था।

दक्षिण समुद्र के वरुण (बोर्नियो) और कटाह (केडा) द्वीपों से भी गरुड़ पुराण परिचित था।

लोकसंस्थिति

पौराणिक भुवन कोष (गरुड़ १। ३। २) की एक विशिष्टता ब्रह्माण्ड (गरुड़ १। ३। ६) की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय तथा पुनः सृष्टि का वर्णन करना है। यही संसार-चक्र (गरुड़ १। २१७। २) है जिसमें पृथिवी और प्राणी भी चक्कर काटते रहते हैं। भूगोल या भूगोलक (पृथिवी) का स्वरूप, विभाजन और द्वीपों तथा वर्षों के वर्णन के साथ ही साथ भारतवर्ष का वर्णन मिलता है जहाँ हम रहते हैं—

इदं तु भारतंवर्षं यत्र वर्तामिहे वयं। भीष्मपर्व १२। ५२

अर्थात् भारतवर्ष हमारी जन्मभूमि है। यह भारतवर्ष भी प्राचीन युग में विशाल था जिसमें इसके नव-भेदों में उल्लिखित द्वीपान्तर के बहुत से द्वीप सम्मिलित थे। काल और कर्म की धार से कटते-कटते यह आधुनिक स्वरूप में भी भारत ही कहलाता है। सबसे प्रमुख विशेषता इसकी एकता रही है। केरल और सेतुबंधु से लेकर काश्मीर और कैलास तक एक ही देश था जो **सर्व प्रिय देश था—**

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अत्र ते कीर्तयिष्यामि वर्षं भारतमुत्तमम् ।
सर्वेषांमेव भूतानां प्रियं भारतमुत्तमम् ।।

पद्म पु०, आदिखंड ६ । २–६

नहीं, सम्पूर्ण जगत ही एक अखण्ड रूप था और वह भगवान भी एक ही है— केवल नाम भेद है । गरुड़ पुराण भी यही मानता है—

यथाऽखण्डं जगत्सर्वं त्वमेवपुरुषोत्तमः ।

गरुड़ १ । ११८ । ४

इसी कारण भारतवर्णन सम्पूर्ण लोक संस्थान[1] के साथ ही किया गया है। कितनी उदात्त थी ऋषि कल्पना ।

शरीर में ही ब्रह्माण्ड के गुण विद्यमान हैं । पाताल, पर्वत, लोक, द्वीप, सागर आदि ग्रह सभी ही पिण्ड में स्थित हैं (गरुड़ २ । २२ । ५२) । पैरों के नीचे तल, पैरों से ऊपरी भाग को वितल, घुटनों के आस-पास सुतल, जंघाओं में तल और अतल, उरु प्रदेश में रसातल, गुह्यदेश में महातल और कटि-भाग में पाताल स्थित है । नाभि मण्डल में भूलोक, उसके ऊपर भुवः लोक, हृदय में स्वर्लोक, कण्ठस्थान में महः लोक, मुख प्रदेश में जनलोक, ललाट में तपोलोक और महारन्ध्र में सत्य लोक की कल्पना की गई है । ये ही १४ भुवन हैं (गरुड़ २ । २२ । ५३-५६) । चौदह लोकों के आगे त्रिकोण पर मेरु स्थित है, अधः-कोण पर मन्दर, दक्षिण कोण में कैलास, बाँये कोण पर हिमाचल स्थित हैं, ऊर्ध्व भाग में निषध, दक्षिण में गन्धमादन और वामरेखा पर रमण पर्वत स्थित हैं । ये ही—मेरु, मन्दर, कैलास, हिमाचल, निषध, गन्धमादन और रमण— सात कुल पर्वत हैं (सप्तैते कुलपर्वताः—गरुड़ २ । २२ । ५७-५८) ।

अस्थि, मज्जा, मांस, शिर, त्वचा, रोमों, नखों के स्थानों पर क्रमशः जम्बू, शाक, कुश, क्रौंच, शाल्मल, गोमेद, पुष्कर, नामक सात द्वीप स्थित हैं (गरुड़ २ । २२ । ५९-६०) । उसके बाद समुद्र स्थित हैं । मूत्र, क्षीर, श्लेष्म, मज्जा, रस, रक्त, विट (अंडकोश का मध्यस्थ पर्दा) वीर्य स्थानों पर क्रमशः क्षारोद (क्षीरोद पाठ अशुद्ध है) क्षीरोद, सुरोदधि, घृत सागर, रसोदधि, दधिसागर और स्वादूदक सागर स्थित हैं (गरुड़ २ । २२ । ६१-६२) । यही महासागर-सप्तद्वीपों की स्थिति है। इसी प्रकार नादचक्र, बिन्दुचक्र, नेत्रों, हृदय, विष्णुस्थान, शुक्रस्थान, नाभिस्थान, मुह और पैरों पर क्रमशः सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु नामक नवग्रहों की स्थिति (ग्रह मण्डल) बताई गई है (गरुड़ २ । २२ । ६४-६५) । मनुष्यों के जीवन

---

१. गरुड़ १ । ५६ । १८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर संसार, पृथिवी और ग्रहमंडल का प्रभाव पड़ता ही है। अतः भुवन कोष के साथ ही पुराणों से हमें ग्रह-मण्डल की स्थितियों और लक्षणों का भी ज्ञान होता है। परन्तु अभी तक इधर लोगों का ध्यान कम गया है। यह ज्योतिषाचार्यों का विशेष क्षेत्र है और आज जब विज्ञान इन ग्रहों का अध्ययन करना चाहता है तब हमें इस की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये।

पृथिवी पद्माकार (पृथिवी-पद्म, गरुड़ १ । १५ । १२) कही गई है। यह जग का आधार[1] होने से धरित्री (गरुड़ १ । ६९ । १५) तथा सुवर्ण पूर्ण (१ । ६९ । १७) और रत्नाकरा (गरुड़ १ । २०३ । ८४) भूमि ही बसुन्धरा (गरुड़ २ । २४ । ७) थी। इसीलिये भगवती पृथिवी (गरुड़ १ । १९७ । २३) आराध्य थी। परन्तु परायत्त होने से ही यह वन्ध्यफला (गरुड़ १ । ११५ । २) भी हो गई। पृथिवी पानी पर तैरती हुई नाव के समान थी (गरुड़ १ । ५४ । ३)। पृथिवी ७ द्वीपों वाली कही गई है (गरुड़ १ । ५३ । २)। ये सात द्वीप हैं—जम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्कर द्वीप—

जम्बु प्लक्ष द्वयौ द्वीपौ शाल्मलश्चापरो हर।
कुशः क्रौञ्चस्तथाशाकः पुष्करश्चैव सप्तमः॥

गरुड़ १ । ५४ । ४

इन द्वीपों की पहचान कठिन है। सम्भवतः कुश द्वीप अफ़्रीका था। वहाँ "कुशियन कल्चर" का पता खुदाई से भी लगा है। ये सातों द्वीप सात समुद्रों से घिरे हुए बताये गये हैं—

लवणेक्षुसुरासर्पिदधिदुग्धजलान्तकाः। गरुड़ १ । ५४ । ५

इनके नाम भारतीय जीवन की प्रसिद्ध ७ वस्तुओं—लवण, सुरा, इक्षु (रस), सर्पि, दधि, दुग्ध और जल-पर आधारित हैं। इन विभिन्न समुद्रों के जलों में ऊपर उल्लिखित वस्तुओं के गुणों का सादृश्य होने के कारण उनका ऐसा नामकरण किया गया था।

प्रत्येक द्वीप और समुद्र अपने पहले द्वीप से विस्तार में दुगुना होता गया है—

द्वीपात्तु द्विगुणो द्वीपः समुद्रश्च वृषध्वज।

गरुड़ १ । ५४ । ६ (१)

जम्बूद्वीप

जम्बूद्वीप में १ लाख योजन वाला विस्तृत मेरु पर्वत स्थित है। इसमें ८४ हजार योजन तो पृथिवी के ऊपर है और १६ हजार योजन नीचे प्रविष्ट

---

१. गरुड़ १ । २१६ । १० ; एवं सा जगदाधारा······उर्वी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो गया है तथा चोटी पर ३२ योजन विस्तृत है (गरुड़ १ । ५४ । ६–७) । इसके दक्षिण में हिमवान्, हेमकूट और निषध पर्वत स्थित हैं; और नील, श्वेत तथा शृङ्गवान उत्तर में स्थित वर्ष-पर्वत हैं (गरुड़ १ । ५४ । ८) ।

जम्बूद्वीप के सम्राट अग्नीध्र के नौ पुत्र थे—नाभि, किंपुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्य, हिरण्वान्, कुरु, भद्राश्व और केतुमाल । उनके नाम पर ही अग्नीध्र ने जम्बूद्वीप के खण्ड कर उन्हें दे दिये । वे वर्ष भी उनके ही नामों से प्रसिद्ध हुए (गरुड़ १ । ५४ । ९–११) ।

इलावृत वर्ष मध्य में स्थित था, भद्राश्व पूर्व में स्थित था, हिरण्वान् पूर्व दक्षिण में, उसके बाद किंपुरुष मेरु के दक्षिण में, भारत दक्षिण में तथा हरिवर्ष दक्षिण पश्चिम में स्थित था । इसी प्रकार केतुमाल पश्चिम में तथा रम्यक पश्चिमोत्तर में स्थित थे । उत्तर में कल्पवृक्षों से घिरा हुआ कुरु वर्ष था (गरुड़ १ । ५५ । १–३) ।

भारतवर्ष

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारत भूमिभागे ।
स्वर्गापवर्गस्य फलार्जनाय भवन्ति भूयः पुरुषः सुरत्वात् ॥

गरुड़ २ । १ । ६

सत्य ही भारत वर्ष (गरुड़ १।५५।३) देवताओं की भी प्रिय भूमि थी । कर्म भूमि और पुण्य भूमि भी यही थी । भारत जम्बूद्वीप का दक्षिणी वर्ष था । ऋषभ के पुत्र भरत (गरुड़ १।५४।१२) से ही यह देश भारतवर्ष कहलाया ।[१] यह अद्‌भुत देश है ।[२] इसके पूर्व में किरात, पश्चिम में यवन, दक्षिण में आन्ध्र और उत्तर में तुरुष्क बसे थे ।[३]

नव-भेद—इसके नव भेद थे । ये ही नवद्वीप कहलाते थे—

इन्द्रद्वीपः कशेरुमांस्ताम्रवर्णो गभस्तिमान् ।

---

१. प्रबन्धचिन्तामणि, तृतीय प्रकाश, पृ० ६२ । पंक्ति २० :
कृतयुगे आदि देवः श्री ऋषभस्तत्सूनुर्भरतस्तन्नाम्ना भरतखण्डमिदं प्रतीतम् ।

२. वही, ६३ । २ : तेषां वै भरतो ज्येष्ठो नारायणपरायणः ।
विख्यातं वर्षमेतद्यन्नाम्ना भारतमद्‌भुतम् ॥

३. गरुड़ १ । ५५ । ५ : पूर्वे किरातास्तस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्थिताः ।
आन्ध्रा दक्षिणतो रुद्र तुरुष्कास्त्वपि चोत्तरे ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्तरवासिनः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नागद्वीपः कटाहश्च सिंहलोवारुणस्तथा ॥
अयन्तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ॥
(गरुड़ १ । ५५ । ४)

इन्द्रद्वीप—इसकी पहचान अंडमान द्वीप से की गई है।

कशेरुमान् (कसेरुमान्)—मलाया (एस० एन० मजुमदार, कनिंघम ऐ० ज्या० पृ० ७५२)।

ताम्रवर्ण—यह यूनानियों का तप्रवेन ही है। इसकी पहचान लंका से की गई है। परन्तु यहीं पर सिंहल का भी उल्लेख हुआ है।

गभस्तिमान्—अज्ञात है।

नागद्वीप—यह निकोबार द्वीप है।

कटाह्—मलाया प्रायद्वीप का केडा ही है।

सिंह्ल—निश्चयतः आधुनिक सीलोन ही है।

वारुणः—यह आधुनिक बोर्नियो है।

इस प्रकार ये आठों द्वीप सीलोन और पूर्वी द्वीप समूह के ही भाग थे। इन्हें प्राचीन युग में समुद्रद्वीप, सर्वद्वीप और द्वीपान्तर का प्रचलित नाम मिला था।

देश-विभाग

भारत का प्रदेश-विभाजन विभिन्न परंपराओं पर आधारित है। पंचस्थल विभाग, षटखण्ड, सप्त खण्ड और नौ खण्डों में भारत को विभक्त किया गया है।[१] गरुड़ पुराण दिग्विभागों (१ । ६९ । १५) के अनुसार देश विभाग करता है। प्राची, प्रतीची, यामी (दक्षिण) और उदीची मुख्य दिशाएं (गरुड़ १ । ८९ । ४१) हैं। इनके दिग्विभागों को मिलाकर हमें—

१—प्राची
२—यामी
३—प्रतीची
४—उत्तर
५—ऐशानी (उत्तर-पूर्व)
६—आग्नेयी (पूर्व-दक्षिण)
७—नैर्ऋती (दक्षिण पश्चिम)
८—वायव्य (उत्तर-पश्चिम)

} गरुड़ १ । १३ । १–८

१. विशेष विवरण के लिये देखिये लेखक का "प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप" अ० ४

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दिग्विभाग प्राप्त होते हैं। सबके मध्य भाग में स्थित पुण्य देश भी प्रसिद्ध देश-विभाग था, जिसका नाम—

९—मध्य देश, (गरुड़ १ । ३२ । २१) था।

मध्य देश (धर्म देश)

गरुड़ पुराण भी मध्य देश को कृष्ण मृग का विचरण-क्षेत्र मानकर इसकी महिमा और पवित्रता को बताता है—

यस्मिन्देशे मृगः कृष्णस्तस्मिन्धर्मं निबोधत ।
पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्रार्थं मिश्रिताः ॥

गरुड़ १ । ९३ । ३

इसी कारण इसे धर्म देश भी कहा गया है—

कृष्णसारो मृगो यत्र धर्मदेशः स उच्चते ॥

गरुड़ २ । २ । ९ (२)

क्योंकि यहां देवता, मुनिगण, पितृगण, धर्म, सत्य और विद्या का विमल निवास है—

ब्रह्माद्याः देवताः सर्वे मुनयः पितरः खग ।
धर्मः सत्यश्च विद्या च तत्र तिष्ठन्ति सर्वदा ॥

गरुड़ २ । २ । १०

यहां शंखादि पद्म (गरुण १ । ३२ । २१) तथा सत्व, रज, और तामस गुणों (गरुड़ १ । ३४ । २०) तथा सूर्य, चन्द्र और ग्रह मण्डलों (गरुड़ १ । ३४ । २१) की पूजाएं भी प्रचलित थीं। यहां का आचार्य भी प्रतिष्ठित माना जाता था—

ऋत्विग्भिः सह चाचार्यं वरयेन्मध्यदेशगम् ॥

गरुड़ १ । ४८ । २ (१)

इस प्रकार इस युग में भी जब कि उत्तर पश्चिम की पहाड़ियों और सिन्ध में म्लेच्छों का प्राबल्य हो चुका था, मध्यदेश की पवित्रता विद्यमान थी।

जनपद वर्णन

गरुड़ पुराण में नव भेदों के बाद ही देश-विभागों के अनुसार जनपद तालिका दी गई है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मध्य देश जनाः

इसके अन्तर्गत निम्नलिखित जनपद सम्मिलित थे—
(गरुड़ १ । ५५ । ९, १०)

पांचालाः कुरवो मत्स्या यौधेयाः सपटच्चराः ।
कुन्तयः शूरसेनाश्च मध्यदेश जनाः स्मृताः ॥
गरुड़ १ । ५५ । १०

पांचाल

प्रसिद्ध प्राचीन जनपद था। इस युग में यह कान्यकुब्ज देश कहा जाता था जिसकी राजधानी महोदयपुर (गरुड़ २ । १७ । ५) या कन्नौज थी।

चन्द्रवंश का वर्णन करते हुए गरुड़ पुराण कहता है कि हर्यश्व के निम्नलिखित पुत्र थे :—

मुकुल
यवीनर
बृहद्भानु — गरुड़ १ । १४० । २०
कम्पिल्ल
सृञ्जय

इन को ही पाञ्चालान् (गरुड़ १ । १४० । १९) कहा गया है।

इन नामों में कम्पिल्ल, सृञ्जय और पाञ्चाल प्रसिद्ध भौगोलिक नाम हैं। कम्पिल्ल दक्षिण पांचाल की राजधानी थी। संभवत: कम्पिल्ल द्वारा प्रतिष्ठापित होने के कारण ही यह नगर काम्पिल्य कहलाया।

सृञ्जयों का भी एक प्रसिद्ध जनपद था। संभवत: इसने भी अपना नाम सृञ्जय नामक राजपुत्र से ही प्राप्त किया। सृञ्जयों की प्रसिद्धि वैदिक युग में ही स्थापित हो चुकी थी।[१] महाभारत (आदि पर्व १३७ । ३७) के अनुसार भी पांचालों और सृञ्जयों (पांचाला: सृञ्जयास्तथा) में घनिष्ठ सम्बन्ध था।

पांचाल का भी नाम इन राजपुत्रों के नाम पर ही पड़ा। पांचो राजपुत्र राष्ट्र के पांच विषयों की रक्षा करने में समर्थ थे इसीलिये वे पांचाल कहलाये।[२]

---

१. वेदिक एज, पृ० २५३–२५४
२. विष्णु पु० ४ । १९ । ५९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसके दो भाग—उत्तरी पांचाल तथा दक्षिणी पांचाल—थे। महाभारत युग में यह एक प्रसिद्ध राष्ट्र था जहां द्रौपदी को स्वयंवर में पाण्डवों ने पराक्रम से प्राप्त किया था—

ततः पाञ्चाल विषये द्रौपद्यास्ते स्वयंवरम् ।
विज्ञाय वीर्यशुल्कान्तां पाण्डवा उपयेमिरे ।।

गरुण १ । १४५ । १३

परन्तु स्वयंवर में आने के पूर्व ही एकचक्रा (इटावा प्रान्त में यमुना के तट पर स्थित चक्रनगर) में ब्राह्मण के घर पर रहते हुए पाण्डवों ने बक नामक राक्षस का बध किया था (गरुड़ १ । १४५ । ११-१२)। अतः एकचक्रा नगर भी पांचाल-विषय का ही नगर था।

संभवतः काम्पिल्लक (गरुड़ १ । २०२ । ४९)—गुण्डा रोचना नामक एक औषधि लता—भी काम्पिल्ल में बहुतायत से होने के कारण ही इस नाम से प्रसिद्ध हुई।

कुरु—यह भी प्राचीन प्रसिद्ध जनपद है और पांचाल से मिला होने के कारण दोनों का उल्लेख प्रायः साथ-साथ किया गया है। यह दिल्ली और मेरठ के आस-पास बसा हुआ था।

इन्द्रप्रस्थ (गरुड़ १ । १४५ । १४—इन्द्रप्रस्थे पुरोत्तमे) पाण्डवों की राजधानी थी। कुरुक्षेत्र[१] अत्यन्त प्रसिद्ध और पवित्र तीर्थ था। यहीं पाण्डवों और कौरवों के बीच युद्ध हुआ था (गरुड़ १ । १४५ । २३)।

मत्स्य—यह भी प्रसिद्ध प्राचीन जनपद है जो अलवर, भरतपुर और जैपुर प्रान्तों में बसा हुआ था। विराट नगर (आधुनिक बैराट, जयपुर प्रान्त) इसकी राजधानी थी जहां पाण्डवों ने एक वर्ष तक गुप्त रूप से अज्ञातवास किया था (गरुड़ १ । १४५ । २१-२२)।

यौधेय—प्राचीन भारत का प्रसिद्ध गण-राज्य था जिसमें संभवतः अन्य कई आयुध जीवी जातियाँ भी सम्मिलित थीं। लुधियाना, पटियाला, अम्बाला, कर्नाल, रोहतक, सहारनपुर, देहरादून, अलवर तथा भरतपुर और इसके सन्नि-

---

१—गरुड़ १ । ६६ । ६; १ । ८१ । ४; १ । ८२ । १४; १ । ८४ । ४; १ । १२७ । १०; १ । २०५ । ११५; १ । २१० । २१; वही, २ । २४ । ८०; २ । २८ । १९ ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कट के कुछ भूभाग सम्मिलित थे। इसकी राजधानी राजपुर थी जो संभवत: अलवर प्रान्त का रजोर या रजोरगढ़ था।[१]

इनको युधिष्ठिर से सम्बन्धित बताना महाभूल है।[२] युधिष्ठिर की रानी यौधेयी ने देवक को जन्म दिया था (गरुड़ १। १४०। ३८-३९)।

पटच्चर—यह मध्य प्रदेश का जनपद है। महाभारत (सभा पर्व ३१। ४) के अनुसार सहदेव की दक्षिण-विजय में विजित-देश था। उन्होंने दक्षिण दिशा पर विजय करने के लिये कुरु राज्य के दक्षिण शूरसेन (मथुरा मण्डल), मत्स्य राज्य (अलवर-भरतपुर), अधिराज्य (रीवां प्रान्त) और अपर मत्स्य होते हुए पटच्चर की विजय की। वहाँ से पुन: निषाद भूमि (विन्ध्य प्रदेश) में प्रविष्ट हुए।[३]

डा० सरकार इसकी पहचान इलाहाबाद और बांदा प्रान्तों से करते हैं।[४] डा० अग्रवाल इसकी पहचान पटौंदी से करते हैं।[५]

कुन्ति—सहदेव ने पटच्चर को जीतने के बाद विन्ध्याचल पर चढ़ कर कुन्ति-भोज राज्य को जीता (सभा पर्व ३१। ५-६) जो चम्बल नदी के पहले ही स्थित था (सभा पर्व ३१। ७)। अत: इसकी पहचान ग्वालियर प्रान्त के कोंटवार खण्ड से करना ही ठीक है।

शूरसेन—प्रसिद्ध प्राचीन जनपद है जिसकी पहचान मथुरा मण्डल से की गई है। पहले यहाँ यादवों (गरुण १। १५। १२९) का राज्य था। जरासन्ध के भय से वे लोग कृष्ण के साथ द्वारका चले गये थे।

यह जनपद यमुना नदी (गरुण १। १८। १७) से अभिसिंचित होता है। मथुरापुरी[६], गोवर्धन[७], धेनुकारण्य[८] या धेनुवन[९], और गोकुल[१०]

---

१. देखिये लेखक का यौधेयों का इतिहास।
२. वही पृ० १५
३. महा० सभा पर्व ३१। १-५
४. जाग० ए० मेड० इ०, पृ० २२
५. पाणिनि भारत पृ० ७६
६. गरुड़ पु०, १। ८१। १०
७. वही, १। १५। १३१; १। ८१। २०; १। २२५। २
८. वही, १। ८३। २७
९. वही, १। ८३। १२
१०. वही, १। २२६। १२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यहाँ के प्रसिद्ध तीर्थ स्थान थे जो कृष्ण की जीवन लीला से सम्बद्ध हैं। **मथुरा** भारतवर्ष की सात मोक्ष पुरियों में से एक है (गरुड़ २ । २८ । ३)। **कृष्ण ने** धेनुक नामक राक्षस को मारा था (गरुड़ १ । १४४ । ३) । इसी राक्षस से सम्बद्ध धेनुकारण्य था । हरि ने ही गोवर्धन शैल को भी धारण किया था और यहीं इन्द्र ने उनकी पूजा की थी (गरुड़ १ । १४४ । ४) । कंसादि राक्षसों को मारकर श्रीकृष्ण ने उग्रसेन को मथुरा का राजा बनाया था (गरुण १ । १४४ । ११) । श्रीकृष्ण आदि के स्वर्गारोहण करने के बाद अनिरुद्ध पुत्र वज्र को ही (१ । १४४ । ११) यहाँ का राजा बनाया गया ।

भर्गभूमि--बुद्ध युग में भर्गों का एक प्रसिद्ध गणराज्य था । भर्ग का ही प्राकृत रूप भग्ग है । महाभारत की जनपद सूची में भी भर्ग नामक जनपद का उल्लेख मिलता है (भीष्म पर्व ९ । ५१) । भीम ने इसे वत्स भूमि (वत्स जनपद=कौशाम्बी खण्ड) के बाद और निषाद देश के पहले जीता था (सभा पर्व ३० । १०-११) । अत: भर्ग देश ही भग्ग राज्य था जो वत्स महाजनपद के सन्निकट मिर्जापुर प्रान्त में बसा था ।

इस जनपद का नाम राजा भर्गभूमि (गरुड़ १ । १३९ । १३) के नाम पर ही पड़ा जो वीतिहोत्र का पौत्र और भर्ग का पुत्र था । गरुड़ पुराण केवल इन राजाओं का ही उल्लेख करता है । यह भी मध्य देश का ही जनपद था ।

पूर्व देश[1]

मध्य देश के पूर्व में पूर्व देश माना गया है। 'पूर्वा दिषु'[2] और पूर्वा दिषु प्रदेशेषु[3] से भी पूर्व देश का ही बोध होता है । इस पुराण में न तो मध्य देश की ही सीमायें दी गई हैं और न पूर्व देश या अन्य किसी दिग्भाग का विस्तार ही दिया गया है । मनु के अनुसार प्रयाग से पश्चिम में मध्य देश था (प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्य देश: प्रकीर्तित:)[4] । अस्तु मनु के अनुसार प्रयाग से पूर्व में पूर्व देश स्थित था । राज शेखर के अनुसार यह वाराणसी के पूर्व स्थित था (वाराणस्या पुरत: पूर्व देश:) ।[5]

---

१. गरुड़ पु०, १ । ३२ । २२ (१)

२. वही, १ । ३४ । २३

३. वही, १ । ३४ । ३८

४. मनुस्मृति, २ । २१

५. का० मी०, ९३ । २०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संभवत: गरुड़ पुराण और विष्णुधर्मोत्तर भी यही मानते हैं क्योंकि कोशल जनपद को मध्य देश में न रखकर पूर्व दिशा (पूर्वस्यां कोशलास्तथा)[१] में स्थित बताया गया है। काव्य मीमांसा भी कोशल को पूर्व देश में ही स्थित बताती है।[२]

गरुड़ पुराण के अनुसार पूर्व देश में निम्नलिखित जनपद सम्मिलित थे:—

वृषध्वज जनाः पाद्माः पन्नाः सूतमागधचेदयः।
काशयश्च विदेहाश्च पूर्वस्यां कोशलास्तथा॥

गरुड़ १। ५५। ११

परन्तु विष्णु धर्मोत्तर पुराण में, जिसकी जनपद तालिका गरुड़ पु० से मिलती है, निम्नलिखित पाठ है:—

वृषध्वजांजनाः पन्नाः सुह्मा मागध चेदयः।
काशयश्च विदेहाश्च पूर्वस्यां कोशलास्तथा॥

वि० ध० १। ९। ३

इससे यह सिद्ध होता है कि गरुड़ और विष्णु धर्मोत्तर के अनुसार काशी और कोशल नामक जनपद भी पूर्व देश में सम्मिलित थे। इसके अतिरिक्त वृषध्वज, अंजना, पाद्मा (या पन्ना) सुह्म (या सूत), मगध, विदेह और चेदि पूर्वी जनपद थे।

वृषध्वज और जन (या अंजन) के विषय में कोई ज्ञान नहीं है।

पाद्मा

गंगा की एक शाखा पद्मा की घाटी ही पाद्म जनपद है, जिसे गौड-बंगाल का एक अंग मान सकते हैं। इसे पूर्वी बंगाल में इस समय पांडुआ कहते हैं।

पन्ना—विष्णु धर्मोत्तर में पाद्मा के स्थान पर पन्ना मिलता है, जिसकी पहचान विन्ध्य प्रदेश के पन्ना से की जा सकती है।

सूत—इसका उल्लेख मगध के साथ हुआ है। कर्ण को सूत पुत्र कहा गया है। वह अंग देश का राजा था। अतः सम्भव है कि अंग देश का ही दूसरा नाम सूत हो।

---

१. गरुण १। ५५। ११
वि० ध० १। ९। ३
२. का० मी० ९३। २०-२२

[विशेष विवेचन के लिए दृष्टव्य—प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप अ० ५।]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विष्णु धर्मोत्तर में इसके स्थान पर सुह्म पाठ मिलता है। सुह्म प्राचीन राढ देश का दूसरा नाम था। दामलिप्त या तामलिप्त यहाँ का प्रसिद्ध नगर था। यह समुद्र के निकट दक्षिण पश्चिमी बंगाल में स्थित था।

सूत के स्थान पर सुह्म ही समीचीन पाठ है।

मगध

प्राचीन भारत का अत्यन्त प्रसिद्ध और प्राचीन जनपद था, जिसमें दक्षिण बिहार के पटना, गया और शाहाबाद प्रान्त सम्मिलित थे। पाटलिपुत्र (गरुड़ १।१३२।८) या पटना इसकी राजधानी थी।

मगध एक संकर जाति का भी नाम था जो वैश्य से क्षत्रिय स्त्री द्वारा उत्पन्न होती थी (गरुड़ १। ९६। ४)। मागधी (गरुड़ १। १६९। २९) एक औषधि का भी नाम था। सात ऋषियों में मागध ऋषि (गरुड़ १। ८७। ५७) भी एक थे।

कीकट देश

कीकट देश (गया प्रान्त) मगध में ही सम्मिलित था। परन्तु गरुड़ पुराण कीकट देश का विशेष वर्णन करता है, यद्यपि पूर्व देश की जनपद तालिका में इसका स्थान नहीं है।

इस प्रदेश को बुद्ध से सम्बद्ध किया जाता है और बुद्ध को विष्णु का एक अवतार माना गया है:——

ततः कलेस्तु सन्ध्यान्ते सम्मोहाय सुरद्विषाम्।
बुद्धो नाम्ना जिनसुतः कीकटेषु भविष्यति॥

गरुण १। १। ३२

यहीं भगवान विष्णु ने गयासुर नामक राक्षस को गदा से मारा था (गरुड़ १। ८२। ५) इसीलिये गया में गदाधर विष्णु का विशेष माहात्म्य है (गरुण १। ८२। ६)।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कीकट देश में गया सुप्रसिद्ध तीर्थ व क्षेत्र था। इसके अतिरिक्त राजगृह-वन और पुनपुनः नदी (आधुनिक पुनपुना) पवित्र तीर्थ थे:——

कीकटेषु गया पुण्या पुण्यं राजगृहं वनम्।
विषयश्चारणः पुण्यो नदीनाञ्चैव पुनपुनः॥

गरुड़ १। ८३। १

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चेदि

प्रसिद्ध प्राचीन जनपद है जिसकी पहचान आधुनिक बघेल खंड से की जा सकती है।

काशी

इसे पूर्व देश का जनपद कहा गया है। यहां के चन्द्रवंशीय शासक 'काशयो नृपा:' (गरुण १।१३९।१४) कहलाते थे। इस देश और वंश के नाम राजा सुहोत्र के पुत्र के नाम पर ही पड़े। सुहोत्र के तीन पुत्र थे—काश्य, काश और गृत्समद (गरुण १।१३९।९)। काशिराज की पुत्री विचित्रवीर्य को व्याही गयी थी (१।१४५।६)।

इसकी राजधानी वाराणसी महान तीर्थ[1] था:—

वाराणसी परमं तीर्थं विश्वेशोयत्र केशवः।

गरुड़ १।८१।३

यहाँ श्राद्ध करना भी पुण्य समझा जाता था (गरुड़ १।८४।५)। काशीश नामक औषधि यहाँ की ही उत्पाद होने के कारण इस नाम से प्रसिद्ध थी:—

काशीशं पुष्पकाशीशं विज्ञेयं नेत्र भेषजम्।
धातु काशीश काशी च संज्ञेयं तचव कीर्तितम्॥

गरुड़ १।२०२।६२

काशी भारतवर्ष की ७ मोक्ष पुरियों में से एक थी (गरुड़ २।२८।३)।

विदेह

पूर्व देश का प्रसिद्ध प्राचीन जनपद है, जिसमें आधुनिक उत्तरी बिहार के दरभंगा, चम्पारन तथा मोतीहारी के कुछ भाग सम्मिलित थे। इसकी सीमाएँ पूर्व में कौशिकी (कोसी) पश्चिम में सदानीरा-गन्डकी, उत्तर में नैपाल की तराई और दक्षिण में गंगा थीं। इसकी राजधानी मिथिला[2] (आधुनिक जनकपुर) थी।

---

१. गरुण १।६६।६
२. वही १।९३।२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोशल

पूर्व का जनपद कहा गया है। पूर्व कोसल सरयू के उस पार स्थित बताया गया है (सभापर्व २० । २८) वृहत्संहिता में (आयोध्यकान्) जनपद (१ । २४) का भी उल्लेख मिलता है।

अयोध्या-राज्य

इक्ष्वाकु वंशीय रघु—राम द्वारा शासित (गरुड़ १ । १४३ । १२) यह महाराज्य था। (चक्रेऽयोध्यामहाराज्यं—गरुड़ १ । १३२ । १८)। अयोध्या प्रसिद्ध तीर्थ स्थान[1] और सप्त मोक्ष पुरियों[2] में से एक थी। यही राजधानी भी थी।[3]

नैपाल

काव्य मीमांसा (९३ । २१) इसे पूर्व देश में स्थित बताती है। नैपाल देश में स्फटिक की उत्पत्ति होती थी (गरुड़ १ । ७९ । १)। यह मनः शिला (मनसिल) के लिये भी प्रसिद्ध था—

शिला मनः शिला ज्ञेया नैपाली कुलटीति च।

गरुड़ १ । २०२ । ६४ (१)

पूर्व-दक्षिण-प्रदेश

इस भूखण्ड को 'विन्ध्यान्तर्निलया' (गरुड़ १ । ५५ । १२) भी कहा गया है जिससे इससे इस खण्ड के देशों को विन्ध्यान्त पर स्थित समझना चाहिये।

इसमें निम्नलिखित जनपद सम्मिलित थे:—

कलिङ्गवङ्गपुण्ड्राङ्गा वैदर्भा मूलकास्तथा।
विन्ध्यान्तर्निलयादेशाः पूर्व दक्षिणतः स्मृताः॥

गरुड़ १ । ५५ । १२

यही सूची विष्णुधर्मोत्तर (१ । ९ । ४) में भी प्राप्त होती है—कलिङ्ग, वंग, पुण्ड्र, अंग, विदर्भ और मूलक। अंग, बंग, और कलिंग नाम के तीन बलि-पुत्र थे (गरुड़ १।१३९।६९) जिनके नाम पर ही इन देशों के भी यही नाम पड़े। अन्ध्र, पौण्ड्र, बालेय और अनपाल अंग के पुत्र थे (गरुड़ १।१३९।७०)।

---

१. गरुड़ १ । ८१ । ७; १ । १३२ । १८
२. वही, २ । २८ । ३
३. वही, १ । १४२ । १५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कलिङ्ग—प्रसिद्ध प्राचीन जनपद था, जो पश्चिम में विन्ध्यान्त पहाड़ियों और पूर्व में समुद्र को छूता था।

राजा बलि के पुत्र कलिंग से ही इस देश का यह नाम पड़ा (भागवत पु० ९ । २३ । ५) महाभारत भी कलिंग राष्ट्र को सागर के सन्निकट स्थित बताता है (आदिपर्व २१४ । १०–११)। इस देश में सुन्दर मन्दिर और प्रासाद थे (आदिपर्व २१४ । १२) समुद्र के किनारे ही इस देश में तपस्वियों द्वारा सेवित महेन्द्र पर्वत तथा मणिपूर नामक नगर था (आदिपर्व २१४। १३–१४)। दन्तकूर कलिंग की राजधानी थी (उद्योगपर्व २३ । २४)। महावस्तु के अनुसार यह दन्तपुर थी।[1] दन्तकूर और दन्तपुर एक ही हैं। कुछ लोगों ने इसकी पहचान राजमहेन्द्री से की है और डे महोदय इसकी पहचान पुरी से करते हैं।[2]

वज्र (मणि) पाये जाने वाले ८ देशों में कलिंग भी एक देश था (गरुड़ १ । ६८ । १७)। कलिंग की मणि सोने के समान सुन्दर (कालिंगाः कनकावदातरुचिराः)[3] होती थी।

कलिंग में औषधियाँ भी उत्पन्न होती थीं—

कलिंगालावुनी पित्तनाशिनी वातकारिणी ॥ गरुड़ १ । १६९ । १९

कलिंगेन्द्रयवारिष्टं तस्य बीजानि लक्षयेत् ।
मुस्तको मेघनामा स्यात्कौन्ती ज्ञेया हरेणुका ॥

गरुड़ १ । २०२ । १६

वंग—पूर्व देश का अति प्रसिद्ध देश था। इसमें दक्षिण-पूर्वी बंगाल सम्मिलित था।

पुण्ड्र—यह भी प्राचीन प्रसिद्ध जनपद था, जिसने राजाबलि के पुण्ड्र नामक पुत्र से यह नाम धारण किया। इसकी पहचान उत्तरी बंगाल से की गई है। इसकी राजधानी पुण्ड्रनगर (या पुण्ड्रवर्धन) थी जिसकी पहचान आधुनिक (बोगरा ज़िले के) महास्थान से की गई है। पुण्ड्रवर्धन तीर्थ भी था जो कार्तिकेय से सम्बद्ध था।[4]

---

१. महावस्तु जिल्द ३ । ३६१ । १२; ३ । ३६४ । ३:
कलिंगेषु दन्तपुरं नाम नगरम् ।

२. हिस्ट० जाग०, पृ० १४९; जाग० डिक०, पृ० ५३।

३. गरुड़ १ । ६८ । १८

४. गरुड़ १ । ८१ । १५ : पुण्ड्रवर्धनकं तीर्थं यत्र कार्तिकेयः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यहाँ भी पौंड्रवज्र (मणि) पाया जाता था (गरुड़ १ । ६८ । १७), जिसका श्याम रंग (श्यामा: पुण्ड्रभवा:, गरुड़ १ । ६८ । १८) होता था।

अंग—प्रसिद्ध प्राचीन जनपद है, जिसमें भागलपुर और मुंगेर के ज़िले सम्मिलित थे। इसकी राजधानी चम्पा (आधुनिक चम्पापुर-भागलपुर प्रान्त में) थी।

वैदर्भ (विदर्भ)—इसे विन्ध्य मूल पर स्थित बताया गया है।[1] गरुड़ और विष्णुधर्मोत्तर पुराण इसे विन्ध्य के सिरे पर पूर्व दक्षिण में स्थित बताते हैं।[2] इसमें ५ लाख ग्राम थे।[3] यह आधुनिक बरार ही है।

मूलक—यह प्रसिद्ध मूलक राज्य ही है जिसका उल्लेख गौतमी बल श्री के नासिक लेख में मिलता है। इसकी पहचान दक्षिण के औरंगाबाद ज़िले में गोदावरी के किनारे पैथान के आस-पास स्थित भूखण्ड से की गई है। (सरकार जाग० ए० मेड० इ०, पृ० ३०, नोट ८)।

दक्षिणापथ

भारत के मुख्यत: दो भाग हैं—

भारतेऽस्मिन् युगावस्था केशवेन विनिर्मिता।
वर्षे द्वे चाथ संस्थाने विज्ञेये दक्षिणोत्तरे॥

वि० ध०, १ । ७ । ३०

अर्थात् दक्षिण और उत्तर। गरुड़ पु० भी इन दो विभागों का उल्लेख करता है—

उत्तर देश, गरुड़ १ । ७६ । १; १ । ७७ । १
दक्षिणं, वही १ । १४३ । २७
दक्षिणापथ, वही १ । ५५ । १३

काव्य मीमांसा में माहिष्मती (माहेश्वर-मान्धाता, जो नर्मदा तट पर स्थित है) के दक्षिण का भूखण्ड दक्षिणापथ (माहिष्मतया: परतो दक्षिणापथ:)[4] कहलाता था जिसमें महाराष्ट्र, माहिषक, विदर्भ, कुन्तल······सूर्पारक काञ्ची केरल······सिंहल······आदि (का० मी० ९३ । २५-२८) देश सम्मिलित थे। इस प्रकार स्पष्ट है कि नर्मदा के दक्षिण का प्रदेश दक्षिणापथ कहलाता था,

१. वायु पु०, ४५ । १२६
२. गरुड़, १ । ५५ । १२
३. स्कन्द पु०, १ । २ । ३९ । १५७
४. का० मी०, ९३ । २५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिसमें सिंहल भी सम्मिलित था। गरुड़ पु० के अनुसार पुलिन्द, अश्मक, जीमूत, नयराष्ट्र, कर्णाट, काम्बोज, और घाट दक्षिणापथ के प्रदेश थे।[१] विष्णुधर्मोत्तर में नयराष्ट्र, और काम्बोज के स्थान पर क्रमशः नरराष्ट्र और भोज तथा घाटा के स्थान पर 'कटा' मिलता है—

पुलिन्दाश्मक जीमूत नरराष्ट्र निवासिनः।
कर्णाटका भोजकटा दक्षिणापथ वासिनः॥

वि० ध०, १।९।५

काम्बोज का दक्षिणापथ में होना स्पष्टतः भूल है और इसमें 'का' शब्द कर्णाटका के साथ चला गया। वह ठीक है। बोज-भोज में और घाटा-कटा में कोई विशेष अन्तर नहीं है। वह हस्त लिखित पोथियों में जहाँ शब्द मिले हुए होते हैं और कुछ अस्पष्ट भी होते हैं, मान्य हो सकते हैं। भोज दक्षिण की प्रसिद्ध जाति थी (सभा पर्व ३१।६) और भोजकट एक नगर था (सभा पर्व ३१।११)।

पुलिन्द—यह एक प्राचीन जन-राष्ट्र था। अशोक के लेखों में अन्ध्रों के साथ पुलिन्दों का उल्लेख मिलता है।[२] इसे दक्षिण में स्थित बताया गया है।[३] इनका सम्बन्ध विन्ध्यमूल से था (पुलिन्द्रा विन्ध्यमूलीका)।[४] वामन पुराण में इन्हें पापसम्भवा और भीषण कर्म करने वाला बताया गया है। यह हिमालय और कालंजर नामक दो प्रमुख पर्वतों के बीच स्थित था—

प्रोवाच तान्भीषणकर्मकारान्नाम्ना पुलिन्दान्मम पाप संभवाः।
वसध्वमेवांतरमद्रिमुख्ययोर्हिमाद्रिकालंजरयोः पुलिन्दाः॥

वामन, ७६।२५

कालंजर विन्ध्याचल की ही एक श्रेणी थी। महाभारत के अनुसार इनका उदय वसिष्ठ की नन्दिनी गौ के फेन से हुआ था और यह म्लेच्छ थे

---

१. गरुड़, १।५५।१३ : पुलिन्दाश्मक जीमूत नयराष्ट्र निवासिनः।
कार्णाटाः काम्बोजा घाटा दक्षिणापथवासिनः॥

२. त्रयोदशशिला लेखः अंध्रपुलिन्देषु

३. वायु, १।४५।१२६
वामन, १३।४९; ७६।२५-२६
विष्णु० ध०, ३।२७।२१
मत्स्य, ११३।४१

४. वायु, १।४५ १२६
वामन, १३।४९ पुलिंदा विंध्यशैलेया···।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(आदि पर्व १७४ । ३८) । भीम ने दशार्ण के दक्षिण (सभा पर्व २९ । ५) में पुलिन्द नगर को जीता था (सभा पर्व २९ । १०) । सहदेव ने भी यहाँ के राजा सुकुमार सुमित्र को जीता था (सभा पर्व ३१ । ४) । डे महोदय ने पुलिन्द देश की पहचान बुन्देलखण्ड और सागर प्रान्त के पश्चिमी भाग से की है, (जाग० डिक० पृ० १६१) ।

अश्मक—दक्षिण का प्रसिद्ध-प्राचीन जनपद है, जो गोदावरी नदी के तट पर बसा हुआ था । प्रतिष्ठान[1] (आधुनिक पैठान, औरंगाबाद से लगभग ११ मील दूर) इसकी प्रथित राजधानी थी ।

जीमूत—अज्ञात है ।

नयराष्ट्र—विष्णुधर्मोत्तर का पाठ नरराष्ट्र है, जो सहदेव द्वारा विजित हुआ था ।[2] इसे नवराष्ट्र भी कहते थे ।[3] जब पाण्डव एक वर्ष तक अज्ञात रूप से रहने के लिये देशों पर विचार कर रहे थे कि वह समय कहाँ सुख-शान्ति से कट सकता था, तभी अर्जुन ने बताया—"कुरु देश के चारों ओर बहुत से रमणीय और उपजाऊ देश हैं । उनके नाम हैं—पाञ्चाल, चेदि, मत्स्य, शूरसेन, पटच्चर, दशार्ण, नवराष्ट्र, मल्ल, शाल्व, युगन्धर, कुन्ति राष्ट्र, सुराष्ट्र और अवन्ति ।[4] संभवतः यह नवसारी के आस-पास स्थित भूखण्ड था ।

कर्णाट—दक्षिण का प्रसिद्ध देश है जिसमें सवा लाख ग्राम सम्मिलित थे ।[5] कर्णाट नामक दैत्य से ही इस देश का यह नाम पड़ा ।[6] यह देश रामनाथ से श्री रंग तक विस्तृत बताया गया है ।.................................
यह कन्नड़ भाषा-भाषी क्षेत्र है ।[7]

---

१. गरुड़, १ । १४२ । १९

२. सभा पर्व, ३१ । ६ : नरराष्ट्रं च निर्जित्य कुन्तिभोजमुपाद्रवत् ।

३. मत्स्य, ११३।४७ ।

४. विराट पर्व, १ । १२-१३ :

सन्ति रम्या जनपदा बह्वन्नाः परितः कुरून् ।
पाञ्चालाश्चेदिमत्स्याश्च शूरसेनाः पटच्चराः ॥ १२
दशार्णा नवराष्ट्राश्च मल्लाः शाल्वा युगन्धराः ।
कुन्तिराष्ट्रं च विपुलं सुराष्ट्रावन्तयस्तथा ॥ १३

५. स्कन्द पु०, १ । २ । ३९ । १५२

६. वही, ३ । २ । १८ । १७६

७. जाग० ऐ० मे० इ०, पृ० ८९-९०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भोज—अशोक के लेखों में इनका उल्लेख मिलता है।[1] महाभारत के अनुसार इनका सम्बन्ध यदुकुल से था (आदि पर्व २१७।१८)। इनकी १८ शाखाएँ थीं जो जरासन्ध के भय से पश्चिम की ओर मथुरा छोड़ कर द्वारका चली गई थीं—

उदीच्याश्च तथा भोजाः कुलान्यष्टादश प्रभो।
जरासंध भयादेव प्रतीचीं दिशमास्थिताः॥
सभा पर्व १४।२५

... ...

वयं चैव महाराज जरासंध भयात् तदा।
मथुरां सम्परित्यज्य गता द्वारवतीं पुरीम्॥
सभा पर्व १४।६७

विष्णु धर्मोत्तर में भोजकटा दिया हुआ है। जैसा ऊपर कहा गया है कि भोजकट विदर्भ देश का प्रमुख नगर था (सभा पर्व ३१।११-१२)। परन्तु वैदर्भ देश का उल्लेख पूर्व-दक्षिण खण्ड में (वि० ध० १।९।४; गरुड़ १।५५।१२) किया जा चुका है। अतः गरुड़ पुराण का 'घाटा' पाठ ही शुद्ध है और 'कटा' (वि० ध०) अशुद्ध है।

घाटा—संभवतः इससे हमें समुद्रतटीय पश्चिमी घाट का बोध होता है।

उपर्युक्त दक्षिणापथ-देशों के अतिरिक्त निम्नलिखित जनपद भी दक्षिण भारत में ही स्थित थे—

अन्ध्र देश (गरुड़ १।७०।१५)—दक्षिण का प्रसिद्ध देश था जो पद्मराग का उत्पत्ति-क्षेत्र था (गरुड़ १।७०।७५)। गरुड़ भी इन्हें भारत के दक्षिण में रखता है (आंध्रा दक्षिणतो रुद्र)।[2]

कोशल (कालिंग कोशलाः—गरुड़ १।६८।१७) वज्र (हल) का उत्पादक कोशल देश दक्षिण कोशल ही था जिसे कलिंग के साथ रखा गया है (गरुड़ १।६८।१७)। यहां का वज्र पीले रंग और कान्ति वाला (पीत प्रभाः कोशले)।[3] इसमें जबलपुर, रायपुर, बिलासपुर, रीवाँ, सतना और

---

१. त्रयोदश शिला लेख
२. गरुड़ १।५५।५
३. वही १।६८।१८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्बलपुर प्रान्त के कुछ भाग सम्मिलित थे। श्रीपुर इसकी राजधानी थी।

वेण्वा-तट-देश—यह वेण्वा नदी की घाटी थी, जहां वज्र उत्पन्न होते थे (गरुड़ १।६८।१७), जिनका रंग और रूप चन्द्र के समान होता था (शशिभा वेण्वातटीयाः स्मृताः)।[१] प्राचीन भूगोल में देशों के नाम नदियों के तटों पर स्थित होने के कारण भी होते थे। यह वृहत्संहिता में उल्लिखित 'वेणावत्तक' देश ही है, जिसे दक्षिण में स्थित बताया गया है।[२] सहदेव ने दक्षिण दिग्विजय में वेणा-तट देश की विजय की थी। वहाँ इसे कोशल (दक्षिण कोशल) के निकट स्थित बताया गया है।[३] संभवतः बीना—सागर (मध्य प्रदेश) के आस-पास का पर्वतीय भूखंड ही वेणा तट देश था।

कौबेर—यह देश भी मोतियों की खान के लिये प्रसिद्ध था (गरुड़ १।६९।२३)। पुराणों में कावेर देश का उल्लेख प्राप्त होता है।[४] यह कावेरी नदी का तटवर्ती देश था। संभवतः कौबेर और कावेर एक ही थे। काव्यमीमांसा में भी कावेर नामक जनपद कों दक्षिण भारत में स्थित बताया गया है,[५] जो कावेरी-तटवर्ती क्षेत्र (कावेरी परिसरभुवः—का० मी० ११०।१९) ही था। गरुड़ (१।७९।१) के अनुसार भी कावेर देश स्फटिक रत्नों के लिये प्रसिद्ध था।

पाण्ड्य देश—यह दक्षिण का प्रसिद्ध देश है, जो मोतियों के लिये प्रसिद्ध था।[६] इसमें ताम्रपर्णी नदी बहती थी जिसके तट पर भी मोती होते थे।[७]

---

१. गरुड़ १।६८।१८
२. वृ० सं०, १४।१२
३. महा० सभा पर्व ३१।१२ :

स विजित्य दुराधर्षं भीष्मकं माद्रिनन्दनः।
कोसलाधिपतिं चैव तथा वेणातटाधिपम् ॥

४. मत्स्य, ११४।४८
५. का० मी० ९३।२५-२८
प्रा० भा० भौग०, पृ० ५४, ५८
६. गरुड़ १।६९।२३
खारवेल का हाथी गुम्फ़ा लेख—पंक्ति १३ :
रतन मानिकं पडराजा······मुत मनि रतनानि आहरापयति।
७. प्रा० भा० भौग० पृ० २०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ताम्रपर्ण—यह भी मोतियों की खान के लिये प्रसिद्ध था।[१] न तो यह सिंहल (लंका) ही है, क्योंकि इसी श्लोक में सिंहल भी उल्लिखित हुआ है (गरुड़ १। ६८। २३) और न यह पाण्ड्य देश ही है। समुद्र तट से मिला हुआ ताम्रपर्णी नदी के तट पर स्थित यह देश पाण्ड्य और सीलोन के बीच स्थित था। यह औषधियों के लिये भी (धातकी ताम्रपर्णी स्यात्—गरुड़ १। २०२। २७) प्रसिद्ध था।

सिंहल—यह भी मोतियों (गरुड़ १। ६८। २३) और मणियों (गरुड़ १। ७०। २१, २२) के लिये प्रसिद्ध था। यहाँ ये मणियाँ रावण-गंगा के तट पर उत्पन्न होती थीं (गरुड़ १। ७०। १-१४)। सिंहल को भी प्राय: दक्षिणापथ का देश कहा गया है (का० मी० ९३। २५-२८)। गरुड़ पुराण के अनुसार यह पाताल लोक अर्थात् द्वीपान्तर क्षेत्र[२] में स्थित था (पाताल लोकान्तर सिंहलेषु)।[३] यह आधुनिक सीलोन ही है।

सिंहल में मौक्तिक-आभूषण बड़ी कुशलता के साथ बनाये जाते थे (गरुड़ १। ६९। ३८)। समुद्र-कच्छ के निकटवर्ती प्रदेश में सुन्दर मणिरत्नों से युक्त सिंहली स्त्रियाँ शोभित होती थीं (गरुड़ १। ७२। १-२)।

केरल—यह प्राचीन प्रसिद्ध देश है जिसका आज भी यह नाम प्रचलित है। केरल मूंगों के वृक्षों (विद्रुमा:) के लिये प्रसिद्ध था।[४] इसमें मलाबार, ट्रावनकोर और कनारा प्रान्त सम्मिलित थे (डे० जाग० डिक०, पृ० ९९)।

इन देशों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी जनपद हैं, जिनको हम दक्षिणापथ में रख सकते हैं, यद्यपि अन्यत्र उन्हें विन्ध्य पृष्ठ पर स्थित बताया गया है।

दशार्ण—पुराणों में इसे विन्ध्य पृष्ठ पर स्थित बताया गया है।[५]

---

१. गरुड़ १। ६९। २३

२. का० मी० ९४। २१-२२
   प्रा० भा० भौग० पृ० १७-१९, ३०

३. गरुड़ १। ६९। २४

४. गरुड़ १। ८०। १ :

   आदाय शेषस्तस्यान्त्रं बलस्य केरलादिषु।
   चिक्षेप तत्र जायन्ते विद्रुमा: सुमहागुणा:॥

५. वायु १। ४५। १३२
   मत्स्य ११३। ५२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह दशार्ण (आधुनिक धसान) नदी की घाटी में बसा होने के कारण इस नाम से प्रसिद्ध था । यह पूर्वी मालवा प्रदेश था और इसकी राजधानी विदिशा थी । गरुड़ पु० के अनुसार दशार्ण प्रशस्त पुलकों (एक प्रकार का रत्न) के लिये प्रसिद्ध था ।[१] वैदिश नगर (विदिशा) भी समृद्ध और विस्तृत भूखण्ड था—

वैदिशं नाम नगरं सर्व सम्पत्समन्वितम् ।
नाना जनपदाकीर्णं नानारत्नसमाकुलम् ॥ गरुड़ २।१७।२२

यह सप्त-व्याधों से सम्बद्ध देश था ।[२]

निषाद—प्रसिद्ध प्राचीन वन्य जाति है जो विन्ध्याचल पर बसी थी (निषाद:······विन्ध्यशैलनिवासक:) ।[३]

निषाद एक संकर-जाति भी थी (गरुड़ १ । ९६ । २) ।

मेकल—यह भी विन्ध्य पृष्ठ पर स्थित था ।[४] नर्मदा का उद्गम-स्थान मेकल पर्वत का भूखंड ही मेकल देश था, जो प्रशस्त-पुलकों के लिये प्रसिद्ध था (गरुड़ १ । ७७ । २) ।

वागदव—यह भी प्रशस्त पुलकों के लिये प्रसिद्ध था (गरुड़ १ । ७७ । २) । संभवत: इतिहास प्रसिद्ध वाकाटक राजवंश इस प्रदेश से ही मूलत: सम्बद्ध था । वागद और वाकट एक ही प्रतीत होते हैं ।

राजस्थान के दक्षिणी भाग में स्थित बन्सवारा और डूंगरपुर राज्यों को वागड देश कहते थे । संभवत: वागद और वागड एक ही थे ।

तुम्बुरु देश—इसे विन्ध्य पृष्ठ पर स्थित कहा गया है ।[५] संभवत: यह तुम्ब वन ही है जिसकी पहचान तुमायन (ग्वालियर प्रान्त) से की गई है ।[६] गरुड़ पु० के अनुसार यह देश मणियों के लिये प्रसिद्ध था (गरुड़ १ । ७० । १६, २१, २२) ।

---

१. गरुड़ १ । ७७ । २ :
दाशार्णवागदवमेकलकालगादौ गुञ्जाञ्जनक्षौद्रमृणालवर्णा: ।
गन्धर्ववह्निकदलीसदृशावभासा एते प्रशस्ता: पुलका: प्रसूता: ॥

२. गरुड़ १ । २१० । २० : सप्त व्याधा दशार्णेषु मृगा: कालञ्जरे गिरौ ।
चक्रवाका: शरद्वीपे हंसा: सरसि मानसे ॥

३. गरुड़ १ । ६ । ६

४. वामन १३ । ५४

५. मार्कण्डेय ५७ । ६; वायु १ । ४५ । १३३; मत्स्य ११३ । ५३; वामन १३ । ५५; ब्रह्मा १ । ३६ । १४५

६. जाग० ए० मेड० इ०, पृ० ३२, नोट ४ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दक्षिण-पश्चिम खण्ड

गरुड़ पुराण के अनुसार इसमें अम्बष्ठ, द्रविड़, लाट, कम्बोज, स्त्रीमुख, शक और आनर्त नामक प्रदेश सम्मिलित थे—

अम्बष्ठ द्रविड़ा लाटाः कम्बोजाः स्त्रीमुखाः शकाः ।
आनर्त्तवासिनश्चैव ज्ञेया दक्षिण पश्चिमे ॥
गरुड़ १ । ५५ । १४

विष्णु धर्मोत्तर (१ । ९ । ६) में लाटा के स्थान पर 'नागाः' और आनर्त्त के स्थान पर 'आनन्त' पाठ मिलता है ।

अम्बष्ठ—सामान्यतः अम्बष्ठ उदीच्य का जनपद था, जिसकी पहचान यूनानी लेखकों के 'सम्बस्तई' से की गई है । ये वीर लोग चनाब नदी के निचले भाग में बसे थे (पाणिनि-भारत पृ० ६८) । अम्बष्ठों ने त्रिगर्तों और यौधेयों के साथ पांडवों के विरुद्ध युद्ध किया था ।[1]

यह एक मिश्र जाति भी थी (गरुड़ १ । ९६ । २) ।

द्रविड़—दक्षिणापथ का प्रसिद्ध प्राचीन भूखण्ड है, जिसकी राजधानी कांची थी । डे के अनुसार यह भूखण्ड मद्रास से श्री रंगपट्टम और कुमारी अन्तरीप तक फैला हुआ था (जाग० डिक० पृ० ५४) ।

लाट—यह भी अत्यन्त प्रसिद्ध प्राचीन देश है, जिसे निचली मही और ताप्ती नदियों के बीच स्थित बताया गया है । कभी-कभी मही नदी के उसपार तक फैला था जिसमें भड़ौच और नवसारी भी शामिल थे ।[2]

कम्बोज—यह उदीच्य (उत्तरा पथ) का देश है । दक्षिण में कम्बन, कम्भ क्षौर कम्म नामक जातियों के उल्लेख मिलते हैं ।[3] कोयम्बटूर का प्रसिद्ध नगर भी है । संभवतः दक्षिण में भी कम्भोज या कम्बोज रहा हो ।

स्त्रीमुख—अज्ञात है ।

शक—यह संभवतः सिन्ध के डेल्टा में स्थित शकस्थान (सीथिया) ही था ।

आनर्त्त—यह प्रसिद्ध प्राचीन देश है जिसकी पहचान उत्तरी गुजरात से की गई है । यह द्वारका के आस-पास स्थित था ।

---

१. महा०, द्रोण पर्व, १५७ । २८
२. जाग० ए० मेड० इ० पृ० १०६
३. ई० थर्स्टन, कास्ट्स ऐन्ड ट्राइब्स ऑफ़ सदर्न इण्डिया वाल्यूम ३, पृ०९४ ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पश्चिम देश

पश्चिम देश[१] या प्रतीची[२] में निम्नलिखित देश या राज्य स्थित बताये गये हैं—

स्त्री राज्य सेन्धवा-म्लेच्छा-नास्तिका-यवना माथुर-देश नैषध-देश	गरुड़ १ । ५५ । १२

विष्णुधर्मोत्तर में हमें निम्नांकित पाठ मिलता है—

स्त्रीराज्यं सैन्धवा म्लेच्छा नास्तिक्या यवनास्तथा ।
पश्चिमेन च विज्ञेयाः पट्टमानौषधैः सह ॥
वि० ध० १ । ९ । ७

गरुड़ के पाठ में माथुर देश का पाठ स्पष्टतः अशुद्ध है; क्योंकि मध्य देश के जनपदों में शूरसेन का उल्लेख हो ही चुका है। यद्यपि मार्कण्डेय पु० (५५ । ७) 'शूरसेनाः समाथुराः'—शूरसेन और मथुरा—दो देशों का उल्लेख करता है, परन्तु इन दोनों को एक ही माना गया है।

स्त्रीराज्य—भारत का प्रसिद्ध राज्य है, परन्तु इसकी पहचान कठिन है। डे महोदय (जाग० डिक०, पृ० १९४) इसकी पहचान हिमालय में ब्रह्मपुर के ठीक उत्तर गढ़वाल और कमायूँ से करते हैं।

सैन्धवा म्लेच्छा नास्तिका यवनास्तथा—

सम्पूर्ण पद सैन्धव के नास्तिक, म्लेच्छ, यवनों का ही परिचायक है। विष्णुधर्मोत्तर के 'नास्तिक्या' पाठ से भी यह सैन्धवों का ही विशेषण सिद्ध होता है। इस पद में पुराणकार ने तत्कालीन सिन्ध का इतिहास ही बताया है।

चाचनामा को देखने से भली-भाँति यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उस समय में बौद्धों और ब्राह्मणों के बीच विरोध और शत्रुता चल रही

---

१. गरुड़ १ । ५५ । १५ : स्त्रीराज्याः सैन्धवा म्लेच्छा नास्तिका यवनास्तथा ।
पश्चिमेनचविज्ञेया माथुरानैषधैः सह ॥

२. वही १ । ८९ । ४१; १ । १४३ । २७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थी ।"[१] सिन्ध में शूद्र-बौद्ध धर्मावलम्बी थे और राजा ब्राह्मण । परस्पर कलह और देश द्रोहिता से ही यवनों (अरब आक्रान्ताओं) को सिन्ध पर अधिकार स्थापित करने में सफलता मिली ।[२]

म्लेच्छों की उत्पत्ति क्षत्रिय और शूद्रों के संयोग से हुई बताई गई है—

क्षत्रवीर्येणशूद्रायामृतुदोषेण पापतः ।
बलवन्तो दुरन्ताश्च बभूर्वुम्लेच्छजातयः ।।
ब्रह्मवैवर्त पु०, १ । १० । ११९

ये म्लेच्छ जातियाँ शौचाचार-हीन, क्रूर और धर्मवर्जित थीं—

अविद्धकर्णाः क्रूराश्चनिर्भया रणदुर्जयाः ।
शौचाचारविहीनाश्च दुर्धर्षा धर्मविवर्जिताः ।।
वही, १ । ११० । १२०

म्लेच्छात्कुविन्दकन्यायां जोला जातिबभूव ···।।
वही, १ । ११० । १२१

इस युग के म्लेच्छ लोग राष्ट्र, वेदों और धर्म के दूषक दस्यु ही थे ।[३] ये नास्तिक और कृतघ्न, उग्र तथा दुष्ट-दुस्साहसी भी थे ।

कृतघ्ना नास्तिका रौद्रास्तथा साहसिकाः शठाः ।
गरुड़ पु० २ । १७ । ३७

स्कन्द पुराण के अनुसार म्लेच्छ देश[४] को मरुभूमि के निकट स्थित बताया गया है ।[५] मरुभूमि में कुत्सित म्लेच्छों के बाहुल्य[६] से ही इसे म्लेच्छ देश कहा गया है । मनु-संहिता के विख्यात व्याख्याकार मेधातिथि के अनुसार ब्रह्मावर्त भी म्लेच्छदेश हो जायगा यदि उस पर म्लेच्छ अधिकार कर

१. सय्यद सुलैमान नदवी (अनुवादक रामचन्द्र वर्मा), अरब और भारत के संबंध, पृ० २०
२. वही, पृ० १७–२०
डा० आर० सी० मजुमदार, स्ट्रगल फ़ॉर इम्पायर, पृ० १७५
३. गरुड़, १ । २१५ । २८ : दस्यूत्क्रुष्टा जनपदा वेदाः पाषण्डदूषिताः ।।
४. स्कंद पु०, ७ । ४ । ३२ । ३१; ७ । ४ । ३७ । २१
५. वही, ७ । १ । ३३६ । १९१
६. वही, ७ । १ । ३३६ । १८२, १८३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लेंगे। अतः पश्चिम में स्थित-यवन (गरुड़ १ । ५५ । ५) जो नास्तिक और म्लेच्छ थे तत्कालीन सिंध-विजेता अरब ही थे।

माथुर-देश—स्पष्टतः मथुरा-मण्डल ही है।

नैषध-देश—निषध या नैषध देश दक्षिण में विंध्य पृष्ठ पर स्थित दमयंती के पति नल का देश बताया गया है। इसकी पहचान ग्वालियर में स्थित नरपुर-नलपुर या नरवर के आस-पास के भूखंड से की गई है।

औषध देश—नैषध के स्थान पर विष्णुधर्मोत्तर में औषध पाठ है। मार्कण्डेय पुराण के अनुसार (मार्कण्डेय ५४ । ४०) औषध उदीच्य में स्थित था।

उपर्युक्त देशों के अतिरिक्त सौराष्ट्र, सौवीर, और अवन्ति देशों को भी पश्चिम प्रदेश में रखा जा सकता है।

सौराष्ट्र—(आधुनिक सौराष्ट्र) यहाँ मोतियों की आठ खानों में से एक थी (गरुड़ १ । ६९ । २३)। इसके अतिरिक्त यहाँ वज्रों की भी खान थी (गरुड़ १ । ६८ । १७)। यहाँ लाल रंग का वज्र (ताम्राश्च सौराष्ट्रजाः)[१] होता था। यह लुनिया-खारी मिट्टी या नमक तथा अन्य औषधियों के लिये भी प्रसिद्ध था (सौराष्ट्री मृत्तिकाक्षारं काक्षी च पङ्कपर्पटी[२]।)

सौवीर—यहां भी वज्रों की खान थी[३]। यहां का वज्र काले कमल और बादल के रंग का होता था (सौवीरे त्वसिताब्जमेघसदृशाः)[४]। यह देश भी औषधियों के लिये प्रसिद्ध था (गरुड़ १ । २०२ । ६७)।

अवन्ति—पश्चिम देश का प्रसिद्ध राष्ट्र था। गरुड़ इस देश का उल्लेख न कर मोक्षपुरी अवंतिका[५] और अवंति की राजधानी उज्जयिनी के महाकाल[६] मंदिर का उल्लेख करता है।

उत्तर-पश्चिम के देश

गरुड़ पुराण के अनुसार

माण्डव्याश्च तुषाराश्च मूलिकाश्चमसाः खसाः।
महाकेशा महानादा देशास्तूत्तरपश्चिमे॥ गरुड़ १ । ५५ । १६

१. गरुड़ १ । ६८ । १८
२. वही १ । २०२ । ६३
३. वही १ । ६८ । १७
४. वही १ । ६८ । १८
५. वही २ । २८ । ३
६. वही १ । ८१ । १०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विष्णुधर्मोत्तर के अनुसार—

माण्डव्वाश्च तुषाराश्च मूलिकाश्च मुखाः खशाः ।
महाकेशा महानादा देशास्तूत्तर पश्चिमे ।।

विष्णु धर्म० १ । ९ । ८

अर्थात्
तुषारा
मूलिका
मसाः
या
मुखाः

महाकेशा और महानादा नामक देश उत्तर पश्चिम में स्थित थे ।

माण्डव्या—संभवतः यह बिजनौर प्रांत का मण्डावर है, जो एक प्रसिद्ध राज्य था । युअनच्वांग ने इसे मातीपुर कहा है । जोधपुर के निकट स्थित माण्डव्यपुर (आधुनिक मंडोर) इतिहास प्रसिद्ध नगर था । संभवतः इसके आस-पास का क्षेत्र ही माण्डव्य देश कहलाता था ।

मूलिक, महाकेशा और महानादा के विषय में निश्चित ज्ञान नहीं है । मसा के स्थान पर मुखा पाठ ही उपयुक्त है । मुखा ही मत्स्यपुराण के मूका हैं जिन्हें मत्स्य पुराण मध्य देश में स्थित बताता है—

आवन्ताश्च कलिंगाश्च मूकाश्चैवान्धकैः सह ।
मध्यदेशा जनपदाः प्रायशः परिकीर्तिताः ।।

मत्स्य ११३ । ३६

मूका या मुख ही वह जाति थी जिसका आदि पुरुष मुखर कहलाया और उससे ही इतिहास का प्रसिद्ध मुखर वंश प्रचलित हुआ ।

तुषार और खस उत्तर पश्चिम की प्रसिद्ध जातियाँ हैं । तुषार तो तुखार या टोकारियन जाति का विख्यात देश है, जो हिन्दूकुश के निकट स्थित था । इसे तुखारिस्तान कहते हैं ।

खस—खसों का देश काश्मीर से मिला हुआ पर्वतीय क्षेत्र था । इसीलिये इसे पर्वताश्रयी देश कहा गया है ।[1]

उदीच्य-देश

लम्बकास्तननागाश्चमाद्रगान्धारवाह्लीकाः ।
हिमाचलालयाम्लेच्छा उदीचीं दिशमाश्रिताः ।।

गरुड़ १ । ५५ । १७

१. जाग० ए० मेड० इ०, पृ० ३६ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परन्तु विष्णुधर्मोत्तर के अनुसार—

लम्पगास्तालनागाश्च मरुगान्धार जाहुताः ।
हिमवन्निलया म्लेच्छा उदीचीं दिशमाश्रिताः ।।

विष्णुधर्म०, १ । ९ । ९

यहाँ भी भूगोल के माध्यम से मध्यकालीन इतिहास का निरूपण किया गया है । लम्बक या लम्पग (आधुनिक लमग़न), वाह्लीक (बलख़), गांधार (रावलपिण्डी-पेशावर प्रांत) माद्र (स्यालकोट प्रांत) और तननागा या तालनागा (तालकान जो मर्वं और बलख़ के बीच जाने वाले मार्ग पर स्थित था)[२], तथा जाहुत या जागुड (गजनी देश) नामक देशों में, जिनको हिमालय में स्थित म्लेच्छ कहा गया है, ताजिक-तुरुष्कों का अधिकार हो गया था । लमगन और उसके आस-पास का क्षेत्र तो शाही राजाओं के अधिकार में था । अफ़गानिस्तान का अधिकांश भाग काबुल या ज़ाबुल के राज्य में सम्मिलित था । १०वीं ईसवी शती के उत्तरार्ध में यहाँ तुर्कों का अधिकार हो गया था । इसी घटना को गरुड़ और विष्णु धर्मोत्तर भूगोल के माध्यम से बताते हैं । यही तथ्य इन पुराणों के युगों को भी निर्धारित करते हैं ।

उत्तर–पूर्व

त्रिगर्त्तं नील कोलाभ ब्रह्मपुत्राः सटङ्कणाः ।
अभीषाहाः स काश्मीरा उदक्पूर्वेण कीर्तित्ताः ।।

गरुड़, १ । ५५ । १८

इसके स्थान पर विष्णुधर्मोत्तर से ज्ञात होता है कि—

त्रिगर्त्ता मीन कौलूता ब्रह्मपुत्रास्सतीगणाः ।
अभिसाराश्च काश्मीराश्चोदक्पूर्वेण कीर्तिताः ।।

विष्णुधर्मोत्तर, १ । ९ । १०

इस उदक्पूर्व देश तालिका में काश्मीर, अभिषाह या अभिसार, त्रिगर्त, कौलुता (या कोलाभ ?) और टङ्कण तो उत्तर-पश्चिम में पंजाब के निकट स्थित हैं । ब्रह्मपुत्रा पूर्व में स्थित हैं । अतः ये देश हिमालय से सटे हुए उत्तर से पूर्व तक स्थित थे ।

त्रिगर्त्त—यह देश रावी, व्यास और सतलज नदियों के मध्य भाग में स्थित एक संघ राज्य था । यही जालन्धर प्रदेश था ।

---

१. डा० सरकार, जाग० ए० मे० इ० पृ० ३६

२. डा० मोतीचंद्र, उपायन पर्व, पृ० १०३
वाटर्स—युअनच्वांग, भाग १, पृ० ११४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नील या मीन अज्ञात हैं। कोलाभ के स्थान पर कौलूत पाठ ही उपयुक्त मालूम पड़ता है। कौलूत या कुलूत कांगड़ा प्रांत की कुलू घाटी ही है। टङ्कण या तंगण गढ़वाल (उत्तरप्रदेश) में जोशीमठ के आस-पास का क्षेत्र है।[१]

अभिसार काश्मीर के ही निकट पूंछ प्रांत में बसा था। काश्मीर प्रसिद्ध ही है।

ब्रह्मपुत्रा से ब्रह्मपुत्र की घाटी का ही बोध होता है। यहीं कामरूप देश था।

कामरूप—कामरूप पूर्व देश का प्रसिद्ध क्षेत्र था। गरुड़ के अनुसार यह कामाख्या देवी का अधिष्ठान (कामरूपं महातीर्थं कामाख्या यत्र तिष्ठति)[२] होने के कारण महातीर्थ था। कामाख्या देवी का मन्दिर गौहाटी के निकट ही है। अतः कामरूप गौहाटी ही है।

विविध जनपद

ऊपर उल्लिखित जनपदों के अतिरिक्त हमें निम्नलिखित जनपदों और जनों का उल्लेख मिलता है।

कारूष—गरुड़ पुराण के अनुसार करूष से ही कारूष क्षत्रियों की उत्पत्ति हुई (करूषात्क्षत्रिया जाता कारूषा इति विश्रुतः)[३]। मनु (१०।२३) ने भी इनका उल्लेख किया है।

वायु पु० के अनुसार (पूर्वार्ध ४५।१३२) इसे एक जनपद बताया गया है, जो मालवा, मेकल, उत्कल, दशार्ण और भोजों के निकट ही विन्ध्य पर्वत पर स्थित था—

मालवाश्च करूषाश्च मेकलाश्चोत्कलैः सह।
उत्तमर्णादशार्णाश्च भोजाः किष्किन्धकैः सह॥

मार्कण्डेय (४५।५३, वेंकटेश्वर प्रेस) भी इसे विन्ध्य निवासियों के साथ ही स्थित बताता है।

रामायण (बाल कां० २४।२२) में मलद और करूष को सम्पन्न तथा समृद्ध जनपद कहा गया है, जो गंगा और सरयू के संगम प्रदेश में फैले हुए घोर वन्य प्रदेश में इन्द्र के मल से उत्पन्न हुए थे।[४] ताड़का नामक राक्षसी और

---

१. डा० सरकार, जाग० ए० मे० इ०, पृ० २६, नोट ९
२. गरुड़, १।८१।१५
३. वही १।१३८।४।
४. बाल कांड, २४।९-२५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मरीच राक्षस इन दोनों जनपदों को पीड़ित करते रहते थे। अतः श्री रामचन्द्र ने इन जनपदों को राक्षसों से मुक्त किया था।[१] यहीं विश्वामित्र का आश्रम[२] (= सिद्धाश्रम = बक्सर, बिहार प्रदेश) था। अतः यह विदेह के निकट तथा मगध के पश्चिम स्थित था। मार्टिन के अनुसार शोण और कर्मनाशा के बीच का भूखण्ड कारूष देश कहलाता था।[3] पार्जिटर के अनुसार काशी और वत्स के दक्षिण तथा पश्चिम में चेदि और पूर्व में मगध से घिरा हुआ कैमूर की पहाड़ियों पर स्थित था।[४]

केकय (गरुड़ १। १३९। ५४), मातंग (गरुड़ १। ६८। १७-१८), रमठ (गरुड़ १ २०२। १९), पारशव (गरुड़ १। ६८ २३) या पारसीक (गरुड़ १। ६९। २४) और तुरुष्क (गरुड़ १। ५५ ६; १। २०१। ४) उत्तर पश्चिम के देश थे, जिनका तत्कालीन भारतीयों से भी सम्बन्ध था। यह कहना ठीक नहीं है कि पूर्व मध्ययुग में अपने देश से बाहर स्थित देशों का भारतीयों को ज्ञान नहीं था।

केकय—"इसमें ही सैंधव (सेंधा नमक) का पहाड़ था, जो आधुनिक झेलम, गुजरात और शाहपुर ज़िलों का केंद्रीय भाग है।"[५] गरुड़ पु० के अनुसार सैन्धव लवण भी पाँच प्रकार के नमकों की एक क़िस्म थी, जो औषधि (गरुड़ १। १७०। ४५) के भी काम आता था:

सौवर्चलं सैन्धवञ्च बिड़ङ्गौद्भिदमेव च।
सामुद्रेण समं पंच लवणान्यत्र योजयेत्॥
गरुड़, १। १७०। १८

रमठ—यह देश हींग के लिए (रामठं हिंगु)[६] प्रसिद्ध था। इसे गज़नी और वखान के बीच स्थित बताया गया है। महाभारत में रमठ देश को

१. गरुड़, पु० २४। २६-३२।
२. वही, अध्याय २५।
३. ईस्टर्न इण्डिया, भाग १, पृ० ४०५ (पांडे-हिस्टा० जाग० बिहार, पृ० १०६-१०७)।
४. जर्नल एशि० सो० बंग०, (१८९५) पृ० २५५।
५. गरुड़, १। २०२। १९।
६. जाग० ए० मेड० इ०, पृ० २४, नोट ५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हारहूण[१] और जागुड[२] (गज़नी-प्रदेश) के साथ रखा गया है। डा० मोतीचन्द्र के अनुसार "रमठ देश कलात राज्य का खरान ज़िला है।"[३]

मातंग—मातंग और गज[४] पर्याय ही थे। अत: मातंग देश या मतंग विषय[५] भी गजनी देश के पर्याय ही थे (प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप, पृ० १०३)। गजपर्वत (वराह पु०, अ० ८१, पृ० ३५७) और मातंग शैल (प्रबोध चन्द्रोदय ५। १०) एक ही थे। इस पर्वत पर स्थित होने के कारण इस भूखण्ड को गज देश या मतंग देश कहा गया है। पृथिवीराज विजय (१। ४९-५०) के मातंग-म्लेच्छों को ही 'गर्जनान् मत्तान् मातंगान्' (पृ० वि०, ५। ११३) (अर्थात् गर्जन देश (गजनी) के मातंग) बताया गया है।

पारसीक या पारशव—यह देश आधुनिक पर्शिया या फ़ारस ही है। यहाँ प्रसिद्ध मोतियों की खान थी (पारशवा:, गरुड़ १। ६९। २३) जिसे पारसीक (गरुड़ १। ६९। २४) भी कहा गया।

ऋग्वेद में पर्श (पृथु पर्शवो, ७। ८३। १)और पर्शावा (८। ६। ४६) के उल्लेख मिलते हैं। डा० अग्रवाल के अनुसार "पर्शु (५। ३ ११७) आयुधजीवी संघ का बहुवचनान्त नामपर्शव: और एक सदस्य पार्शव कहलाता था। पर्शुओं का उल्लेख ऋग्वेद (८। ६। ४६) में भी आता है.........पर्शु = पारसीक, ऐसे सब विद्वानों ने माना है। लुडविग और वेवर ने उनकी पहचान ईरानी पारसीकों से की है जो अपने देश में पारसीक कहलाते थे।......दारा प्रथम....के वहिस्तून शिला लेख में गन्धार और पार्स दोनों का साथ उल्लेख है।.........दारा ने अपने को पार्स कहा है। जो पाणिनीय पार्शव (पर्शु से स्वार्थ में अण प्रत्यय) से मिलता है।[६]

योग वसिष्ठ भी पारशव (पारश्व), (१। ३२। ६) या पार्श्वक (=पारसीक, ३। ३६। ४८) और ताजिकों (३। ३६। ४८) को म्लेच्छ बताता है :—

---

१. सभा प०, ३२। १२।

२. वन प०, ५१। २५ :

हारहूणाश्च चीनांश्च तुषारान् सैंधवांस्तथा।
जागुडान् रामठान् मुण्डान् स्त्रीराज्यमथतङ्गणान्॥

३. उपायन पर्व, पृ० ६६।

४. गरुड़ १। ६८। १७।

५. वही १। ६८। १८।

६. पाणिनि भारत, पृ० ४५९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पार्श्वेकतयोः कर्का गिरिपर्णाविमास्तथा ।
संत्यक्तधर्ममर्यादास्तेवर्णा म्लेच्छ जातयः ।।

योगवसिष्ठ, ३ । ४६ । ४८

संपूर्ण उत्तरापथ म्लेच्छों से भर गया था (सर्व म्लेच्छोत्तरापथम्, योगवसिष्ठ ३ । १७ । २२) । गरुड़ भी इसीलिए उत्तर और पश्चिम में म्लेच्छों को प्रतिष्ठित बताता है ।

हेम—हेम (हेमका, गरुड़, १ । ६९ । २३) हिमवन्त प्रदेश का ही परिचायक है, जहाँ मौक्तिकों की एक खान थी ।

हाटक—हाटक भी मोतियों की खान के लिये प्रसिद्ध था (गरुड़ १ । ६९ । २३)। इसकी पहचान आधुनिक अटक (पश्चिमी पंजाब, पाकिस्तान) से की गई है ।

नगर

प्राचीन भारतीय जीवन में नगरों का भी कम महत्व न था । वे सभ्यता और शिल्प के केन्द्र थे । भारत के सांस्कृतिक इतिहास में ये नगर तीर्थ भी थे, जहाँ मनुष्य पुण्य क्रियाओं के द्वारा मोक्ष प्राप्त कर सकता था । सप्त मोक्ष-पुरियाँ—अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवन्तिका और द्वारावती,[१] आज भी जन-जीवन की धर्म-शिलाएँ हैं जिन पर माथा टेक कर वह मोक्ष प्राप्ति की आकांक्षा करता है । इसके अतिरिक्त ये नगर हमारी मौलिक—एकता के दिव्य स्तम्भ हैं । किस नगरी में किस प्रदेश का नागरिक नत-मस्तक नहीं होता है । अयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार), काशी, कांचीपुरी (कांजीवरम्), अवन्तिका (उज्जयिनी) और द्वारावती में हर समय हर प्रदेश का तीर्थ-यात्री देखने को मिल सकता है । इनके अतिरिक्त भी निम्नलिखित नगरों का उल्लेख मिलता है ।

अयोध्या—मध्य देश का प्रसिद्ध तीर्थ[२] और नगर[३] था । इक्ष्वाकु वंशी राजाओं की राजधानी थी ।[४] रामराज्य का भी यही अधिष्ठान था ।[५] यह श्रेष्ठ नगरी थी (अयोध्यां प्रवरां पुरीम्) ।[६] आज भी उत्तर प्रदेश के फ़ैज़ाबाद प्रांत में यह एक प्रसिद्ध तीर्थ और नगर है ।

---

१. गरुड़, २ । २८ । ३
२. वही, १ । ८१ । ७
३. वही, १ । १३२ । १८; १ । १४२ । १५
४. वही, १ । १४३ । ८
५. वही, १ । १४३ । १२, १४, ५१
६. वही, १ । १४३ । ४७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन्द्रप्रस्थ—यह भी मध्य देश का एक प्रसिद्ध प्राचीन नगर था। जहाँ पाण्डवों ने राज्य किया था। उनकी यह राजधानी थी।[१] दिल्ली के आस-पास के खँडहर इन्द्रप्रस्थ की प्राचीनता के परिचायक हैं।

उज्जयिनी—पश्चिम देश का एक तीर्थ और प्रसिद्ध नगर था। अवन्ति की राजधानी होने से ही यह अवन्तिका कहलाती थी। महाकाल (शिव) का प्रसिद्ध मन्दिर यहीं था (उज्जयिन्यां महाकालः)।[२] अवन्तिका सप्त मोक्षपुरियों में एक थी (गरुड़ पु०, २। २८। ३)।

एकचक्रा—मध्य देश में यह पांचाल जनपद का प्रसिद्ध नगर था। यहीं रहते हुए भीम ने बक नामक राक्षस का बध किया था।[३] इसकी पहचान इटावा ज़िले में यमुना तट पर स्थित चक्र नगर से की गई है।[४]

कनखल—मध्य देश का एक तीर्थ और नगर था जो आज भी उत्तर प्रदेश के सहारनपुर ज़िले में हरिद्वार के निकट स्थित है। यहाँ स्नान करना एक पुण्य कर्म माना जाता है (स्नानं कनखले तीर्थे)।[५]

कांचीपुरी—एक तीर्थ[६] और दक्षिण भारत का प्रसिद्ध नगर था। यह द्रविड़, चोल और पल्लवों की राजधानी रही थी। यह आधुनिक कांजीवरम् है।

किष्किन्ध्या—(गरुड़ १। १४३। २५)—दक्षिण में वह बालि और सुग्रीव की राजधानी थी, जिसकी पहचान आधुनिक अनागुडी नामक स्थान से की गई है।

गया पुरी—पूर्व देश का एक अति प्रसिद्ध तीर्थ[७] और नगर था जिसे कीकट देश[८] में स्थित बताया गया है। यह आधुधिक गया ही है जो बिहार प्रदेश का प्रसिद्ध गया नगर है।

---

१. गरुड़ १। १४४। १४
२. वही १। ८१। १०
३. वही १। १४५। ११-१२
४. वेद धरातल पृ० ४१०
५. गरुड़ १। ८१। २८
६. वही १। ८१। ८
७. वही पूर्व० अ० ८२-८६
८. वही १। ८३। १

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वारका[१]—पश्चिमी भारत का अत्यन्त प्रसिद्ध तीर्थ और नगर है। अर्जुन ने यहाँ सुभद्रा को प्राप्त किया था।[२]

नासिक्य—(आधुनिक नासिक, महाराष्ट्र) दक्षिण का एक पवित्र तीर्थ था।[3] यह आज भी पवित्र माना जाता है।

पाटलिपुत्र[४]—यह पूर्व भारत का प्रसिद्ध नगर था। यह आधुनिक पटना ही है।

पुण्ड्रवर्धन—यह भी पूर्व देश का प्रसिद्ध नगर (महास्थान, बोगरा ज़िला) और तीर्थ था, जहाँ कार्त्तिकेय आराध्य देवता थे (पुण्ड्रवर्धनकं तीर्थं कार्त्तिकेयश्च यत्र च)।[५]

प्रभास—पश्चिमी समुद्र तट पर स्थित अत्यन्त प्रसिद्ध तीर्थ और नगर था, जहाँ सोमनाथ का मन्दिर था (प्रभासं परमं तीर्थं सोमनाथो हि तत्र च)।[६]

प्रयाग[७]—गंगा-यमुना संगम पर स्थित मध्यदेश का महान तीर्थं और नगर है।

भृगुपत्तन—(भृगोः पत्तनं), यहां अनशन करना पुण्य समझा जाता था।[८] एक प्रसिद्ध तीर्थ था।

मथुरापुरी[९]—मध्य देश का प्रसिद्ध नगर और अत्यन्त पवित्र तीर्थ है, जो आज भी प्रसिद्ध है।

महोदयपुर—(कन्नौज, उत्तर प्रदेश) यह भी मध्य देश का एक समृद्ध नगर था। त्रेता युग में यहाँ बभ्रुवाहन नामक राजा हुआ।[१०] यह पांचाल राज्य या कान्यकुब्ज देश का राजनगर था।

---

१. गरुड़ १। ८१। ५ : द्वारका च पुरी रम्या भुक्ति मुक्ति प्रदायिका।

२. वही १। १४५। १५

३. वही १। ८१। २०

४. वही १। १३२। ८

५. वही १। ८१। १५

६. वही १। ८१। ४

७. वही १। ८१। २

८. वही १। ५२। ३

९. वही, १। ८१। ११

१०. वही, २। १७। ५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मायापुरी—यह मध्य देश में एक मोक्ष पुरी थी।[१] हरिद्वार के निकट स्थित मायापुर ही मायापुरी थी।

माहिष्मतीपुरी, दक्षिण में नर्मदा तट पर स्थित हैहय वंश की प्रसिद्ध राजधानी और एक तीर्थ था।[२] इसकी पहचान मध्य प्रदेश के मान्धाता या माहेश्वर से की गई है।

मिथिला—यह (गरुड़ १। ९३। २) पूर्व देश में विदेह राज्य की राजधानी थी। इस समय यह उत्तरी बिहार के दरभंगा जिले का जनक पुर है।

वाराणसी—यह मध्य देश का प्रसिद्ध-प्राचीन नगर और महान् तीर्थ था।[३] यहाँ कपालमोचन नामक स्थान पर स्नान करना शुभ कार्य माना जाता था।[४] यहाँ विश्वेश केशव का भी अधिष्ठान है (वाराणसी परं तीर्थं विश्वेशो यत्र केशवः)।[५]

विराटनगर[६]—(आधुनिक बैराट, जयपुर प्रान्त), मत्स्य देश की राजधानी थी।

वैदिश नगर—(आधुनिक विदिशा, मध्य प्रदेश) एक समृद्ध नगर और राज्य था, जिसमें बहुत से जनपद और लोग रहते थे। यह विविध रत्नों, पवित्र स्थानों और वृक्षों से सुशोभित था।[७]

वैशालक—गरुड़ (१। १३८। १३) वैशालक राजाओं का उल्लेख करता है। यह वैशाली का ही राजवंश प्रतीत होता है। वैशालक, वर्तमान् वैशाली (मुज़फ़्फ़रपुर प्रान्त, बिहार प्रदेश) ही है।

---

१. गरुड़, १। ८१। ७
२. वही, १। ८१। १८
३. वही, १। ६६। ५
४. वही, १। ५२। ७
५. वही, १। ८१। ३
६. वही, १। १४५। २१
७. वही, २। १७। २२-२३ :

वैदिशं नाम नगरं सर्वसम्पत्समन्वितम्।
नानाजनपदाकीर्णं नानारत्नसमाकुलम्॥ २२
नानापुण्यसमायुक्तं नानावृक्षसमाकुलम्।
तत्राहं न्यवसं भूप देवार्चन रतस्तथा॥ २३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर्वत श्रेणियाँ

पौराणिक भूगोल में पर्वतों की कई कोटियाँ हैं, यथा मर्यादा पर्वत, वर्षपर्वत, और कुलपर्वत आदि।

वर्षपर्वत—इन सभी पर्वत श्रेणियों का केन्द्र मेरु-पर्वत है, जिसे जम्बूद्वीप के मध्य में स्थित बताया गया है। इसका विस्तार १ लाख योजन है जिसमें ८४ हज़ार योजन तो ऊपर है और १६ हज़ार योजन नीचे की ओर तथा ३०० योजन अपने शिखर पर फैला है।[1] इसके दक्षिण में हिमवान्, और निषध तथा इसके उत्तर में नील, श्वेत और शृङ्गी नामक वर्ष पर्वत हैं।[2] ये सभी श्रेणियाँ जम्वूद्वीप के वर्षों (खण्डों) की सीमायें निर्धारित करती हैं। इसीलिये इनको वर्ष पर्वत कहा गया है। ब्रह्मवैवर्त पु० (१।७।६) इनको सीमाशैल बताता है।

कुलपर्वत—

यहाँ कुलपर्वतों का सम्बन्ध भारत से ही है। ये इस महावर्ष के मुख्य पर्वत हैं। इसीलिये इनको कुलपर्वत कहा गया है। ये सात हैं—

महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः।
विन्ध्यश्च पारिभद्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः॥

गरुड़, १।५५।६

मेरु, मन्दर, कैलास, और हिमाचल (गरुड़ २।२२।५७) तथा निषध गन्धमादन और रमण को भी कुल पर्वत कहा गया है। (गरुड़ २।२२।५८)।

महेन्द्र—यह पूर्वी घाट की पर्वतमाला है, जो गंगा-सागर से लेकर दक्षिण समुद्र तट तक फैली हुई हैं। उड़ीसा में आज भी महेन्द्र पर्वत का नाम प्रचलित है। यह एक पवित्र क्षेत्र भी था[3], जहाँ परशुराम का आश्रम था।[4]

मलय—पश्चिमी घाट का दक्षिणी भाग (कावेरी नदी से दक्षिण ट्रावनकोर की पहाड़ियाँ जो कोयम्बटूर से कुमारी अन्तरीप तक फैली हैं[5]) मलय कहलाता था। यह चन्दन के लिये प्रसिद्ध था और इसकी घाटियों में ताम्रपर्णी नदी भी बहती थी, जो मुक्ताओं के लिये प्रसिद्ध थी। यह प्राचीन पांड्य देश का प्रसिद्ध पर्वत था।

---

१. गरुड़, १।५४।६-७
२. वही, १।५४।८
३. वही, १।८१।१६
४. वही, १।१४३।९
५. डे०, जाग० डि०, पृ० १२२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सह्य—यह पश्चिमी घाट का उत्तरी भाग है जो मलय के ऊपर फैला हुआ हैं। गरुड़ के अनुसार यह एक क्षेत्र था जिसके आराध्य-अधिष्ठाता देवदेवेश एकवीर थे—

सह्याद्रौ देवदेवेश एकवीरः सुरेश्वरी[1] ॥ गरुड़ १।८१।२७

शुक्तिमान—इस पर्वत की स्थिति में अनिश्चयता है। संभवतः इसमें गोंडवाना की पहाड़ियाँ तथा हैदराबाद और गोलकुंडा का पठार सम्मिलित थे। इसे महेन्द्र (पूर्वी घाट), ऋक्ष (सतपुड़ा) तथा सह्य (पश्चिमी घाट) के मध्य रख सकते हैं। कुल पर्वतों के अतिरिक्त इसका अन्यत्र उल्लेख नहीं मिलता है। इससे निसृत नदियों के नामों में भी विभिन्नता है।

ऋक्ष पर्वत—संभवतः यह आधुनिक सतपुड़ा की पहाड़ियाँ ही हैं।

विन्ध्य—यह प्रसिद्ध, प्राचीन और प्रमुख श्रेणी है जो भारत को दो भागों में विभाजित करती है। यह भी पवित्र पर्वत और क्षेत्र था।[2]

पारिभद्र—इसका प्रसिद्ध नाम और पाठ (अन्यत्र) पारियात्र या पारिपात्र है। इसे विन्ध्य का पश्चिमी भाग माना गया है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि इस कुलपर्वत तालिका से दक्षिण-भारत का ही बोध होता है, जो इसकी प्राचीनता के परिचायक हैं।

अन्य पर्वत

हिमालय[3]—हिमाह्वय[4] (हिमशैल), हिमाद्रि[5] हिमाचल (गरुड़ १।५।१७) आदि इस महान पर्वत के विभिन्न नाम हैं, जिनसे इसका हिम-सम्बन्ध (बर्फ़) ही ज्ञात होता है। उत्तर में दूर चमकती हुई लम्बी सफेद बर्फ़ की दीवाल हिमालय कहलाती है।

हिमवत खंड ही हमारा उत्तर देश रहा है (हिमवत्युत्तरे देशे)।[6] पुण्य पर्वत शिखरों और नदियों से सुशोभित यह प्रथित-प्रदेश था।[7] जहां तप करना

---

१. यहाँ पाठ की कुछ अशुद्धि है। 'सुरेश्वरी' के स्थान पर 'सुरेश्वरो' होगा। जीवानन्द संस्करण में भी सुरेश्वरी ही है। संभवतः हस्तलिखित पोथियों में ओ की मात्रा (ो) और ई की मात्रा (ी) में भ्रम हो गया है।

२. गरुड़, १।८१।१७ : विन्ध्यः पापहरं तीर्थं नर्मदाभेद उत्तमः ॥
वही, १।८१।२८ : गंगाद्वारे कुशावर्ते विन्ध्यके नीलपर्वते ।
स्नानं कनखले तीर्थे स भवेन्न पुनर्भवे ॥

३. वही, १।५।१७; २।२२।५७

४. वही, १।५।३३; १।६८।१८; २।५।८६

५. वही, १।७४।१

६. वही, १।७६।१

७. वही, १।७७।१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुण्य कार्य था ।[१] यहाँ पुष्पराग नामक अमूल्य रत्न पाये जाते थे ।[२] इस प्रथित प्रदेश (हिमवत खंड) को हेम-प्रदेश भी कहते थे जहाँ रत्नों की एक खान थी ।[३]

कैलास—हिमवत खंड का ही पवित्र और प्रसिद्ध पर्वत कैलास[४] था। यह एक तीर्थ भी था ।[५] आज भी यह पवित्र तीर्थ माना जाता है। इसकी पवित्रता का कारण यहाँ पर शिव का आवास ही है। यह दुर्गा देवी की भी लीला भूमि थी (गरुड़ १ । ३८ । ५)।

गन्धमादन[६]—यह भी एक पवित्र पर्वत था। बद्रीनारायण के आस-पास की पहाड़ियाँ गन्धमादन के नाम से प्रसिद्ध थीं।

मानसोत्तर[७]—पुराणों का प्रसिद्ध पर्वत है। संभवतः मानस के उत्तर की पर्वतमाला मानसोत्तर कहलाती थी।

मेरु—पौराणिक-पर्वत-माला का मणिशिखर मेरु[८] पर्वत था। संभवतः यह आधुनिक पामीर ही है।

मन्दर[९] या मन्दराचल,[१०] निषध[११] और नील[१२] अति प्रसिद्ध पर्वत-मालाएँ हैं। परन्तु आधुनिक पर्वतों से इनकी पहचान करना अत्यन्त कठिन है। रमण[१३] और लोकालोक (गरुड़ १ । ५६ । २०) पर्वतों की पहचान नहीं हो सकती है।

इनके अतिरिक्त निम्नांकित पर्वत भी अत्यन्त पवित्र माने जाते थे—

अरविन्द गिरि—गया की पवित्र पहाड़ी थी, जो क्रौंच-पद[१४] भी कहलाती था।

---

१. गरुड़, २ । ५ । ८६ : तपो न तप्तं हिमशैल गह्वरे।
२. वही, पु० १ । ७४ । १
३. वही, १ । ६९ । २३
४. वही, २ । २२ । ५७
५. वही, १ । २ । १०
६. वही, २ । २२ । ५८
७. वही, १ । ५६ । १६
८. वही, १ । १५ । ३२; १ । ५४ । ७; १ । २२२ । ४१
९. वही, १ । २२२ । । ४१; २ । २२ । ५७
१०. वही, १ । १ । २४; १ । १५ । ३२
११. वही, २ । २२ । ५८
१२. वही, १ । ८१ । २८
१३. वही, २ । २२ । ५८
१४. वही, १ । ८६ । ६ :

अरविन्दो गिरिर्नाम क्रौञ्चपादाङ्कितो यतः।
तस्माद् गिरिः क्रौञ्चपादः पितॄणां ब्रह्म लोकदः ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अर्बुद—[१] (आधुनिक आबू) पश्चिम देश का अत्यन्त पवित्र और प्रसिद्ध पर्वत है।

ऋष्यमूक[२]—यह रामायण युग का प्रसिद्ध पर्वत है, जिसको दक्षिण भारत में तुंगभद्रा नदी के तट पर अनागुंडी से आठ मील दूर स्थित माना गया है।

कालंजर गिरि[३]—यह भी अत्यन्त पवित्र पर्वत था जो उत्तर प्रदेश के बाँदा ज़िले में स्थित है। यहाँ नीलकण्ठ शिव का अधिष्ठान था।

कोण गिरि[४]—संभवतः यह उड़ीसा का पवित्र पर्वत है, जिसे कोणार्क कहते हैं।

क्रौंचपद[५]—यह गया का अरविन्द गिरि ही था।

गोवर्धन—यह मथुरा[६] और नासिक[७] के निकट स्थित पवित्र पहाड़ी थी।

माणिक्य गिरि[८]—यहाँ मणियाँ होती थीं। इसीलिये इसे यह नाम दिया गया है। बाँदा का मानिकपुर कालंजर गिरि के निकट ही हैं। संभव है कि माणिक्य गिरि ही मानिकपुर हो।

मुण्डप्रस्थ[९]—गया का पवित्र पर्वत है।

रामगिरि[१०]—एक पवित्र पर्वत था, जिसे मेघदूत के आधार पर डा० मीराशी ने नागपुर के निकट स्थित रामटेक बताया है।[११]

---

१. गरुड़ पु० २ । २४ । ८०; २ । २८ । १९
२. वही, १ । १४३ । २५
३. वही, १ । ८१ । १८; १ । २१० २०
४. वही, १ । ८१ । २६
५. वही, १ । ८६ । ६
६. वही, १ । १४४ । ४
७. वही, १ । ८१ । २०
८. वही; १ । ७१ । ४
९. वही, १ । ८३ । २
१०. वही, १ । ८१ । ८
११. डा० मीराशी-मेघदूत और रामगिरि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विदूर[1] गिरि—यहाँ भी मणि-रत्न होते थे। संभवत: दक्षिण का बीडर ही विदूरगिरि कहलाता था।

श्री-शैल[2] या श्री पर्वत—दक्षिण भारत का परम पवित्र पर्वत और सिद्ध क्षेत्र था। यह कृष्णा नदी के दक्षिण तट पर कर्नूल से बीस मील उत्तरपूर्व में स्थित है।

नदियाँ

सभ्यता के विकास में नदियों की विशिष्ट महत्ता प्रसिद्ध ही है। वे धार्मिक जीवन में भी पापनाशक (नद्य: पापहरा: शुभा:)[3] होने से पवित्र मानी गयी हैं। वे पवर्तों से निकलती हैं, (पर्वतेभ्य इवापगा:) और उनसे हमारे बहुत से कार्य सम्पन्न होते हैं।[4] उनके संगमों पर स्नान: करना (संगमे सरितां स्नानं…महाफला)[5] और उनके तटों पर दानादि पुण्य कार्य करना[6] सभी इच्छाओं की पूर्ति करने वाला माना गया है। गंगास्नान की महत्ता आज तक अक्षुण्ण बनी हुई है। यह दु:ख नाशक और पुण्य कार्य माना गया है।[7] समुद्र गामिनी नदियों का विशेष महत्व है।[8]

गरुड़ पुराण की नदियों की सूची (१। ५५। ७-९) में पंजाब की नदियों के सभी नाम नहीं दिये गये हैं। केवल शतद्रु और चन्द्रभागा तथा सरस्वती के नाम मिलते हैं। अन्यत्र भी इस पुराण में सिन्धु और उसकी सहायक नदियों के नाम नहीं प्राप्त होते हैं। यहां भी इरावती का उल्लेख मिलता है। गण्डकी के साथ उल्लिखित इरावती (गरुड़ १। ८१। २१) पंजाब की रावी न होकर उत्तर प्रदेश (गोंडा-गोरखपुर) की राप्ती ही मालूम पड़ती है। इस तथ्य से भी यही ज्ञात होता है कि पंचनद प्रदेश की राजनैतिक स्थिति ठीक न थी। सिन्धु सागर संगम (२। २४। ८०) की पवित्रता प्रसिद्ध थी। परन्तु सिन्धु-सागर-संगम भी गंगा-सागर-संगम (१। ८१। २) की भांति एक तीर्थ नहीं रहा था। कारण स्पष्ट है कि यहां उग्र नास्तिक छा गये थे।

---

१. गरुड़, १। ७३। ३
२. वही, १। ८१। ८
३. वही, १। ३०। १५ : श्रीपर्वत निवासाय नम: श्रेयस्कराय च।
४. वही, पु० १। ५५। ९
५. वही, १। २०५। ८३
६. वही, १। १३६। ४
७. वही, १। १३६। ११
८. वही, १। २०५। ५५, ५८; १। २२२। १८
९. वही, २। २४। २१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भुवनकोष में हमें नदियों की निम्नलिखित तालिका मिलती है—

वेदस्मृतिनर्मदा च वरदा सुरसा शिवा।
गरुड़ १।५५।७।

तापी पयोष्णी सरयू कावेरी गोमती तथा॥
गोदावरी भीमरथी कृष्णवर्णा महानदी।
केतुमाला ताम्रपर्णी चन्द्रभागा सरस्वती॥
वही १।५५।८।

ऋषिकुल्या च कावेरी मृतगंगा पयस्विनी।
विदर्भा च शतद्रुश्च नद्यः पापहराः शुभाः॥
आसां पिबन्ति सलिलं मध्यदेशादयो जनाः॥
वही १।५५।९।

दक्षिण भारत—नर्मदा[१], महानदी[२], तापी[३] (ताप्ती), कृष्णा[४], गोदावरी[५], भीमरथी या भीमरथा[६] (भीमा), तुंगभद्रा[७] और कावेरी[८] दक्षिण की आज भी प्रसिद्ध नदियां हैं। तापी अत्यन्त पवित्र (तापी श्रेष्ठा महानदी गरुड़ १।८१।२६) नदी कही गई है। सुरसा[९], शिवा[१०] और कावेरी[११] नर्मदा की ही सहायक नदियां हैं।

पयोष्णी[१२] ताप्ती की सहायक नदी है और इसकी पहचान पेनगंगा (सरकार-ज्याग्रफी आॅफ ए० मे० इ० पृ० ५०) अथवा पूर्णा (डे० ज्या० डिक० पृ०, १५६) से की गयी है।

---

१. गरुड़ पु० १।५५।७
२. वही १।५५।८
३. वही १।५५।७
४. वही १।८१।२१
५. वही १।५५।८; १।८१।१७
६. वही १।५५।८; १।८१।२१
७. वही १।८१।८
८. वही १।५५।७; १।८१।१६
९. वही १।५५।७
१०. वही १।५५।७
११. वही १।५५।९; १।८१।११
१२. वही १।५५।७; १।८१।१७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वरदा[१] और विर्दभा[२] विदर्भ (बरार) देश की नदियाँ हैं। पुष्यमित्र शुंग के राज्यकाल में विर्दभ युद्ध के बाद विर्दभ को दो भागों में बांटा गया था और वरदा नदी ही इन दोनों राज्यों की सीमा मानी गयी थी। वरदा और वार्धा में कितना निकट साम्य है। वरदा तुंगभद्रा की भी सहायक मानी गई है (ला०, हिस्ट० जाग० पृ० ३८) प्रणीता सह्याद्रि पर बहती थी और यहां महालक्ष्मी का पवित्र स्थान था।[३] यह गोदावरी की सहायक नदी प्रणहिता (ला, हिस्टा० जाग०, पृ० ३७) ही थी।

वेणी[४] आधुनिक वेणा ही है जो कृष्णा की सहायक नदी है। दोनों की मिली हुई धारा ही कृष्णवेणा या कृष्णवेणी कहलाती है (सरकार ज्या० ए० मे० इ० पृ० ५२)। इसी को कृष्णवर्णा[५] कहा गया है।

ताम्रपर्णी[६] मलय पर्वत से निकल कर टिनेवली प्रान्त (प्राचीन पाण्ड्य देश) में बहने वाली प्रसिद्ध नदी (आधुनिक ताम्बरवरी) है। केतुमाला[७] कृत माला ही है, जो मलय पर्वत से निकलती है। यह आधुनिक वैगाई ही है।

राजशेखर रावण गंगा[८] को दक्षिणापथ की नदी बताते हैं।[९] गरुण पु० के अनुसार (गरुड़ १।७०।३-४) यह सिंहल की नदी थी। सिंहल को भी दक्षिणापथ में ही रखा गया है। रावण गंगा में मोती होते थे।[१०]

इस नदी-सूची में कावेरी का नाम दो बार आया है। यह ठीक ही है। इन नदियों को देश-विभाग के अनुसार नीचे दिया जाता है—

उदीच्य या उत्तरापथ—

सिन्धु—(सिन्धु नदी) इस क्षेत्र की प्राचीन-प्रसिद्ध नदी है। इसका उल्लेख सिन्धु-सागर संगम (गरुड़ २।२४।८०) में हुआ है। यहां नारायण

---

१. गरुण, १।५५।८; १।८१।१७
२. वही, १।५५।९
३. वही, १।८१।२७
४. वही, १।८१।२१
५. वही, पु० १।५५।८
६. वही, १।५५।८
७. वही, १।५५।८
८. वही, १।७०।४
९. काव्य मीमांसा, ९४।२-३
१०. वही, ९३।२७
११. गरुड़, १।७०।१४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सर नामक प्रसिद्ध और परम पावन तीर्थ था (शिवपुराण, रुद्रसं०, सतीखंड १३ । १३) ।

चन्द्र भागा (गरुड़ १ । ५५ । ८) पंजाब की चनाव नदी है ।

शतद्रु (गरुड़ १ । ५५ । ९) आधुनिक सतलज है ।

सरस्वती (गरुड़ १ । ५५ । ८) कुरुक्षेत्र की प्राचीन और पवित्र नदी है ।

मध्य देश—गंगा[१] (भागीरथी-गरुड़ २ । ३५ । ४७) यमुना[२], गोमती[३] और सरयू[४] मध्य देश की पवित्र तथा प्रसिद्ध नदियाँ हैं । देहली द्वार पर गंगा-यमुना नदियाँ पूजी जाती थीं (गरुड़ १ । १८ । १७) । गण्डकी[५] (आधुनिक गंडक) और इरावती[६] (राप्ती) भी मध्य देश और पूर्व देश की सीमा पर बहनेवाली नदियां हैं । मध्यदेश की पूर्वी सीमा के बदलते रहने के कारण कभी ये मध्यदेश और कभी पूर्व देश की नदियां रही हैं । पयस्विनी[७] यमुना की सहायक नदी है, जो चित्रकूट पर्वत पर केन और तमसा के बीच बहती है ।

पूर्वदेश—शोण[८] (आधुनिक सोन, गंगा की सहायक) मगध की उत्तर-पश्चिमी सीमा थी ।

वारिवहा गया क्षेत्र में महने वाली नदी थी ।[९] संभवतः इसकी पहचान

---

१. गरुड़ पु०, १ । ६६ । ७, १ । ७० । ४; १ । ८१ । २; १ । १२६ । २; १ । १३२ । १०-११; १ । २०५ । ४५,५५,५८; २ । १९ । २३; २ । २४ । ८०; २ । ३० । १३
गंगोदक (गरुड़ १ । २०४ । २) भी पवित्र माना गया है (गरुड़ १ । २०५ । ११४-११५) ।
२. वही, १ । १८ । १७; १ । १२६ । २; २ । २४ । ८०; २ । ३० । १३ ।

३. वही, १ । ५५ । ७
४. वही, १ । ५५ । ७
५. वही, १ । ८१ । २१;
यह गुप्त कला में गंगा-यमुना के रूपांकन पर प्रकाश डालता है ।
६. वही, १ । ८१ । २१
७. वही, । ५५ । ९
८. वही, पु० १ । ८१ । ११; १ । ८४ । ५
९. वही, १ । ८२ । १२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वेयई या बाया से की जा सकती है।[१] इसी प्रकार पुनः पुन[२] (आधुनिक पुनपुना) गया क्षेत्र की पवित्र नदी है। गरुड़ में इसको पुनपुनः भी कहा गया है।[३] गया, गयाशिर, और फल्गु तीर्थ के निकट ही[४] कनका[५] नदी का उल्लेख मिलता है। वायु पुराण के अनुसार यह नदी यहाँ पर अन्य क्षेत्र से लाई गई थी (यह एक प्राचीन परंपरा है) और इसे यहाँ उदीची कनका कहा गया है—

सावव्यलकनन्दा च ह्युदीची कनकाह्वया ॥ वायु, उत्तर ४६ । ८३

ऋषिकुल्या[६] उड़ीसा के गंजाम प्रान्त में बहती हुई बंगाल की खाड़ी में गिरती है। यह आज भी अपने नाम से प्रसिद्ध है।

इस प्रकार उपर्युक्त नदियों से अभिसिंचित क्षेत्र बिहार और उड़ीसा प्रान्त थे।

पश्चिम देश—पश्चिम देश की भी विशेष नदियों के उल्लेख नहीं मिलते हैं। वेदस्मृति[७] पारियात्र से निकल कर मालवा में बहने वाली आधुनिक बेसुला है।

---

१. पाँडे, ज्यॉग्रफ़ी आफ़ बिहार पृ० ६१; डा० पाँडे वेगवती को वेयवइ या बाया मानते हैं। परन्तु वेगवती को दक्षिण भारत की नदी बताया गया है (स्कन्द पु० १ । ३ उ० । २ । ११)। डा० बी० सी० ला (हि० जा० ऐ० इ० पृ० ३०१) वेगवती को सौराष्ट्र में स्थित बताते हैं। वेगवती को बिहार की नदी मानने का डा० पाँडे ने कोई साक्ष्य नहीं दिया है। वेगवती की पहचान आधुनिक बैग या बिजई से की गई है जो मदुरा के समीप बहती है।

२. गरुड़ पु०, १ । ८४ । ५; वायु पु० उत्तर खंड ४६ । ७६

३. वही पु०, १ । ८३ । १:

कीकटेषु गया पुण्या पुण्यं राजगृहं वनम् ।
विषयश्चारणः पुण्यो नदीनाञ्चैव पुनपुनः ॥

४. वही, १ । ८३ । २०

५. वही, १ । ८३ । २१

६. वही, १ । ५५ । ९

७. वही, १ । ५५ । ७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वन

गरुड़ पुराण में नलिकावन,[१] राजगृहवन,[२] अरविन्दवन,[३] और धर्मारण्य[४] का उल्लेख मिलता है। राजगृह वन कीकट देश (गया प्रान्त) का पवित्र वन था। अरविन्द वन भी गया क्षेत्र में मुण्डपृष्ठ गिरि और ब्रह्मसर के पास ही था।[५] धर्मारण्य गया क्षेत्र का प्रसिद्ध और पवित्र वन था। नैमिषारण्य[६] (सीतापुर-हरदोई प्रान्त) का पवित्र वन है जो आज भी नैमिष, नैमिषारण्य या नीमसार (सीतापुर प्रान्त, यू० पी०) के नाम से प्रसिद्ध है। नैमिषारण्य ही पौराणिकों और पुराणों का प्रथित अधिष्ठान था।[७] नैमिषेया मुनि विशेष कर शौनक आदि शान्तचित्त यज्ञ करते हुए तपस्या में लीन रहते थे।[८] यही वन-श्री थी[९], जिसमें संस्कृति और साहित्य का संरक्षण और संवर्धन हुआ।

झील

झीलों में मानस[१०] (मानसरोवर, हिमालय) और पुष्कर[११] (अजमेर) अत्यन्त पवित्र सर थे। मानस के हंस प्रसिद्ध थे (हंसा: सरसि मानसे)।[१२] पुष्कर में स्नान करना पवित्र कार्य माना जाता था।[१३]

---

१. गरुड़, १ । ७१ । ४
२. वही, १ । ८३ । १
३. वही, १ । ८६ । ५
४. वही, १ । ८४ । १५
५. वही, १ । ८३ । १ : कीकटेषु गया पुण्या पुण्यं राजगृहं वनम् ।
६. वही, १ । ८६ । ५
७. वही, १ । १ । ३; १ । ३ । १
८. वही, १ । १ । ३; १ । ३ । १
९. वही, १ । १ । ५
१०. वही, १ । २१० । २०
११. वही, १ । २२२ । १८
१२. वही, १ । २१० । २०
१३. वही, १ । २२२ । २८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय-३

इतिहास और राजवंश वर्णन

(१) पूर्व मध्यकालीन युग—तुरुष्क विजय और देश भंग

पुराण प्राचीन भारतीय इतिहास की अमूल्य निधि है। इतिहास प्राचीन वृत्त है, जो परम्परा से प्राप्त हुआ है।[१] इतिहास की यह परम्परा ही पुराण के नाम से प्रसिद्ध थी और इसीलिए इतिहास-पुराण का समाज में इतना महत्व था कि इनका पढ़ना और सुनना पुण्य कर्तव्य समझा जाता था।[२] अस्तु स्पष्ट है कि इतिहास की उपेक्षा नहीं हुई थी। इतिहास भी कवि शक्ति से कलात्मक हो गया है और कवि का भी यही कर्तव्य है कि वह अपने युग का चित्रण करे—

अपारे काव्य संसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथा वै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते॥
अग्निपुराण ३३९। १०

इसी कवि-प्रतिभा ने गरुड़ में पूर्व मध्यकालीन युग की चित्रणा की है, जब 'पश्चिमे यवनाः' और 'तुरुष्कास्त्वपि चोत्तरे'[३] तथा "सैन्धवा म्लेच्छा नास्तिका यवनास्तथा" पश्चिम[४] में बस गये थे। इसी कारण दुष्काल-कालो हि दुरतिक्रमः[५]—और तज्जनित देश-भंग,[६] और देश-विप्लव[७] और अन्ततः कुराज्य[८] की अवतारणा हो गई थी। इसी घटना को पुराणों में राक्षसों का

---

१. स्कन्द पु०। ५। ३। ७२। ८ : यथा वृत्तं इतिहासं पुरातनं।
कथितं पूर्वतो वृत्तैः पारम्पर्येण भारत॥

२. गरुड़ पु० १। २०५। १५२ : श्रवणञ्चेतिहासस्य तत्कुर्यात्सुसमाहितः।
इतिहास पुराणाद्यैः षष्ठसप्तमके नयेत्॥

३. वही १। ५५। ५
४. वही १। ५५। १५
५. वही १। १०८। ९
६. वही १। ११५। ३
७. वही १। १०५। १८
८. वही १। ११५। ४

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उदय (उत्पत्ति च रक्षसां)[१] और दारुण कलियुग का प्रारम्भ कहा गया है, जिसके कष्टों को सहने के बजाय मर जाना ही भला समझा गया था—

हा कष्टं खलु जीवितं कलियुगे धन्या जना ये मृताः ।।

गरुड़, १ । ११५ । २

क्योंकि तब राष्ट्र-पतन भी देखने को नहीं मिलेगा—

धन्यास्ते ये न पश्यन्ति देशभंगं कुलक्षयं ।।

गरुड़, १ । ११५ । ३

इसी पौराणिक इतिहास को हम अन्य संस्कृत ग्रन्थों के साथ मिलाकर पढ़ें, तो प्रशस्त इतिहास का दर्शन होता है । देखिये—

देशेषूद्भूत दुष्काल बलाबलविपर्ययात् ।।

राजतरंगिणी, ३ । १ । ५५६

राष्ट्रं कष्टां दशामगात् ।।

राजतरंगिणी, ८ । २७५८

इसका कारण—

अवतारं तुरुष्काणां ।। राजतरंगिणी, ७ । ७०

यही देश-विप्लव अथवा राज्य-विप्लव भी था—

लक्ष्मी सरस्वतीद्वेषाद्देश विप्लवतोगतः ।।

राजतरंगिणी, ५ । ४७६

राज्य-विप्लव । राजतरंगिणी, ६ । ३३०, ३३४

देश का गौरव लुप्त हो चला—

संजाता पृथिवी गत गौरवा राजतरंगिणी, २ । ३५

और स्वतन्त्रता के स्थान पर परायत्त-पराधीनता भी भयावह रूप में उपस्थित होकर डराने लगी—

परायत्तभयाच्चित्तं पशोरप्युपतप्यते ।।

राजतरंगिणी, ७ । ७२

इसीलिये राष्ट्र-वैद्य देश को मृत्यु से बचाने के लिये उपाय ढूंढ़ने लगे—

मग्ना दारुणे व्यसनार्णवे ।
उपायः कतमस्तावत समुद्धतुं क्षमः प्रजा ।।

राजतरंगिणी, २ । ३६-४०

राष्ट्र रक्षक क्षत्रिय रात को चैन से सो नहीं पाते थे—

धन्यास्ते पृथिवीपालाः सुखं ये निशि शेरते ।।

राजतरंगिणी, ३ । ४३

---

१. गरुड़ पु०, १ । ४३ । ५१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सोमदेव सूरी ने भी यशस्तिलक में तुरुष्कावतरण के समय की देश-दशा का चित्रण किया है—

आरातिघटः (शत्रु समूह ने) प्रलय-काल (यशति० पृ० १४७), अथवा देवदाह (यशति० पृ० १५१) ही उत्पन्न कर दिया था। पुष्करेषु (यशति० पृ० ३०) प्रलयकालानिल (यशति० पृ० २९) पुष्कर-क्षेत्र के आस-पास होने वाली ततारों का (तातीर्यीकिन) उपद्रव ही था। चारों ओर त्राहि त्राहि मची थी—

सकलस्य जगतः क्षयक्षपाभिः यशति० पृ० ४७, ४८, ५५
दाव दाह वही पृ० ६२
अनल ज्वाला कराल वही पृ० ६४
धूसरितसमस्त दिगन्त वही पृ० ६४
भुवि दिवि दिशि विदिश च वैश्वानरसृष्टयज्ञ ॥ वही पृ० ६५
प्रलयकाल पावक भीतस्विव वही पृ० ६५
निरन्तर ज्वलज्ज्वाला जाल वही पृ० ७७
निशाचर………… वही पृ० ८२

यही कालाग्नि (यशति० १। ८६), कलिकालकाय कालाः (यशति० १। ९३) थी, जब—

धर्मध्वंस प्रवलैः कलिकाल बलैः (यशति० पृ० १४१)

पीड़ित प्रजा के विलाप (यशति० १। ९२) सुनाई पड़ते थे—

आः कष्टादपि कष्टतरमहो…… यशति० १। १२३

और कोई ठौर ऐसी न थी जहां चैन मिल सकती—

कं देशमाश्रयतुडिम्भवती कुरंगी ॥ यशति० १। ६६

अभिलेखों में भी इस लोक-प्रपीड़क दशा और उससे देशोद्धार का वर्णन मिलता है—

अशेषलोकसंतापकलापदः ताजिकानलः……॥
असिधाराजलेन प्रसभं शमितः ॥

कार्पस इन्स० इन्ड०, भाग ४, पृ० ९७,९९

और

करि कर निष्ठुर…निस्त्रिंश प्रहार दलित…वैरि वारण
कुंभस्थल……अर्चितधरित्रीतलः ॥

कार्पस इन्स० इन्ड० भाग ४, पृ० १४०। ७-९

बैरिवारण, या निष्ठुर-करि ताजिकों-तुरुष्को और म्लेच्छों का परिचायक है।

मत्तेभ कुंभमण्डल विदारण केसरि किशारैरिव…॥

कार्पस इन्स० इन्ड०, भाग ४, पृ० १४०। १६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह मत्तेभ भी म्लेच्छ-मातंग[1] ही था, जिसकी हिंसक-शक्ति ने आतंक उत्पन्न कर दिया था (पृथ्वीराज विजय १।४९-५०)। मनीषियों ने इसी कारण हाथियों का दो वर्गों—मातंग (मत्तो यातीति मातंगः) और आशाकरीन्द्र (लोकपाल दिग्गज)—में विभेदन किया है (काव्य मीमांसा ९१।१३-१६)। दुष्ट हाथियों-म्लेच्छ मातंगों से राष्ट्र का उद्धार करना ही क्षत्रिय-सिंहों का कार्य था। सोमदेव सिंहों के चुटकी लेते हुए जगाते हैं—

गजे संनिहितेऽपि सिंहः शौर्यति···अव्यापारं ॥
यश० ति०, १।५४

गरुड़ पुराण भी स्वाधीनता को संकट में पड़ा जानकर पराधीनता की निन्दा करता हुआ[3] स्वाधीनता के रक्षक को सिंह-व्रत पालन करने का उपदेश देता है—

किं जीवितेनधन मान विवर्जितेन मित्रेण किं भवतीति सशंकितेन च।
सिंहव्रतञ्चरत गच्छत् मा विषादं, काकोऽपि जीवति चिरञ्च बलिञ्च भुंक्ते ॥
गरुड़ पु०, १।११५।३४

मान-मर्यादा की रक्षा करना ही सबसे बड़ा धन है और सिंह वन में भी किसी के आगे नहीं झुकते हैं और न वे नीच कर्म ही करते हैं। सिंह की मृगेन्द्रता तो उसके बल-विक्रम पर ही निर्भर करती है—

उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम् ॥
गरुड़, १।११५।११

मानो हि मूलमर्थस्य माने सति धनेन किम्।
प्रभ्रष्टमान दर्पस्य किं धनेन किमायुषा ॥
वही, १।११५।१२

....

वनेऽपि सिंहा न नमन्ति कर्णं बुभुक्षिता नांशनिरीक्षणञ्च।
धनैर्विहीना सुकुलेषु जाता न नीच कर्माणि समारभन्ति ॥
वही, १।११५।१४

नाभिषेको न संस्कारो सिंहस्य क्रियते वने।
नित्यमूर्जितसत्त्वस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता ॥
वही, १।११५।१५

---

१. प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप, पृ० ९९-१०५
२. वही, पृ० १०३-१०५
३. गरुड़ पु०, १।११५।३७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तम घोड़ा चाबुक नहीं खाता है; न तो सिंह गज-गर्जना ही सह सकता है और न वीर पुरुष दूसरे का भयंकर शब्द ही सहता है। सिंह घास न खाकर हाथी के उष्ण रक्त को ही पीता है (गरुड़ १ । ११० । १७-१८)। इस प्रकार देशोद्धार गज-बन्ध से ही सम्भव था और यह कार्य भी संघ-शक्ति से ही सकता था—

बहूनामल्प साराणां समुदायो हि दारुणः ।
तृणैरावेष्टिता रज्जुस्तया नागोऽपि बध्यते ॥
गरुड़, १ । ११४ । ६६

नाग शब्द पर श्लेष है। इस संघशक्ति की महत्ता महाभारत शान्ति-पर्व (अध्याय १३८), बृहत्कथामंजरी (७वां लम्बक, ४७६-४९६) और कथा सरित्सागर (३३ । १३०-१५०) में दी गई उल्लू, नेवला, चूहा और बिलाव की निदर्शन कथा से बताई गई है—

एवं बहुभ्यः शत्रुभ्यः प्रज्ञयात्माभिरक्षितः ।
मूषकेन तिरश्चापि किं पुनर्मानुषेषुयत् ॥
कथा स० सा०, ३३ । १३०

प्रबोध चन्द्रोदय में चन्देल मन्त्री कृष्ण मिश्र स्पष्ट कहते हैं कि क्षत्रियों का मेल ही पराभव को नष्ट कर राज्यश्री की प्रतिष्ठा करता है—

समानान्वय जातानां परस्पर विरोधिनाम् ।
परैः प्रत्यभिभूतानां प्रसूते संगतिः श्रियम् ॥
प्रबोध च०, ५ । ८

स्कन्द पुराण भी यही कहता है—

क्षत्रियश्चापि भूपालमेकं कृत्वा सुभक्तितः ।
तदादेशात्प्रभुंजन्ति महीं न संशयः ॥
स्कन्द पु०, ६ । २४ । २४

अस्तु स्पष्ट है कि गरुड़ पुराण हमारे पूर्व मध्यकालीन इतिहास का कितना महत्त्वपूर्ण ज्ञान-साधन है।

२. सूर्य-वंश वर्णन—राजवंश-वंशानुचरित वर्णन पुराण-पंच-लक्षण का एक आवश्यक अंग है। गरुड़ पुराण भी इस परम्परा का अनुगमन करता हुआ सूर्य वंश (गरुड़ १ । १३८ अध्याय) और सोमवंश (गरुड़ १ । १३९-१४० अध्यायों) का वर्णन करता है। अध्याय १४२-१४३ (पूर्वार्ध) में रामराज्य और इक्ष्वाकु बंश का वर्णन दिया गया है। यही अयोध्या का रघुवंश है। अध्याय १४४ (पूर्वा०) में हरिवंश और अ० १४५ (पूर्वा०) में भारत वंश का वर्णन दिया गया है। इस प्रकार गरुड़ पुराण कोशल, काशी,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वशाली और कुरु राज्यों के इतिहास पर प्रकाश डालता है। शाक्य शुद्धोदन, और सेनजित तथा क्षुद्रक के नाम अधिक परिचित हैं। इस प्रकार बार्हद्रथ वंश के राजाओं (मगध) का भी उल्लेख (गरुड़ १। १४१। ११) मिलता है। यह वंश वर्णन इस प्रकार प्रारम्भ होता है —

राज्ञां वंशान् प्रवक्ष्यामि वंशानुचरितानि च।
विष्णनाभ्यम्जतो ब्रह्मा दक्षोऽङ्गुष्ठाच्च तस्य वै ॥
गरुड़ १। १३८। १

ततोऽतिर्विवस्वांश्च ततो विवस्वतः सुतः।
मनुरिक्ष्वाकुः शर्यातिमृगो धृष्टः पृषध्रकः।
नरिष्यन्तश्च नाभागो दिष्टः शशक एवच ॥
गरुड़ १। १३८। २

अर्थात् ब्रह्मा से दक्ष, दक्ष से अदिति और अदिति से विवस्वान तथा विवस्वान् से मनु का जन्म हुआ। मनु के इक्ष्वाकु, शर्याति, मृग (नृग विष्णु-पुराण ४। १। ७), धृष्ट, प्रषध्रक, नरिष्यन्त, नाभाग, दिष्ट और शशक हुए।

मनु की इला कन्या और सुद्युम्न पुत्र था; इला और बुध के संयोग से पुरवों का जन्म हुआ तथा सुद्युम्न के तीन पुत्र-उत्कल, विनीत औ गय-हुए (गरुड़ १। १३८। ३)। मनुपुत्र पृषध्र गोवध के कारण शूद्र हो गया और करूष से कारूष क्षत्रियों का जन्म हुआ (गरुड़ १। १३८। ४)। यहां पर गरुड़-तालिका में दोष है। करूष भी मनु पुत्र था (विष्णु पु० ४। १। ७, १८)। दिष्ट पुत्र नाभाग वैश्य हो गया और उसका पुत्र भनन्दन तथा भनन्दन का वत्सप्रीति पुत्र हुआ (१। १३८। ५)। उससे पांशु, पांशु से खनित्र, और खनित्र से क्षुप, क्षुप से विंश, विंश से विविंशक, विविंश से खनीनेत्र, खनीनेत्र से विभूति, विभूति से करन्धम, करन्धम से अविक्षित, अविक्षित से मरुत्त, मरुत्त से नरिष्यन्त, नरिष्यन्त से तम (दम-विष्णु पु० ४। १। ३५) और तम से राजवर्धन उत्पन्न हुआ (गरुड़ १। १३८। ५-८ । आगे की वंश परंपरा में क्रमशः—राजवर्धन, सुधृति, नर, केवल, धुन्धुमान्, (गरुड़ १। १३८। ९) वेगवान्, बुध, (कन्या) इलविला, तृणबिन्दु, विशालं, हेमचन्द्र, चन्द्रक, (वही १। १३८। ११), धूम्राश्व, सृञ्जय, सहदेव कृशाश्व, सोमदत्त, जनमेजय और सुमन्त्रि थे।

विशाल से सुमन्त्रि तक वैशाली के राजा (वैशालका नृपाः, गरुड़ १। १३८। १३) थे। इस प्रकार स्पष्टतः राजा विशाल ही वैशाली (मुजफ्फरपुर से २२ मील दूर) का संस्थापक था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मनुपुत्र शर्याति की पुत्री सुकन्या च्यवन की पत्नी थी और शर्याति से अनन्त (आनर्त्त, विष्णुपुराण ४ । १ । ६३), अनन्त से देवक, देवक से रैवत और रैवत की रेवती नामक पुत्री हुई (गरुड़ १ । १३८ । १४) ।

मनुपुत्र धृष्ट से धार्ष्टक क्षत्रिय और उससे नाभाग (वैश्य), नाभाग पुत्र नेदिष्ट, उससे अम्बरीष उत्पन्न हुआ, अम्बरीष से विरूप, विरूप से पृषदश्व, उसका पुत्र रथीनर वासुदेव भक्त हुआ (गरुड़ १ । १३८ । १५-१६) ।

इक्ष्वाकु से विकुक्षि, निमि, और दण्ड नामक तीन पुत्र हुए; विकुक्षि का शशाद, शशाद से पुरञ्जय-ककुत्स्थ पैदा हुआ; ककुत्स्थ (पुरञ्जय) से अनेन, अनेन का पुत्र पृथु उत्पन्न हुआ । विश्वरात पृथु का पुत्र था, विश्वरात से आर्द्र, उससे युवनाश्व और युवनाश्व से श्रावस्त का जन्म हुआ । श्रावस्त से बृहदाश्व, उसका कुबलाश्व-धुन्धुमार नामक पुत्र । उससे दृढ़ाश्व पैदा हुआ । दृढ़ाश्व के चन्द्राश्व, कपिलाश्व व हर्यश्व पुत्र थे । हर्यश्व से निकुम्भ, उससे हिताश्व, हिताश्व से पूजाश्व, उससे युवनाश्व तथा युवनाश्व से मान्धाता, (बिन्दुमह्य) और फिर तीन पुत्र—मुचुकुन्द, अम्बरीष तथा पुरुकुत्स और पचास पुत्रियाँ हुईं, जो सौभरि मुनि की पत्नियाँ थीं । अम्बरीष से युवनाश्व, उससे हरित उत्पन्न हुआ तथा पुरुकुत्स और नर्मदा ने त्रसदस्यु को जन्म दिया । उससे अनरण्य, अनरण्य से हर्यश्व और उससे वसुमना, वसुमना से त्रिधन्वा, जिससे त्र्य्यारुण पैदा हुआ । त्र्य्यारुण का पुत्र सत्यरत था जिससे त्रिशंकु और त्रिशंकु से हरिश्चन्द्र तथा हरिश्चन्द्र का पुत्र रोहिताश्व था । रोहिताश्व से हरित, हरित-पुत्र चञ्चु, चञ्चु से विजय, विजय से रुरुक, रुरुक से बृक, बृक से बाहु, बाहु का पुत्र सगर था, जिसने सुमति से साठ हजार पुत्र (??) और केशिनी से असमञ्जस नामक पुत्र को जन्म दिया । अंशुमान उसका ही विद्वान पुत्र था, जिसका पुत्र दिलीप था । दिलीप से भगीरथ हुआ जिनसे पृथिवी पर गंगा लाई गयीं (गरुड़ १ । १३८ । १७-३०) ।

भगीरथ का पुत्र श्रुत, श्रुत से नाभाग, नाभाग से अम्बरीष, अम्बरीष से सिन्धु द्वीप, सिन्धु द्वीप से अयुतायु, उससे ऋतुपर्ण, ऋतुपर्ण का पुत्र सर्वकाम हुआ जिसका पुत्र सुदास था । सुदास का पुत्र मित्रसह-सौदास, उसके पुत्र कल्माषपाद ने दमयन्ती से अश्वक को जन्म दिया, अश्वक से मूलक, उससे दशरथ, और दशरथ का इलबिल पुत्र हुआ । उसका पुत्र विश्वसह, विश्वसह का खट्वांग, खट्वांग का दीर्घवाहु, दीर्घबाहु से अज का जन्म हुआ । उनके पुत्र दशरथ थे, जिनसे राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न चार पुत्र उत्पन्न हुए । राम के कुश व लव, भरत के तार्क्ष और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुष्कर, लक्षमण के चित्रांगद और चन्द्रकेतु तथा शत्रुघ्न से सुबाहु और शूरसेन का जन्म हुआ गरुड़ [१ । १३८ । ३१-३८ (१)] ।

कुश का अतिथि, अतिथि का निषध, निषध का नल, नल का नभस, नभस का पुण्डरीक, पुण्डरीक से क्षेमधन्वा पुत्र हुआ । उसके बाद क्रमशः देवानीक, अहीनक, रुरु, पारियात्र, दल, छल, उक्थ, वज्रनाभ, गण, उषिताश्व, विश्वसह, हिरण्यनाभ, पुष्पक, ध्रुवसन्धि, सुदर्शन, अग्निवर्ण, पद्मवर्ण, शीघ्रमरु, प्रसुश्रुत, उदावसु, नन्दिवर्धन, सुकेतु, देवरात, बृहदुक्थ, सुधृति, धृष्टकेतु, हर्यश्व, मरु, प्रतीन्धक, कृतिरथ, देवमीढ, बिबुध, महाधृति, कृतिरात, महारोमा, स्वर्णरोमा, ह्रस्वरोमा, सीरध्वज (सीता के पिता) और उनके भाई कुशध्वज थे । सीरध्वज के बाद उसका भानुमान और फिर आगे क्रमशः (पुत्र पौत्रादि…) शतद्युम्न, शुचि, ऊर्जनाम, सनद्वाज, कुलि, अनञ्जन, कुलिजित, अधिनेमिक, श्रुतायु, सुपार्श्व, सृञ्जय, क्षेमारि, अनेना, रामरथ, सत्यरथ, उपगुरु, उपगुप्त, स्वागत, स्वनर, सुवर्चा, सुपार्श्व, सुश्रुत, जय, विजय, ऋत, सुनय, वीतहव्य, धृति और धृति से बहुलाश्व तथा बहुलाश्व से कृति उत्पन्न हुआ (गरुड़ १ । १३८ । ३८-५७) । अन्त में पुराण कहता है—

जनकस्य द्वयं वंश उक्तो योगसमाश्रया ॥

गरुण पु० १ । १३८ । ५८

इस प्रकार अ० १३८ (पूर्वार्ध) में सूर्य वंश का वर्णन किया गया है ।

३—चन्द्रवंश वर्णन (गरुड़ पूर्व०, अध्याय १३९)

सूर्य वंश का वर्णन करने के बाद चन्द्र वंश का वर्णन किया जाता है—

सूर्यस्य कथितो वंशः सोमवंशं ऋणुष्वमे ।
नारायणसुतो ब्रह्माब्रह्मणोऽत्रेः समुद्भवः ॥

गरुण १ । १३९ । १

नारायण से ब्रह्मा और ब्रह्मा से अत्रि का जन्म हुआ । अत्रि ने ही चन्द्रदेव (सोम) को जन्म दिया तथा वंश वृक्ष भी आगे बढ़ता रहा—

अत्रि
|
सोम
|
बुध
|
पुरुरवा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

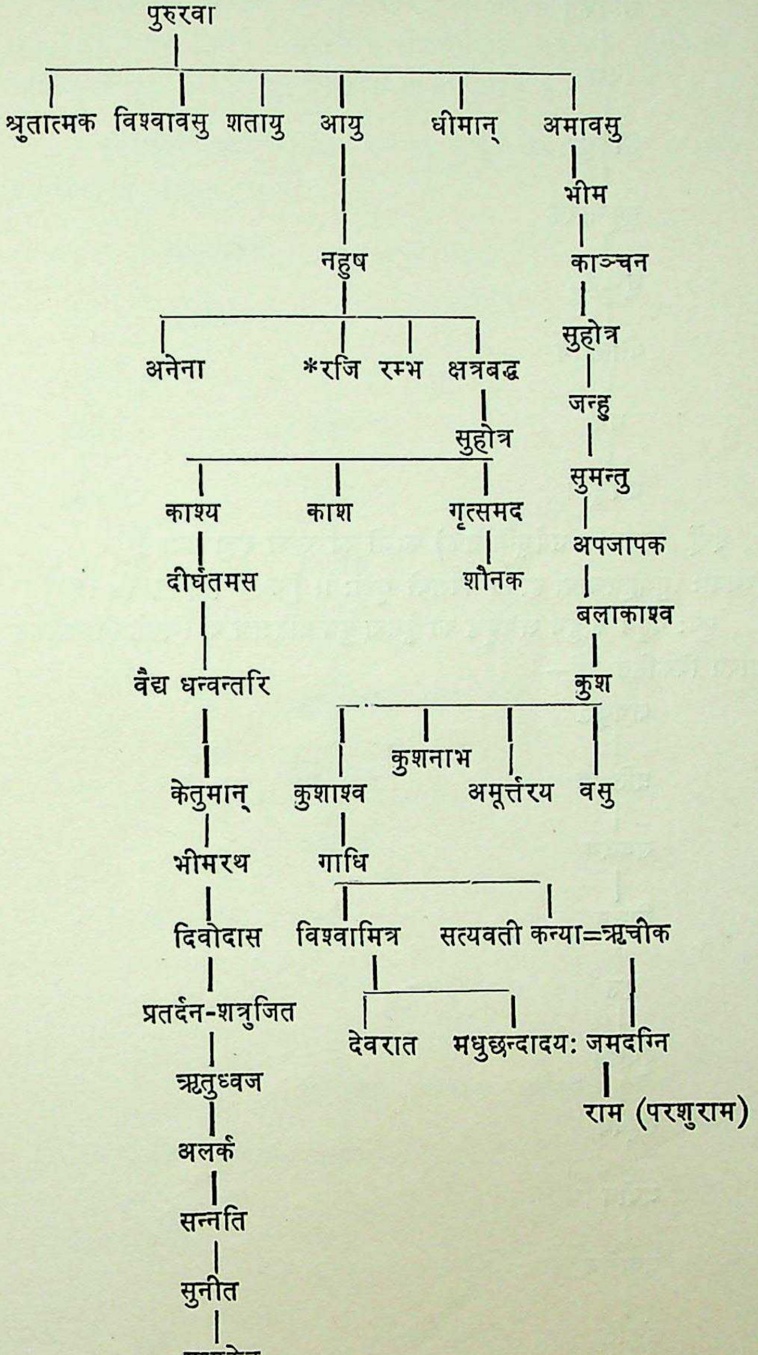

*रजि के पाँच सौ पुत्र थे जिनको इन्द्र ने मार डाला था, गरुड़ १।१३९।१४।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सत्यकेतु
|
विभु
|
सुविभु
|
सुकुमारक
|
धृष्टकेतु
|
वीतिहोत्र
|
भर्ग
|
भर्गभूमि

इन्हें (काश्य से भर्गभूमि तक) काशी का राजा कहा गया है—

वैष्णवाः स्युर्महात्मानः इत्येते काशयो नृपाः ॥ [गरुड़ १।१३९।१४ (१)]

पुनः नहुष के पुत्र क्षत्रवृद्ध का दूसरा पुत्र प्रतिक्षत्र था जिससे निम्नांकित वंशशाखा विकसित हुई—

क्षत्रवृद्ध
|
प्रतिक्षत्र
|
सञ्जय
|
विजय
|
कृत
|
वृषधन
|
सहदेव
|
अदीन
|
जयत्सेन
|
संकृति
|
क्षत्रधर्मा गरुड़ १ । १३९ । १५-१७ (१)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यति, ययाति, संयाति, अयाति और कृति क्रम से नहुष के पुत्र थे (गरुड़ १ । १३९ । १७ [२]) । ययाति से देवयानी ने यदु और तुर्वसु को तथा शर्मिष्ठा ने द्रुह्यु, और पूरु को जन्म दिया (गरुड़ १ । १३९ । १८) ।

सहस्रजित्, क्रोष्टुमन और रघु यदु के पुत्र थे। सहस्रजित से इसके बाद निम्नलिखित राजपुत्र हुए—

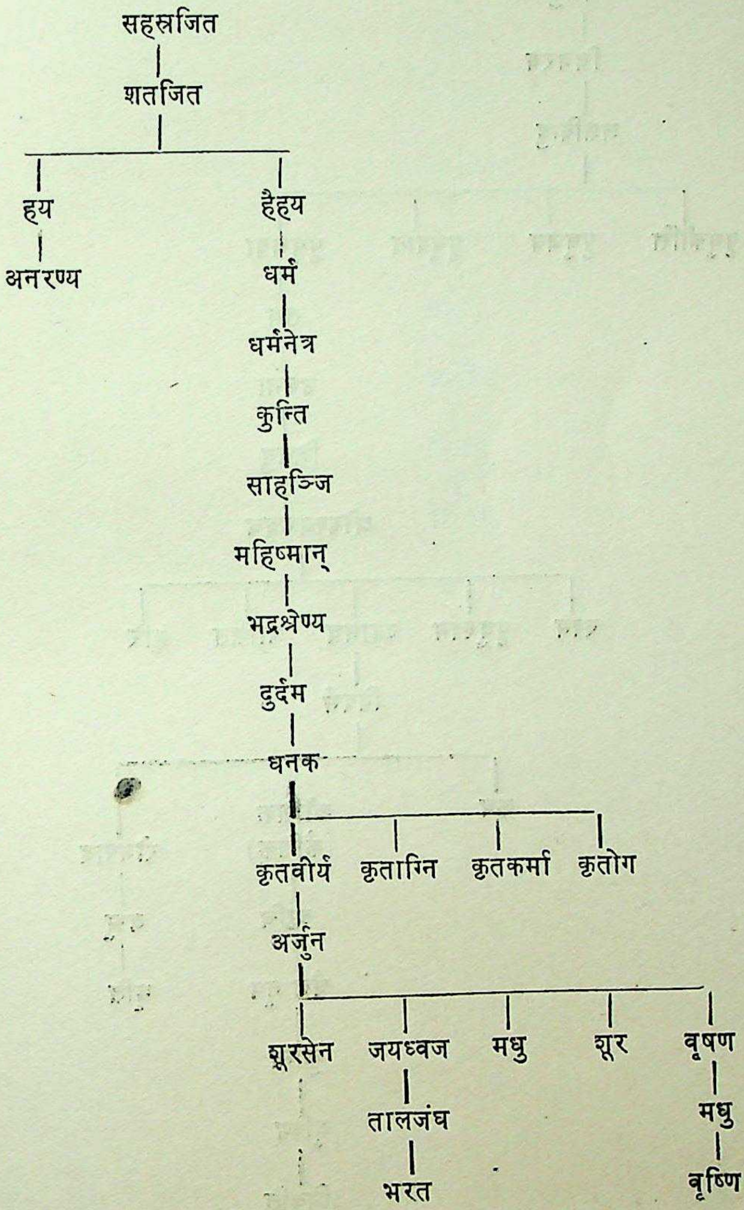

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

- यदु
  - क्रोष्टु
    - आहि
      - अशंकु
        - चित्ररथ
          - शशबिन्दु
            - पृथुकीर्त्ति
            - पृथुजय
            - पृथुदान
            - पृथुश्रवा
              - तम
                - उशना
                  - शितगु
                    - श्रीरुक्मकवच
                      - रुक्म
                      - पृथुरुक्म
                      - ज्यामघ
                        - विदर्भ
                          - क्रथ
                          - कौशिक (कैशिक)
                            - ऋचि
                              - चैद्य नृप
                                - कुन्ति
                                  - वृष्णि
                                    - निवृति
                          - रोमपाद
                            - बभ्रु
                              - धृति
                      - पालित
                      - हरि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निवृत्ति
|
दशार्ह
|
व्योमा
|
जीमूत
|
विकृति
|
भीमरथ
|
मधुरथ
|
शकुनि
|
करम्भि
|
देवमत
|
देवक्षत्र
|
मधु
|
कुरुवंश
|
अनु
|
पुरुहोत्र
|
अंशु
|
सत्यश्रुत
|
सात्वत
|

भजिन   भजमान   अन्धक   महाभोज   वृष्णि   दिव्यावन्य   देवावृध

भजमान से निमि, वृष्णि, अयुताजित, शतजित्, सहस्रजित्, बभ्रु और वृहस्पति नामक पुत्र हुए। महाभोज से भोज और वृष्णि से सुमित्रक, सुमित्रक से स्वधाजित और स्वधाजित से अनमित्र व शिनी उत्पन्न हुए। अन-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मित्र से निघ्न, निघ्न से शत्राजित् हुआ। अनमित्र से ही प्रसेन और शिवि उत्पन्न हुए। शिवि से सत्यक, सत्यक से सात्यकि, सात्यकि से सञ्जय और सञ्जय से कुलि का जन्म हुआ। कुलि का युगन्तर पुत्र था[१]। ये शैवेय राजा थे। विष्णु पुराण (४। १४। ४) इन्हें शैनेया बताता है।

अनमित्र के ही वंश में वृष्णि (विष्णु पु०, ४। १४। ५, पृश्नि) और वृष्णि से श्वफल्क तथा उससे चित्रक का जन्म हुआ। श्वफल्क और गादिनी से ही वैष्णव-भक्त अक्रूर का जन्म हुआ। अक्रूर से उपमद्गुरथ और उससे देव-द्योत पैदा हुए। देववान् और उपदेव भी अक्रूर के पुत्र थे। चित्र (चित्रक) से पृथु और विपृथु, तथा अन्तक (अन्धक ?) से शुचि, भजमान का कुकुर और बर्हिष का कम्बल पुत्र हुआ (गरुड़ १। १३९। ४१-४३)।

कुकुर से धृष्ट, उससे कापोतरोमक, कापोतरोमक से विलोभ, विलोम से तुम्बुरु, तुम्बुरु से दुन्दुभि, दुन्दुभि से पुनर्वसु, उसका पुत्र आहुक और पुत्री आहुकी थी। आहुक के देवक और उग्रसेन नामक दो पुत्र थे। देवक की देवकी, वृकदेवा, उपदेवा, सहदेवा, सुरक्षिता, श्रीदेवी और शान्तिदेवी पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं, जिनके साथ वसुदेव का विवाह हुआ। देव और अनुपदेव, सहदेवा के पुत्र थे। उग्रसेन से कंस, सुनाम और वट आदि पुत्र हुए। भजमान का विदूरथ, विदूरथ का पुत्र शूर, शुर-पुत्र समी, समी का प्रतिक्षत्र और प्रतिक्षत्र का पुत्र स्वयम्भोज था। स्वयम्भोज का हृदिक और हृदिक का पुत्र कृतवर्मा था। शूर के देव, शतधनु और देवमीढुष पुत्र थे। शूर के मारिषा से वसुदेव आदि पुत्र हुए और पृथा, श्रुत देवी, श्रुतकीर्ति तथा श्रुतश्रवा और राजाधि-देवी पुत्रियाँ थीं। शूर ने अपनी पुत्री पृथा को कुन्ति को दे दिया और कुन्ति ने उसे पाण्डु के साथ व्याह दिया, जिससे युधिष्ठिर, अर्जुन और भीम पैदा हुए। माद्री से नकुल और सहदेव उत्पन्न हुए तथा कुन्ती से ही पहले कर्ण पैदा हुए थे। (गरुड़ १। १३९। ४४-५३।

श्रुतदेवी से दन्तवक्र का जन्म हुआ; श्रुतकीर्ति ने कैकय नरेश से अन्त-र्धान आदि पाँच पुत्रों को जन्म दिया; राजाधिदेवी से विन्द और अनुविन्द का जन्म हुआ; और श्रुतश्रवा ने दमघोष के योग से शिशुपाल को जन्म दिया (गरुड़ १। १३९। ५५)।

(वसुदेव) आनक दुन्दुभि की पौरवी, रोहिणी, मदिरा, भद्रा और देवकी नामक पत्नियाँ थीं। रोहिणी से बलभद्र सारण, शठ आदि और बलभद्र तथा रेवती से निशठ व उलमुक पुत्र हुए। देवकी के छः पुत्र—कीर्तिमान्, सुषेण, उदार्य, भद्रसेन, ऋजदास व भद्रदेव, कंस द्वारा मार डाले गये। संकर्षण

१—गरुड़ १। १३९। ३७-४०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सातवें और आठवें पुत्र कृष्ण ही थे। सोलह हज़ार स्त्रियों में रुक्मिणी सत्यभामा, लक्ष्मणा और जाम्बवन्ती आदि आठ श्रेष्ठा थीं। उन्होंने बहुत से पुत्रों को जन्म दिया, जिनमें प्रद्युम्न, चारुदेष्ण. साम्ब आदि प्रधान थे। प्रद्युम्न से अनिरुद्ध, और अनिरुद्ध ने सुभद्रा से वज्र को जन्म दिया। वज्र का प्रतिबाहु, और प्रतिवाहु का चारु पुत्र हुआ (गरुड़ १।१३९।५६-६२)।

तुर्वसु वंश—(गरुड़ १।१३९।६३)

तुर्वसु के वंश में वह्नि का जन्म हुआ। वह्नि का पुत्र भार्ग था, भार्ग से भानु, भानु-पुत्र करन्धम, और करन्धम का पुत्र मरुत था।

द्रुह्यु वंश (गरुड़ १।१३९।६४)

द्रुह्यु का पुत्र सेतु, सेतु का आरद्ध और आरद्ध का गान्धार तथा गान्धार से धर्म का जन्म हुआ। धर्म-पुत्र धृत, धृत-पुत्र दुर्गम और दुर्गम का प्रचेतापुत्र था।

अनु वंश (गरुड़ १।१३९।६५)

अनु का पुत्र स्वभानर, स्वभानर से कालञ्जय, कालञ्जय से सृञ्जय ओर सृञ्जय से पुरञ्जय उत्पन्न हुए। पुरञ्जय से जनमेजय, उसका पुत्र महाशाल, महाशाल का पुत्र महामना और उससे उशीनर उत्पन्न हुए। उशीनर से शिवि, और शिवि का पुत्र वृषदर्भ था। महामनोज से तितिक्ष, उससे रुषद्रथ, रुषद्रथ से हेम, हेम से सुतप, सुतप से बलि और बलि ने अंग, वंग, कलिंग, अन्ध्र, और पौण्ड्र को जन्म दिया। अंग से अनपाल, अनपाल से दिविरथ, उससे धर्मरथ, धर्मरथ से रोमपाद, उससे चतुरंग पैदा हुआ। चतुरंग का पृथुलाक्ष, पृथुलाक्ष से चम्प और चम्प का पुत्र हर्य्यङ्ग, उसका भद्ररथ और भद्ररथ का बृहत्कर्मा पुत्र था। बृहत्कर्मा का पुत्र बृहद्भानु, बृहद्भानु का पुत्र बृहन्मन, जिसका पुत्र जयद्रथ था। जयद्रथ का विजय, विजय सेधृति, धृति का धृतवृत और धृतवृत का सत्यधर्मा तथा सत्यधर्मा का पुत्र अधिरथ और अधिरथ से कर्ण पैदा हुआ। कर्ण का पुत्र वृषसेन था (गरुड़ १।१३९।६५-७४)।

४—पुरु वंश (गरुड़ पूर्वार्द्ध, अध्याय १४०)

पुरुवंशान् शृणष्व मे (गरुड़ १।१३९।७४)

पुरु
|
जनमेजय
|
मनस्यु
|

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मनस्यु
|
अभयद
|
सम्बु
|
बहुगति
|
संजाति
|
वत्सजाति
|
रौद्राश्व

रौद्राश्व के ऋतेयु, स्थण्डिलेयु, कक्षेयु, कृतेयु, जलेयु और सन्ततेयु पुत्र थे (१।१४०।३)।

ऋतेयु
|
रतिनार
|
प्रतिरथ
|
मेधातिथि
|
एनिल
|
दुष्मन्त = शकुन्तला
|
भरत
|
वितथ
|
मन्यु
|
नर
|
संकृति
|
गर्व
|
मन्यु
|

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

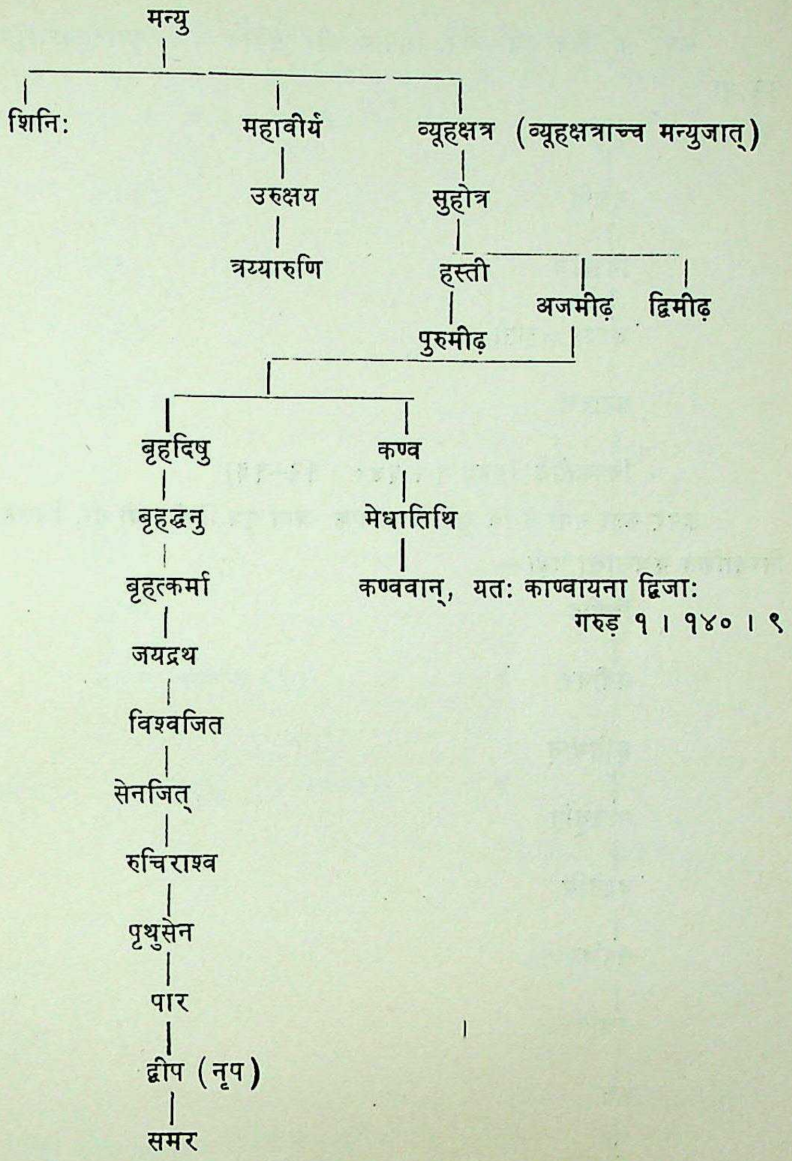

यहाँ पर गरुड़ पु० में दोष है—

पारस्तु तु पृथुसेनस्य पाराद् द्वीपोऽभवन्नृपः ।
नृपस्य समरः पुत्रः सुकृतिश्च पृथोः सुतः ॥ गरुड़ १ । १४० । १२

समर और पृथु में क्या सम्बन्ध था ? पृथु किस का पुत्र था ? गरुड़ मौन है । विष्णु से पु० ज्ञात होता है कि—

समरस्यापि पारसुपारसदश्वास्त्रयः पुत्राः ॥ विष्णु ४ । १९ । ४१
सुपारात्पृथुः पृथोस्सुकृतिस्ततो विभ्राजः ॥ वही ४ । १९ । ४२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समर के तीन पुत्र—पार, सुपार और सदश्व थे। सुपार का पुत्र पृथु था।

पृथु
|
सुकृति
|
विभ्राज
|
अश्वह् = कृती
|
ब्रह्मदत्त
|
विष्वक्सेन (गरुड़ १। १४०। १२–१३)

ऊपर कहा गया है कि सुहोत्र का एक अन्य पुत्र द्विमीढ़ भी था, जिससे निम्नांकित वंशशाखा बढ़ी—

द्विमीढ
|
यवीनर
|
धृतिमान्
|
सत्यधृति
|
दृढनेमि
|
सुपार्श्व
|
सन्नति
|
कृत
|
उग्रायुध
|
क्षेम्य
|
सुधीर
|
पुरञ्जय
|
विदूरथ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विष्णु पुराण में इन्हें (द्विजमीढ-विदूरथ) पौरव वंशीय कहा गया है (विष्णु पु० ४ । १९ । ५५)। सुहोत्र के अन्य पुत्र अजमीढ से निम्नांकित राजपुत्र हुए (गरुड़ १ । १४० । १७–२४)—

अजमीढ
|
नील
|
शान्ति
|
सुशान्ति
|
पुरु
|
अर्क
|
हर्यश्व
|
मुकुल (पांचाल नृप)
|
*यवीनर, बृहद्भानु, कम्पिल्ल, सृञ्जय, शरद्वान

सृञ्जय
|
दिवोदास द्वितीय
|
शतानन्द — सत्यधृति
मित्रयु — च्यवन

*इन्हीं पाँच पुत्रों को पाञ्चाल कहा गया है (गरुड़ १ । १४० । १९)। विष्णु पु० से भी ज्ञात होता है—

तस्मान्मुद्गल सृञ्जय बृहदिषु यवीनर काम्पिल्यसंज्ञाः पञ्चानामेव तेषां विषयाणां रक्षणायालमेते मत्पुत्रा इति पित्राभिहिताः पाञ्चालाः ॥

विष्ण पु० ४ । १९ । ५९

इसीलिये इन पाँच राजपुत्रों से सुशासित देश भी पांचाल कहलाया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

- सत्यधृति
  - कृप
  - कृपी (कन्या) = द्रोण
    - अश्वत्थामा

- च्यवन
  - सुदास
    - सौदास
      - सहदेव
        - सोमक
          - जन्तु
          - पृषत
            - द्रुपद
              - धृष्टद्युम्न
                - धृष्टकेतु

पूर्वकथित सुहोत्र अजमीढ से ही निम्नांकित राजा हुए (गरुड़ १।१४०।२४-२५)–

- अजमीढ
  - ऋक्ष
    - संवरण
      - कुरु—य इदं धर्मक्षेत्रं कुरुक्षेत्रं चकार। विष्णु पु० ४।१९।७७
        - सुधनु
          - सुहोत्र
            - च्यवन
              - कृतक
                - उपरिचरिवसु
                  - बृहद्रथ
                  - प्रत्यग्र
                  - सत्य आदि
        - परीक्षित
        - जन्हु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बृहद्रथ

कुशाग्र — जरासन्ध

कुशाग्र → ऋषभ → पुष्पवान् → सत्यहित → सुधन्वा → जह्नु (जतु विष्णु ४ । १९ । ८२)

जरासन्ध → सहदेव → सोमापि → श्रुतवान्* (श्रुतिश्रवा—विष्णु पु० ४ । १९ । ८४)

श्रुतवान्-श्रुतिश्रवा* के बाद विष्णु पुराण कहता है कि ये मगध के राजा थे—

इत्येते मया मागधा भूपाला कथिताः ।। विष्णु पु० ४ । १९ । ८५

इसके आगे भी, विष्णु पु०, अंश ४, अध्याय २३ में मगधवंशीय जरासन्ध से रिपुञ्जय तक बार्हद्रथ-राजाओं का वर्णन किया गया है। गरुड़ भी (१ । १४१ । ९-११) बार्हद्रथ वंश के राजाओं का वर्णन करता है। यह मगध का बिम्बिसार से पूर्व युग का इतिहास है। गरुड़ पु० शाक्य (१ । १४१ । ७) और शुद्धोदन (१ । १४१ । ८) का उल्लेख करता है। विष्णु पुराण में स्पष्टतः शुद्धोदन को शाक्य-पुत्र कहा गया है (विष्णु ४ । २२ । ८) । ये इक्ष्वाकु वंशीय सम्राट थे। इसी कुल में आगे चलकर राहुल (विष्णु पु० ४ । २२ । ८) और बाहुल (गरुड़ १ । १४१ । ८) के पुत्र प्रसेनजित (विष्णु ४ । २२ । ८) और उनके पुत्र क्षुद्रक का उल्लेख है। गरुड़ में हमें सेनजित और क्षुद्रक (१ । १४१ । ८) के नाम मिलते हैं। शुद्धोदन बुद्ध के पिता ही थे जिनके बाद विष्णु पु० में उनका उत्तराधिकारी राहुल बताया गया है। भागवत (९ । १२ । १४) भी प्रसेनजित और क्षुद्रक का उल्लेख करता है। अस्तु सेनजित या प्रसेनजित एक ही थे और यह प्रसिद्ध कोशल सम्राट प्रसेनजित ही थे। बौद्ध साहित्य में भी शुद्धोदन को इक्ष्वाकु कुल से सम्बद्ध किया गया है (महावस्तु १ । ३५२ । १३–१४) ।

श्रुतिश्रवा (श्रुतवान) के बाद विष्णु पु० कुरु वंश का वर्णन करता है—

कुरुवंश

परीक्षितो जनमेजयश्रुतसेनोग्रसेनभीमसेनाश्चत्वारः पुत्राः ।।

विष्णु ४ । २० । १

परन्तु गरुड़ पुराण में किसी प्रकार का निर्देश न होकर श्रुतवान के बाद इन्हीं पारिक्षितों का उल्लेख दिया गया है—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भीमसेनोग्रसेनौ च श्रुतसेनोऽपराजितः ।
जनमेजयश्चान्योऽभूज्जन्होस्तु सुरथोऽभवत् ।।

गरुड़ १ । १४१ । ३०

इस प्रकार स्पष्ट है कि गरुड़ भी कुरुवंश का ही वर्णन करता है और भीमसेन, उग्रसेन, श्रुतसेन तथा जनमेजय परीक्षित के ही पुत्र थे ।

आगे चलकर कुरु-पुत्र जन्हु से प्रचलित वंश शाखा का वर्णन मिलता है (गरुड़ १ १४० । २५-४०)—

कुरु
|
जन्हु
|
सुरथ
|
विदूरथ
|
सार्वभौम
|
जयसेन
|
आवाधीत (आराधित विष्णु ४ । २० । ४)
|
अयुतायु
|
अक्रोधन
|
अतिथि
|
ऋक्ष
|
भीमसेन
|
दिलीप
|
प्रतीप

देवापि   सत्यवती = शान्तनु = गंगा   वाह्लीक

(सत्यवती–शान्तनु से:) चित्रांगद, विचित्रवीर्य; (शान्तनु–गंगा से:) भीष्म; (वाह्लीक से:) सोमदत्त

अम्बिका = विचित्रवीर्य = अम्बालिका

(सोमदत्त से:) भूरि   भूरिश्रव   शाल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विचित्रवीर्य

गान्धारी = धृतराष्ट्र पाण्डु विदुर (दासीपुत्र)

दुर्योधन आदि

युधिष्ठिर भीम अर्जुन नकुल सहदेव

प्रतिविन्ध्य श्रुतसोम श्रुतकीर्ति श्रुतकर्मा शतानीक

पांचों पांडवों ने द्रौपदी से एक एक पुत्र उत्पन्न किया। इन्होंने अलग-अलग पाँच पत्नियों से भी पुत्र उत्पन्न किये। यौधेयी (=युधिष्ठिर, विष्णु ४ । २० । ४) ने देवक, हिडिम्बा (=भीम, विष्णु ४ । २० । ४५) ने घटोत्कच, कैशी काशी = भीमसेन (विष्णु पु० ४ । २० । ४६) ने सर्वंग, सुभद्रिका (=अर्जुन) से अभिमन्यु, विजयी (=सहदेव) से सुहोत्र और रेणुमती (=नकुल) से निरमित्र का जन्म हुआ। गरुड़ पु० का पाठ बहुत अशुद्ध और संक्षिप्त तथा संदिग्ध है। अभिमन्यु से परीक्षित का जन्म हुआ। इस अध्याय (१४०, गरुड़ पूर्वार्ध) को चन्द्रवंश-वर्णन कहा गया है। इसके बाद अ० १४१ (गरुड़ पूर्वार्ध) में राजवंश का वर्णन करते हुए बार्हद्रथ नृपों का उल्लेख और नश्वर जगत में राजाओं के भी नाश का संकेत किया गया है। ये राजा थे—

शतानीक, अश्वमेधदत्त, अधिसोमक कृष्ण (अधिसीमकृष्ण) अनिरुद्ध (निचक्षु), उष्ण, चित्ररथ (विचित्ररथ विष्णु पु० ४।२१।१०) शुचिद्रथ, वृष्णिमान्, सुषेण, सुनीथ, नृचक्षु (नृपचक्षु), मुखाबाण, मेधावी, नृपञ्जय, पारिप्लव, मेधावी, नृपञ्जय, हरि, तिग्म, बृहद्रथ, शतानीक, सुदानक, उदान, अह्निनर, दण्डपाणि, निमित्तक, क्षेमक, उससे शूद्र ···। यहीं पर विष्णु पुराण राजर्षि-वंश की समाप्ति का उल्लेख करता है (विष्णु ४ । २१ । १८) और पुनः इक्ष्वाकु वंश का वर्णन (विष्णु ४ । २२ अ०) करता है। गरुड़ पुराण किसी प्रकार का भेद न कर आगे बृहद्बल की इक्ष्वाकुवंशीय शाखा का वर्णन करता है—

बृहद्बलास्तु कथ्यन्ते नृपाश्चेक्ष्वाकुवंशजाः । गरुड़ १ । १४१ । ५ (१)

बृहद्बल
|
उरुक्षय
|
वत्सव्यूह
|
बृहदश्व
|
भानुरथ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भानुरथ
|
प्रतीव्य
|
प्रतीतक
|
मनुदेव
|
सुनक्षत्र
|
किन्नर
|
अन्तरिक्षक
|
सुपर्ण
|
कृतजित्
|
बृहद्भ्राज
|
कृतञ्जय
|
धनञ्जय
|
सञ्जय
|
शाक्य
|
शुद्धोदन
|
बाहुल (राहुल, विष्णु पु०, ४ । २२ । ८)
|
सेनजित (प्रसेनजित, ,, ,,)
|
क्षुद्रक
|
समित्र
|
कुड़ब
|
सुमित्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसके बाद मागध राजवंश का वर्णन करता है—

मागधान् शृणु । गरुड़ पु० १ । १४१ । ८

ये राजा—जरासन्ध, सहदेव, सोमापि, श्रुतश्रवा, अयुतायु, निरमित्र, स्वक्षेत्र, बहुकर्मक, श्रुतञ्जय, सेनजित्, भूरि, शुचि, क्षेम्य, सुव्रत, धर्म, श्मश्रुमो दृढ़सेनक, सुमति, सुबल, नीत, सत्यजित्, विश्वजित और इषुञ्जय थे । इनको बार्हद्रथ वंशीय कहा गया है—**इत्येते बार्हद्रथाः नृपाः** ।। गरुड़ १ । १४१ । ११

इसके बाद के राजाओं को अधर्मिष्ठ शूद्र कहा गया है—

अधर्मिष्ठाश्च शूद्राश्च भविष्यन्ति नृपास्ततः ।। गरुड़ १ । १४१ । १२

रघुवंश—अध्याय १४१ (गरुड़, पूर्वार्ध) में रामायण का वर्णन करते हुए रघुवंश का वर्णन इस प्रकार दिया गया है—

विष्णु नाभि
|
ब्रह्मा
|
मरीचि
|
कश्यप
|
रवि
|
मनु
|
इक्ष्वाकु

इक्ष्वाकु वंश में ही रघु उत्पन्न हुए (गरुड़ १ । १४२ । २)

रघु
|
अज
|
दशरथ
|
राम — लक्ष्मण — भरत — शत्रुहन्

गरुड़ पु० की वंशावली में नाम-भेद के अतिरिक्त अस्पष्टता और संदिग्धता है । परन्तु सभी पुराणों की वंशावलियों से बिम्बिसार-पूर्व युग का भी इतिहास स्पष्टता से बन सकता है। इसके अतिरिक्त तुर्कों के आक्रमणों से पराभूत और प्रपन्न राष्ट्र की मनोवृत्ति तथा स्वातन्त्र्य-सिद्धि की उत्कट अभिलाषा मध्य-कालीन इतिहास को गरुड़ पुराण की एक अमूल्य निधि मानना चाहिए ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

४—नीतिसार

गरुड़-नीति—पुराणों में नीतिशास्त्र के विभिन्न पक्षों का विवेचन किया गया है। अतः पुराण हिन्दू-राजशास्त्र के महत्वपूर्ण ज्ञान-साधन हैं। डा० घोषाल ने पौराणिक-नीति का विवेचन किया हैं। गरुण पुराण के भी एक दो उद्धरण दिये गये हैं। परन्तु सम्यक रूपेण गारुड़ी नीति का विवेचन यहीं किया जा रहा है।

गरुड़ पुराण मध्य युग (ईसा की ९वीं शताब्दी से १२वीं शताब्दी के अन्त तक) का राजनैतिक जीवन प्रस्तुत करता है। अतः हमें इस युग के राजनैतिक विचार गारुड़ी-नीतिसार में प्राप्त होते हैं।

नीतिसार के अन्त में कहा गया है कि विष्णु ने यह नीतिसार शौनक को बताया; वहीं शंकर ने भी सुन लिया और शंकर से व्यास ने जाना। व्यास से ही इस पुराण (गरुड़) के युग तक ऋषियों ने इसे प्राप्त किया।[1] स्पष्टतः यह एक प्राचीन परम्परा है, जो नीति विद्या का भी उदय विष्णु-शंकर से बताती है। यह भी कहा गया है कि इस नीतिसार का उपदेश वृहस्पति ने इन्द्र को किया था जिससे इन्द्र सर्वज्ञ होकर दैत्यों को पराजित करने में सफल हुए।[2] अतः गारुड़ी-नीतिसार पर बार्हस्पत्य नीति का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है। यह उपयुक्त ही था कि इसे वृहस्पति संहिता कहा गया है।

---

१. गरुड़, १ । ११५ । ८३ :

शौनकाय नीतिसारं विष्णुः सर्वव्रतानि च।
कथयामास वै पूर्वं तत्र शुश्राव शंकरः॥
शङ्कराच्च श्रुतो व्यासो व्यासादस्माभिरेव च॥

महाभारत के अनुसार शिव-विशालाक्ष ने ब्रह्मा से नीति शास्त्र प्राप्त किया था। इसी को इन्द्र ने संक्षिप्त किया, जो बाहुदन्तक नीति-शास्त्र कहलाया। आगे चलकर इसे बृहस्पति ने संक्षेप कर बार्हस्पत्य नीतिशास्त्र बनाया। पुनः शुक्र ने इसे संक्षिप्त किया (शान्ति पर्व अ० ५९)।

२. वही, १ । १०८ । १० :

नीतिसारं सुरेन्द्राय इममूचे वृहस्पतिः।
सर्वज्ञो येन चेन्द्रोऽभूद्दैत्यान् हत्वाप्नुयाद्दिवम्॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

डा० लुडविक स्टर्नबैक (पुराणम्, ६-१, जनवरी १९६४, पृ०११३-१४६) के अनुसार गरुड़ पुराण के ३९० श्लोकों से ३३४ श्लोक चाणक्य राजनीतिशास्त्र से तादात्म्य रखते हैं।

बार्हस्पत्य-नीति—महाभारत में एक पुरा-वृत्त (इतिहास) बतलाया गया है। शत्रु-हन्ता इन्द्र ने बृहस्पति से पूछा कि किस प्रकार प्रमाद रहित होकर वह शत्रुओं के साथ व्यवहार करें कि उनको वे अपने वश में कर सकें।[1] युद्ध में किस प्रकार—जहां किसकी विजय होगी यह निश्चित नहीं होता है—शत्रुओं पर विजय प्राप्त की जा सकती है और राज्य लक्ष्मी स्थिर हो सकती है।[2] उनको उत्तर देते हुए राजधर्मविधान को जानने वाले वृहस्पति ने बताया[3]—

१—शत्रु बध चाहने वाला राजा क्रोध, भय, हर्ष को रोककर आत्म-संयम के साथ शत्रु को सावधान न करे।[4]

२—शत्रु पर अविश्वास करता हुआ उसके विश्वस्त मित्र की भांति शत्रु की सेवा करे। सदा उससे प्रिय वचन ही बोले, अप्रिय व्यवहार न करे।[5]

३—शुष्क-वैर और व्यर्थ बकवाद-बहस को छोड़कर उन्हीं के समान—हाँ में हाँ मिलाते हुए—बोली बोले। व्याध भी पक्षियों को पकड़ने के लिये उनकी ही बोली-बोलता है। इसी प्रकार उद्योग शील राजा भी शत्रु को शनैः शनैः वश में कर लेता है।[6]

४—शत्रुओं का तिरस्कार करने वाला राजा, सुख से नहीं सो पाता।[7]

५—जब युद्ध में विजय अनिश्चित है, तब शत्रु को विश्वास द्वारा वश में करने के बाद ही मौका देखकर उसके मनसूबों को नष्ट कर दे।[8]

६—शत्रु द्वारा उपेक्षित होने पर भी मंत्र बल और भेद से काम ले।[9]

७—शत्रु के बलाबल का ज्ञान प्राप्त कर उसकी सेना में फूट डाल दें।[10]

---

१. महा० शान्ति पर्व १०३। ३–४
२. वही, १०३। ५
३. वही, १०३। ६
४. वही, १०३। ८
५. वही, १०३। ९
६. वही, १०३। १०–११
७. वही, १०३। १२
८. वही, १०३। १३
९. वही, १०३। १४
१०. वही, १०३। १५–१६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

८—भेद, दान, औषधि आदि का प्रयोग करे। प्रकटत: शत्रु के साथ प्रत्यक्ष व्यवहार न करे।[१]

९—उचित अवसर की ताक में समय काटे। शत्रु पर तत्काल ही आक्रमण न करे और न कठोर वचनों का ही प्रयोग करे।[२]

१०—शत्रु के फंसने पर उसे अवश्य मार डाले। उसे छोड़े नहीं। ऐसा अवसर बार बार नहीं आता है। जो अवसर चला जाता है, वह अभीष्ट कार्य के लिये दुर्लभ है।[३]

११—साधु-सम्मति से बल को बढ़ाता रहे; मित्रों को भी बढ़ाता रहे और शत्रु को भी अपनी बढ़ती हुई शक्ति से पीड़ा न पहुँचाये। काम, क्रोध और अहंकार को छोड़ कर शत्रु के छिद्रों (दोषों और दुर्बलताओं) को देखता रहे।[४]

१२—शत्रु-माया से भी सावधान रहे।[५]

१३—यदि हो सके तो अपने मंत्र-रहस्य को सचिवों को भी न बताकर कार्य करे। कभी मन्त्री ही आपस में बात चीत के द्वारा रहस्य खोल देते हैं (शान्ति पर्व १०३। २६)।

१४—परिस्थितियों के अनुसार ही ब्रह्मदण्ड, सेना, भेद और दण्डनीति का प्रयोग करे (शान्ति पर्व १०३। २७–२८)।

१५—प्रबल शत्रु से पराभूत होकर उससे सन्धि कर ले और समय आने पर उसके बध का उपाय और अवसर खोजे (शान्ति पर्व १०३। २९)।

१६—शत्रु को सभी प्रकार से विश्वास में रखे। उसके मन में सन्देह होने से अहित होगा (शान्ति पर्व १०३। ३०–३१)।

१७—बहुत से शत्रुओं पर एक ही समय आक्रमण नहीं करना चाहिये। साम, दान, भेद और दण्ड से क्रमश: काम ले और बारी बारी से एक एक कर शत्रुओं को कुचल दे (शान्ति पर्व १०३। ३६–३७)।

१८—दुष्टों के लक्षणों से (शान्ति पर्व १०३। ४५–५२) दुष्टों को पहचाने।

इस प्रकार यह बार्हस्पत्य नीति शत्रु-संहार और दुष्ट निग्रह के लिये

---

१. महा० शान्ति पर्व, १०३। १७
२. वही, १०३। १८–१९
३. वही, १०३। २०–२१
४. वही, १०३। २२–२३
५. वही, १०३। २४–२५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपयुक्त थी। बार्हस्पत्य अर्थ शास्त्र भी, जो इस समय सूत्र रूप में प्राप्त होता है, इसी शत्रु-संहारक नीति का अनुमोदन करता है। सूत्र-स्वरूप बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र पूर्वमध्य काल का ग्रन्थ है, जो तत्कालीन राजाओं को सहज ही नीतिसार का बोध कराने के लिये उपयुक्त था। गरुड़ पुराण का नीतिसार भी, जैसा हम देखेंगे मुख्यतः शत्रु-संहारक नीति का ही विवेचन करता है। शत्रु-पराभव, क्षिति-रक्षण, प्रजा पालन और धर्म संरक्षण ही गारुड़ी नीति के मुख्य अंग हैं और ये ही तत्कालीन क्षत्रियों के प्रमुख कर्तव्य थे। दुष्ट, दैत्य, असुर, म्लेच्छ, यवन आदि शब्द तत्कालीन आक्रान्ताओं (ताजिक-तुरुष्कों और मातंग-म्लेच्छों) के लिये प्रयुक्त किये गये हैं। वह धर्म जिसका स्वरूप विध्वंसक, विदारक, दूषक और प्रपीड़क प्रतीत हुआ, उसे यहां के तत्कालीन मनीषियों ने दैत्य-धर्म कहा है। लोक-स्थिति डांवा डोल थी। इस दैत्य-धर्म के प्राबल्य से ही वेद धर्म भी कुण्ठित हो रहा था। अतः राजा या राजपूत ही क्या, स्वयं हरि (= विष्णु, सिंह-क्षत्रिय) को भी वेदधर्म की रक्षा करने के लिये अवतरित होना पड़ा—

वंशादीन्पालयामास अवतीर्णो हरिः प्रभुः।
दैत्यधर्मस्य नाशार्थं वेदधर्मादि गुप्तये ॥

गरुड़ १। १४२। १

'वेदधर्मादि' में वेदधर्म और गो-ब्राह्मण तथा देवहित भी सम्मिलित था। नरसिंह ने हिरण्यकशिपु का बध कर वेदधर्म की रक्षा की—

नरसिंहोऽवतीर्णोऽथ हिरण्यकशिपुं रिपुम्।
दैत्यान्निहतवान्वेदधर्मादीनभ्यपालयत् ॥

गरुड़ १। १४२। ७

कृष्ण ने भी 'धर्मादिरक्षणार्थाय अधर्मादिविनष्टये' (गरुड़ १। १४४। २) ही अवतार लिया था। यह तो सब निदर्शन-कथाएं और दृष्टान्त हैं जिनके द्वारा राष्ट्र-चेतना, उत्साह और शत्रु-मारक नीति का प्रचार किया जा रहा था। लक्ष्य थे दैत्य। दैत्यों से पीड़ित सन्तों की पुकार पर ही प्रभु मनुष्य रूप में अवतरित होते रहे।

बताया जा चुका है कि सैन्धवा-म्लेच्छा और 'हिमाचलालया-म्लेच्छा' क्रम से सिन्ध के अरब विजेता और गज़नी-गोर की पहाड़ियों के तुरुष्क आक्रान्ता थे। अभिलेखों से ही ज्ञात होता है कि इन आक्रमणों से सम्पूर्ण देश में घोर विपत्ति छा गयी थी—

अशेष लोक संताप कलापदः ताजिकानलः

कार्पस, भाग ४, पृ० ९९ पंक्ति ६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देवकुलस्य खण्ड स्फुटित विशीर्ण.........

वही, पृ० ९९, पं० १०-११

इस अशेश लोकसंतापकलापद: ताजिकानल (अरबों के आक्रमण की अग्नि) से ही देवकुल भी खंडित-स्फुटित हो गये थे। महाकष्ट दायक प्रबल कलिकाल छा गया था—

प्रबलकलिकाल.........कार्पस, ४, पृ० ९९, पंक्ति २; पृ० १०५। २; यही प्रकट करिघटा (कार्पस ४, पृ० १०६। पं०) २८-३९ अथवा गज घटा (कार्पस ४, पृ० ११२। १९, आदि) भी थी। कलि का भी प्रयोग करि-गज या हाथी के ही अर्थ में किया गया है :—

पुष्करं कलि रूपेण कलिं हन्तुमिवागमत्।
विदार्य्य कृत्त्या तस्यैव क्रीडया विदधे वपुः॥

पृथिवी राज विजय ८। ९२

जोनराज की टीका "पुष्करं तीर्थं पद्मं च हस्तिरूपेण हन्तुमागतमिव। कलिं पाटयित्वा तच्चर्मणा लीलया गात्रं प्यधात्"॥

शिव ने पुष्कर को नष्ट करने वाले हाथी (कलि) को मारकर सहज ही में उसके चर्म को अपना परिधान वना लिया।

यह पुष्कर को नष्ट करने वाला म्लेच्छ-मात्तंग ही था—

त्वया हरे तापसतामुपेत्य।
सख्ये गृहीते हरिणैरिदानीम्।
निवास भूमिस्मम पुष्करं त—
दास्कन्दि मातङ्ग महा भयेन॥

टीका "हरिर्विष्णुस्सिंहश्च, हे हरे त्वया ऋषितामाश्रित्य मृगैः सह निवासे गृहीते सति मत्स्थानं पुष्करं मातङ्गेभ्यो म्लेच्छेभ्यो महाभयेनास्कन्दि आक्रान्तम्। सिंहे च शान्तप्राये सति मातङ्गेभ्यो हस्तिभ्यो भयेन स्थानमास्कन्द्यते।

पृ० रा० वि०, १। ४९

इस मत्त-मात्तंग ने सभी पवित्र स्थानों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था—ये हिंसा विहारी म्लेच्छ—सेनाएँ ही थीं—

चक्रे जगत्सर्ग महाध्वरान्ते
मयापि यत्रावभृथाभिषेकः
तत्राधुना देवप्रहाप्रहार—
हिंसाक्लमं म्लेच्छ चमूश्छिनत्ति।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जगत्सर्ग एव महाध्वरस्तत्समाप्तौ यत्र स्थाने मयाप्यवभृथ-स्नानं कृतं शुद्धयर्थमिति शेष: तत्राधुना म्लेच्छाः प्रासादादि ध्वंसेन खेदं निवारयन्ति, तथाविधे पुण्यायतने म्लेच्छाः पापमाचरन्तीत्यर्थः ॥

पृ० रा० वि० १ । ५०

अत: कलि, और मातंग पर्याय थे जो म्लेच्छ (मुस्लिम) आक्रान्ताओं के लिये प्रयुक्त किये गये थे। अत: हाथी रूपी म्लेच्छ को मारने के लिये ही हरि (सिंह, क्षत्रिय और विष्णु) अवतरित होते थे।

यह लोक प्रपीड़क ताजिकानल तलवार की धार के पानी से बुझा दी गई थी—

अशेषलोक संतापकलापदः ताजिकानलः ।
असिधारा जलेन प्रसभं शमितः ॥

कार्पस ४, पृ० ९९ इत्यादि

और तलवार से ही शत्रु-हाथियों के मस्तक को चीर कर रत्न भी निकाल लिये गये थे—

निस्त्रिंशधारा दारितारातिकरिकुम्भमुक्ताफल…………

कार्पस ४, पृ० ९२ । पं० ५ आदि

करि-कुम्भ विदार कर मुक्ताओं को निकाल लेना इस युग के अभिलेखों और साहित्य का प्रचलित प्रिय पद बन गया। ये आराति-करि (शत्रु हाथी) म्लेच्छ ही थे। इन निष्ठुर बैरि-वारणों के माथों को तलवार से युद्ध में चीर कर निकाले गये मुक्ताओं से पृथिवी की अर्चना की गई—

करि कर निष्ठुर प्रकोष्ठ कर कलित निशितनिस्त्रिंशप्रहारदलितप्रमुखागतवैरिवारण कुम्भस्थलोच्छलत्प्रत्यग्रधवलनिर्मलमुक्ताफल प्रकर कुंभस्तबक समभ्यर्चितसमर धरित्रीतल:………… कार्पस ४, पृ० १४०, पं० ७-८

और मत्त हाथी के कुम्भस्थल को विदारित करने वाला सिंह-पुत्र ही था—

मत्तेभकुम्भ मण्डल विदारण केसरि किशोरैरिव…………

कार्पस ४, पृ० १४० । १५-१६

'मत्तो यातीति मातंग:' (जो मत्त होता है वही मातंग है)। यही मत्तेभ कहा गया है। यही म्लेच्छ भी था। इसीलिये इन्हें 'आराति करि' और वैरि-वारण कहा गया है। गरुड़ वन-गजा (गरुड़ १ । २२४ । ९) के नाम से भी इनका उल्लेख करता है।

गरुड़ पुराण भी सिंह-परम्परा का अनुसरण करता हुआ क्षत्रिय को मृगेन्द्रता बनाये रखने को प्रोत्साहित करता है। उसे सिंह व्रत का आचरण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करते हुए नीति, विक्रम, प्रज्ञा और उत्साह से काम लेना चाहिए। यही गारुड़ी नीति सार है।

गरुड़ पुराण में इसे दण्ड नीति[1], नीति[2] और नीतिसार[3] के नाम दिये गये। नीतिसार के मुख्य आधार अर्थशास्त्र इत्यादि (नीतिसारं अर्थशास्त्रादि संश्रितम्) थे, जो राजा के लिये परम हितकर था (गरुड़ १। १०८। १)। इससे गरुड़ पुराण की नीति पर बृहस्पति के अर्थशास्त्र का प्रभाव परिलक्षित होता है। शुक्र-नीति (शास्त्रञ्च वै तूशनसा प्रदिष्टं)[4] का भी उल्लेख मिलता है। परन्तु मध्यकालीन राजनीति पर स्मृतियों का भी यथेष्ट प्रभाव पड़ा है। गरुड़ स्वयं मनु,[5] याज्ञवल्क्य[6] और पराशर[7] के विचारों से प्रभावित है।

गारुड़ी नीति में राज्य, इसके उदय, स्वरूप आदि का विवेचन न होकर उसकी सुरक्षा और समृद्धि पर विचार किया गया है, जिसका विशेष सम्बन्ध राजत्व से है। यद्यपि राज्य के सप्तांगों-राजा, मन्त्री, बल, कोष, दुर्ग, राष्ट्र और मित्र का उल्लेख मिलता है, परन्तु राजवृत्त, राजधर्म और राजनय पर ही विशेष रूप से विचार किया गया है। यह मध्य कालीन नीति की एक विशेषता है।

राजत्व (गरुड़ १। २१८। ३९)

रसातलं यातु यदत्र पौरुषं कुनीतिरेषा शरणो ह्यदोषवान्।
विहन्यते यद्बलिनापि दुर्बलो ह हा महाकष्टमराजकं जगत्॥

प्रबन्धचिन्तामणि पृ० ३७। १९-२०

सत्य है अराजक जगत महाकष्टदायक है, क्योंकि बलवान दुर्बल को मार डालता है। अत: स्पष्ट है कि दुर्बलों का बल केवल राजा ही है। गरुड़ सत्य ही कहता है—

अबलस्य बलं राजा गरुड़ १। ११५। ४१

राजा विहीन देश में कौन दुर्बल रह सकता है? कौन दुर्बल है और कौन सबल है इसके निर्णय करने के लिये भी संघर्ष होना आवश्यक ही है।

१—गरुड़ १। ११४। १४
२—वही १। १४५। १८
३—वही १। १०८। १
४—वही १। ११३। २१
५—वही १। १०७। २
६—वही पूर्व० अ० ९४-१०६
७—वही १। १०७। १

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अत: अराजक राज्य में दुर्व्यवस्था, दु:ख और दुराचार होता है। गरुड़ कहता है कि धनी, श्रोत्रिय, नदी और वैद्य के अतिरिक्त जहाँ राजा भी न हो वहाँ एक भी दिन नहीं रहना चाहिये (गरुड़ १ । ११० । २५) । राजा शत्रुओं का विनाश कर पृथिवी और राज्य का पालन करता है (गरुड़ १ । १११ । २) । पालक ही राजा होता है (गरुड़ १ । १११ । २) । अत: राजा ही प्राणियों का बादलों की तरह जीवनाधार है। बादल के विकल हो जाने पर तो किसी तरह जीवित भी रहा जा सकता है; परन्तु राजा के न रहने पर ज़िन्दा नहीं रहा जा सकता । ऐसा कामन्दकीय नीति शास्त्र का बचन है—

विदुषा वाच्यमाने कामन्दकीय नीतिशास्त्रे—
पर्जन्य इव भूतानामाधार: पृथिवीपति: ।
विकलेऽपि हि पर्जन्ये जीव्यते न तु भूपतौ ।।

प्र० चिं० ८८ । २१-२२

इसी कारण हिन्दू नीतिशास्त्र, रामायण, महाभारत, पुराणों और अन्य भारतीय (संस्कृत-हिन्दी) ग्रन्थों में अराजक राज्य के दोषों का वर्णन करते हुए राजा का महत्व और उसके उदय का वर्णन किया गया है। गरुड़ पुराण अराजकता के दोषों से पूर्णत: अवगत है। गरुड़-मत है कि केवल राजा की ही आवश्यकता नहीं थी, राजा पुरुष होना चाहिये, न कि स्त्री, और बहु-शासन तो अराजकता के ही समान था—

अनायके न वस्तव्यं न वा च बहुनायके ।
स्त्रीनायके न वस्तव्यं तथा बालनायके ।।

गरुड़ १ । ११५ । ६२

इस कथन से भारत में पूर्व मध्य कालीन राज्यव्यवस्था और उसके दोषों का परिचय मिलता है। शत्रु सर पर सवार था, पृथ्वी त्रस्त थी और अपने रक्षक को खोजती थी। अत: राजा वही था जो देश रक्षक हो और जो सभी उपायों से पृथिवी का पालन कर सके:—

तस्मात्सर्व प्रयत्नेन पृथिवीमनुपालयेत् ।
पालकस्य भवेद्भूमिः कीर्त्तिरायुर्यशोबलम् ।।

गरुड़ १ । १११ । ६

अत: स्पष्ट है कि राजा ही राष्ट्र का त्राण और शरण था—

राष्ट्रस्य शरणं राजा । गरुड़ १ । २२२ । ४६

राजा ही पृथिवी का गौरव और अलंकार था (**पृथिव्यां भूषणं नृप:**) ।[१]

---

१ गरुड़ १ । ११३ । १३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अतः इस युग के राजनीतिक विचारों में एक क्रान्ति पाते हैं। राजा के उदय पर विचार न कर उसके गुण, चरित्र, योग्यता, कर्तव्य और नीति तथा शासन सम्बन्धी विचारों का वर्णन किया गया है। अत्याचारी राजा और उसके परिपाक को बताने के लिये ही वैन्यपृथु का पुरावृत्त बताया गया है। इसीलिए गरुड़ पुराण न तो राज्य के ही उदय पर विचार करता है और न राजा की उत्पत्ति पर ही ध्यान देता है। परन्तु राजत्व के दैवी स्वरूप पर विश्वास करता हुआ मनु-स्वायंम्भुव को प्रजापालन के लिये ब्रह्मा से उत्पन्न बताता है—

ततो ब्रह्माऽत्मसम्भूतं पूर्वं स्वायम्भुवं प्रभुः।
आत्मानमेव कृतवान् प्रजापाल्ये मनुं हर।

गरुड़ १।५।१८

मनु भी यही बताते हैं—

तस्यार्थे (तदर्थं) सर्वभूतानां गोप्तारं धर्ममात्मजम्।
ब्रह्मतेजोमयं दण्डमसृजत्पूर्वमीश्वरः।। मनुस्मृति ७।१४

राजाओं का ब्रह्म द्रोही (गरुड़ १।१।२८) और अधार्मिक होना अवांछनीय समझा जाता था। इसीलिए मुनियों ने धर्म वर्जित, नास्तिक और अनाचारी वेण को मार डाला (गरुड़ १।६।४-५)। यह एक प्राचीन बौद्धिक क्रान्ति थी, जिसकी परम्परा हमारे साहित्य में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझी जाती रही है। उसके ही पुत्र पृथु ने प्रजा के प्राण-रक्षा के लिये पृथिवी से उसकी शक्तियां और सम्पदाएँ प्राप्त कीं—

पृथुरित्येव नामा स वेणः पुत्राद्दिवं ययौ।
दुदोह पृथिवीं राजा प्रजानां जीवनाय हि॥

गरुड़ १।६।८

वही पृथिवी का एक राट सम्राट हुआ (गरुड़ १।६।९)। गरुड़ पुराण इस प्रकार राजा और राष्ट्र को प्रजा-जीवन का मूलाधार मानता है।

ऐसे देश और राष्ट्र से भी क्या प्रयोजन है जहाँ प्राण-त्राण न मिल सके। देश वही है जहाँ जीवन सुरक्षित रह सके—

स देशो यत्र जीव्यते। गरुड़ १।१०८।१५

अस्तु स्पष्ट है कि राजा, राज्य और प्रजा का भाग्य तथा जीवन राजा के चरित्र, गुणों और क्षमता पर निर्भर करता है। साथ ही मन्त्र, बल, वीर्य, प्रज्ञा और पौरुष ही राजा के परम मित्र और शक्ति साधन थे (गरुड़ १।११३।४३)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राज-वृत्त—राजा के अच्छे और योग्य होने पर ही राज्य की वृद्धि होती थी और राजा के बुरे होने पर राज्य नष्ट हो जाता था। क्षत्रिय ही राजा समझा जाता था। इसीलिए क्षत्रिय और राजा पर्याय रूप में प्रयुक्त किये गये हैं। सत्य ही राजा के चरित्र पर ही प्रजा का योग-क्षेम निर्भर करता है :

राजमूला महादेवि योगक्षेमाः सुवृष्टयः।
प्रजाश्च व्याधयश्चैव मरणं च भयानि च॥

स्कन्द पु० ५-२-२३-२

दुष्ट राजा राज्य को ही नष्ट कर देता है।[१]

गरुड़-नीतिसार का यही उद्देश्य है। यही नीति राजादिकों के लिये हितकर और यशस्कर थी—

नीतिसारं प्रवक्ष्यामि अर्थशास्त्रादि संश्रितम्।
राजादिभ्यो हितं पुण्यमायुः स्वर्गादिदायकम्॥

गरुड़ १।१०८।१

इसे बृहस्पति ने इन्द्र को बताया था जिससे इन्द्र ने दैत्यों को पराभूत कर प्रभुता प्राप्त की थी[२]। अस्तु इससे यह परिलक्षित होता है कि बार्हस्पत्य-नीति-सार से ही दैत्य धर्म का विनाश और वेद धर्म की रक्षा (गरुड़ १।१४२।१) सम्भव थी। इस प्रकार गारुड़ी-नीति से मध्यकालीन-चेतना का परिचय मिलता है। राजा के करणीय कर्तव्य और त्याज्य-अकर्तव्यों पर ही अधिकांश नीतिसार आधारित है। साथ ही राज-कार्य और राजनय का भी विवेचन किया गया है। जब राज्य ही विकल और विच्छिन्न होगया था, तब राष्ट्र के समक्ष एक ही लक्ष्य था और वह था स्वाधीनता की प्राप्ति तथा दैत्यधर्म या म्लेच्छवाद का अन्त किस प्रकार हो।

राजा के करणीय कर्तव्य और गुण

१. सत्संग—राजा का पहला कर्तव्य था कि वह दुर्जनों का साथ न करे और सज्जनों के ही साथ व्यवहार रखे (गरुड़ १।१०८।२)। उत्तम पुरुषों के साथ-उठे, गोष्ठी करे और पंडितों (मनीषियों) के साथ सत्कथाएँ सुने और मनन करे। भारतीय कथाओं—पञ्चतन्त्र, बृहत्कथा, कथासरितसागर, बृहत्कथा मंजरी और पौराणिक आख्यानों में ही मध्य कालीन नीति-रत्न भरे हुए हैं।

१—गरुड़ १।१२७।३ : विनिहन्ति महापापं कुनृपो विषयं यथा।
२—वही १।१०८।१०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अलुब्धों के साथ मित्रता करना श्रेयस्कर था।[1] पुराण, पुनः, राजा या राजकुमार को संसार की अनित्यता का ध्यान दिलाकर रात-दिन स्वधर्म पालन करते हुए दुर्जनों से दूर रहने और साधु पुरुषों के सम्पर्क में रहने का आदेश देता है—

त्यजदुर्जन संसर्गं भज साधुसमागमम्।
कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यता॥

गरुड़ १।१०८।२६

सत्य ही है—

महाजनो येन गतः स पन्थाः।

गरुड़ १।१०९।५१

२—आस्तिकता और धर्मपरायणता

विष्णु-भक्त, धर्मात्मा और गो (गाय और पृथिवी) तथा ब्राह्मण के हित में लगा हुआ तथा संयमी राजा ही प्रजा का पालन करने में समर्थ होता है—

अभ्यर्च्य विष्णुं धर्मात्मा गोब्राह्मणहिते रतः।
प्रजाः पालयितुं शक्तः पार्थिवो विजितेन्द्रियः॥

गरुड़ १।१११।७

राजा यह निश्चित कर ले कि क्या स्थिर (ध्रुवं) है और क्या नश्वर (अध्रुवं) है; क्योंकि जो ध्रुव पदार्थों का त्याग कर, चलायमान तत्त्वों और पदार्थों का सेवन करता है उसकी स्थिर-सम्पत्ति भी नष्ट हो जाती है, अध्रुव पदार्थ तो नश्वर ही हैं (गरुड़ १।११०।१)। राजा ऐश्वर्य को अध्रुव मान कर अपने धर्म के पालन करने में मन और बुद्धि को लगाये; राज्य-वैभव क्षण भर में नष्ट हो जाते हैं और धन इत्यादि (लक्ष्मी) तो किसी के वशीभूत नहीं होते हैं—

ऐश्वर्यमध्रुवं प्राप्य राजा धर्मे मतिञ्चरेत्।
क्षणेन विभवो नश्येन्नात्मायत्तं धनादिकम्॥

गरुड़ १।१११।८

३—योगी-राजा

राजा को योगी होना चाहिये, क्योंकि उसकी योग-दृष्टि से ही उस राजा की भी उन्नति होती है और वह व्याधियों (व्यसनों) का शिकार नहीं

१—वही, १।१०८।१२
वही, १।११३।२–३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होता है (स राजा वर्द्धते योगाद्व्याधिभिश्च न बध्यते)[१]। योग बहुत ही व्यापक शब्द है—समत्व, संयम, और दक्षता इसके मुख्य अभीष्ट गुण हैं।

राजा को समबुद्धि होना चाहिये, प्रसन्न रहे और सुख-दुख में समान रहे। आपत्ति आने पर भी मनस्ताप नहीं करना चाहिए। धीर मनुष्य कष्ट पा कर दुःखी नहीं होते हैं। क्या राहु से पीड़ित चन्द्रमा उदित नहीं होता है?[२] शरीर-सुख को धिक्कार है, शरीर सुख से पले हूए लोगों को भी विपत्ति और व्यसन में फँस कर दुःखी नहीं होना चाहिये। स्त्री सहित पाण्डव विपत्ति में फंस कर धैर्य के सहारे ही उसे पार कर पुनः सुख को प्राप्त करने में सफल हुए—

धिग्धिक्शरीरसुखलालितमानवेषु मा खेदयेद्धनकृशंहिशरीरमेव।
सद्दारका ह्यधनपाण्डुसुताः श्रुता हि दुःखं विहाय पुनरेव सुखं प्रपन्नाः॥

गरुड़ १। १११। २५

गीता-दर्शन निरुत्साहित और युद्ध-पराङ्मुख तथा मोह ग्रस्त अर्जुन के ही लिये लिखा गया था। भारत पर आपत्ति-आँधी के आने और स्वाधीनता के छिन जाने पर क्षत्रिय-राजपूतों को गीता-दर्शन के अतिरिक्त अन्य कौन सी संजीवनी शक्ति हो सकती थी। शरीर सुख के लिये ही तो युद्ध-संघर्ष से पराङ्-मुख हो कर क्षत्रिय पराधीनता स्वीकार कर रहे थे। अतः राजा के लिये लीला-सुख और भोग्य-विलास त्याज्य कहा गया है—

लीला सुखानि भोग्यानि त्यजेदिहमहीपतिः॥

गरुड़ १। १११। ३०

तभी शत्रुओं पर विजय प्राप्त हो सकती है—

सुखप्रवृत्तैः साध्यन्ते शत्रवो विग्रहे स्थितैः॥

गरुड़ १। १११। ३१

शरीर-सुख और विलास की कीचड़ में ही भारतेश्वर पृथ्वीराज तृतीय चौहान फंस गये। इनके शीर्ण होते ही पराभव-रजनी भी प्रारम्भ हो गई।

४—चित्त की स्थिरता—चित्त की स्थिरता भी योग का परम लक्षण है। साथ ही भ्रान्ति, प्रमाद और विषाद इसके दोष हैं (गरुण १। २२७। ३२)। राजा के लिये भी चित्तायत्तं परम हितकर था—

पन्थान इव सर्वसाधारणः श्रियः।
मदीया इति मत्वा वै न हि हर्षयुतोभव॥

गरुण १। ११४। ७४

१—गरुड़ १। १११। १५(२)
२—वही १। १११। २३-२४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्तायत्तं धातुवश्यं शरीरं चित्ते नष्टे धातवो यान्ति नाशम् ।
तस्माच्चित्तं सर्वदा रक्षणीयं स्वस्थे चित्ते धातवः सम्भवन्ति ॥

गरुण । १ । ११४ । ७८

जहाँ मन प्रसन्न है, वहीं कल्याण हैं; वही जीवन है, जो अपराधीन है; वही अर्जित द्रव्य है जिसका भोग स्वजन भी करें और वही गर्जना है, जो युद्ध में शत्रुओं के समक्ष किया जाय (गरुण १ । ११५ । ५४):—

तद्‌गर्जितं यत्सभरे रिपूणाम् ।

५—क्षत्रिय-दण्ड—इस प्रकार देश-भंग और राष्ट्र संपात होने पर दु:खी और निरुत्साहित तथा निश्चेष्ट क्षत्रिय के हृदय में नित्य-दर्शन और ध्रुव-प्राप्ति के उदात्त उद्देश्यों द्वारा 'स्वधर्मे निधनं श्रेय:' की भावना की प्रतिष्ठा की गई । इसके ही परिणाम स्वरूप क्षत्रिय राजपूत ईसा की ८वीं शताब्दी से लेकर १८वीं शताब्दी तक स्वातन्त्र्य, स्वाभिमान और स्वधर्म के लिये सतत संघर्ष करता रहा ।

क्षत्रिय का स्वधर्म तो दण्ड के साथ ही सम्बद्ध था । रण-भूमि ही उसका क्षेत्र था और सेना (दण्ड) ही उसका साधन था, जिसके द्वारा वह शत्रु-मर्दन और दुष्ट-दमन कर सकता था । दण्ड ही उसकी शोभा थी—

दण्डस्तथा क्षत्रियस्य······शस्यते ।

गरुण १ । ४९ । २

दण्ड से ही वह पृथ्वी का रक्षण और प्रजा का पालन भी कर सकता था । वह तो इन्द्र के समान राष्ट्रीय नेता था जिसको युद्ध से भागना नहीं चाहिये था—

स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणां संग्रामेष्वपलायिनाम् ॥

गरुड़ १ । ४९ । २४

इस प्रकार स्पष्ट है कि धर्म परायण, संयमी-विजितेन्द्रिय, व्यसन-विमुख और प्रजा पालक तथा रण-दक्ष राजा ही तत्कालीन राष्ट्र की आवश्यकता थी ।[1] गारुड़ी-नीतिसार का यही उद्देश्य था कि राष्ट्र-प्रहरियों के हृदय में राष्ट्र-चेतना और संजीवनी-शक्ति का संचरण हो ।

युद्ध-विमुख (क्षत्रमयोद्धारं)[2] और कापुरुष (शस्त्रं यथा कापुरुषस्य हस्ते)[3] क्षत्रिय की भर्त्सना की गई थी । क्षत्रिय वही था जो आघातों से बचा सके

---

१. गरुण २ । १३ । ९-१०
२. वही १ । १०८ । ५
३. वही १ । ११० । २

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(क्षतात् संत्राणनात्क्षत्र:)[१]। अत: क्षत्रिय क्षात्र-धर्म का पालन करता हुआ (क्षात्रेण कमर्णा जीवेद्)[२] और युद्ध में अपराजित होकर (अपराजित: युद्धे)[३] धर्म, कीर्ति और यश के लिये मर जाना ही हितकर समझता था (गरुण १। ११५। १२६)। क्षत्रिय या राजा का जीवन चाहें अल्पकालिक ही क्यों न हो, परन्तु विज्ञान, विक्रम और मान सहित यश से संवलित जीवन की ही प्रशंसा की जाती है:—

सज्जीवितं क्षणमपि प्रथितं मनुष्यैर्विज्ञान विक्रम यशोभिरभग्नमानैः ॥

गरुण। १। ११५। ३३

क्षत्रिय को सिंहव्रती ही बनना था:—

सिंहव्रतंचरत गच्छत मा विषादं।

गरुण। १। ११५। ३४

जय की इच्छा रखने वाले क्षत्रियों को बहुत ही उग्रता से युद्ध करना चाहिये :

दारुणोग्रैश्च योद्धव्यं क्षत्रियैंजयकांक्षिभि: ॥

गरुण १। ६२। १४

मान ही उनका परम श्रेय था—

मानो हि महतां धनम्।

गरुण १। ११५। ११

वह मान तो क्षत्रिय को युद्ध भूमि में लड़ते हुए सामने मरने में ही मिल सकता था। जो युद्ध से भागने पर पीछे की ओर मरता था (संयुगेऽसम्मुखे हता:)[४] वह प्रेतत्व को प्राप्त होता था। न ते वीरा: !!! वे वीर न थे।

शिक्षा—जन्मत: क्षत्रिय इन्हीं संस्कारों को लेकर पृथ्वी माँ की गोद में अवतरित होता था। माता-पिता भी उसे क्षात्र-कर्म की महत्ता, स्वधर्म की श्रेष्ठता और धर्म-यश तथा मान का माहात्म्य बताते रहते थे।

गुरु, पुरोहित और वृद्ध मंत्रियों तथा शिष्टों की संगति में भी उसका क्षात्र-व्रत दृढ़ होता रहता था। परन्तु विद्या-अध्ययन और शास्त्र-ज्ञान होना

---

१. स्कन्द ४। २। ८७। ३२
२. गरुण १। १०६। २१
३. वही १। १८५। ४
४. वही २। १७। २६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी राजपुत्र के लिये परमावश्यक था। शास्त्र-ज्ञान के बिना राजा अन्धा ही माना गया है:—

अन्धो हि राजा भवति यस्तु शास्त्र विवर्जितः।
अन्धः पश्यति चारेण शास्त्र हीनो न पश्यति ॥

गरुण १। १११। १९

प्रारम्भ में ही बताया गया है कि राजादिकों का हित अर्थशास्त्रादि शास्त्रों से संबलित नीतिशास्त्र के ज्ञान पर ही निर्भर करता है (गरुण १। १०८। १)। इसीलिए स्वयं राजाओं का भी कर्तव्य था कि वे राष्ट्र में परीक्षण और निरीक्षण करते हुए गन्धर्व विद्या, वाद्यों और गणिकाओं तथा धनुर्वेद और अर्थशास्त्रों की रक्षा करें:—

गन्धर्वविद्यामालोक्य वाद्यं च गणिकागणः।
धनुर्वेदार्थशास्त्राणि लोके रक्षेच्च भूपतिः ॥

गरुण १। १११। २६

अतः राजा को भी इन विद्याओं, कलाओं और शास्त्रों का ज्ञान होना आवश्यक ही था। 'लेख रूप गणना व्यवहार विधि विसारद' तथा सवविजावदात (सर्वविद्यावदात) और 'गन्धव वेद बुधो' खारवेल तथा शास्त्र-तत्वार्थ भर्ता और निशितविदग्धमति गान्धर्व ललितैः कविराज समुद्रगुप्त इतिहास प्रसिद्ध ही हैं। चन्द्रगुप्त द्वितीय, हर्षवर्धन, मिहिर भोज, भोज मुञ्ज, आदि सम्राट भी अपनी विद्या-प्रगलभता के लिये प्रसिद्ध ही हैं। इन विद्याओं के अतिरिक्त राजा को आयुर्वेद, विशेषकर हयायुर्वेद और गजायुर्वेद का भी जानना आवश्यक था। विद्या द्वारा ही राजा कार्य और कारणों का विवेचन करता है (गरुण १। १०८। ६)। विद्या-बल ही श्रेष्ठ माना गया है:—

अस्तु विद्या सदैव सुहृन्मित्र।
शाश्वतं सगुणाविद्या सुहृन्मित्रञ्चशाश्वतम् ॥

गरुण १। १०९। ४७

जो किसी भी कारण से विद्या प्राप्त नहीं कर पाते हैं, वे मनुष्य होते हुए भी पशु के समान ही विचरण करते हैं (गरुण १। १०९। ४८)। अस्तु राजा के लिये शिक्षा और विद्या-लाभ उसमें विनय-शीलता उत्पन्न करती थी। राजा का विनयशील होना भी परमावश्यक था। राजा के लिये 'शीलवृत्ति फलं शुभम्' (गरुण १। ११०। ४) था। जिसकी इन्द्रियाँ प्रसुप्तावस्था में हैं, उस का राज्य स्थिर नहीं होता है।

इन्द्रियाणि प्रसुप्तानि तस्य राज्यं चिरं न हि ॥

गरुण १। १११। २०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अतः स्पष्ट है कि शुभ गुणों और चरित्र के बल पर ही राजा राजपद के सुयोग्य समझा जाता था। बुद्धि, रूप-गुण-पराक्रम,[१] और ज्ञान,[२] ऐसे आवश्यक राज-गुण थे जो राजवृत्त के परम लक्षण थे।

अकरणीय-कार्य और त्याज्य व्यसन—राज-वृत्त का यह दूसरा पक्ष था जिसमें उसे निषेधात्मक आदेशों और आदर्शों का पालन करना अभीष्ट था, यदि वह अपना और अपने राष्ट्र तथा प्रजा का हित चाहता था। कुबुद्धि[३] कृपणता[४], गर्व[५], विलास[६], भोग-स्वाद[७] और लोभ-प्रमाद तथा विश्वास[८] राजा के महान चारित्रिक दोष थे। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित दोष भी त्याज्य थे:—

दुर्जन संसर्ग (गरुण १। १०८। २६) और

स्त्री (गरुण १। १०८। १३, २६)।

मध्य कालीन चिन्तकों ने स्त्री को राजा और राज्य का परम शत्रु बताया है।[९] सत्य ही है—

सर्वथा विषमाः स्त्रियः।

गरुण १। १०९। ४५

सत्यं मनोरमाः कामाः सत्यं रम्या विभूतयः।
किन्तु वै वनितापांगभंगीलोलं हि जीवितम्॥

गरुण १। १११। ९

काम मनुष्य का प्रबल शत्रु है।[१०]

ब्रह्मद्रोह भी महान् राजदोष माना गया है। ब्रह्मस्वहरण, ब्राह्मणाति-क्रमण (गरुण १। ११४। ६८) और ब्रह्महत्या (१। ११४। ६९) महापाप बताये गये हैं। राज्यश्री ब्रह्मशापान्ता[११] कही गई है। नन्द नाश इसका

---

१. गरुण १। १०९। ४; १। ११०। २४
२. वही १। ११०। ५-६
३. वही १। ११३। १७; १। ११४। २०
४. वही १। १०९। १५
५. वही १। १११। २९
६. वही १। १११। ३०
७. वही १। ११४। ४६
८. वही १। ११५। ४४
९. वही १। ११०। १०-११
१०. वही १। ११४। ७
११. वही १। ११५। ५९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उदाहरण है । ब्राह्मण पूज्य माने जाते थे, (गरुण १ । ११५ । ५०) । इस प्रकार स्पष्टतः, राजत्व का मूलाधार राजवृत्त ही था ।

राजा के कर्तव्य—राजा के निम्नलिखित कर्तव्य थे—

१—क्षिति रक्षण,

२—प्रजा पालन,

३—धर्म रक्षण

४—समाज और लोक रक्षण

५—राष्ट्र-शासन

क्षिति-रक्षण—

क्षत्रियः परसैन्यानि जित्वा पृथ्वीं प्रपालयेत् ।।

गरुण । १ । १०७ । ५

राजा का मुख्य कर्तव्य देश की रक्षा करना था, क्योंकि इस युग विशेष में राक्षसों का उदय (उत्पत्तिं च रक्षसां)[1] हो चुका था । राक्षसी माया (गरुड़ १ । १४३ । २०) से देश त्रस्त था । अतः स्वधर्म का पालन करते हुए शत्रु सेनाओं का दमन कर राज्य और पृथ्वी का पालन करना राजा का परम कर्तव्य था ।[2] भूमिपालक ही भूमिपति हो सकता था (पालकस्य भवेद्भूमिः[3] इसी कारण सत्य ही कहा गया—

राष्ट्रस्य शरणं राजा ।

गरुड़ १ । १२२ । ४६

सुसंग्रह द्वारा प्रजानुरंजन अथवा लोकानुरंजन भी राजा का धर्म था (गरुड़ १ । ११४ । १८) ।

प्रजा पालन—देश रक्षण के बाद प्राणियों और प्रजा का रक्षण करना भी राजा की मुख्य वृत्ति थी—

शस्त्रेण जीवनं राज्ञो भूतानां अभिरक्षणम् ।

गरुड़ १ । २०५ । १२

---

१. गरुड़ १ । १४३ । ५१

२. वही १ । १११ । २

राज्यं पालयते नित्यं सत्यधर्मपरायणः ।
निर्जित्य परसैन्यानि क्षितिं धर्मेण पालयेत् ।।

३. वही १ । १११ । ६

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रजा पालन तो क्षत्रिय राजा का प्रधान धर्म था:—

प्रधानं क्षत्रिये धर्मः प्रजानां प्रतिपालनम् ।

गरुड़ १ । ९६ । २७

फिर आश्चर्य ही क्या यदि राजा अपनी प्रजा का पुत्रवत् पालन करे—

किं पुनस्तु महीपालः पुत्रवत्पालयन्प्रजाः ।

गरुड़ १ । १११ । १६

अत: राजा प्रजा का पुत्रवत पालन करते ही थे। यही रामराज्य की भी नीति थी—

तत्र राज्यं चकाराथ पुत्रवत्पालयन्प्रजाः ।

गरुड़ १ । १४३ । ४८

और अन्य राजा भी इसे मानते थे—

प्रजाः पालयते नित्यं पुत्रानिव महाबलः ।

गरुड़ २ । १७ । ७

धर्म-संरक्षण—देवादिकों का पालन करना और धर्म-संरक्षण करना राम का राज-कार्य था (गरुड़ १ । १४२ । १६)। भगवान् स्वयं अवतरित होकर राजवंशों का पालन तथा दैत्य धर्म का विनाश और वेद धर्म की रक्षा करते थे:—

वंशादीन्पालयामास अवतीर्णो हरिः प्रभुः ।
दैत्यधर्मस्य नाशार्थं वेदधर्मादि गुप्तये ॥

गरुड़ १ । १४२ । १

पूर्व मध्यकालीन राजवंशों में नागभट प्रथम और द्वितीय पुरातन पुरुष (विष्णु) के अवतार कहे गये हैं।[१] पृथ्वी राज तृतीय को राम-स्वरूप माना गया है[२]। उन्होंने राक्षसों को नष्ट करने का व्रत लिया था।[३]

अत: विष्णु और उनके लोकावतार सम्राट भी 'धर्मादिरक्षणार्थाय अधर्मादि विनष्टये' (गरुड़ १ । १४४ । २) राज्य करते थे।

समाज-रक्षण—समाज की सुरक्षा, समृद्धि और सुख शान्ति भी राजा का ही कर्तव्य था। राजा को सभी वर्णों का शुभचिन्तक कहा गया है—

---

१. भोज की ग्वालियर प्रशस्ति श्लोक ४, ८,

२. पृथ्वीराज विजय १ । ४८

३. वही ७ । ६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्णानाञ्चापि सर्वेषां राजा बन्धुरिहोच्यते ।

गरुड़ २ । १७ । ३१

इससे राज सिद्धान्त की उदारता और मध्यकालीन राजनीति में सुधार का ज्ञान होता है । ऐसा विश्वास था कि—

सत्यमेतत् पुरा प्रोक्तं नीतिशास्त्र विचक्षणैः ।
यस्य वर्णस्य यो राजा सवर्णो सुखमेधते ॥ स्कन्द ६।१०४।१६

परन्तु गरुड़-युग में देश-विप्लव होने के बाद और सिन्ध तथा उत्तर-पश्चिमी पार्वत्य प्रदेशों में नास्तिक-म्लेच्छों की स्थिति से सामाजिक क्रान्ति और राजसिद्धान्त में सुधार तथा दृढ़ता लाना आवश्यक हो गया था ।

शत्रु-पराभव—राजा को राष्ट्रीय एकता स्थापित करना परमावश्यक था । इसके लिये एक राट बनना तथा चक्रवर्ति-पद प्राप्त करना भी क्षत्रिय का प्रमुख कर्तव्य था । राज्येऽपिसकल चक्रवर्तित्वम्' (गरुड़ २ । २ । १४) क्षत्रिय का परम लक्ष्य था ।[1] क्षत्रिय को जय प्राप्त करना ही अभीष्ट था ।[2] राजसूय यज्ञ के सम्पादन द्वारा ही राजा सर्वेश्वर होता था—

यस्मिन् सर्वं सम्भवति यश्च सर्वत्र पूज्यते ।
यश्च सर्वेश्वरो राजा राजसूयं स विन्दति ॥

सभा पर्व १३ । ४७

युधिष्ठिर को उनके सभी सुहृद राजसूय यज्ञ करने और सार्वभौम पद प्राप्त करने की प्रेरणा देते थे (सभा पर्व १३ । ४८) । कृष्ण[3] ने भी यही समझाया । अर्जुन ने तो यहाँ तक कहा कि क्षत्रिय वही श्रेष्ठ है जिसकी शत्रुओं को जीतने की प्रवृत्ति हो:—

क्षत्रियः सर्वशो राजन् यस्य वृत्तिर्द्विषज्जये ।
सर्वैर्गुणैर्विहीनोऽपि वीर्यवान् हि तरेद् रिपून् ॥

सभा पर्व १६ । १०

गरुड़ भी महाभारत का वर्णन (पूर्व० अ० १४५) करता हुआ पाण्डवों द्वारा दिग्विजय और उपायन का उल्लेख (गरुड़ १ । १४५ । १८) करता हुआ बराबर शत्रु-पराभव पर बल देता है ।[4] राजा शत्रु-जय का ही सतत

---

१. गरुड़ १ । १५ । १५६ : नृपश्च चक्रवर्त्तिनाम्····· ।
२. वही १ । १५ । १६०
३. महा० सभा पर्व अ० १४
४. गरुड़ १ । १३३ । ५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उद्योग (राजा शत्रु जयाय च) करता हुआ शत्रु से अपराजित[1] रहे। यही उस युग में हिन्दू राजा के लिये परम धर्म था। इस युग की राजनीति में इसी कारण शत्रु-जय और उसके उपायों पर ही विशेष बल दिया गया है।

राजनय

अत: स्पष्ट हैं कि राजा को शत्रु और मित्र के साथ बहुत ही सावधानी और बुद्धिमानी से सम्बन्ध व्यवहार करना चाहिये। क्षत्रिय राजपूतों ने शौर्य के सामने नीति पर ध्यान नहीं दिया। अत: उनके दोषों से ही राष्ट्र-पराभव हुआ और स्वाधीनता छिन गई। ये दोष भारतेश्वर पृथ्वीराज तृतीय चौहान में भी थे। इसीलिए चिन्तकों ने इनकी निन्दा की तथा राजनय के अनुरूप ही शत्रु के साथ व्यवहार करने को श्रेयस्कर बताया।

१--राजनय (डिप्लोमेसी) में पहली बात ध्यान देने की थी कि न तो कोई किसी का मित्र होता है और न कोई किसी का शत्रु ही। कारणवश ही मित्र और शत्रु हो जाते हैं।[2]

२--शत्रु को कम और छोटा कभी नहीं समझना चाहिये और अल्प समझकर उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि थोड़ी सी भी आग संसार को जला डालती है।[3]

३--शत्रु के साथ संधि कर ले और फिर साल-छः महीना देखे कि उसकी शक्ति और संग्रह ठीक है, तब फिर शत्रु को गिरा दे। लेकिन अपने दुर्ग में सभी साधन, और शस्त्रास्त्र जमा करले, फिर शत्रु को हरावे।[4]

४--परन्तु शत्रु के साथ सन्धि कर उस पर यदि विश्वास करके बैठ रहता है, तो वह वृक्ष की डाल से सोता हुआ गिरकर ही जागता है—

वैरिणा सह सन्धाय विश्वस्तो यदि तिष्ठति।
स वृक्षाग्रे प्रसुप्तो हि पतितः प्रतिबुध्यते॥

गरुड़ १। ११४। ४८

---

१. गरुड़ १। १३४। २

२. वही १। ११४। १

न कश्चित्कस्यचिन्मित्रं न कश्चित्कस्यचिद्रिपुः।
कारणादेव जायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा॥

३. वही, १। ११४। ७२ :

नोपेक्षितव्यो दुर्बुद्धिः शत्रुरल्पोऽवज्ञया।
वह्निरल्पोऽप्यसंग्राह्यः कुरुते भस्मसाज्जगत॥

४. वही १। ११२। २१-२२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृथ्वीराज तृतीय का पराभव उपर्युक्त दोष के ही कारण हुआ।

५—क्षमा, विशेषकर शत्रु के साथ, महान दोष था (गरुड़ १। ११४। ६२)।

६—क्षत्रिय को शत्रु विजय के लिये सदैव तत्पर और प्रयत्नशील रहना चाहिये।[१] इसके लिये उसे छः प्रकार का उत्साह—उद्योग, साहस, धैर्य, बुद्धि, शक्ति और पराक्रम[२]—से काम लेना चाहिये। यदि उद्योग करने पर भी सफलता न मिले, तो उसका भाग्य दैवाधीन ही है; परन्तु उसे पौरुष सदैव करते रहना चाहिये।[३]

मन्त्री

प्राचीन राज-पद्धति में भी मन्त्री का एक विशेष महत्व था। उसे राज्य के सप्तांगों में एक आवश्यक अंग मान लिया गया था। मन्त्री की योग्यता-अयोग्यता पर ही राजा और राज्य का भाग्य निर्भर करता था। दुष्ट मन्त्री राजा के विनाश का कारण होता है (कुमन्त्री च यथा नृपम्)।[४] राज-च्युत राजा को उसके मन्त्री भी छोड़ देते थे (त्यजन्ति···भ्रष्टं नृपं मन्त्रिणः)[५]। जिसके मन्त्री सोते रहते हैं, वह राज्य चिरस्थायी नहीं होता है (गरुड़ १। १११। २०)।

राजा के लिये भी मन्त्र-बल और इसकी गोपनीयता का विशेष महत्व था। प्रथित वाक्य है कि छे कानों में पड़ा हुआ रहस्य छिपता नहीं है और चार कानों से ही मन्त्र सुरक्षित रहता है। साथ ही दो कानों में पड़े हुए मन्त्र को ब्रह्मा भी नहीं जानते हैं—

षटकर्णो भिद्यते मन्त्रश्चतुःकर्णश्च धार्यते।
द्विकर्णस्य तु मन्त्रस्य ब्रह्माप्येको न बुध्यते॥

गरुड़ १। ११४। ५४

कोष

सत्य ही राज श्री का निवास समृद्ध व सम्पन्न देश में होता है और सम्पत्ति हीन राजा तथा राज्य नष्ट हो जाते हैं—

तत्र श्रीर्यत्र सम्पदः। गरुड़ १। ११३। ५२
अलक्ष्मीः प्रतिहन्यते। वही १। ११४। ३८

---

१. गरुड़ १। १०७। ५
२. वही १। १११। ३२
३. वही १। १११। ३३
४. वही १। १२७। ४
५. वही १। १२७। ९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोष भी सप्तांग राज्य का एक महत्वपूर्ण अंग था। प्रजा के जीवन के लिये ही ('प्रजानां जीवनाय हि', गरुड़ १। ३। ८) पृथिवी और इसकी सम्पदाएँ आवश्यक हैं। अतः आदि-राज पृथु ने उन्हें सबके लिये सुलभ करा दी थीं। परन्तु कभी-कभी आपत्ति-आत्यायिक में पृथिवी भी दुष्काल का शिकार हो जाती है। इसीलिये नीतिकार ने कहा है—

आपदर्थे धनं रक्षेत्। गरुड़ १। १०९। १

कोष ही धन का संग्रहालय है और कोष ही संगृहीत धन भी है, जो सेना व प्रजा की रक्षा करने तथा धार्मिक अनुष्ठानों के कार्य में लगाया जाता है।[1] रत्नों से ही राज्य श्री भी प्रभावती होती है।[2] राजा भी कोश की रक्षा करने में चतुर होता था।[3] कोषाध्यक्ष इसका मुख्य अधिकारी होता था। यह कुलशीलवान, धार्मिक और सद्‌गुणों से युक्त होता था।[4] यही राजकोष की देख-रेख करता था।

राजकोप में शुल्क, दंड (जुर्माना), आकर (खानों से उपलब्ध सम्पत्ति) कर (टैक्स), भाटक (किराया आदि) और उपायन से प्राप्त आय आदि ही संगृहीत कोश होता था।[5]

कर-व्यवस्था

राजा को प्रजा अपनी आय का छठा भाग कर रूप में देती थी (राज्ञो दत्वां तु षड्भागं)।[6] कहा गया है कि राजा धन-सञ्चय से तृप्त नहीं होता (राजा न तृप्तो धनसञ्चयेन); परन्तु उसकी कर-नीति बहुत ही उदार होनी चाहिये[7] जिस प्रकार माली जंगल में वृक्षों की जड़ों को नष्ट किये हुए बिना ही फूले फूलों को चुनता है, उसी प्रकार राजा भी उनसे कर ले जो देने की स्थिति में हों। अंगारकारक (कोयला बनाने वाले) की भाँति राजा वृक्ष को ही

---

१ शुक्र नीति ४। ११६ : एकार्थ समुदायो यः कोशः स्यात्पृथक्पृथक्॥
वही ४। ११८ : वलप्रजारक्षणार्थं यज्ञार्थं कोषसंग्रहः।
परत्रेह च सुखदो नृपस्यान्यश्च दुःखदः॥

१. गरुड़ १। ६९। ११

३. शुक्र नीति १। ७६ : कोशानां रक्षणदक्षः.......................।

४. गरुड़ १। ११२। ४

५. शुक्र नीति २। ३२५

६. गरुड़ १। १०७। ८

७. वही १। १०९। ४२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नष्ट न कर दे ।[१] इससे भी ज्ञात होता है कि कर की मात्रा अधिक नहीं होनी चाहिये। जिस प्रकार मधुहा (शहद को एकत्र करने वाला) वृक्ष को बिना नष्ट किये हुए फूल-फूल से शहद के बिन्दुओं को संगृहीत करता है, उसी प्रकार राजा को भी राज्य को नष्ट किये बिना ही कर का संचयन करना चाहिये। राजा प्रजारूपी वत्स (बछड़े) का ध्यान रखते हुए ही भूमिरूपी गाय का कर-दोहन करे। भौंरा फूल फूल से क्रमानुसार मधु का चयन करता है; उसी प्रकार राजा भी धन का संचय करे। वल्मीक (बांबी), मधु-जाल (शहद का छत्ता), शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा और राजधन तथा भैक्ष्य (भीख से प्राप्त अन्न) धीरे धीरे ही बढ़ता है।[२] इस प्रकार यद्यपि यह सत्य है कि राजा धन-संचय से तृप्त नहीं होता है (गरुड़ १ । १०९ । ४२); परन्तु उसे कर व्यवस्था को इस प्रकार बनाना और चलाना चाहिये कि उसका मूलस्रोत-प्रजावर्ग-ही कुण्ठित न हो जाय।

जो धन धर्म से अर्जित होता है वही सत्य धन कहा गया है और जो धन धर्म के मार्ग से जाता है (व्यय किया जाता है), वही श्री सम्पन्न भी होता है:—

येऽर्था धर्मेण ते सत्या ये धर्मेण गताः श्रियः ॥
धर्मार्थी च महाल्लोके तत्स्मृत्वा ह्यर्थकारणात् ॥

गरुण १ । ११३ । ३४

उपायन—महाभारत का उपायन पर्व प्रसिद्ध ही है। पराजित राजा नाना प्रकार की भेंटें अपने सम्राट को भेंट करते है।[३] पांडवों की दिग्विजय

---

१. वही १ । १११ । ३ :
पुष्पात्पुष्पं विचिन्वीयान्मूलच्छेदं न कारयेत् ।
मालाकार इवारण्ये न यथाङ्गारकारकः ॥

२. वही १ । ११३ । ५-७ :
मधुहेव दुहेद्राष्ट्रं कुसुमञ्च न पातयेत् ।
वत्सापेक्षी दुहेत्क्षीरं भूमि गाञ्चैव पार्थिवः ॥५
यथा क्रमेण पुष्पेभ्यश्चिनुते मधु षटपदः ।
तथा वित्तमुपादाय राजा कुर्वीत सञ्चयम् ॥६
वल्मीकं मधुजालञ्च शुक्लपक्षे तु चन्द्रमाः ।
राजद्रव्यञ्च भैक्ष्यञ्च स्तोकस्तोकेन वर्द्धते ॥७

३. सभापर्व ४७ । २८-२९; सभापर्व अ० ५१
समुद्रगुप्त का प्रयाग स्तम्भ लेख,"'कन्योपायन"' ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के बाद पराजित राजा विभिन्न रत्नों की भेंट लाये थे।[1] गरुण का मत है कि राजाओं को दूसरे देशों को जीतकर उनसे 'भोग' (एक प्रकार का कर) लें, न कि उन्हें नष्ट कर दें (परराष्ट्रं महीपालैर्भोक्तव्यं न च दूषयेत्)।[2]

इस प्रकार राजा की कर नीति, चाहें वह स्वराष्ट्र के लिये हो या परराष्ट्र के लिये, उदार ही थी।

दुर्ग

दुर्ग भी राज्य का एक अंग माना गया है। दुर्ग सुरक्षा का साधन था जिसको विविध शस्त्रास्त्रों और अन्य साधनों से सम्पन्न रखना आवश्यक था। दुर्ग में यह सब सामग्री जुटाने के बाद ही शत्रु पर आक्रमण करना चाहिये।[3] सप्तांगों की गणना में कहीं-कहीं दुर्ग के स्थान पर पुर[4] का उल्लेख किया गया है। पुर ही राजा का निवास स्थान था।[5] अतः उसका दुर्गीकरण करना स्वाभाविक ही था।

बल

सेना को बल की उपयुक्त संज्ञा दी गई है। यही राजशक्ति थी और यही राष्ट्र-शक्ति भी थी। इसीलिये इसे एक राज्यांग भी माना गया।

बल[6] या सेना में हाथी, घोड़ा और रथ (हस्त्यश्वरथसंकुला)[7] तथा पैदल भी होते थे। हस्त्यश्व (गरुड़ १। ६०। ६) सेना के महत्वपूर्ण अंग

---

१. गरुड़ १। १४५। १८ :

नृपान्दिग्विजये जित्वा रत्नान्यादाय वै ददौ।
युधिष्ठिराय महते भ्रात्रे नीतिविदे मुदा॥

२. वही १। १११। ४

३. वही १। ११२। २१ :

सुसन्धानानि चास्त्राणि शस्त्राणि विविधानि च।
दुर्गे प्रवेशितव्यानि ततः शत्रुं निपातयेत्॥

द्रष्टव्य शुक्र नीति १। २४० (२)—२४१ (१) :

युद्धसाधनसंभारैः सुयुद्धकुशलैर्विना॥
न श्रेयसे दुर्गवासो राज्ञः स्याद्बंधनाय सः॥

४. महा०, शान्ति पर्व ६५। ६९
मनुस्मृति ९। २९४

५. गरुड़ २। १७। ५१

६. वही २। १७। ५०

७. वही २। १७। ४९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थे। हाथियों की हर प्रकार से रक्षा करनी चाहिये थी (वारणं रक्षयेत्सदा)[१]। धनुर्वेद की भी रक्षा करना राजा का कर्तव्य था।[२] इससे अस्त्रग्राम, विशेष कर बाण विद्या का महत्व ज्ञात होता है। राम ने विश्वामित्र से अस्त्रग्राम[३] प्राप्त किये थे।[४] ऐषिकास्त्र[५] का भी उल्लेख मिलता है। भिन्न-भिन्न शस्त्रास्त्रों का प्रयोग होता था। ढाल-तलवार (गरुड़ १। २२६। २२) भी अधिक प्रसिद्ध थे। सेना का मुख्याधिकारी सेनाध्यक्ष होता था।[६] सेनापति[७] भी सेना का ही उच्चाधिकारी था।

वैद्य[८] (राजवैद्य) भी सेना से सम्बद्ध था जो हयायुर्वेद (गरुड़ १। २०१। १) और गजायुर्वेद (गरुड़ १। २०१। ३३) का भी ज्ञाता होता था। सबसे अच्छा घोड़ा तुरुष्क देश (तुर्किस्तान) का होता था (उत्तमोऽश्वस्तुरुष्कजः, गरुण १। २०१। ४)।

राष्ट्र

राज्यांगों में राष्ट्र को श्रेष्ठ अंग कहा गया है[९], जिसकी रक्षा सदैव करनी चाहिये। इस युग में देश बहुत ही बड़े खतरे में पड़ा था। उग्रकर्मा और नास्तिक म्लेच्छ देश में छा गये थे। अतः कुछ लोगों ने देश छोड़ना भी उचित ही समझा—

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथ्वीं त्यजेत्॥

गरुण १। १०९। २

म्लेच्छों के उत्पात से देश में जीवन कष्टमय हो गया था—

धर्मः प्रव्रजितस्तपः प्रचलितं सत्यञ्च दूरङ्गतं
पृथ्वी वन्ध्यफला जनाः कपटिनो लौल्येस्थिते ब्राह्मणाः।

---

१. गरुड़ १। २०१। ३७
२. वही १। १११। २६
३. वही १। १४३। ५
४. वही १। १३। ५
५. वही १। १४५। ३६
६. वही १। ११२। ५ (२)
७. वही १। १७८। १०
८. वही १। ११२। ११
९. अग्नि पुराण २३९। २:

राज्याङ्गानां वरं राष्ट्रं साधनं पालयेत् सदा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मर्त्या स्त्रीवशगाः स्त्रियश्च चपला नीचा जना उन्नताः ।
हा कष्टं खलु जीवितं कलियुगे धन्या जना ये मृताः ।।

गरुड़ १ । ११५ । २

इस कथन में—"धन्य हैं वे लोग जो मर गये हैं"—तत्कालीन प्रपीड़न का करुण क्रन्दन है जिसका कारण देश भंग था—

धन्यास्ते ये न पश्यन्ति देशभंगं कुलक्षयम् ।

गरुड़ १ । ११५ । ३

अस्तु देश में कुराज्य (गरुड़ १ । ११५ । ४) की स्थापना से जीवन भार बन गया था । देश वही माना गया जहाँ प्राण रह सकें (स देशो यत्र जीव्यते)[1]। इसीलिये इस युग में क्षत्रिय का प्रमुख कर्तव्य देश रक्षा माना गया—

क्षत्रियः सन्न देशं स्वं त्यक्ष्यामि क्लीबवद्भयात्[2] ।

मित्र

ऐसी आपत्ति में केवल मित्र के सहाय्य का भरोसा होता है (आपत्सु मित्रं जानीयात्)[3] । यदि विपत्ति पड़ने पर मित्र साथ नहीं देता तो मित्र ही कैसा (मित्रेण किं व्यसनकालपराङ्मुखेन)[4] । परन्तु राजनीति में कोई किसी का मित्र नहीं होता है । केवल कार्यवश ही साथ (संधि) और मैत्री हो जाती है :

सर्वः कार्यवशाज्जनो हि रमते कस्यास्ति को वल्लभः ।।

गरुड़ १ । १०९ । ९

फलरहित वृक्ष को पक्षी, सूखे तालाब को सारस, धनहीन पुरुष को वैश्या, राज्यच्युत राजा को मन्त्री, सूखे फूल को भौंरे और जले हुए वन को पशु छोड़ देते हैं (गरुड़ १ । १०९ । ९) । ठीक ही कहा गया है—

अनुरंजयेत् छलेन मित्रं ।

गरुड़ १ । ११४ । १९

इसीलिये यह भी कहा गया है कि कुमित्र त्याज्य है (गरुण १ । ११५ । १) । सन्मित्र वही है जो विश्वास के योग्य हो (गरुड़ १ । ११५ । ५५) । परन्तु नीति पुनः यही मानती है कि समय पड़ने पर शत्रु से सन्धि कर उसे मित्र बना लेना चाहिये और समय पड़ने पर मित्र के ही साथ युद्ध भी कर

१. गरुड़ १ । १०८ । १५
२. कथासरितसागर ७४ । ६४
३. गरुड़ १ । १०९ । ८
४. वही १ । १०९ । ६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लेना चाहिये। काल ही सब कुछ करा लेता है।[१] शत्रु मित्र हो जाता है और भाई तथा मित्र सर्प के समान शत्रु हो जाते हैं।[२]

शोक और भय से बचाने वाला तथा प्रीति और विश्वास का पात्र मित्र रत्न ही है (गरुड़ १। ११४। २)। माता, स्त्री, भाई और पुत्र पर उतना विश्वास नहीं होता है जितना मित्र पर स्वभावतः विश्वास हो जाता है (गरुड़ १। ११४। ४)।

सहाय-सम्पत्ति

राजभृत्य—राज्य का शासन राजा और उसके सहायकों द्वारा ही चलता था। इसीलिए इसे सहाय-सम्पत्ति का नाम दिया गया है। सभी राजपुरुषों (राज सेवकों) की नियुक्ति उनकी सम्यक् परीक्षा के बाद राजा ही करता था।[३] उनकी ही सहायता से सत्य धर्म पर आरूढ़ रहते हुए राजा अपने राज्य का पालन करता था (गरुड़ १। १११। २ (१)।

वर्गीकरण—राज-भृत्य बहुत प्रकार के होते थे। उन्हें तीन भागों में—उत्तम, मध्यम, और अधम—विभक्त किया गया था। तीनों ही वर्ग के भृत्य अपनी योग्यता के अनुसार कामों में नियुक्त किये जाते थे।

परीक्षा—

भृत्ये परीक्षणं वक्ष्ये यस्य यस्य हि ये गुणाः।
तमिमं संप्रवक्ष्यामि यद्यदा कथितानि च ॥

गरुड़ १। ११२। २

अर्थात् राज भृत्यों की परीक्षा उनके गुणों के आधार पर होती थी। जिस प्रकार सोने की परीक्षा चार प्रकार से—घिसना, छेदन (काटना), तपाने और पीटने से होती है उसी प्रकार भृतकों की परीक्षा उनके व्रत, शील, कुल और कर्म के आधार पर करनी चाहिये (गरुड़ १। ११२। ३)। अभिलेखों तथा अन्य नीति शास्त्र के ग्रन्थों में भी राज सेवकों की परीक्षा का विधान है।

---

१. वही १। १०९। ६:

कालेन रिपुणा सन्धिः काले मित्रेण विग्रहः।
कार्यकारणमाश्रित्य कालं क्षिपति पण्डितः ॥

२. वही १। २०८। ११-१५

३. गरुड़ १। १११। १

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कोषाध्यक्ष—राज्य का एक विशेष महत्वपूर्ण पदाधिकारी था जो कोष का संरक्षण करता था। इसे कुल, शील, और अन्य शुभ गुणों से युक्त तथा धार्मिक, रूपवान और सुप्रसन्न होना चाहिए था।[१]

रत्न-परीक्षक—रत्नों का सम्बन्ध कोष से था।[२] अतः रत्न-परीक्षक को रत्नों के मूल्य, रूप और गुणों की परीक्षा करने वाला होना चाहिए था।[3]

गरुड़ पुराण रत्नों, और मणि-मुक्ताओं के विषय में विशेष ज्ञान देता है कि वे कहाँ कहाँ उत्पन्न होते थे और उनके क्या क्या लक्षण थे। (गरुड़ पूर्व० अ० ६८, ६९, ७०)।

सेनाध्यक्ष, बलाबल का विवेक करने वाला होना चाहिये था।[४] इसे बलाध्यक्ष (गरुड़ १।१५।१०६) भी कहते थे।

प्रतीहार—प्रतिहार (द्वारपाल) को, संकेतों का समझने वाला, बलवान्, प्रियदर्शन, प्रमादहीन और प्रहार करने वाला (प्रमाथी) होना चाहिये।[५]

लेखक—बुद्धिमान्, कुशलवक्ता, प्राज्ञ, सत्यवादी, संयमी और सभी शास्त्रों का ज्ञाता तथा सज्जन ही लेखक योग्य समझा जाता था।[६]

---

१. गरुड़ १।११२।४ :

कुलशीलं गुणोपेतः सत्यधर्म परायणः।
रूपवान्सुप्रसन्नश्च कोषाध्यक्षो विधीयते॥

२. कौटलीय अर्थशास्त्र, वार्ता १, अ० ११, अधि० २

३. गरुड़ १।११२।५ (१),

मूल्यरूपपरीक्षाकृद्भवेद्र रत्नपरीक्षकः।

४. वही १।११२।५ (२)

बलाबल परिज्ञाता सेनाध्यक्षो विधीयते।

५. वही १।११२।६ :

इङ्गिताकारतत्त्वज्ञो बलवान्प्रियदर्शनः।
अप्रमादी प्रमाथी च प्रतीहारः स उच्यते॥

६. वही १।११२।७ :

मेधावी वाक्यपटुः प्राज्ञः सत्यवादी जितेन्द्रियः।
सर्व शास्त्र समालोकी ह्येष साधुः स लेखकः॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूत—बुद्धिमान, चतुर, दूसरे के चित्त की बात को जान लेने वाला, क्रूर, यथोक्तवादी व्यक्ति ही योग्य दूत था।[1]

धर्माध्यक्ष—अशोकीय शासन-तन्त्र में धर्ममहामात्र नाम का महत्वपूर्ण धर्माधिकारी होता था। गरुड़ भी उसी प्रकार धर्माध्यक्ष का उल्लेख करता है जिसको सम्पूर्ण स्मृतियों का ज्ञाता, पंडित, संयमी तथा शौर्य और वीर्य से युक्त होना आवश्यक था।[2]

सूपकार—सूपकार वही होता था जिसके पूर्वज-पितृ पितामह—भी सूपकार रहे हों, जो दक्ष, शास्त्र और सत्य बोलनेवाला हो, और जो कठिन तथा पवित्र रहता हो।[3]

वैद्य—जिस व्यक्ति ने आयुर्वेद का अभ्यास किया हो अर्थात् अनुभवी हो और सब प्रकार से प्रिय दर्शन तथा आयु-शील और शुभ गुणों से युक्त हो, वही वैद्य होने के योग्य था।[4]

राजपुरोहित—वेद-वेदाङ्गों का पूर्ण रूप से जानने वाला, जप-होम करने वाला तथा आर्शीवाद कहने वाला नित्य पुरुष ही राज पुरोहित पद के योग्य था।[5]

ग्रामणी (गरुड़ १। १५। १४६) ग्राम रक्षक ही था।

लेखक, पाठक, गणक और प्रतिबोधक का कार्य था कि राजा को सदैव आलस्य युक्त कार्य से रोकें (गरुड़ १। ११२। १३)।

दुमुंहा, भड़कानेवाला, क्रूर और एकान्त में (अर्थात् सुनसान में छिप कर) दारुण दुष्ट सर्प के ही समान भृत्य को अपकारी ही समझना चाहिये (गरुड़ १। ११२। १४)। दुर्जन चाहे विद्वान ही क्यों न हो त्याज्य है; क्योंकि मणिभूषित सर्प भी भयंकर होता है (गरुड़ १। ११२। १५)। खल भय का ही कारण होता है।

---

१. वही १। ११२। ८:

बुद्धिमान्मतिमांश्चैव परचित्तोपलक्षकः।
क्रूरो यथोक्तवादी च एष दूतो विधीयते॥

२. वही १। ११२। ९:

समस्त स्मृति शास्त्रज्ञो पण्डितोऽथ जितेन्द्रियः।
शौर्य वीर्य गुणोपेतो धर्माध्यक्षो विधीयते॥

३. वही १। ११२। १०

४. वही १। ११२। ११

५. गरुड़ १। ११२। १२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(गरुड़ १ । ११२ । १६) । बराबरी करने वाले और आधे राज्य के अपहरण करने वाले भृत्य का बध कर देना ही श्रेयस्कर है (गरुड़ १ । ११२ । १७) । जो भृत्य पहले शूर तथा मृदु-मंद बोलनेवाले, संयमी और सत्य पराक्रमी हैं, परंतु बाद में विपरीत-विरोधी हैं, वे भृत्य हितकर नहीं होते हैं (गरुड़ १ । ११२ । १८) । आलस्य रहित, सुसन्तुष्ट, अच्छे स्वप्न देखने वाले प्रतिबोधक तथा सुख-दुख में समान रूप से रहने वाले और धीर भृत्य संसार में दुर्लभ ही हैं ।[1] राजा को क्षमा और सत्य से रहित, क्रूर बुद्धि वाले, निन्दक, दाम्भिक, पेटू, शठ और स्पृहा वाले तथा दुर्बल और भयभीत भृत्यों को छोड़ देना चाहिये ।[2] मूर्ख भृत्य के रखने से राजा को अपयश, अर्थ-नाश और नरक की प्राप्ति होती है ।[3] चाहें कितना भी सूक्ष्म कार्य क्यों न हो, भृत्य के कार्य से राजा की उन्नति होती है ।[4] अतः भूमीश्वर (राजा) सदैव बुद्धिमान और दक्ष व्यक्ति को धर्म, काम और अर्थ की सिद्धि के लिये अथवा गो-ब्राह्मण के कल्याण में ही नियुक्त करे:—

तस्माद्भूमीश्वरः प्राज्ञं धर्मकामार्थसाधने ।
नियोजयेद्धि सततं गोब्राह्मणहिताय वा ॥

गरुड़ १ । ११२ । २५

१—गरुड़ १ । ११२ । १९
२—वही १ । ११२ । २०
३—वही १ । ११२ । २३
४—वही १ । १२२ । २४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

५—देश-विप्लव

स्वाधीनता और राष्ट्रीय एकता

स्पष्टत: गारुड़-युग में देश-विप्लव[१] ने चिन्तकों और रक्षकों को चौंका दिया। क्षत्रिय-राजपूत भूमि-प्रेम और राष्ट्र-रक्षण के लिये कटिबद्ध होते हुए सर्वस्व देश की भेंट में चढ़ाने के लिये तैयार था। वह शत्रु से सबल भी था। शस्त्रास्त्र कुंठित न थे। परन्तु उसके कुछ परम्परागत चारित्रिक दोष थे जिनके कारण उसका और उसके प्रिय देश का पराभव हुआ। राजा के कार्य नीति और शौर्य के अतिरिक्त पुत्र (राजपुत्र), भृत्य (राजभृत्य), मन्त्री, पुरोहित और इन्द्रियों[२] की जागरुकता पर ही राज्य अथवा राष्ट्र की सुरक्षा निर्भर थी। "पुत्र, भृत्य और बान्धव (भाई, मित्र, सखा)—ये तीन भी जिसके साथ हैं चतुस्समुद्रों से घिरी हुई सम्पूर्ण वसुन्धरा उसके ही वश में रहती है"[३]। पुत्र के समान शत्रु नहीं हैं—

'नास्ति पुत्र समो रिपुः'

गरुड़ १। ११४। ६०

पिता-पुत्र का सम्बन्ध वात्सल्य-स्नेह और ममत्व पर टिका होता है। परन्तु इतिहास में पिता-पुत्र के घातक-सम्बन्ध भी भरे पड़े हैं। पिता ने पुत्र की हत्या की है और पुत्र पिता का हत्यारा रहा है। इसलिये यह सत्य ही कहा गया है कि पुत्र के समान और कोई शत्रु नहीं है। राजपुत्र की महत्वाकांक्षा से विभिन्न दुर्घटनाएँ घटित हुई हैं। गरुड़ के अनुसार ज्येष्ठ भाई का अपमान (गरुड़ १। २२७। २१) एक पाप समझा जाता था। बन्धु-विरोध तो प्रेतत्व दिलाने वाला था (गरुड़ २। १०। २०–२१)। अत: यह एक राजरोग था, जिसका निदान और उपचार करना ठीक ही था।

राज सिंहासन के लिये भ्रातृ-युद्ध होते थे। गरुड़ पुराण राजा की मृत्यु के बाद ज्येष्ठ पुत्र को ही श्रेष्ठ उत्तराधिकारी मानता है। वही सबका रक्षक और पालक होता था और उसका भी कर्तव्य सभी छोटे भाइयों के साथ समता का व्यवहार करना था। भोग और उपजीविका में उन्हें पुत्रों के समान ही

१—गरुड़ १। १०६। १८

२—वही १। १११। २०

३—वही १। १११। २१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाने।[१] इस प्रकार भाई-भाई में फूट और कलह न पड़े। उनकी मित्रता ही शक्ति मानी गई है। जिस प्रकार दुर्बल घास के योग से रस्सी बनती है और उसी रस्सी से हाथी भी बाँधा जाता है। इसी प्रकार बहुत दुर्बल भी मिलकर सबल हो जाते हैं, जो म्लेच्छ (नाग = हाथी) को पराभूत कर सकते थे:—

बहूनामल्प साराणां समुदायो हि दारुणः।
तृणैरावेष्टिता रज्जुस्तया नागोऽपि बध्यते ॥

गरुड़ १ । ११४ । ६६

यहाँ नाग शब्द पर श्लेष है जो वैरि-वारण, या मातंग-म्लेच्छ का परिचायक है। भाई-भाई की फूट, परस्पर क्षत्रियों की फूट, जो एक दूसरे के सम्बन्धी थे, राष्ट्र घातक बनी। राष्ट्र-चिन्तक ने सचेत करते हुए समझाया कि दुर्बल व्यक्तियों का संघ (समुदाय) भी शत्रु को वशीभूत कर सकता है, फिर वह तो सबल थे। राष्ट्रीय एकता और स्वातन्त्र्य-प्रेम का कितना महान आदर्श है।

पुन: पुराण कहता है कि नीच ही कलह चाहते हैं (अधमा: कलिमिच्छन्ति)।[२] बहु-नायक (बहु-शासन) वाला देश वस्तव्य नहीं था। इससे भी कलह (कलि) ही बढ़ता है। अत: बहु-शासन के स्थान पर एक नायक ही श्रेयस्कर समझा गया। एक नायक-एक राट—भी सबल और सुदृढ़ होना चाहिये, न कि अल्प वयस्क, बालक राजा (या मूर्ख राजा) अथवा एक स्त्री शासिका:—

अनायके न वस्तव्यं।
न वा च बहुनायके ॥
स्त्रीनायके न वस्तव्यं।
तथा च बालनायके ॥

गरुड़ १ । ११५ । ६२

स्कन्द पुराण में भी एक ही राष्ट्र-नायक की उपयुक्तता और क्षत्रिय संघ पर बल दिया गया है—

क्षत्रियाश्चापि भूपालमेकं कृत्वा सुभक्तितः।
तदादेशात् प्रभुञ्जन्ति महीं न संशयः ॥

स्कन्द पु०, ६ । २७ । २४

कथा सरित सागर तो मार्जाराख्यान की प्रचलित पुरानी कहानी[३] के दृष्टांत से बताती है कि जब परस्पर वैर रखने वाले पशु-पक्षियों—चूहा, बिल्ली,

---

१—गरुड़ १ । ११४ । ६४–६५

२—वही १ । ११५ । ११

३—महा० शान्ति पर्व अ० १३८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नेवला और उल्लू—में भी शत्रु के आघातों से बचने के लिये मैत्री हो सकती है, तब क्या मनुष्यों में मैत्री नहीं हो सकती—

एवं बहुभ्यः शत्रुभ्यः प्रज्ञयात्माभिरक्षितः ।
मूषकेन तिरश्चापि किं पुनर्मानुषेषु यत् ॥

कथा स० सा० ३३ । १३०

इस प्रकार कथा सरित सागर काल-युक्ति, देश काल की परिस्थितियों के अनुसार उपाय-उद्यम का अनुसरण करने और आश्रय लेने पर बल देता है—

कालयुक्त्या ह्यरिर्मित्रं जायते न च सर्वदा। क० स० सा० ३३ । १२९

यही महाभारत की भी नीति थी—

अर्थार्थी जीवलोकोऽयं न कश्चित् कस्यचित् प्रियः ।

शान्तिपर्व १३८ । १५२

यही गारुणी नीति है—

कालेन रिपुणा सन्धिः काले मित्रेण विग्रहः ।
कार्यकारणमाश्रित्य कालं क्षिपति पंडितः ॥

गरुड़ १ । १०८ । ६

सर्वः कार्यवशाज्जनो हि रमते कस्यास्ति को वल्लभः ॥

गरुड़ १ । १०८ । ९

इस प्रकार गरुड़ पुराण भी (काल-समय और परिस्थितियों के अनुसार) नीति के महत्व का प्रतिपादन करता है। इसका आधार 'देश-काल-विज्ञान' ही था और इसका मुख्य उद्देश्य शत्रुओं का पराभव करना तथा उनसे मुक्ति पाना ही था। इस के प्रमुख आचार्य बृहस्पति थे जैसा कि बताया जा चुका है। बृहस्पति नीति ही परम् श्रेयस्कर अमृत ही थी—

कस्त्वया सदृशो नीतावन्यो देवाद्बृहस्पतेः ।
अयं त्वमृतसेकोऽस्य त्वन्मन्त्रो राज्यशाखिनः ॥

कथा० स० सा० ३३ । १६३

अर्थात् नीति में बृहस्पति के सिवा तुम्हारे समान और कौन है जो राज्य-वृक्ष के लिये अमृत सिंचन के समान है। (यहाँ यह बात मन्त्री यौगन्धरायण के प्रति कही गई है)।

अतः स्पष्ट है कि राष्ट्रीय एकता, संघ-शक्ति और बृहस्पति नीति ही सूखते, मुर्झाते और झंझा के झकोरों से विशीर्ण भारत-राष्ट्र-वृक्ष को अमृत—संजीवनी थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वतन्त्र-स्वराज्य में ही जीवन की सफलता है, न कि पराधीनता में। पराधीन लोग तो जीवित रहते हुए भी मरे के समान ही हैं:—

स्वाधीनवृत्तेः साफल्यं न पराधीन वृत्तिता।
ये पराधीन कर्माणों जीवन्तोऽपि च ते मृताः ।।

गरुड़ १। ११५। ३७

जब मान ही जाता रहा तो धन रहा किस काम का—

जीवितं मानमूलं हि माने म्लाने कुतः सुखम् ।।

गरुड़ १। ११५। ४०

सत्य ही मान महान पुरुषों का धन है—

मानो हि महतां धनम्।

गरुड़ १। ११५। ११

मानो हि मूलमर्थस्य माने सति धनेन किम्।
प्रभ्रष्टमानदर्पस्य किं धनेन किमायुषा ।।

गरुड़ १। ११५। १२

सिंह अपनी मृगेन्द्रता को नहीं छोड़ता—

वनेऽपि सिंहा न नमन्ति कर्णं बुभूक्षिता नाशनिरीक्षणञ्च।
धनैर्विहीनाः सुकुलेषु जाता न नीचकर्माणि समारभन्ति ।।

गरुड़ १। ११५। १४

नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्य क्रियते बने।
नित्यमूर्जितसत्त्वस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता ।।

गरुड़ १। ११५। १५

पृथ्वीराज तृतीय चौहान—भारतेश्वर—की मृत्यु भी इतिहास का एक रहस्य है। सर बूल्जे हेग का विचार है—"पृथ्वीराज अपने हाथी से उतर कर घोड़े पर चढ़ कर बहुत तेज़ी से भागना चाहते थे। परन्तू सरस्वती नदी के निकट पकड़ कर मार डाले गये।"[१] डा० डी० सी० गान्गुली भी मानते हैं, पृथ्वीराज युद्ध से भागे और पकड़ कर अजमेर में बन्दी बनाकर लाये गये। वहाँ सुलतान की आधीनता में फिर से राज्य करने लगे। परन्तु सुलतान के प्रति पृथ्वीराज का षड्यंत्र ही उनके बध का कारण बना।[२] डा० गांगुली बताते हैं कि इस वृत्तान्त का मूलाधार मुस्लिम इतिहासकारों का

१—कैम्ब्रिज हि० इ०, ३, पृ० ४०
२—स्ट्रगल फ़ॉर इम्पायर, पृ० ११२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कथन है। संस्कृत ग्रन्थों (विरुद्ध विधि विध्वंस) से ज्ञात होता है कि वह प्रमाद और निद्रा में डूबे हुए थे, जब तुरुष्कों ने उन्हें मार डाला। प्रबन्ध चिन्तामणि के अनुसार सोमेश्वर-मंत्री के अपमान करने से वही मंत्री मुहम्मद ग़ोरी से मिल गया था और उसी ने ग़ोरी की सेनाओं का संचालन किया। ग़ोरी सुलतान पराभूत पृथ्वीराज को पुन: सिंहासन पर बैठाना चाहता था। परन्तु वह मुस्लिम-विरोधी विचार के कारण मार डाला गया।[१] डा० शर्मा भी मानते हैं कि पृथ्वीराज भागा और सरस्वती के निकट पकड़ लिया गया।[२] डा० शर्मा भी विश्वास करते हैं कि एक विशेष सिक्के, जिस पर पृथ्वीराज और मुहम्मद ग़ोरी दोनों के नाम मिलते हैं, के आधार पर चौहान सम्राट ने सुलतान की आधीनता मान ली थी और बाद में मार डाला गया।[३] डा० रामवृक्ष सिंह भी यही बात दुहराते हैं—"पृथ्वीराज तृतीय की मृत्यु युद्ध करते हुए नहीं हुई थी; परन्तु वह बन्दी बनाकर अजमेर लाये गये थे ताकि वह फिर से ग़ोरी सुलतान की आधीनता में शासक बना दिये जायँ। यही बात एक सिक्के से भी ज्ञात होती हैं......। परन्तु मुसलमानों का कट्टर शत्रु चाहमान सम्राट सुलतान के स्वामित्व को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं था। उसने दासता के स्थान पर मृत्यु को श्रेयस्कर समझा।"[४]

सिक्के का प्रमाण अत्यंत सन्दिग्ध है। उदाहरण के लिये कुजुलकैडफ़ाइसस के ताम्र सिक्के पर अन्तिम इण्डो-ग्रीक (यूनानी) शासक हरमेयस और कैडफ़ाइसस के दोनों ही नाम मिलते हैं। इस सिक्के को कुजुल कैडफ़ाइसस का सिक्का माना गया है, जो हरमेयस के सिक्के की नकल है।[५]

परन्तु पृथ्वीराज विजय में निर्वेद और निश्वास के साथ पुष्कर-अजमेर में होने वाले म्लेच्छाचार और चौहान कुल के पराभव का उल्लेख किया गया है—

उत्तेजितं रामतया कुलं य–
दुद्वेजितं तद्भवता जिनत्वे
इत्यन्वयं स्वं प्रति संदिहानो
मन्दप्रभस्सूरिरिवाद्य सूर्यः ॥

पृ० रा० वि० १। ४८

१—स्ट्रगल फ़ॉर इम्पायरी पृ० ११२-११३
२—डा० दशरथ शर्मा–अर्ली चौहान डाइनेस्टीज़ पृ० ८६
३—वही पृ० ८६-८७
४—डा० आर० बी० सिंह "हिस्ट्री ऑफ़ दि चाहमानाज़" पृ० २०९
५—कैम्ब्रिज हि० इ०, १, पृ० ५०६ (भारतीय संस्करण)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अर्थात् जिस कुल को तुमने राम-स्वरूप (राक्षसों का बध कर) में उठाया था, वही वंश आज सूर्य के मन्दप्रभ हो जाने की तरह तुम्हारे जिनत्व (साधुता) धारण कर लेने पर क्षीण हो गया है।

त्वया हरे तापसतामुपेत्य
सख्ये गृहीते हरिणैरिदानीम्।
निवास भूमिमम पुष्करं त-
दास्कन्दि मातंगमहाभयेन ।। पृ० रा० वि० १ । ४९

पृथ्वीराज को राम का अवतार कहा गया है—

नरेश्वराणामुपमानतायै
कवीश्वराणामपि वर्णनाय
जगाम यो राममयं शरीरं
श्रोता स एवास्तु हृदि स्थितो मे ।।

पृ० रा० वि० १ । ३३

'जिनत्व' और 'तापसतामुपेत्य' से स्पष्ट है कि तराइन के द्वितीय युद्ध के बाद पृथ्वीराज युद्ध से भागे, जैसा कि सभी विद्वान मानते हैं। परन्तु उसको मारने वाला वह खुद या भगवान ही था। मान रक्षा के लिये क्षत्रिय-क्षत्राणी के पास कटार होती थी। ठीक है, युद्ध से भागना पाप है। परन्तु नीति ने उसे सिखाया था—

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ।।

गरुड़ १ । १०९ । २

और राज्य-भ्रष्ट होकर मृगया को चल दे—

राज्याद् भ्रष्टो मृगयायां व्रजेच्च ।।

गरुड़ १ । १०९ । ५४

राज्यभ्रष्टमृगया ऊपर उल्लिखित हिरणों का साथ—

सख्ये गृहीते हरिणैरिदानीम्। पृ० रा० वि० १ । ४९

तापस जीवन ही था।

सत्य है कि पृथ्वीराज के दोषों—शत्रु-उपेक्षा, बन्धु-अपमान और बन्धु वैर तथा भोगास्वाद—के कारण 'रजनीपराभवम्' का युग प्रारम्भ हो गया था। परन्तु फिर भी स्वातन्त्र्य-संग्राम चलता रहा। अजमेर और उसके पास ही विद्रोह उठ खड़े थे। नेता और सूत्रधार कौन था? मान और स्वाधीनता की रक्षा आवश्यक थी। यह शत्रु-पराभव से सम्भव था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

६–समाज संस्थान

प्राचीन भारत का सामाजिक जीवन चातुर्वर्ण्य और चार आश्रमों पर आधारित था। व्यक्ति अपने आपको और अपने समुदाय-समाज को उन्नत कर जीवन का सुख भोगता हुआ अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है। प्रारम्भ में वह एक बीज रूप में मां के उदर में पलता हुआ मांस पिंड ही प्राण लाभ कर जीव बन जाता है और अपने इस आवास को छोड़कर बाहर संसार चक्र में घूमने लगता है। प्राण संरक्षण के साथ ही साथ जीव-संवर्धन होता है। प्रत्येक सभ्य समाज के चिन्तकों ने बाल्य काल से ही उसे सुधारने और संवारने का विधान बनाया है। हिन्दू समाज व्यवस्था में भी उसकी संस्कृति अर्थात् शुद्धि होना प्रारम्भ होता है। वस्तुतः यह संस्कार-कर्म तो उसके बीजारोपण (बीज-क्षेप, गर्भादान) के पहले से ही प्रारम्भ हो जाता था। समाज के नागरिक को स्वस्थ तथा सुन्दर बनाना और सन्तान पैदा करना वासना की पूर्ति न होकर एक सामाजिक विधान था।

गरुड़ पुराण का युग संकट और संकर का युग था। आर्ष मर्यादाओं पर आघात हो रहे थे। राष्ट्र की भुजाएं (क्षत्रिय) और बुद्धि (ब्राह्मण) इनको सुरक्षित रखने के लिये विक्षुब्ध थे। अतः तत्कालीन समाज भी रोगों और व्यसनों से ग्रस्त था। वैद्य इस देश-व्याधि का भी निदान कर औषधि-अनुपान बता रहे थे। स्वस्थ-विधान के होते हुए भी समाज में विषमता और वैर कटुता और कलह फैल गया था। इसे दूर करना भी आवश्यक था। सम्पूर्ण संसार के की अखंडता (गरुड़ १।११८।४) के साथ ही साथ विष्णु-भक्ति से ही समता का भी प्रचार हुआ। अतः समाज-चेतना युग के अनुरूप चलने का प्रयत्न कर रही थी। शूद्र, निषाद, श्वपच, ब्राह्मण और भक्तों को समान ही समझने से मनुष्य नरक से बच सकता था। (गरुड़ १।२२२।४९)।

चातुर्वर्ण्य (गरुड़ २।२९।१५)

वर्ण चार हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इनके धर्म, व्यवहार और व्रत आदि के नियमों को चार्तुर्वण्य व्यवस्था कहते हैं। पुराणों में भी इनके धर्मों का वर्णन किया गया है (एते आश्रमिका धर्माः चातुर्वर्ण्यं ब्रवीम्यतः)।[1]

१—गरुड़ १।४९।२३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ये चारों वर्ण, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र,[१] क्रमशः ब्रह्मा के मुख, भुजाओं, जंघाओं और पैरों से उत्पन्न हुए—

आस्याद्वै ब्राह्मणा जाता बाहुभ्यां क्षत्रियाः स्मृताः ।
ऊरूभ्यां तु विशः सृष्टाः शूद्रः पद्भ्यामजायत् ।। गरुड़ १।४।३४

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के क्रमशः ब्रह्मलोक, इन्द्रलोक, मारुत लोक और गान्धर्व लोक बताये गये हैं (गरुड़ १ । ४ । ३५) । ये चारों वर्ण समाज के विभिन्न पक्षों के उन्नायक थे । ब्राह्मण बौद्धिक जीवन का पठन-पाठन से, क्षत्रिय शत्रु को जीतकर जय प्राप्त करने से राजनैतिक जीवन का, वैश्य धन-सुख से आर्थिक जीवन का और शूद्र विष्णु भक्ति के साथ ही साथ सेवा-धर्म से समाज का हितैषी था (गरुड़ १ । १५ । १६०) । अतः समाज संस्थान में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था का एक विशेष महत्व था ।

वर्ण-विभाग (पंचवर्ण-तेरह जातियाँ)

इस युग में चार वर्णों के अतिरिक्त अन्य जातियाँ और उपजातियां (संकरजात्यादि)[२] प्रतिलोम-अनुलोम सम्बन्धों से उत्पन्न हो गयी थीं (प्रतिलोमानुलोमजा)[३] । इस प्रकार वर्ण-सँकर (वर्णानां संकरो) फैल गया था ।[४] इन हीन जातियों[५] से अस्पृष्यता (शूद्रोच्छिष्ट संस्पृष्टः[६]) भी प्रचलित थी । अन्त्य जाति[७], (अन्त्यज) चाण्डाल[८] आदि को ही वर्ण-वाह्य[९] भी कहा गया है । इसे ही पंचम जाति[१०] भी कहते थे । गरुड़ पुराण के अनुसार भारत वर्ष में तेरह जातियाँ थीं—

मानुष्यं भारते वर्षे त्रयोदशसु जातिषु । संप्राप्य.........।
गरुड़ २ । २८ । २

१—गरुड़ १ । १५ । १२२
२—वही १ । ९६ । १
३—वही १ । ९६ । ६
४—वही १ । ६८ । २५
५—वही २ । १ । १३; २ । १० । २९
६—वही १ । २१४ । २, २०
७—वही १ । २१४ । ६, १२, १५, १६, ३०
८—वही १ । २१४ । १०, १२, १३, १४, १५
९—वही १ । २१४ । २१
१०—वही १ । ११४ । ७१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अर्थात् भारत वर्ष की १३ जातियों में मानुष्य-फल और मोक्ष को सुकर्म और स्वकर्म ही देने वाला था। इस विचार की व्याख्या करता हुआ गरुड़ पुराण कहता है कि संसार में भूलोक सभी जीवों से भरा हुआ है और वहाँ मनुष्य ही भुक्ति (लौकिक भोग) और मुक्ति को पाता है।[१] इसीलिये इस दिव्य भारत वर्ष में देवता मनुष्य रूप में अवतरित होते हैं—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारत भूमिभागे।
स्वर्गापवर्गस्य फलार्जनाय भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥

गरुड़ २ । १ । ६

यह ऋषि-भूमि कर्म भूमि थी, जहाँ कर्मों के आधार पर ही मनुष्य अपने को उठाता और गिराता है। जो व्यक्ति दूसरे की स्त्री अथवा ब्रह्मस्व अपहरण करता है, उसे ही ब्रह्मराक्षस की योनि मिलती है (गरुण २।१।१२)। इसी प्रकार रत्नों के अपहरण करने वाले को हीन जाति में उत्पन्न होना कहा गया है (हीन जातौ प्रजायन्ते रत्नानामपहारकाः)।[२] आत्मा अछेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य, और अशोष्य है (गरुड़ २ । १ । १४)। इस नश्वर शरीर से ही मनुष्य अपना कल्याण कर्तव्य-कर्मों को करने से कर सकता है (गरुड़ २ । १ । १७-२०)। ८४ लाख जीव चार भेदों (अण्डज, स्वेदज, उद्भिज और जरायुज) में विभक्त हैं। सभी जन्तुओं में मानुषत्वं प्राप्त करना कठिन है (सर्वेषामेव जन्तूनां मानुषत्वं हि दुर्लभं)।[३] यह बहुत पुण्य कर्मों से प्राप्त होता है। इसीलिये पुराण, धर्म शास्त्र और अन्य ऋषि ग्रन्थ यही कहते हैं कि—

सुकृतस्य प्रभावेण सुखञ्चेह परत्र च॥ गरुड़ २ । ३५ । ३७

प्राचीन भारत का यह समाज-संस्थान भी गुण और कर्मों पर ही आधारित था।[४] बुद्धि-गुण की विशिष्टता और मुखरता (वाक्-शक्ति) के कारण ब्राह्मण मनीषी और श्रेष्ठ माने गये। गरुड़ भी कहता है कि खाना, पीना, संभोग, निद्रा, भय, क्रोध आदि तो सामान्य गुण हैं परन्तु सबमें एकसा समान रूप से विवेक होना दुर्लभ है—

आहारो मैथुनं निद्रा भयं क्रोधस्तथैव च।
सर्वेषामेव जन्तूनां विवेको दुर्लभः परः॥

गरुड़ २ । २ । ८

१—गरुड़ २ । १ । ४-५
२—वही २ । १ । १३
३—वही २ । २ । ४
४—श्री भगवद्गीता ४ । १३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सभी प्राणियों में बुद्धि-जीवी श्रेष्ठ हैं, बुद्धिमान मनुष्यों में भी ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं; ब्राह्मणों में भी विद्वान्, विद्वानों में कृतबुद्धि और कृतबुद्धि विचारकों में भी कर्त्ता और उनमें भी ब्रह्मवादी श्रेष्ठ समझे जाते थे (गरुड़ २ । २ । ७-१०)। इस प्रकार स्पष्ट है कि समाज संस्थान गुण और कर्म पर ही आधारित था। बताया गया है कि—

अभूच्छूद्रो गोवधात्तु पृषध्रस्तु मनोः सुतः ।

गरुड़ १ । १३८ । ४

अर्थात् मनु-पुत्र पृषध्र गोवध के कारण शूद्र हो गया और

दिष्टपुत्रस्तु नाभागो वैश्यतामगमत्स च ॥

गरुड़ १ । १३८ । ५

दिष्ट पुत्र नाभाग वैश्य हो गया। इसी प्रकार पुनः गरुड़ पुराण कहता है कि—

देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च ।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥

गरुड़ १ । ११४ । ६८.

अर्थात् पाप कर्म करने से ही कुलीनों का पतन होता है और यह अकुलता का आधार भी है।

अकृतज्ञमनार्यञ्च दीर्घरोषमनार्जवम् ।
चतुरो विद्धि चाण्डालान्जात्या जायेत पञ्चमः ॥

गरुड़ १ । ११४ । ७१

अनार्य (सद्वृत्त-हीन), अकृतज्ञ, क्रोधी, और कुटिल ये चार चाण्डाल ही थे जिनकी पंचम जाति थी अर्थात् वे वर्णवाह्य थे। इसी प्रकार जो जो लोग पशुता[1] के वशीभूत होकर स्वेच्छाचार[2] व म्लेच्छाचार[3] में फँसते गये, उन्हें यहाँ के धर्म-चिन्तकों (स्मृतिकारों) ने समाज से बहिष्कृत कर उनका संस्पर्श करना भी पाप बताया है (पूर्वार्द्ध, गरुड़ अ० २१४)। इसी प्रकार धीरे-धीरे वर्णों और जातियों में वृद्धि होती गई।

गरुड़ स्पष्ट कहता है—

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा ह्यन्त्यज जातयः ।

गरुड़ २ । २ । ५ (२)

१—गरुड़ १ । ६८ । २
२—वही १ । ६४ । ११
३—वही १ । ६४ । १२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रजकश्चर्मकारश्च नटो वरुड़ एव च।
कैवर्त्तभेदभिल्लाश्च सप्तैताश्चान्त्यजातयः ।।

वही २। २। ६

म्लेच्छड्म्बविभेदेन जातिभेदास्त्रयोदश।
जन्तूनामिह सर्वेषां भेदाश्चैव सहस्रशः ।।

वही २। २। ७

गुण-कर्म के अतिरिक्त रंग (वर्ण) ने भी वर्ण-विभाग को प्रभावित किया--

वर्णेभ्यश्च विभागः कार्यो वर्णाश्रियादेव।

यद्यपि यह उल्लेख मणि के सम्बन्ध में कहा गया है, परन्तु फिर भी यह वर्णव्यवस्था पर प्रकाश डालता है। इस प्रसंग में कहा गया है—

ईशत्वात्सर्ववर्णानां गुणवत्सार्ववर्णिकम्।

गरुड़ १। ६८। २०

अस्तु स्पष्ट है कि वर्ण विभाग पर गुण—कर्मों का ही विशेष प्रभाव पड़ा। ज्यों-ज्यों गुण-कर्मों में हीनता आती गई, हीन जातियाँ भी बढ़ती गईं। परन्तु वैष्णवी-भक्ति ने इनमें पुनः एकता, सदाचार तथा समता की भावना भरदी।

धर्मोपदेशकाः (मनु-याज्ञवल्क्य-पराशराः)

प्रत्येक व्यक्ति का समाज में निश्चित स्थान था और तदनुरूप ही उस के कर्तव्य कर्म भी थे। इस को ही स्वधर्म (गरुड़ १। ४९। २५) कहा गया है। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने धर्म और कर्तव्य का निर्धारण करने का अधिकारी बन जाय तो वह निकम्मा, प्रमादी और समाज पर बोझ बन जाय। इसी कारण इस स्वधर्म का विधान धर्मशास्त्र प्रणेताओं द्वारा धर्म और चौदह विद्याओं के मूलाधार वेद, पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र के आधार पर निर्धारित किया गया। इन मनीषियों को ही 'धर्म-वक्ता' अथवा धर्मोपदेशक कहा गया है। इनमें निम्नलिखित प्रमुख पुरुष थे--

वक्तारो धर्मशास्त्राणां मनुर्विष्णुर्यमोऽङ्गिराः ।।

गरुड़ १। ९३। ३

वशिष्ठदक्षसंवर्त्ताः शातातपपराशराः।
आपस्तम्बोशनसौ व्यासः कात्यायन बृहस्पती ।।

वही १। ९३। ४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गौतमः शंखलिखितौ हारीतोऽत्रिऋषिस्तथा ।
एते विष्णुसमाराध्या जाता धर्मोपदेशकाः ।।

वही १ । ९३ । ५

ये भारत के प्रसिद्ध स्मृतिकार हैं । इनमें मनु,[१] याज्ञवल्क्य[२] और पराशर[३] के धर्म शास्त्रों से गरुड़ पुराण विशेष कर प्रभावित हुआ है । गरुड़ बताता है—

पराशरोऽब्रवीद्व्यासं धर्मं वर्णाश्रमादिकम् ।
कल्पे - कल्पे क्षयोत्पत्तिः क्षीयन्ते न ह्यजादयः ।।

गरुड़ १ । १०७ । १

श्रुतिः स्मृतिः सदाचार यः कश्चिद्वेदर्कत्तृकः ।
वेदाः स्मृता ब्राह्मणादौ धर्मा मन्वादिभिः सदा ।।

वही १ । १०७ । २

इसी प्रकार याज्ञवल्क्य की भी महनीयता मानी गई है—

याज्ञवल्क्येन वै पूर्वं धर्मः प्रोक्तःकथं हरे ।
तन्मे कथय केशिघ्न यथातत्त्वेन माधव ।।

गरुड़ १ । ९३ । १

हरि कहते हैं:—

याज्ञवल्क्यं नमस्कृत्य मिथिलायां समस्थितम् ।
अपृच्छनृषयो गत्वा वर्णधर्मानशेषतः ।।

वही १ । ९३ । २

इस वर्ण-धर्म का प्रवंतन मध्यदेश में हुआ था जहाँ कृष्ण-मृग स्वभावतः अबाध गति से विचरण करता था । इसीलिये इसे धर्म देश भी कहा गया है । सम्भवतः इसी कारण शाक्य-मुनि बुद्ध ने भी अपना धर्म चक्र प्रवर्तन इस धर्म देश के पवित्र मृगवन में किया था ।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र (ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा वर्णास्तु) चार वर्ण हैं और इनमें पहले के तीन—ब्रह्म, क्षत्रिय, विश् (वैश्य)—द्विज कहलाते हैं (आद्यास्त्रयो द्विजाः) ।[४] द्विजों का मुख्य कर्तव्य वेद पढ़ना, तप, यज्ञ और शुभ कर्म करना है ।[५] इसी प्रकार चार आश्रम—ब्रह्मचारी, गृही, वनी और

१—गरुड़ १ । १०७ । २
२—वही १ । ९२ । १७; पूर्वार्द्ध अ० १०५, १०६
३—वही १ । ९३ । १०
४—वही १ । ९४ । २५; १ । १०७ । १

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यति हैं। चारों वर्णों और चारों आश्रमों के अपने-अपने धर्म हैं। इन धर्मों और नियमों का पालन करता हुआ ही विष्णु भक्ति के द्वारा ही मनुष्य कर्म बन्धन मुक्त होकर उसी परमेश्वर से एकता प्राप्त करता है—

वर्णाश्रमाचारवतापुरुषेणपरः पुमान्।
विष्णुराराध्यते पन्था नान्यस्तत्तोषकारकः॥

गरुड़ १।२२१।७

इस प्रकार हिन्दू-सामाजिक व्यवस्था का धर्म से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है।

वर्णधर्म

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ही चातुर्वर्ण्य संस्था के अंग थे (गरुड़ २।२९।१४-१५)। इनके पृथक्-पृथक् स्वजाति[1] के अनुरूप स्वकर्म[2] थे। स्वधर्म ही उसके स्वेच्छाचार, अनाचार को रोकने की नियामिका शक्ति थी। इसे ही स्वकर्म-बन्धन[3] कहा गया है। प्राचीन भारत के सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक जीवन में स्वधर्म का विशेष महत्व है।

विप्राद्यैः स्वेनधर्मेण तद्धर्मं व्यास वै श्रुण।

गरुड़ १।४९।१

यजनयाजनं दानं ब्राह्मणस्य प्रतिग्रहः।
अध्यापनञ्चाध्ययनं षट कर्माणि द्विजोत्तमे॥

वही १।४९।२

दानमध्ययनं यज्ञो धर्मः क्षत्रियवैश्ययोः।
दण्डस्तथा क्षत्रियस्य कृषिवैश्यस्य शस्यते॥

वही १।४९।३

शुश्रुषैव द्विजातीनां शूद्राणां धर्मसाधनम्।
कारुकर्म तथा जीवोऽपाकयज्ञोऽपिधर्मतः॥

वही १।४९।४

ब्राह्मण—यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना और दान लेना, अध्यापन व अध्ययन करना ही ब्राह्मण के छः कर्म बताये गये हैं।

१—गरुड़ २।१४।३९
२—वही २।१२।३१
३—वही २।१३।१६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यज्ञ करना, दान देना और पढ़ना क्षत्रिय और वैश्य के सामान्य धर्म थे। क्षत्रिय का दण्ड धारण करना और वैश्य का कृषि करना इन दोनों वर्णों—क्षत्रिय और वैश्य—के क्रमश: विशिष्ट धर्म थे।

द्विजातियों—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—की सेवा करना ही शूद्र का मुख्य धर्म था। शिल्प कार्य करना तथा धर्म पूर्वक अपाक-यज्ञ भी शूद्र का धर्म था।

इस प्रकार यज्ञ करना, अध्ययन और दान देना वैश्य तथा क्षत्रिय के सामान्य धर्म थे; विप्र (ब्राह्मण) के लिये दान लेना, यज्ञ कराना और पढ़ाना अधिक काम थे; क्षत्रिय का प्रधान कर्तव्य प्रजा की रक्षा करना था; वैश्य का मुख्य काम कृषि, वाणिज्य, पशु-पालन और महाजनी का पेशा था और शूद्र का प्रधान कर्म द्विज-शुश्रूषा था। ब्राह्मण के लिये यज्ञ त्याज्य न थी। इन सामान्य और विशेष वर्णधर्मों के अतिरिक्त अहिंसा, सत्य, अस्तेय चोरी न करना), शौच (शुद्धता), इन्द्रि-संयम, दम (विकारों और व्यसनों—काम, क्रोध आदि के वेग का नियन्त्रण), क्षमा, सरलता और दान देना सभी के धर्म थे। सभी के लिये स्वधर्म और स्ववर्ण के अनुसार ही ईमानदारी और दुष्टता रहित रूप से जीविका चलाना, वृद्ध, दु:खी और बोझ से लदे हुए लोगों को रास्ता देना था।[१] इस प्रकार स्पष्ट है कि हिन्दू समाज संस्थान मानव-मैत्री और मानव कल्याण पर आधारित था। वह न तो किसी से बैर-विरोध ही रखता था और न किसी की निन्दा ही करता था।

ये धर्म सामान्य परिस्थितियों के लिये ही थे। विशेष परिस्थितियों में इनमें कुछ परिवर्तन भी हो सकते थे और उसे ही आपद्धर्म कहा गया है।

वृद्धार्त्तानां समादेय: पन्था वै भारवाहिनाम्।
इज्याध्ययनदानादि वैश्यस्य क्षत्रियस्य च॥ २६॥

प्रतिग्रहोऽधिको विप्रे याजनाध्यापने तथा।
प्रधानं क्षत्रिये धर्म: प्रजानां प्रतिपालनं॥ २७॥

कुषीद कृषिवाणिज्यं पशुपाल्यं विश:स्मृतम्।
शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा द्विजो यज्ञं न हापयेत्॥ २८॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियसंयम:।
दम: क्षमाऽऽर्जवं दानं सर्वेषां धर्मसाधनम्।
आचरेत्सदृशीं वृत्तिमजिह्मामशठां तथा॥ २९॥

१—गरुड़ पु० १। ९६। २६-२९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आपद्धर्म—आपत्ति काल में (गरुड़ १ । १०६ । १८-१९) ब्राह्मण क्षात्र अथवा वैश्य कर्म को भी कर सकता है (क्षात्रेण कर्मणा जीवेद्विशां वाप्यापदि द्विजः) ।[१] वैश्य-वृत्ति में भी लवण को नहीं बेच सकता था और इसी प्रकार कृषि आदि तो करे परन्तु घोड़ों का बेचना भी ठीक न था (गरुड़ १ । १०६ । २४) । धर्म में लगा हुआ राजा विप्रादिकों के लिये वृत्ति करे (गरुड़ १ । १०६ । २५) ।

क्षत्रिय के लिये शत्रु को हराकर पृथिवी का पालन करना आवश्यक था (गरुड़ १ । १०७ । ५) । मूर्ख ब्राह्मण, युद्ध-बिमुख क्षत्रिय, जड़-वैश्य और पढ़े हुए शूद्र को त्याग देना ही उचित था (गरुड़ १ । १०८ । ५) । ब्राह्मण ही समाज-श्रेष्ठ (ब्राह्मणोऽपि मनुष्याणाम्)[२] था । परन्तु उनकी श्रेष्ठता उनकी कर्म निष्ठा और सदाचार पर ही आधारित थी (गरुड़ १ । ९९ । ३-६) । क्षत्रिय की श्रेष्ठता युद्ध से पराङ्मुख न होकर[३] रण में ही सामने युद्ध करते हुए मर जाने (संयुगे संमुखे हताः)[४] में थी ।

ऊपर कहा गया है कि इन चार वर्णों के अतिरिक्त पंचमवर्ण और अन्य हीन जातियाँ उत्पन्न हो गईं थीं । गरुड़ पुराण में सच्छूद्र का उल्लेख (गरुड़ १ । १०५ । १४)मिलता है। जो शूद्र वर्ण व्यवस्था के नियमों का पालन करते थे, उनको ही सच्छूद्र कहा गया है ।

चातुराश्रम

आश्रम व्यवस्था भी मनुष्य के वैयक्तिक रूप को विकसित कर समाज को उन्नत बनाती है । आश्रम चार हैं—ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वाणप्रस्थश्च भिक्षुकः ।[५] भिक्षु को सन्यासी[६] और यति[७] तथा परिव्राड[८] भी कहा गया है ।

आश्रमधर्माः

भिक्षाचर्य्याथशुश्रूषा गुरोः स्वाध्याय एव च ।
संन्यास कर्माग्नि कार्यञ्च धर्मोऽयं ब्रह्मचारिणः ।। गरुड़ १।४९।५

१—गरुड़ १ । १०६ । २१
२—वही १ । १११ । ५३
३—वही २ । १३ । १०
४—वही २ । १७ । ३६
५—वही १ । १५ । १२१ (१)
६—वही १ । १५ । १२१ (२)
७—वही १ । १२२ । १; २ । ४ । ४५
८—वही १ । २०५ । २१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सर्वेषामाश्रमाणाञ्च द्वैविध्यन्तु चतुर्विधम् ।
ब्रह्मचार्युपकुर्वाणों नैष्ठिको ब्रह्मतत्परः ।। वही १।४९।६

योऽधीत्य विधिवद्वेदान्गृहस्थाश्रममाव्रजेत् ।
उपकुर्वाणको ज्ञेयो नैष्ठिको मरणान्तिकः ।। वही १।४९।७

अग्नयोऽतिथिशुश्रूषा यज्ञो दानं सुरार्चनम् ।
गृहस्थस्य समासेन धर्मोऽयं द्विजसत्तम् ।। वही १।४९।८

उदासीनः साधकश्च गृहस्थो द्विविधो भवेत् ।
कुटुम्बभरणो युक्तः साधकोऽसौ गृही भवेत् ।। वही १।४९।९

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य त्यक्त्वा भार्याधनादिकम् ।
एकाकी यस्तु विचरेदुदासीनः स मौक्षिकः ।। वही १।४९।१०

भूमौमूलफलाशित्वं स्वाध्यायस्तप एव च ।
संविभागो यथान्यायं धर्मोऽयं वनवासिनः ।। वही १।४९।११

तपस्तप्यति योऽरण्ये यजेद्देवान्जुहोति च ।
स्वाध्याये चैव निरतो वनस्थस्तापसोत्तमः ।। वही १।४९।१२

तपसा कर्षितोऽत्यर्थं यस्तु ध्यानपरो भवेत् ।
संन्यासी स हि विज्ञेयो वानप्रस्थाश्रमे स्थितः ।। वही १।४९।१३

योगाभ्यासरतो नित्यमारुरुक्षुर्जितेन्द्रियः ।
ज्ञानाय वर्तते भिक्षुः प्रोच्यते पारमेष्ठिकः ।। वही १।४९।१४

यस्त्वात्मरतिरेव स्यान्नित्यतृप्तो महामुनिः ।
सम्यक् चन्दनसम्पन्नः स योगी भिक्षुरुच्यते ।। वही १।४९।१५

भैक्ष्यं श्रुतञ्च मौनित्वं तपो ध्यानं विशेषतः ।
सम्यक् च ज्ञान वैराग्यं धर्मोऽयं भिक्षुके मतः ।। वही १।४९।१६

ज्ञान सन्यासिनः केचिद् वेदसन्यासिनोऽपरे ।
कर्म सन्यासिनः केचित्त्रिविधः पारमेष्ठिकः ।। वही १।४९।१७

योगी च त्रिविधो ज्ञेयो भौतिकः क्षत्र एव च ।
तृतीयोऽन्त्याश्रमी प्रोक्तो योगमूर्तिसमाश्रितः ।। वही १।४९।१८

प्रथमा भावना पूर्वे मोक्षे दुष्कर भावना ।
तृतीये चान्तिमा प्रोक्ता भावना पारमेश्वरी ।। वही १।४९।१९

इस प्रकार आश्रम-धर्म सामाजिक के व्यक्तित्व का क्रमिक विकास है ।

ब्रह्मचारी, का धर्म विधिवत वेदाध्ययन करना था । गुरु-सेवा, भिक्षाचर्या

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और स्वाध्याय तथा ब्रह्म (सर्वेश्वर-सर्वेभ्यो वृहत्वादिति ब्रह्म) पर चिन्तन करता हुआ गुरुकुल में रहता था। त्याग (सन्यास) मय जीवन बिताते हुए अग्निकार्य (हवन-होम) करना उसका धर्म था। इस प्रकार जीवनसंघर्ष के लिये मनुष्य अपने आपको तैयार करता था।

ब्रह्मचारी दो प्रकार के होते थे। एक प्रकार के ब्रह्मचारी वह होते थे जो विधि-पूर्वक वेदों का अध्ययन करने के बाद गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते थे। दूसरे प्रकार के ब्रह्मचारी वह थे जो जीवन भर मृत्युपर्यन्त ब्रह्मचारी रहते थे और इन्हें नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहते थे।

गृहस्थ विधि (गरुड़ १। ९६। १)

वेदों के पढ़ने के बाद ब्रह्मचारी विवाह (दारसंग्रह[१], दारपरिग्रह[२], पाणिग्राह[३] करने के बाद ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था[४]। उसे गृही (गरुड़ १। ८८। ५) की उपयुक्त संज्ञा दी गई है। विवाह भी एक विधान था और भार्या सहधर्मचारिणी थी।

गृहस्थ-धर्म

गृहस्थों के भी धर्म स्मृतियों में कहे गये हैं (गृहस्थानां स्मृतौ प्रोक्तान्धर्मान्)।[५] ऊपर उद्धृत आश्रम धर्मों और रुचि की कथा से ज्ञात होता है कि अग्निकार्य, अतिथि शुश्रूषा, यज्ञ, दान और सुरार्चनम्, गृहस्थ के मुख्य धर्म थे (गरुड़ १। ४९। ८)। गृहस्थ भी दो प्रकार के—उदासीन और साधक—होते थे। जो कुटुम्ब भरण में लगा होता था, वह साधक गृही कहलाता था। तीनों ऋणों—पितृ-ऋण, देव-ऋण और ऋषि-ऋण—से मुक्त होकर भार्या को छोड़ कर जो अकेला ही मोक्ष की कामना से घूमता रहता है, उसे उदासीन गृहस्थ कहते हैं (गरुड़ १। ४९। ९-१०)। इस प्रकार से भी कुटुम्ब भरण और ऋण-बन्ध से मुक्त होना गृहस्थ के परम धर्म थे।

१—गरुड़ १। ८८। ४, १०, २४; १। ४८। ३
२—वही १। ८९। ९
३—वही १। ९५। १२
४—वही १। ९५। १-२
५—वही २। २४। ३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अग्नि-कार्य

अग्नि की पूजा और उपासना प्राचीन और अत्यन्त महत्वपूर्ण कही गई है (ऋग्वेद, १ । १ । १) । अग्नि पाँच कही गई हैं—उदर की अग्नि गार्हपत्य, पृष्ठ देश की दक्षिण, मुख की अग्नि-आहवनीय, शिर व्यापी और सत्य में प्रतिष्ठित । इन पंचाग्नियों को जानने वाला ही आहिताग्नि है ।[1]

गृहाश्रम, गृहस्थ अथवा गृही की महत्ता का परिचय प्रजापति रुचि के वृत्तान्त से भी ज्ञात होती है । माया, मोह और ममत्व से रहित रुचि देश भर में निस्संग भाव से गृह-विहीनावस्था में घूमते रहते थे । उनके पितरों ने उन से कहा कि उन्होंने विवाह न कर स्वर्गापवर्ग के सेतु स्वरूप गृहस्थाश्रम की उपेक्षा कर पुण्य नहीं किया । गृही ही देवताओं, पितरों, ऋषियों और अन्य अर्थी व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे । 'स्वाहा' से देवताओं को और स्वधा से पितरों को तथा अन्न दान से सेवकों और अतिथियों की तृप्ति करते थे । परन्तु यही नहीं उसने (रुचि ने) पुत्र को भी उत्पन्न न कर नरक का ही प्रबन्ध कर लिया (गरुड़ १ । ८८ । १-९) । रुचि ने फिर भी विवाह और परिग्रह को पाप माना और आत्मज्ञान के महत्व को बताया (गरुड़ १ । ८८ । १०-१३)। पितरों ने पुन: गृहस्थ के करणीय पंचयज्ञों की महिमा बताई (गरुड़ १ । ८८ । १४-१८) । रुचि ने वैदिक कर्ममार्ग को हेय बताया (गरुड़ १ । ८८ । १९) । पितरों ने फिर भी गृहस्थाश्रम में प्रवेश होने के लिये बल पूर्वक कहा—

तस्माद्वत्स कुरुष्व त्वं विधिवद्दारसंग्रहम् ।
आजन्म विफलं तेऽस्तु असम्प्राप्यान्यलौकिकम् ।।

गरुड़ १ । ८८ । २४

अन्त में रुचि को पितरों की बात माननी ही पड़ी । इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय समाज में गृहस्थाश्रम का कितना महत्व था । स्पष्टत: गृहस्थ धर्म अत्याज्य था (असंत्यज्य च गार्हस्थ्यं) ।[2] इसका महत्व गृही के कर्तव्यों पर ही आधारित था । इस वृत्त से गृहस्थ के धर्मों पर भी प्रकाश पड़ता है । गृही के लिये नित्य स्मार्त कर्म—अग्निहोत्रादि—करना आवश्यक था (गरुड़ १ । ९६ । ७) । होम आदि यज्ञों[3] में पंचयज्ञों का विशेष महत्व था । ये पंच यज्ञ समाज कल्याण से सम्बद्ध थे—

१—गरुड़ १ । २०५ । १४८-१४९
२—वही १ । २२२ । २६
३—वही २ । ९ । २८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पंचयज्ञ

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ।।

गरुड़ १ । २०५ । १४०

अर्थात् पढ़ाना ब्रह्मयज्ञ, तर्पण करना पितृयज्ञ, होम करना देवयज्ञ, बलि देना भूत-यज्ञ और अतिथियों की सेवा करना ही मनुष्य-यज्ञ हैं । इस प्रकार पंचयज्ञ करना गृहस्थ का महान धर्म था ।[1] अतिथि-पूजा भी महत्वपूर्ण धर्म था । साथ ही दान देना और देव-पूजा भी गृहस्थ के धर्म थे । तीन ऋणों से मुक्त होना और कुटुम्ब का पोषण-पालन भी गृहस्थ के आवश्यक धर्म थे ।

तीन-ऋण (१ । ८५ । २२)

देव, ऋषि और पितरों के उद्देश्य से किया हुआ यथाक्रम यज्ञ करना और तत्सम्बन्धी ऋणों से मुक्त होना गृहस्थ आश्रम में ही सम्भव था । सन्तानोत्पत्ति द्वारा पितृ-ऋण, स्वाध्याय और वेदाध्ययन द्वारा ऋषि ऋण तथा यज्ञों द्वारा देव ऋण चुकाया जा सकता है । इनका समाज पर कितना महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है । समाज का सदस्य अपने समुदाय और राष्ट्र के कल्याण से परिचित था ।

सम्पूर्ण समाज का बोझ गृहस्थों के ही कन्धों पर चलता था । अतः गृहस्थ-धर्म पर ही समाज की अच्छाई और बुराई निर्भर थी । नीचे एक गृहस्थ के आदर्श जीवन के कर्तव्य कर्म बताये गये हैं—

गुरु को धन देकर, स्नान कर और उसकी आज्ञा से ब्रह्मचर्य समाप्त कर युवती-कान्ता स्त्री के साथ विवाह करे ।[2] अग्निहोत्रादि से अग्नि कार्य सदैव करता रहे ।[3]

शौच विधि से निवृत्त होकर प्रातः और संध्या को उपासना तथा संध्या करे । अग्नि में होम कर सूर्य देवता का मन्त्र-जाप करे । वेदों और शास्त्रों का अध्ययन कर योग-क्षेम के लिये गृहस्थ ईश्वर (शिव) की शरण में आये । स्नान करने के बाद देवताओं और पितरों का तर्पण तथा अर्चन करे । अपनी शक्ति के अनुसार वेद, पुराण, इतिहास, जप यज्ञ और आध्यात्मिकी विद्या का

१—गरुड़ १ । १०५ । ५५
२—वही १ । ९५ । १-२
३—वही १ । ९६ । ७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मनन करे। पंचयज्ञों को करे। भूत (प्राणियों), पित्र, देवता, ब्रह्म और मनुष्यों के लिये ही ये महायज्ञ हैं। अग्नि में आहुति देकर देवताओं को, फैला कर या फेंक कर प्राणियों के लिये, भोजन को भूमि पर रख कर चाण्डाल व कौओं के लिये तथा पितरों और मनुष्यों के लिये अन्न और जल नित्य देना चाहिये। नित्य ही स्वाध्याय करना चाहिये। भोजन अपने ही लिये न बनाना चाहिये। अग्नि, बच्चों, वृद्ध, गर्भिणी, आतुर (भूखे), कन्या और अतिथि के खा लेने पर ही शेष भोजन को पति-पत्नी खायें। प्राणाग्निहोम विधि से भोजन की निन्दा न करते हुए खायें। भोजन के पूर्व अतिथियों को अवश्य खिलाया जाय, सव्रती भिक्षु को भिक्षा भी दी जाय और जो भी आ जाय उसे भोजन कराया जाय।

प्रति वर्ष स्नातक, आचार्य और राजा की पूजा करनी चाहिये।

शेष दिन को शिष्टों और बन्धुओं के साथ व्यतीत करना चाहिये। शाम की सन्ध्या और होम करने के बाद भृत्यों के साथ भोजन करे। ब्रह्म मुहूर्त में उठ कर आत्म कल्याण पर विचार करे और ब्राह्मणों का धनादि से सम्मान करे। इस प्रकार गृहस्थ का दैनिक कार्य[1] ही बताया गया है।

वाणप्रस्थाश्रम

वाणप्रस्थी[2] अपनी स्त्री को पुत्रों को सौंप कर या साथ ही ले जा कर वन को चला जाये। वह ब्रह्मचर्य मय जीवन को अग्निकार्य करता हुआ शम, दम, क्षमा के साथ विप्र, देवता, पितृ तथा अतिथियों की अर्चना करता रहे। जटाओं और बालों को रखता हुआ तर्पण, दान्त (संयमी) रूप से त्रिसवन, और स्नान कर प्रतिग्रह से निवृत्त रहे। स्वाध्याय, ध्यान व सर्व-भूत-हित में लगा हुआ दिन या महीने के बीच में अपना स्वार्थ-परिग्रहण करे। भूमि पर बिना कुछ बिछाये हुए सोये, कर्मों को फल प्राप्ति की आकांक्षा किये बिना ही करे। गर्मी में पंचाग्नि के बीच और वर्षा में चबूतरे पर रहे। हेमन्त में भीगे कपड़ों से योगाभ्यास करता हुआ समय व्यतीत करे। क्रोध रहित सभी से संतुष्ट रहे।[3]

भिक्षु धर्म

भिक्षोर्धर्मं प्रवक्ष्यामि तं निबोधत सत्तमाः ।। गरुड़ १ । १०३ । १

१—गरुड़ १ । ९६ । ७-२५
२—वही १ । १२२ । १
३—वही, पूर्वा० अध्याय० १०२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वानप्रस्थी आगे चलकर भिक्षु-जीवन-सन्यास का आश्रय लेता है। सर्व-भूतहित में लगा हुआ वह शान्त होकर त्रिदण्डी वेश में कमण्डलु लेकर सभी प्रयत्नों को छोड़ कर भिक्षा के लिये ही गाँव में जाय। सायंकाल में प्रमाद रहित होकर भिक्षाटन करे और लोलुपता से रहित होकर गाँव में बोझ से लदे भिक्षुओं द्वारा अलक्षित हुए हो जाय! परमहंसी या एकदंडी रहे। योग द्वारा प्राणों का त्याग करे। योग का अभ्यास करने से थोड़ा भी खा कर परम सिद्धि को प्राप्त करता है।[१]

इस प्रकार आश्रम धर्म भी मनुष्य को धर्म मार्ग से ले जाता हुआ नर-पशु से नर-मानव बनाकर मोक्ष के गन्तव्य स्थान तक पहुँचाता है।

संस्कार

संस्कार का वही अर्थ है जो संस्कृति का अर्थ है। इसका अर्थ और प्रयोजन शुद्धि है। इसका उद्देश्य संस्कृत और शुद्ध मनुष्य-स्त्री का निर्माण करना है, जिसकी अच्छाई और बुराई पर समाज की ही उन्नति और अवनति निर्भर करती है। ये संस्कार भी सामाजिक और धार्मिक क्रियायें हैं जिनको मनुष्य गर्भाधान से लेकर मृत्यु के बाद श्मशान तक करता रहता है (निषेकाद्या श्मशानान्तास्तेषां वै मन्त्रत: क्रिया)।[२] बीज-गर्भ से उत्पन्न दोष को दूर करने के लिये ये क्रियायें की जाती हैं (एवमेन: शमं याति बीजगर्भसमुद्भवम्)।[३] ये हैं :—

गर्भाधान—ऋतु काल में गर्भ धारण करने की क्रिया को गर्भाधान (गर्भाधान-मृतौ) कहते हैं।

पुंसवनं —पुंसत्व (पुरुष) की उत्पत्ति और स्पन्दन (हिलने-डोलने) के पहले की क्रिया को पुंसवन कहते हैं (पुंस: सवनं स्पन्दनात्पुरा)। यह तीसरे मास में किया जाता है।

सीमन्त: —यह गर्भ के छठे या आठवें मास में (षष्टेऽष्टमे वा सीमन्त:)।

जात कर्म–(गरुड़ १। ५९। ४४) जन्म लेने पर जात कर्म होता है (प्रसवो जातकर्म च)।[४]

१—गरुड़ पूर्वा० अध्याय १०३

२–वही १। ९३। १०

३–वही १। ९३। १३

४–वही १। ९३। ११

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नाम करण–(गरुण १ । १०७ । १६) ग्यारवें दिन नाम करण होता है (अहन्येकादशे नाम)।

निष्क्रम —चौथे मास में निष्क्रमण होता है (चतुर्थे मासि निष्क्रमः)।

अन्नप्राशन—छठे महीने में अन्नप्राशन होता है (षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि)।

चूड़ा —(गरुड़ १ । १०७ । १६; १ । १२८ । १२) कुल की रीति के अनुसार चूड़ाकरण करना चाहिए (चूड़ांकुर्य्याद्यथाकुलं)।[१]

उपनयन —संस्कार व्यवस्था में उपनयन का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इसी संस्कार से मनुष्य का द्विजत्व प्रारम्भ होता है और यहीं से उसका गुरु के सम्पर्क से एक नया जीवन प्रारम्भ होता है।

ब्राह्मण के पुत्र का उपनयन आठवीं वर्ष में और क्षत्रिय-बालक का उपनयन ग्यारहवीं वर्ष में तथा वैश्य-पुत्र का उपनयन कुलाचार पर निर्भर है। गुरु बालक का उपनयन कर विधिपूर्वक शौचाचार की शिक्षा देते हुए वेद पढ़ाये। कान पर जनेऊ चढ़ाकर दिन में उत्तर की ओर मुख कर और रात्रि को दक्षिण की ओर मुख कर पेशाब-पाखाना करे।[२] इसी प्रकार अन्य शौच कार्य, स्नान, मार्जन, प्राणायाम, गायत्री जप और प्रातः सायं होम करे।[३] वृद्धों का अभिवादन करता हुआ गुरु की उपासना करता हुआ स्वाध्याय करे। मन, वाणी और कार्य से गुरु का हित करे और गुरु के बुलाने पर पढ़े।[४]

दण्ड, मृगचर्म, उपवीत और मेखला को धारण करे तथा द्विजातियों से भिक्षा ग्रहण करे। क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों से भिक्षा ग्रहण करे। हवन करने के बाद विनीत भाव से गुरु की आज्ञा लेकर 'आपोशान' (मंत्र विशेष जो भोजन के पहले और बाद में पढ़े जाते हैं) क्रिया पूर्वक भोजन करे। मधु, मांस आदि का त्याग करे।[५]

गुरु भी वास्तव में वही है जो संस्कार की क्रियायों को करने के बाद ही बालक को वेद दे देता है (स गुरुर्य क्रियाः कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति)।[६] जो बालक का उपनयन कर वेद दान करता है आचार्य कहलाता है और यज्ञ

१—गरुड़ १ । ९३ । १२
२—वही १ । ९४ । १-३
३—वही १ । ९४ । ४-१२
४—वही १ । ९४ । १३-१४
५—वही १ । ९४ । १५-१९ (१)
६—वही १ । ९४ । १९ (२)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करने वाला ऋत्विक् तथा एक ही बार पढ़ाने वाला उपाध्याय कहलाता है।[१] ये सभी यथापूर्व पूज्य हैं और इनसे अधिक मान्या माता है। प्रत्येक वेद के अध्ययन में पाँच या बारह वर्ष का ब्रह्मचर्य होता है।[२] ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का उपनायनिक काल १६ से २२ या २४ वर्ष तक रहता है। इसके बाद वे सभी धर्मों से गिर जाते हैं। सावित्री पतित ही व्रात्य कहलाते हैं।[३]

केशान्त (गरुड़ १ । ९४ । २२)

मौञ्जिबन्धन (गरुड़ १ । ९४ । २४)

पहले माता से जन्म हुआ था और दूसरा जन्म मौञ्जिबन्धन से होता है। इसीलिये ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को द्विजाति कहते हैं।[४] द्विजाति का मुख्य कर्तव्य समाज के उच्च कर्तव्यों—वेदों के पढ़ने, यज्ञ, तप, शुभ कर्म, देव-तर्पण और बौद्धिक कार्य तथा साहित्यिक प्रवृत्तियों—पुराण, इतिहास, नाराशंसी गाथाओं का अध्ययन और स्वाध्याय तथा यज्ञादि करना था।[५]

नैष्ठिक ब्रह्मचारी सदैव आचार्य के निकट रहकर उसके न होने पर उसके पुत्र, पत्नी और अग्नि की सेवा करता हुआ विजितेन्द्रिय रूप से ब्रह्मलोक की प्राप्ति करता है।

वेदव्रत—(गरुड़ १ । १२८ । १२) भी संस्कार माने गये हैं।

स्नान (या समावर्तन)—ब्रह्मचर्य की समाप्ति के बाद स्नान कर ब्रह्मचारी गुरु की आज्ञा से गृहस्थ धर्म में प्रवेश करे।[६]

दारसंग्रह—इसके बाद वह विधिवत् युवती कान्ता स्त्री के साथ विवाह करे।[७]

अग्निसंस्कार (गरुड़ १ । १०७ । १४) अन्तिम संस्कार था।

सुकृत-दुष्कृत को भोगने के बाद किसी बहाने या व्याधि से प्राणी मृत्यु को प्राप्त होता है। भूमि को गोबर से लीप कर, तिल, कुशों को बिछा कर उस

१—गरुड़ १ । ९४ । २०
२—वही १ । ९४ । २१
३—वही १ । ९४ । २२-२३
४—वही १ । ९४ । २४
५—वही १ । ९४ । २५-३०
६—वही १ । ९५ । १-२
७—वही १ । ९५ । २-३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मृत प्राणी के मुँह में सोना रख कर तुलसी या शालग्राम ... कर, सामादि मुक्तिप्रदसूक्तों के पाठ के साथ ही दो कपड़े, कुंकुं... माला से युक्त द्वार से ले जाये। पुत्र, बान्धव, विप्र और पुर... बान्धवों के साथ पुत्र अपने कन्धों पर ढोकर पिता को श्मशान में ... अदग्ध भूमि में पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके रखे। चन्दन, तुलसी व ... की लकड़ी से दाह कर्म करे। छः पिण्ड दे। मृत स्थान, द्वार, चत्वर, विश्रा... काष्ठचयन और सञ्चयन स्थान पर करे। दस दिन तक प्रेत को पिण्ड, जलांजलि नित्य देना चाहिये। इसी प्रकार ११वें और १२वें दिन भी दीप, अन्न, जल, वस्त्र आदि दिया जाता है। धीरे-धीरे प्रेत यमपुर को अपना घर छोड़ कर जाता है।[1] इस प्रकार जन्म होने के पहले से लेकर मनुष्य के मरने के बाद तक जिस समाज में व्यक्तियों के सुधरने की योजना रही हो वह समाज और उसके निर्माता अवश्य ही महान थे।

संस्कारों की संख्या विभिन्न ऋषियों के अनुसार अलग-अलग रही है।[2] गरुड़ इनकी संख्या न देकर प्रमुख संस्कारों का वर्णन करता है। गरुड़ पुराण की संस्कार-व्यवस्था पर वसिष्ठ का प्रभाव परिलक्षित होता है—

जातकर्मादि संस्कारं वसिष्ठो मुनिरब्रवीत् ॥

गरुड़ १। २१४। १९

विवाह

विवाह[3], दार संग्रह[4], दारोपसंग्रह[5], दारपरिग्रह[6] अथवा पाणि ग्रहण[7] एक पवित्र और करणीय कर्म था जिस पर समाज का जीवन निर्भर करता है। रुचि प्रजापति का जीवन वृत्त यही सिद्ध करता है। इसकी महनीयता के कारण ही इसे नियमों और मर्यादाओं से बाँध दिया गया है।

१–गरुड़ पूर्व० अध्याय ८४

२–दृष्टव्य—डा० राजबली पाण्डे कृतं हिन्दू-संस्कार; काणे-हिन्दू धर्मशास्त्र, २। १, पृ० १९३-१९४; पी० के० आचार्य, एलीमेन्ट्स ऑफ़ हिन्दू कल्चर०, पृ० ११-२४

३–गरुड़ १। ९५। ७ आदि

४–वही १। ९५। ५

५–वही १। ८८। ४, २४; १। ८९। ३

६–वही १। ८९। ९

७–वही १। ९५। १२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्त्री लक्षणवती, अनन्यपूर्विका (कुमारी तथा किसी दूसरे को न सोचने वाली), कान्ता और असपिण्डा तथा युवती होनी चाहिये मनुष्य को अरोगिणी, भ्रातृमती, असमान और आर्ष गोत्र वाली माता से पाँच पीढ़ी ऊपर और पिता से सात पीढ़ी ऊपर वाली कन्या से विवाह करना चाहिये। जो, पाँच और नौ श्रोत्रियों के महाकुलों से सम्बद्ध थी। पुराण दृढ़ता के साथ कहता है कि विद्वान, सम्माननीय, श्रोत्रिय श्रेष्ठ है न कि दोषयुक्त।[1] गरुड़ द्विजातियों का शूद्रा स्त्रियों के साथ विवाह करने के पक्ष में नहीं है। यह सम्बंध तो स्वयं ही हो जाता है[2]। तीन वर्ण क्रमागत रीति से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र जन्मा भार्या ग्रहण करें।[3] इस प्रकार प्रतिलोमानुलोम सम्बन्ध से संकर जातियों की उत्पत्ति हुई।[4] इससे यह सिद्ध होता है कि प्रतिबन्धों और नियमों के बावजूद असवर्णीय विवाह प्रचलित थे। विवाह सम्बन्धों को मान्यता देने के लिये ही आठ प्रकार के विवाह प्रसिद्ध ही हैं। गरुड़ पुराण भी इन आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख करता है। ये इस प्रकार है—

ब्राह्म

ब्राह्मो विवाह आहूय दीयते शक्त्यलंकृता।
तज्जः पुनात्युभयतः पुरुषानेकविंशतिम् ॥

गरुड़ १।९५।७

ब्राह्म विवाह अपनी सामर्थ्य के अनुसार लड़की को अलंकृत कर वर को बुलाकर देने को कहते हैं और इस विवाह से उत्पन्न संतान इक्कीस पीढ़ियों को पवित्र करती है।

दैव-आर्ष

यज्ञस्थायर्त्विजे दैवमादायर्षिस्तु गोयुगम्।
चतुर्दश प्रथमजः पुनात्युत्तरजश्च षट ॥

गरुड़ १।९५।८

परन्तु यज्ञ करते हुए ऋत्विक् को (अलंकृता) कन्या देना दैव विवाह और वर से गो-मिथुन लेकर कन्या-दान आर्ष विवाह कहलाता है।

१—गरुड़ १।९५।२-४
२—वही १।९५।५ : यदुच्यते द्विजातीनां शूद्रादारोपसंग्रहः।
न तन्मम मतं यस्मात्तत्रायं जायते स्वयं ॥
३—वही १।९५।६ : तिस्रो वर्णानुपूर्वेण द्वे तथैका यथाक्रमम्।
ब्राह्मण क्षत्रिय विशाद्भार्या वा शूद्रजन्मनः ॥
४—वही १।९६।१-६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दैव विवाह से उत्पन्न संतान १४ पीढ़ियों को और आर्ष विवाह विधि से उत्पन्न संतान ६ पीढ़ियों को तारती है।

प्राजापत्य

इत्युक्त्वा चरतां धर्मं सह या दीयतेऽर्थिने।
सकायः पावयेत्तज्जं षडवंश्यानात्मनासह ॥

गरुड़ १ । ९५ । १०

ऐसा कहते हुए कि एक साथ धर्म का आचरण करो जो अर्थी व्यक्ति को कन्या देता है प्राजापत्य विवाह कहलाता है। इस मिथुन से संजात संतान अपने सहित छः पीढ़ियों को पवित्र करता है।

आसुर-गान्धर्व-राक्षसो-पैशाच

आसुरो द्रविणादानाद गान्धर्वः समयान्मिथः।
राक्षसो युद्ध हरणात् पैशाचः कन्यकाच्छलात् ॥

गरुड़ १ । ९५ । १०

आसुर विवाह धन देने के कारण, गान्धर्व विवाह दोनों (कन्या और वर) की परस्पर समझौते-वादा (स्वेच्छा) के कारण, राक्षस विवाह युद्ध से हरण करने के कारण और पैशाच विवाह कन्या को छल से प्राप्त करने के कारण कहलाता है।

प्रारम्भ के चार प्रकार—ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्य तो ब्राह्मण के निमित्त हैं; उसी प्रकार गान्धर्व और राक्षस क्षत्रियों के लिये, आसुर विवाह वैश्य के लिये तथा अन्तिम, पैशाच विवाह, जो कि निन्दित है शूद्र के लिये कहा गया है—

चत्वारो ब्राह्मणस्याद्यास्तथा गान्धर्व राक्षसो।
राज्ञस्तथासुरो वैश्ये शूद्रे चान्त्यस्तु गर्हितः ॥

गरुड़ १ । ९५ । ११

अपने वर्ण की स्त्री के साथ विवाह को पाणिग्रहण कहा गया है, (असवर्णों की स्त्रियों में विवाह कर्म में, यदि उत्तम वर्ण का पुरुष और हीन वर्ण की कन्या से विवाह करे तो क्षत्रिय की कन्या को बाण का एक सिरा, और वैश्य की कन्या को सांटे (प्रतोद) का एक सिरा तथा ब्राह्मण की कन्या को कपड़े का एक सिरा पकड़ना चाहिये—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाणिग्राह्यः सवर्णासु गृह्णीत् क्षत्रिया शरम् ।
वैश्या प्रतोदमादद्याद्वेदने चाग्रजन्मनः ।।

गरुड़ १ । ९५ । १२

पिता, पितामह, भाई, कुलज और माँ कन्या दान करते हैं—पहले की मृत्यु होने पर बाद वाला कन्या-दान का उत्तरदायी होता है। (गरुड़ १ । ९५ । १३) । ऋतुकाल तक विवाह न करने पर वे भ्रूण हत्या के पापी होते हैं। इनके अभाव में कन्या स्वयंवर करती है (गरुड़ १ । ९५ । १४) । एक बार ही कन्या-दान होता है । उसका हरण करने वाला चोर के समान दण्ड्य है और दोष रहित कन्या का त्यागी भी दण्ड्य है; परन्तु सुदुष्टा कन्या का त्याग ही करना ठीक है (गरुड़ १ । ९५ । १५) ।

नियोग

नियोग प्रथा भी हिन्दू समाज की चैतन्यता का परिचायक है । पत्नी-भूमि और पति-बीज के संयोग से ही उत्पत्ति होती है । यदि क्षेत्र में बीज न पड़े तो उपज ही कैसे हो सकती है । "बड़े भाई की पत्नी को गुरुपत्नी के समान और छोटे भाई की स्त्री बड़े भाई को पुत्र वधू के समान मानी गई है । बड़ा भाई छोटे भाई की पत्नी के साथ और छोटा भाई बड़े भाई की स्त्री के साथ आपत्ति काल के अतिरिक्त नहीं जा सकता (मनु ९ । ५७-५८) । परन्तु सन्तान न हो तो पुत्र की इच्छा से भले प्रकार नियोग की हुई स्त्री को देवर या अन्य सपिण्ड से यथेष्ट संतान उत्पन्न करनी चाहिये (मनु ७ । ५९) ।

गरुड़ भी बताता है कि—

अपुत्रं गुर्वनुज्ञातो देवरः पुत्रकाम्यया ।
सपिण्डो वा सगोत्रो वा धृताभ्यक्तो ऋतावियात ।।

गरुड़ १ । ९५ । १६

आगर्भ संभवं गच्छेत्पतितस्त्वन्यथा भवेत् ।
अनेन विधिना जातः क्षेत्रपस्य भवेत्सुतः ।।

वही १ । ९५ । १७

गुरु (पिता) की आज्ञा लेकर देवर, सपिण्ड या सगोत्र पुरुष संतान रहित भ्रातृजा के साथ पुत्र की कामना से (न कि वासना से) शरीर में घी लगाकर ऋतुकाल के समय संभोग करे और गर्भ-धारण तक करे, अन्यथा (बाद में जाने पर या न जाने पर) पाप भागी होता है । इस प्रकार क्षेत्रप (दूसरे की भार्या में उत्पन्न किया हुआ) पुत्र की उत्पति होती है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यभिचार अवांछनीय था (गरुड़ १। ९५। १८)। व्यभिचार से उत्पन्न गर्भ भी त्याज्य था; अन्यथा गर्भ-त्याग भी महापातक था (गरुड़ १। ९५। २०)। जहाँ पति-पत्नी में मेल होता है वहाँ त्रिवर्ग सुलभ है (यत्राविरोधो दम्पत्योस्त्रिवर्गस्तत्र वर्धते। गरुड़ १। ९५। २२) इस प्रकार दाम्पत्य-प्रेम, सुख और सद्भाव ही समाजोन्नति का मूल था। इसीलिये हिन्दू समाज व्यवस्था में सभी प्रकार के स्त्री-पुरुषों के सम्बन्घों को मानकर उनको आजीवन अविरोध रूप से अपने दाम्पत्य सम्बन्ध को बनाये रखना आवश्यक था। इससे समाज में कलह कम होता था।

यद्यपि एक पत्नी विवाह की प्रथित प्रथा प्रचलित थी परन्तु बहु विवाह भी प्रचलित थे (बहु भार्य्या भवन्ति वै)।[1] यद्यपि यह व्यसन उच्च वर्ग विशेष कर राजकुल में ही प्रचलित थी। राजा चित्ररथ के १ लाख पत्नियाँ (गरुड़ १। १३९। २६) और हरि-कृष्ण के १६ हज़ार स्त्रियों का (गरुड़ १। १३९। ५९) उल्लेख है।

स्वयंवर

गरुड़ पुराण के युग में स्वयंवर प्रथा प्रचलित थी। पांचाल में द्रौपदी-स्वयंवर हुआ था, जहाँ पाण्डवों ने उसे वीर्य-शुल्क से प्राप्त किया था (गरुड़ १। १४५। १३)।

समाज और स्त्रियाँ

स्पष्टत: समाज का मूल स्त्री-पुरुष का मिथुन ही है। मैथुनी-सृष्टि का मूलाधार स्त्री ही है। अकेले प्रजापति भी रममाण न हुआ—मन न लगा। उसने दूसरे की इच्छा की और परस्पर आलिंगित स्त्री-पुरुष के समान हो गया। उसने अपनी देह को दो भागों में विभक्त कर डाला। उससे पति और पत्नी हुए। इस प्रकार मैथुनी सृष्टि हुई।[2] इससे स्त्री के अभाव में मनुष्य की अपूर्णता और स्त्री का महत्व परिलक्षित होता है। मनुष्य की भाँति स्त्री भी प्रजापति का अर्द्धांग थी।

स्त्री-रत्न एक अमूल्य धन माना गया है (स्त्रीरत्नधनिनो)।[3] इसीलिये स्त्री सम्पत की वृद्धि भी एक सौभाग्य माना गया है। पुरुष और स्त्री-लक्षणों पर विचार किया गया है (गरुड़ पूर्व० अ० ६३-६६)। स्त्री के व्यक्तित्व में

१—गरुड़ १। ५३। ९

१—वृहदारण्यक उपनिषद, ब्रा० ४, अ० १। ३-५

२—गरुड़ १। ६५। १६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मातृत्व (पोषण-पालन), मन्त्री, पत्नी (संयोग), सखी (सहायक-करण), भार्या (स्नेह) और वेश्या (शयन-सुख) आदि के गुणों का समाहार है।[१] ये गुण एक ही स्त्री में उसी समय पाये जा सकते हैं जब अविरोध दाम्पत्य हो। इसीलिये घर में पति, भाई, पिता, जाति-बिरादरी, श्वसुर, देवर, और बन्धुओं द्वारा स्त्रियाँ भूषण, वस्त्र और भोजन द्वारा पूज्य तथा सम्मानित की जाती हैं।[२]

इसके विपरीत दुष्ट स्त्रियाँ ताड़ना से ठीक रहती हैं और वे आदर की पात्रा नहीं हैं।[३] स्त्रियों में काम बढ़ता है।[४] उनमें विषमता होती है।[५] अस्तु उनकी गति नदियों के समान कुटिल है। स्वभावतः नदियाँ कुटिल होती हैं और स्वतन्त्रता तथा जाने में भी टेढ़ी ही चलती हैं। पानी और दोषों से नदियाँ और स्त्रियाँ अपने किनारों और कुलों को गिराती हैं:—

नद्यश्च नार्यश्च समस्वभावाः स्वतन्त्रभावे गमनादिकञ्च।
तोयैश्च दोषैश्च निपातयन्ति नद्यो हि कूलानि कुलानि नार्य्यः॥

गरुड़ १।१०९।३८

नदी किनारों को गिराती है और स्त्री कुल को; नारी और नदी की स्वच्छन्द गति सुन्दर होती है। आग लकड़ी से तृप्त नहीं होती, और न समुद्र नदियों के संगमों से ही सन्तुष्ट होता है;……………न मनुष्य ही स्त्रियों से सन्तुष्ट होता है।[६] इसलिये ही यह कहा गया है कि स्त्री-रत्न को दुष्कुल से भी प्राप्त करे (स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि)।[७] स्त्री के ही गुण दोषों पर कुल की मर्यादा निर्भर करती है। गरुड़ पुराण के युग में तो एक धारणा ही बन गई थी—

न कुलं निर्मलं तत्र स्त्री जनो यत्र जायते।

गरुड़ १।११०।९

"जिस कुल में स्त्री है वह कुल निर्मल नहीं है।"

इसीलिये स्त्रियों की स्वतन्त्रता पर नियन्त्रण और बन्धन लगे—

१—गरुड़ १।६४।६
२—वही १।९५।२७ (२)-२८ (१)
३—वही १।१०९।३१
४—वही १।१०९।३५, ३६-३;
५—वही १।१०९।४५
६—वही १।१०९।३९-४०
७—वही १।११०।७, ८,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।
पुत्रस्तु स्थविरे काले न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥

गरुड़ १ । ११५ । ६३

कुल-कुटुम्ब-परिवार

हिन्दू समाज व्यवस्था में कुल, कुटुम्ब, और परिवार एक ही पूर्वज की सन्तानों की घनिष्ठता के परिचायक हैं। वे एक ही घर में रहते हों या धीरे-धीरे एक वृक्ष की शाखाओं की भाँति इधर-उधर फैल गये हैं। समाज-व्यवस्था में इसे सगोत्र और सपिण्ड[1] के नाम से जाना जाता है। गरुड़ भी भेद करता है—

बन्धुवर्गाश्च ये केचिन्नामगोत्रविवर्जिताः ।
स्वगोत्रे परगोत्रे वा तेषां पिण्डः प्रकल्पितः ॥

गरुड़ १ । ८५ । ६

अथवा

ज्ञाताज्ञाताः कुलेमम् (गरुड़ १ । ८५ । २०)

इसी प्रकार उदक-क्रिया (जलाञ्जलिदान) से भी ज्ञातिता जानी जाती है। यथा—

सप्तमाद्दशमाद्वापि ज्ञातयोऽभ्युपयान्त्यपः ।
अपनः सोशुचदघमनेन पितृदिङ्मुखाः ॥
....

गरुड़ १ । १०६ । ३

अस्तु दान, विवाहसमाजोत्सव यज्ञ, शौचादि कर्मों के समय ज्ञाति-धर्म[2] के दर्शन होते हैं, जब बन्धु-बान्धव एकत्रित होकर मिलते हैं।

माता, पितामही, प्रपितामही, और वृद्ध पितामही तथा इसी प्रकार पिता, पितामह, प्रपितामह और वृद्ध-प्रपितामह सपिण्डीकरण के अधिकारी हैं।[3] माता-पिता के कुलों के दश पहले और दश बाद वालों को तारते हैं। तीन-पिण्ड भोक्ता हैं। यहाँ पर कहने का तात्पर्य यही है कि हिन्दू-परिवार बहुत ही बड़ा था और इसकी व्यवस्था भी सहयोग, सौहार्द्र तथा त्याग पर आधारित थी।

१—गरुड़ २ । १६ । ११
२—वही २ । २५ । ४६
३—वही २ । २५ । २-४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जैसा कि पहले कहा जा चुका है पिता, पितामह, और भाई की मृत्यु के बाद कन्या के विवाह का भार 'सुकुल्य' पर आ पड़ता था। गोत्रज ही नारायण-बलि करता है (गरुड़ २। २५। १५)। इसीलिये पुत्र का महत्व है कि वह पितरों को नरक से बचाता है। उनको तारने के लिये ही श्राद्ध और दान कर्म किये जाते हैं (गरुड़ १। ८४। ४०-४४)।

समगोत्री व्यक्तियों (समानान्वयजातानां) को मिला कर एक कुल होता है। कुल के हित में एक व्यक्ति को त्याग देना भी श्रेयस्कर है। इसी प्रकार कई कुलों का समुदाय ग्राम होता है और ग्राम के लिये एक कुल का भी त्याग किया जाता है।[1]

कुल कई प्रकार के होते थे। गरुड़ पुराण में दासकुल,[2] राजकुल,[3] और दास गोपाल कुल[4] का उल्लेख मिलता है। अपने-अपने कुल का निश्चित आचार (कुलाचार)[5] होता है। कुलमार्ग[6] त्याज्य नहीं है।

माता, भगिनी, भार्या, स्नुषा, दुहिता, (गरुड़ २। १२। ६७), भाई (गरुड़ २। १२। ६९), पितृ, पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र (गरुड़ २। १५। ४१) आदि कुटुम्बी होते हैं। इनमें पुत्र का विशेष महत्व बताया गया है।

पुत्र—

सर्व सौख्य प्रदः पुत्रः पित्रोः प्रीतिवर्धनः।
आत्मा वै जायते पुत्र इति वेदेषु निश्चितम्॥

गरुड़ १। १५। २१

जिस प्रकार एक ही आकाश है, और सूर्य तथा चन्द्र भी एक ही हैं; परन्तु पृथक-पृथक घड़ों में वे अलग-अलग दिखलाई पड़ते हैं। इसी प्रकार सभी पुत्रों में आत्मा ही घूमती रहती है। पहले जैसी जिसकी प्रकृति होती है, वीर्य-रक्त के योग में उसी भाव से पुत्र कर्म करने वाले उत्पन्न होते हैं। पिता के रूप पर किसी का पुत्र होता है। परन्तु पिता से सुरूप, गुणज्ञ और दानी शायद ही होता है। अन्धे से अन्धा नहीं पैदा होता है और न बौरे से बौरा;

१—गरुड़ १। १०९। २ (१): त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्॥
२—वही १। ६४। ९
३—वही १। ६४। १०
४—वही १। ९६। ६५
५—वही १। ११५। ७४(१); २। १३। ६
६—वही २। १२। ६९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

न बहरे का लड़का बहरा होता है और न मूर्ख की सन्तान मूर्ख होती है।[1]

पुत्र दस प्रकार के बताये गये हैं—

औरसक्षेत्रजाद्याश्चपुत्रा दशविधाः स्मृताः।
संगृहीतसुतोयश्च दासीपुत्रश्च तेन किम्॥

गरुड़, २।१५।२७

कां कां गतिमवाप्नोति जार्तैमृत्युवशङ्गतैः।
भवन्ति दुहितरो यस्य दौहित्रो न भवेत्सुतः॥
श्राद्धं तस्य तु कः कुर्याद्विधिना केन तद्भवेत्।

वही, २।१५।२८

स्पष्टतः पुत्र का महत्व श्राद्ध कर्म तथा अन्य क्रियाओं के करने में है जिनसे पितर तर जाते हैं। इसीलिये पुत्र का होना अत्यन्त आवश्यक कर्तव्य माना गया है। यह ऋण ही था जिससे मुक्ति पुत्रोत्पादन द्वारा ही प्राप्त होती थी। जिनके स्वयं पुत्र न होते थे, वे क्षेत्रादिक पुत्रों का प्रवन्ध कराते थे जिनसे केवल मुक्ति हो सकती थी:—

मुखं दृष्ट्वा तु पुत्रस्य मुच्यते पैतृकादृणात्।
अन्ये क्षेत्रादयः पुत्रा मुक्तिमात्रप्रदायकाः॥

गरुड़, २।१५।२९

औरसपुत्र तो पार्वण श्राद्ध करता है परन्तु अन्य नव पुत्र एकोद्दिष्ट श्राद्ध करते हैं।[2] पौत्र के दर्शन से तो प्राणी तीनों ऋणों से मुक्त हो जाता है। उसे लौकिक जीवन के अन्त में स्वर्ग की प्राप्ति होती है। ब्रह्मपुत्र तो पिता को ऊपर उठात है, परन्तु संगृहीत पुत्र नीचे गिराता है और संवत्सर श्राद्ध को करने से नरक ही मिलता है। संगृहीतपुत्र सभी दानों को दे परन्तु न एकोद्दिष्ट और न पार्वणम् ही करे। संगृहीत पुत्रों और दासी पुत्रों के किये हुए श्राद्ध व्यर्थ ही होते हैं। अतः हीन जाति के पुत्रों को छोड़ दे। स्वजाति और स्वगोत्र से उत्पन्न सुवृत्त (सदाचारी) पुत्रों द्वारा तो सुख होता है और दुराचारी पुत्रों से नरक मिलता है। हीन जाति से उत्पन्न सदाचारी पुत्रों से भी सुख मिलता है (हीनजातिसमुत्पन्नैः सुवृत्तैः सुखमेधते—गरुड़ २।१५।४०)। अतः यही सत्य है कि कलिकलुष-विमुक्त एक ही पुत्र सैकड़ों पिता भाई, पुत्र, पौत्रों को भी नरक में डूबने से बचाता है[3]—

१—गरुड़, २।१५।२२-२६
२—वही, २।१५।३०
३—वही, २।१५।३१-४१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कलिकलुषविमुक्तः पूजितः सिद्ध संघैमरचमरमालावीज्यमानोऽप्सरोभिः ।
पितृशतमपि बन्धून् पुत्रपौत्रप्रपौत्रानपि नरकनिमग्नानुद्धरेदेक एव ॥
गरुड़ २ । १५ । ४१

इससे भी यही सिद्ध होता है कि जाति की हीनता या उच्चता का उतना महत्व न था जितना कि सुवृत्त का । सत्य ही कहा गया है—

वृत्तेन हि भवत्यार्यो ॥[1]

सामाजिक धर्म—सदाचार

हिन्दू-समाज व्यवस्था और धार्मिक जीवन में श्रौत-कर्म करने पर विशेष बल दिया गया है ।[2] यदि इसके करने में असमर्थता हो तो सदाचार का ही पालन करे ।[3] कर्मदर्शन में श्रुति और स्मृति ही विप्रों (मनीषियों) के दो नेत्र हैं । तीन ही सनातन धर्म हैं—

१—श्रौत कर्म या श्रुति धर्म,

२—स्मार्त्त कर्म या स्मृति धर्म,

३—शिष्टाचार-शिष्ट पुरुषों का धर्माचरण ।

श्रौत कर्म का आधार श्रुति और स्मृति धर्म का आधार स्मृतिशास्त्र तथा सदाचार का आधार शिष्ट—सज्जन ओर साधु व्यक्तियों का सर्वप्रिय तथा हितकर स्वभाव और व्यवहार ही है ।[4] शिष्टाचार के आठ लक्षण हैं—सत्य, दान, अलोभ, विद्या, यज्ञ-कार्य, पूजन और इन्द्रिय दमन (आत्म-संयम) । इनके प्रभाव से शरीर और इन्द्रियाँ तेजमयी होकर पाप की कीचड़ में नहीं फँसती हैं । यही व्यवस्था का मूलाधार धर्माचरण है जिससे सुख और ज्ञान प्राप्त होता है तथा ज्ञान से ही मोक्ष भी मिलता है ।[5] अस्तु स्पष्ट है कि सदाचार से भी पाश-मुक्ति होती है ।

पुराण-विद्या का मुख्य उद्देश्य समाज को सदाचरण की प्रेरणा देकर सुखी बनाना और कर्म-बन्धन से मुक्ति दिलाना है । मनुष्य में निहित पशुता[6] को मिटा कर मानवी गुणों का विकास कर प्रत्येक सामाजिक को परम कल्याण—

१—महाभारत, उद्योगपर्व, ९० । ५३

२—गरुड़, १ । २०५ । २

३—वही, १ । २०५ । ३; बुद्ध का धर्म-मार्ग सदाचार पर ही आधारित है ।

४—वही, १ । २०५ । २-४

५—वही, १ । २०५ । ५-९

६—वही, १ । ११५ । ३१ में पेट भरने वाले नरपशु और पशु को समान ही बताया गया है—उदरभरणमात्र तुष्ट बुद्धेः पुरुषपशोः पशोश्च को विशेषः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिव्यपद, दिव्यता की ओर उन्मुख करना है। विभिन्न माध्यमों से ऋषियों ने मनुष्य की दिव्यता को निखारने का प्रयत्न किया। सदाचार ही पुराण-धर्म है, जिसका उद्देश्य मानव मंगल और लोक-हित है।[१] गरुड़ पुराण के अनुसार भगवान स्वयं कहते हैं—

अहं साक्षात्सदाचारो धर्मोऽहं वैष्णवो ह्यहम्।
वर्णाश्रमास्तथा चाहं तद्धर्मोऽहं पुरातनः॥
गरुड़, १। २। ४५

अतः गृहस्थ-धर्म का पालन करता हुआ सदाचार से ही घर में भी मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है (गृहेऽपि मोक्षः)।[२] राग (आसक्ति-ममत्व, मोह और माया) से रहित व्यक्ति के लिये घर ही तपोवन है (निवृत्तरागस्य-गृहं तपोवनम्)।[३] इसीलिये हिन्दू चिन्तकों ने गृहस्थाश्रम की विशेष महत्ता बतायी है। सम्पूर्ण गीता दर्शन इसी भावना पर आधारित है। कर्म तो करना आवश्यक ही है, परन्तु शील, विद्या ओर विवेक के साथ समाज में आचरण करना है जिससे सभी को सुख मिले और सामाजिक सुख तथा सौहार्द्र के साथ-साथ राष्ट्र-शक्ति भी बढ़े। वायु पुराण भी गरुड़ की भाँति ही सदाचार की विशेष व्याख्या करता है। पाश्चात्य समाजशास्त्रियों और आधुनिक चिन्तकों ने भी 'सिविलिटी' 'सिविक-सेन्स' और सिविलाइज़ेशन पर बल देते हुए समाज-शास्त्र की प्रतिष्ठा की है। हिन्दू विचारकों ने इसे ही सामान्य-धर्म और सदाचार की संज्ञा दी। कहावत ही चल पड़ी-महाजनो येन गतः स पन्थाः।[४]

सद्भिः सेव्यं मार्गमाचारं—सज्जनों द्वारा चलने लायक जीवन-यात्रा का मार्ग ही सदाचार है। इस प्रशस्त पथ पर चल कर ही मनुष्य संसार में स्वयं सुखी रहकर समाज को भी सुखी बना सकता है। आधुनिक समाज शास्त्री (यथा मैलिनोस्की) भी 'कल्चर' (संस्कृति) को 'हाइएस्ट सोशल हेरिटेज' (उच्चतम सामाजिक दाय) मानते हैं। 'सेवेजरी और 'बारबरिज़्म' के बाद ही 'सिविलाइज़ेशन' (सभ्यता) का युग विकसित हुआ। सभ्यता का सामान्य अर्थ सभायां साधुः सभ्यः अर्थात् व्यक्ति के सामाजिक धर्म को पालन करने की क्षमता है। यही सामाजिक धर्म सदाचार कहलाता है। इसे शौचाचार—पवित्रा-चरण भी कहते हैं और इसी को शिष्टाचार भी कहते हैं। इसका निर्देश है कि समाज में मर्यादा का उल्लंघन न करते हुए रहे (अविरोधेन धर्मस्य विचरेत्

१—गरुड़, १। ३५। ४३; ५१
२—वही, १। १०९। ४३
३—वही, १। ११३। ९
४—वही, १। १०९। ५१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृथिवीमिमामुत्तमाम्, वायु पु०, १।१६।५)। प्रसिद्ध उक्ति है कि आंख खोलकर रास्ते पर खाला-ऊँची देखकर चले, पानी छानकर पिये और सत्ययुक्त बात कहे और यही धर्मानुशासन है (वायु पु० १। १६। ६)।

इसी धर्माचरण को शिष्टाचार भी कहते हैं। शिष्ट-धार्मिक आचार्यों का रहन-सहन तथा सामाजिक व्यवहार आचार कहलाता है (वायु पु० १। ५९। २९-३०)। मनु आदि शिष्टों द्वारा आचरित धर्म प्रत्येक युग में प्रतिष्ठित हुआ (वायु पु० १। ५९। ३४-३६)। यही शिष्टाचार बना। दान, सत्य, तप, लोभ हीनता, विद्या, यज्ञ-धर्म, अप्रजनी (ब्रह्मचर्य) और दया नामक आठ गुण ही शिष्टाचार के लक्षण हैं (वायु १। ५९। ३७)। शत्रु-मित्र आदि सभी लोगों के साथ आत्मवत ही व्यवहार-दर्शन शिष्टाचार कहलाता है (आत्मवत्सर्वभूतेषु यो हितायाहिताय च समा प्रवर्त्तते दृष्टि: कृत्स्ना, वायु पु० १। ५९। ४३)। इस विचार पर मनुस्मृति की उक्ति, ब्रह्मर्षि देश और ब्रह्मावर्त के ब्राह्मणों से ही पृथिवी के सभी मनुष्य चारित्रिक शिक्षा लें (मनुस्मृति २। २०), से भो यही ज्ञात होता है कि आर्यता अथवा ऋषि-धर्म ही शिष्टाचार था जिसका प्रवर्तन मध्यदेश में हुआ, जो पुण्य देश था (मनुस्मृति २। २३)। इसीलिये मध्यदेश को धर्म देश (गरुड़ २। २। ९) कहा गया है। यहीं ब्रह्मादि देवता, ऋषियों, धर्म, सत्य और विद्या का निवास था (गरुड़ २। २। १०)। मध्यदेश का ही आचार्य भी वरेण्य था (गरुड़ १। ४८। २ (१)। अस्तु आर्यावर्त या मध्यदेश भी आर्यता[1] अथवा आचार-सामाजिक धर्म—का मूल प्रतिष्ठान था। इस आचार मार्ग की प्रतिष्ठा स्वयं भगवान ने ही की थी (गरुड़ १। १। २१)। आदि मनु भी विष्णु के ही अंश थे (गरुड़ १। १ ३४। ३४)।

इस आचार-धर्म के आधार पर ही आर्य-अनार्य[2] का विभेदन किया गया था। दूसरे की स्त्री और ब्राह्मण-सम्पत्ति का अपहरण करने वाला ब्रह्म-राक्षस तथा रत्नों का अपहरण करने वाला हीन जाति में उत्पन्न होता है (गरुड़ २। १। १२-१३)। उदर पूर्ति के लिये जीने वाला मनुष्य पशुतुल्य ही है (गरुड़ १। ११५। ३१)। कर्म ही सुख-दुख का आधार है (गरुड़ १। २१३। ३)। दान, तप, ब्रह्मचर्य, यज्ञ, स्नान, प्राण रक्षण, होम, जप, देवतार्चन, सत्य, क्षमा, दया, सर्वजीव दया (गरुड़ १। २१३। ३-१५)

१—योगवासिष्ठ, उत्तरार्द्ध, ६। ४४। २३:

स्फुटता सत्यता सत्ता धीरता निर्विकल्पता।
समता शान्तता मैत्री करुणा कीर्तिरार्यता॥

२—गरुड़, १। ११४। ७१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आदि गुणों को ही धर्मसार कहा गया है। ये ही सनातन धर्म के लक्षण भी हैं (गरुड़ १। २१३। २४)। यह दस लक्षणों—क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियनिग्रह, देवपूजा, अग्निहवन, सन्तोष और अस्तेय (चोरी न करना)—से युक्त चर्या को सामान्यधर्म (सबका धम, मानवधम) कहते थे (गरुड़ १। १२९। ८-९)। सन्ध्या, स्नान, जप, होम, देवता और अतिथि का पूजन करना ही आचार-कर्म था और आचार-धर्म से ही सब कुछ प्राप्त हो सकता है (आचारात्प्राप्नुयात् सर्वं, गरुड़ १। १०७। ४)। आचारधर्म भी श्रुति और स्मृति के विधान पर ही आधारित है और इस धर्म का आचरण करना ही परम कर्तव्य माना गया तथा इसका विरोध भी अवांछनीय था (गरुड़ १। १०७। ५५-५६)। आचारधर्म के प्रवर्तक भी भगवान केशव ही थे (गरुड़ १। २०५। १५३)। इसीलिये यह दिव्य विधान ही सनातन धर्म भी है। इसकी उन्नति के लिये यम-नियमों की व्यवस्था बनी। ब्रह्मचर्य, दया, क्षान्ति, ध्यान (चिन्तन, विमर्श), सत्य, अकल्पता, अहिंसा, अस्तेय, माधुर्य, दम ही यम थे (गरुड़ १। १०५। ५६)। स्नान, मौन, उपवास, इज्या, स्वाध्याय, इन्द्रिय-निग्रह, तप, अक्रोध, गुरु भक्ति और शौच नियम थे (गरुड़ १। १०५। ५७)। इस आचार-व्यवस्था से ही व्यक्ति और समाज सुखी रह सकता है। यह व्यवस्था सर्व-धर्म-समन्वय, अथवा मानव धर्म था जिसकी प्रतिष्ठा से ही यह कर्मभूमि मानवद्वीप कहलाती थी (मत्स्य पु०, ११३। १५)।

कर्मभूमि भारत में जन्म लेकर सतत कर्म करते रहना ही पुण्य और श्रेयस्कर बताया गया है। वैदिक कर्म दो प्रकार के—प्रवृत्ति और निवृत्ति परक—कहे गये हैं। इच्छा पूर्वक—काम्य कर्म—काम करना अग्नि कार्य (होम आदि) से सम्बन्धित है और निवृत्ति का सम्बन्ध इच्छाओं का अन्त—निवृत्ति अथवा निष्काम कर्म से है (१। ४९। २०)। प्रत्येक वर्ण के भी पृथक-पृथक ऐसे समाज-धर्म हैं—यथा क्षमा, दम, दया, अलोभ आदि जिनका पालन भी आवश्यक है। अस्तु प्रत्येक व्यक्ति को संसार-क्षेत्र में उतरने और काम करने के पूर्व ही प्रातःकाल-ब्राह्ममूहूर्त्त में ही धर्म और अर्थ के विभिन्न पक्षों पर विचार करना आवश्यक है। स्वधर्म, समाज-धर्म और स्वार्थ व परमार्थ का चिन्तन तथा उनमें मंगल तथा परमार्थ पर विचार करना और हृदय में हरि का ध्यान करते हुए लोक-कल्याण के लिये ही नित्य कर्म करना (गरुड़ १। ५०। १-२) मानव-धर्म है।

शुद्ध नदी-स्नान अथवा साधारण स्नान व शौच कर्म शरीर-यन्त्र को स्वस्थ बनाता ही है (गरुड़ १। ५०। २)। प्रातः स्नान आवश्यक है (गरुड़ १। ५०। ३-१०)। अन्त में आत्म-तीर्थ में योगिक स्नान (योगेन परि-च्चिन्तनम्, गरुड़ १। ५०। ११) भी किया जाता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शरीर-शुद्धि—मुख शुद्धि, दन्तधावन के बाद ही स्नान, तर्पण, आचमन और अर्चन तथा गायत्री-जाप किया जाता था (१ । ५० । १२-१७)। गायत्री की प्रार्थना में बुद्धि को ठिकाने पर रहने—सत्पथ और सत्कार्य में संलग्न रहने की ही अभिलाषा की गई है। जिस व्यक्ति और समाज की बुद्धि सुपथ पर चलती-चलाती है, वही राष्ट्र सम्पन्न और सुखी होता है। जहाँ कुबुद्धि का प्राबल्य होता है, वहीं विपत्ति का आधिक्य होता है—

जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना। जहाँ कुमति तहँ विपति निधाना॥

प्राणायाम-सन्ध्या—शरीर के प्रत्येक अवयव को ठीक तरह से काम करने के लिये ही प्राणायाम भी कर्तव्य था। सन्ध्योपासन से चित्त की एकाग्रता और परमार्थ-मंगल की चित्तवृत्ति बनती है। सन्ध्या की यह कामना—कि परस्पर द्वेष का अन्त हो—ही मानव मैत्री की प्रतिष्ठा है। अतः प्राणायाम-सन्ध्या करणीय कर्म है (गरुड़ १ । ५० । १६-३१)।

देवता, गुरु और हितू की वन्दना, वेद-वेदांग आदि शास्त्रों का चिन्तन और कुटुम्ब के विविध कार्यों का करना सामाजिक कर्तव्य माने गये हैं (गरुड़ १ । ५० । ३२-३५)।

मध्यान्ह स्नान (१ । ५० । ३७), नारायण-स्मरण (१ । ५० । ४०), सावित्री (गायत्री) जाप (१ । ५० । ४३), स्वाध्याय (१ । ५० । ५३), तर्पण (१ । ५० । ५५-५६), देवतार्चन (१ । ५० । ५७-५८), आराधना और आत्म निवेदन (१ । ५० । ६१-६२) के बाद पंच यज्ञों (देव-यज्ञ, भूत-यज्ञ, पितृ-यज्ञ, मानुष-यज्ञ और ब्रह्म-यज्ञ) का विधान परिपाल्य कर्तव्य है। इन पंच यज्ञों में भी समाज और राष्ट्र तथा विश्व-कल्याण की उदात्त भावना निहित है—यथा स्वाध्याय, प्राणि भोजन, कुत्ता, चांडाल और पतितादिकों को भोजन देना समाज-कल्याण ही था। अतः ये दैनिक कार्य (१ । ५० । ६३-६६) माने गये। श्राद्ध, विद्वान विप्र को भोजन, अतिथि-पूजा और उसका समादर भी सामाजिक कर्तव्य हैं (१ । ५० । ६८-७०)। गाय दुहते समय अतिथि की प्रतीक्षा की जाती थी। (१ । ५० । ७१)। ब्रह्मचारियों और भिक्षुओं तथा भोजन चाहने वालों को लोभ रहित होकर भिक्षा देने के बाद ही बन्धुओं के साथ भोजन की निन्दा किये बिना ही खाना उचित है (१ । ५० । ७२)।

अस्तु स्पष्ट है कि हिन्दू समाज व्यवस्था में मानव जीवन को उत्तम और उदात्त पृष्ठ-भूमि पर प्रतिष्ठित किया गया था। गरुड़ पुराण के युग में समाज-सांकर्य और चारित्रिक-पतन के साथ-साथ ये सिद्धान्त भी जीवन में व्यवहृत होते थे। आज भी कुछ अंशों में सदाचार का महत्व कम नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दानधर्म

सभी पुराणों की भाँति गरुड़ भी दानधर्म का महत्व प्रतिपादित करता है। कलियुग में (दानमेकं युगे)[१] तो इसका विशेष महत्व मान कर इसे करणीय धर्म (दानं कलियुगे धर्मः) कहा गया है।[२] ब्राह्मण के षटकर्मों (गरुड़ १।१०७।४) में दान भी एक धर्म बताया गया है। प्रति दिन थोड़ा-थोड़ा दान भी पुण्य का ढेर बन जाता है। दान से ही मनुष्य का यश भी बढ़ता है।[३] उदाहरण के लिये दधीचि, हरिश्चन्द्र और शिबि-नरेश प्रसिद्ध ही हैं। इसीलिये दान को ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का सामान्य धर्म माना गया है।[४] यह एक व्रत भी कहा गया है।[५] दान शिष्टाचार का एक लक्षण भी इसीलिये कहा गया है।[६] इसीलिये यह सनातनधर्म का अंग भी माना गया है।[७] दानधर्म आपत्ति और नियमों से भी परे परम धर्म है।[८] परन्तु दानशक्ति होना अधिक दुर्लभ है। दान न देकर निर्धन कुल में जन्म लेता है। सम्पत्ति होने पर भी दानशक्ति होना दुर्लभ ही है। दानशक्ति तो बड़ी तपस्या का फल होता है। दान से ही भोगों की प्राप्ति होती है।[९] व्यक्ति दान न देने से दरिद्री होता है, दरिद्रता के कारण ही पाप करता है और पाप से नरक को जाता है। इस प्रकार व्यक्ति दान न देने से बार-बार दरिद्री और पापी के ही रूप में जन्म लेता है:

अदत्तदानाच्च भवेद्दरिद्रो दरिद्रभावात्प्रकरोति पापम्।
पापप्रभावान्नरकं प्रयाति पुनर्दरिद्रो पुनरेव पापी॥
गरुड़ २।१४।१९

अतः दानों का देना धर्म माना गया है (दानानि देयानि)।[१०] दान से ही मोक्ष और स्वर्ग की भी प्राप्ति होती है (दानतीर्थाश्रितं मोक्षं स्वर्गं च)।[११] दान कई

१—गरुड़ २।२४।२
२—वही १।१०७।३
३—वही १।११५।३२
४—वही १।१२८।८-९; १।२०५।१०
५—वही १।१२८।१२
६—वही १।२०५।५
७—वही १।२१३।२४
८—वही १।२१४।३७
९—वही २।१४।१६-१८
१०—वही २।१५।१५
११—वही २।२८।१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकार के होते थे। भूमि-दान, अन्न-दान, गो-दान, कन्या-दान, धन-दान (गोभूहिरण्य वासांसि)[1] आदि प्रचलित और प्रसिद्ध दान थे जिनका राष्ट्र के सामाजिक और आर्थिक जीवन पर यथेष्ट प्रभाव पड़ता है। बौद्धिक जीवन पर भी दान-धर्म का प्रभाव कम न था। ज्ञान-दान (विद्या-दान) से भी मनुष्य स्वर्ग की प्राप्ति करता है।[2] प्राचीन युग में वेतन-भोगी अध्यापक की प्रतिष्ठा न थी। ब्राह्मण को विद्या-दान करने से ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है।[3]

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में दान का महत्व इतना था कि इसका सम्यक अध्ययन और विवेचन किया गया। दान-धर्म ही उत्तम माना गया है, परन्तु योग्य-पात्र को उचित न्याय से कमाये हुए धन का दान दे (गरुड़ १। ५१। १-२)। सात्त्विकं, निमित्तिकं, काम्यं विमलं आदि विविध दान थे (१। ५१। ४)। ब्राह्मण को दान देना पुण्य माना गया है (१। ५१। ५)।

गरुण के अनुसार सुयोग्य और सुपात्र को श्रद्धापूर्वक अर्थ (गो, भूमि, हिरण्य आदि) का देना ही दान है (अर्थानामुचिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम दानन्तु कथितं)[4]। साथ ही दान देने वाला धन भी उचित वृत्ति से कमाया हुआ होना चाहिये तभी दानधर्म का फल भी प्राप्त होता है (न्याये-नोपार्जयेद्वित्तं दानभोगफलञ्च तत)[5] इसका वर्गीकरण करते हुए कहा गया है कि स्वधर्मानुसार अर्थात् अध्यापन और यज्ञ कराकर दान लेना ब्राह्मगवृत्ति, कुसीद, कृषि और वाणिज्य (वैश्यवृत्ति) अथवा क्षात्रवृत्ति (प्रजारक्षण) से प्राप्त धन का दान ही सात्त्विक दान कहा गया है[6] नित्य (अर्थात् प्रतिदिन) स्वधर्म और स्ववृति के अनुसार ब्राह्मग को अथवा ऐसे व्यक्ति को जिसने हम पर कोई उपकार नहीं किया है और न जिस दान देने से किसी फल की ही आकांक्षा की जाती है वही नित्य दान कहलाता है।[7] वह दान जो पाप की शान्ति के लिये (प्रायश्चित्त रूप में) विद्वान पात्र के हाथ में दिया जाता है नैमित्तिक कहलाता है।[8] धर्म-चिन्तक ऋषियों ने सन्तान विजय, ऐश्वर्य अथवा स्वर्ग प्राप्ति के प्रयोजन से किया हुआ दान काम्य

१—गरुड़, २। ३। १४
२—वही, १। ५१। २४
३—वही, १। ५१। १०
४—वही, १। ५१। १ (२) २-(१)
५—वही, १। ५१। २ (२)
६. वही, १। ५१। ३-४ (१)
७—वही, १। ५१। ५ : अहन्यहनि यत्किञ्चिद्दीयतेऽनुपकारिणे।
अनुद्दिश्य फलं तस्माद् ब्राह्मणाय तु नित्यशः ॥
८—वही, १। ५१। ६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दान कहलाता है।[१] ईश्वर को प्रसन्न करने के लिये ब्रह्मवेत्ता (ब्राह्मण) को सात्विक भावना से दिया हुआ दान विमल कहलाता है।[२]

जो व्यक्ति वेदवेत्ता को इक्षु (गन्नों) से भरा हुआ अथवा जौ या गेहूँ से भरा हुआ भू-क्षेत्र (खेत) दान देता है, वह जन्म बन्धन से मुक्त हो जाता है।[३] गाय, भूमि, स्वर्ण, धान्य,[४] दीप, अन्न, वस्त्र, सर्पि, घर, अनाज, छत्र, माला, वृक्ष, सवारी, घी, जल, शय्या, लेप, कुंभ आदि के दान से स्वर्ग प्राप्त होता है।[५] ब्रह्मदान (ज्ञान) तथा प्राचीन शास्त्रों—वेद, अर्थशास्त्र, यज्ञशास्त्र और धर्मशास्त्रों का चाहें मूल्य से ही लिखाकर या स्वयं लिखकर दान देने से ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है। वेदों और इतिहास-पुराणों का लिखकर दान देना भी परम श्रेय माना गया था।[६]

थके हुए का पैर दाबना, रोगी की सेवा करना, देवपूजा और ब्राह्मण के पैर धोना गोदान के समान ही पुण्य माना गया है।[७] मुख्यत: समाज में भूमि-दान, गो-दान, अन्न-दान और कन्या-दान का विशेष महत्व रहा है।[८] दान देना समाज का विशेष पुण्य इसलिए ही बना रहा कि मनुष्य को भोग फल की भी आशा रहती है।[९]

भूमिदान (भूदान)—आधुनिक युग में भी भारत ने जन-शक्ति और सामाजिक चेतना का परिचय विनोबा-सदृश ऋषि-क्रान्ति से दिया है, जिनका उद्देश्य सर्वोदय (सर्वांगीण उन्नति) की प्राप्ति भूदान पर आधारित है। भूमि-दान से बढ़ कर अन्य कोई दान नहीं है।

भूमिदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति।[१०]

भूमिदान (लैन्ड-ग्रान्ट्स) का शास्त्रीय विवेचन आधुनिक विद्वानों ने किया है। परन्तु पुराणों के साक्ष्य पर विचार नहीं किया गया है। प्राय: सभी

१—गरुड़, १। ५१। ७
२—वही, १। ५१। ८
३—वही, १। ५१। ९
४—वही, १। ९८। १-२
५—वही, १। ९८। ११-१३
६—वही, १। ९८। १४-१६; १। ११९। ६
७—वही, १। ९८। ११
८—वही, १। २१३। १७-२०
९—वही, २। ३। १२
१०—वही, १। ५१। ९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुराणों और उप-पुराणों में भूमिदान पर विचार करते हुए इसका महत्व प्रतिपादित किया गया है।[१] भूदान के महत्व को बताते हुए कहा गया है कि जो सोने की बनी हुई पृथिवी का दान करता है वह त्रैलोक्य दान के पुण्य को भोगता है—

नास्ति भूमि समं दानं नास्ति भूमिसमोनिधिः ।।

गरुड़, २ । ३१ । ३(१)

अग्नेरपत्यं प्रथमं हिरण्यं भूर्वैष्णवी सूर्य सुताश्च गावः ।
लोकत्रयं तेन भवेत्प्रदत्तं यः काञ्चनाङ्गाञ्चमहीं प्रदद्यात् ।।

वही, २ । ३१ । ४

स्वर्ण-निर्मित धरा-दान से भूगोल (पृथिवी) के रूपांकन और चित्रण (नक़शा) करने की पुरातन परम्परा का ज्ञान होता है। मत्स्य पुराण अ० २८३ (जीवानन्द संस्करण, कलकता, १८७६ ई०) में धरादान का वर्णन करते हुए बताया गया है कि पृथिवी बना कर उसमें जम्बूद्वीप तथा उसके मर्यादा पर्वतों के मध्य मेरु पर्वत को दिखावे, लोक पालों सहित नौ वर्षों को नदियों से युक्त और अन्त में सागरों से घिरी हुई पृथिवी को बनावे।[२] इस प्रकार है, मीधरा को बना कर धरादान[३] की परम्परा से प्राचीन भौगोलिक शिल्प पर प्रकाश पड़ता है। स्कन्द पुराण भी पृथिवी दान का वर्णन करता हुआ बताता है कि हिरण्मयी पृथिवी का विधिपूर्वक दान करना चाहिये।[४] स्कन्द कहता है कि सोने की गोलाकार पृथिवी बनाना चाहिये (कार्या पलशतेनोर्वी वृत्ताकारा), इसकी कुक्षि में सात समुद्रों—लवण, इक्षु, सुरा, सर्पि, दधि, दुग्ध और जल को दिखावे। सात द्वीपों—जम्बू, प्लक्ष, कुश, क्रौञ्च, शाक, शाल्मलि और पुष्कर—तथा समुद्रों को दुगुना करते हुए बनावे। उनमें सात कुलपर्वतों—महेन्द्र, मलय, सह्य, हिमवान्, गन्धमादन, विन्ध्य और शृंगी—को भी बनावे। इनके मध्य में मेरु और दिशाओं में विष्कम्भ पर्वतों तथा गंगा आदि प्रमुख नदियों की रचना करे।[५] इस प्रकार सोने की पृथिवी बनाकर (एवं निर्माप्य वसुधां सर्वां हेममयीं नृप) दान करे।[६]

१—गरुड़, १ । ५१ । २१; १ । ९४ । ३०
२—मत्स्य पु०, २८३ । १-४
३—वही, २८३ । १९; गरुड़, २ । २० । १४
४—स्कन्द पु०, ६ । २६७ । ५
५—वही, ६ । २६७ । ७-१३
६—वही, ६ । २६७ । १३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कन्यादान, विद्यादान और अभयदान[१] तथा गोदान व अन्नदान[२] का भी महत्व प्रचलित था। मिष्ठान्न और भोजन देना भी पुण्य है परन्तु दान शक्ति दुर्लभ है। सम्पत्ति के होने पर दानशक्ति का होना तपस्या का ही फल होता है। दान देने से भोगों की प्राप्ति होती है।[३]

आमोद प्रमोद

प्राचीन भारत के इतिहास में समाज का अनुरंजन कराना राजा का मुख्य कर्तव्य था। अतः समाज का मनोविनोद होना स्वाभाविक और आवश्यक है। इसके विविध प्रकार और साधन प्रचलित थे। वाद्यं, गीतं और नृत्यं (गरुड़ १।१८।९) विनोद-साधनों के अतिरिक्त पूजा में भी प्रचलित थे। रात्रि में गीतादिकों से (गरुड़ १।४२।१६) जागरण भी करते हैं। गायन[४] मानव समाज का सर्वप्रिय विनोद रहा है। गन्धर्व विद्या, वाद्य और गणिकागणों का निरीक्षण और संरक्षण राजा का कर्तव्य था।[५] इससे समाज में वेश्याओं[६] के महत्व का परिचय मिलता है। परन्तु वेश्या-राग को सत्यतः, क्षणिक, पानी के बुलबुले के समान कहा गया है।[७] वेश्याराग पैसे पर निर्भर करता है। जब तक पैसा है तब तक वैश्या राग भी है। इसके अतिरिक्त पैसा ज़्यादा देने की भी होड़ होती है। जो जितना अधिक शुल्क दे सकता है, वेश्या भी उसी से राग करती है। परन्तु पतिव्रता स्त्री का राग सत्य और स्वाभाविक तथा मर्यादित होता है। प्रतिष्ठान का कौशिक नामक ब्राह्मण कोढ़ी हो जाने पर भी अपनी उपेक्षिता पत्नी का पतिदेव ही बना रहा और पति के कहने पर पत्नी वेश्या को अधिक धन देकर उसको वहाँ ले गयी (भर्त्रोक्ता सानयद्वेश्यां शुल्कमादाय चाधिकं)।[८] नृत्य में भी (गरुड़ १।५८।२१) एक विशेष आकर्षण है। द्यूत क्रीड़ा (गरुड़, १।११४।५) प्रचलित था, यद्यपि यह एक दोष था।

१—गरुड़, १।२१३।४-५; २।४।३९-४०; २।७।१८-२०; २।११।२८,३७; वही, २।१३।१३; २।१४।९-१२; २।२८।२२-२३,३०,३७; २।३१।६; वही, २।३५।१

२—वही, २।१२।६३

३—वही, १।२१३।१८-२०

४—वही, २।१४।१७-१८

५—वही, १।५३।८

६—वही, १।१११।२६

७—वही, १।५३।८

८—वही, १।११५।३९

९—वही, १।१४२।२१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इससे यह भी ज्ञात होता है कि स्त्री-सुख, विलास, लीला-सुख[१] और काम का समाज पर कितना प्रभाव था। राजा के लिये ये कुव्यसन मान कर त्याज्य कहे गये हैं।[२] बुद्धिमान राजा स्त्रियों और भोगास्वादों के सेवन में विश्वास नहीं करता है।[३] स्त्री को वशीभूत करने और कामशास्त्र की चौंसठ कलाओं तथा आलिंगन आदि[४] का सम्बन्ध काम-कला से ही है। तापसी और अपने गोत्र की स्त्री मैथुन के अयोग्य (अगम्या) कही गई हैं।[५] इससे सामाजिक नियमन का ज्ञान होता है।

क्रीड़ा[६] विशेषकर अक्ष क्रीडा और द्यूत प्रचलित थी परन्तु धूर्तों के साथ अक्ष-क्रीडा वर्ज्य बतायी गई है (नाक्षैः क्रीडेच्च कितवैः)[७]।

अस्तु, स्पष्टतः, मनोविनोद का मुख्य उद्देश्य शोक का संहार करना और सुख की प्राप्ति ही है। शोक से धर्म, बल, धैर्य और उत्साह नष्ट होते हैं; अतः शोक त्याज्य है।[८] सुख से ही कष्टों से छुटकारा मिलता है।[९] मन बहलाव से ही सुख मिलता है। इसीलिये समाज में हास्य, क्रीड़ा और प्रमोद[१०] का महत्व है। शोक रहित सहज हास्य से सदा निद्रा और स्वास्थ्य की वृद्धि होती है।

खाद्य पेय

जिस प्रकार उन्नत समाज के लिये सभ्य और शिक्षित लोगों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार स्वस्थ समाज के लिये भी स्वस्थ और पुष्ट व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। स्वास्थ्य और शक्ति बहुत अंश में पानाहार[११] (पीने-खाने) पर निर्भर है। पीने और खाने की बहुत-सी चीजें

१—गरुड़, १। ११५। १६
२—वही, १। १११। ३०
३—वही, १। ११४। ४६
४—वही, १। १७८। १८
५—वही, २। १७। ३५
६—वही, १। ४। २; १। २१४। ४९
७—वही, १। ९६। ४१
८—वही, १। २१३। २
९—वही, १। २१३। १०
१०—वही, १। ६१। ३
११—वही, १। १८६। ३०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यथा अन्न, मांस, पायस[1], गन्धोदक[2], दुग्धादि[3], शाक, फल[4], घृत[5] आदि थीं। इस प्रकार स्पष्ट है कि खाद्य और पेय वस्तुओं में विशेष वैविध्य था।

आहार—सभी का जीवन आहार से ही चलता है (जीवा सर्वेष्याहार-मूलकाः)।[6] भारतीय जीवन में भक्ष्याभक्ष्य पर विशेष विचार किया गया है। आहार में अन्न, मांस और मत्स्य के अतिरिक्त फल-मूल का भी विशेष महत्व रहा है।

ओषधी (वनस्पतियाँ) और फल तथा मूलों की उत्पत्ति परमेश्वर के रोमों से हुई (गरुड़ १।४।३१)। फल-मूल विशेषतः वाणप्रस्थियों का भोजन था (गरुड़ १।९४।११)। ब्रह्मचारी के लिये मधुमांस (गरुड़ १।१०५।३७) आदि वर्ज्य था (गरुड़ १।९४।१९)। अतः समाज में अन्न (भोज्यान्न)[7] ही भोज्य पदार्थों में प्रिय और पवित्र माना गया है। अन्नों में भी गेहूँ और जौ (गोधूमयव) प्रसिद्ध थे। दूध (गोरस) पेय[8] अधिक प्रिय था। पलाण्डु (प्याज़) और लशुन (लहसुन) तथा विविध पशु-पक्षियों और मछलियों के मांस भक्षण का प्रचार तो था, परन्तु वे भी वर्ज्य बताये गये हैं (गरुड़ १।९६।६७—७२)। परन्तु हविष्यान्न (यज्ञ) के साथ ही साथ मांस का भी प्रचलन था (गरुड़ १।९९।३३—३४)। यद्यपि इसे भी निषिद्ध भक्षण (गरुड़ १।१०५।७) माना गया है। सुरापान (गरुड़ १।१०५।८) भी एक पाप समझा जाता था। सुरापा ब्राह्मणी (गरुड़ १।१०५।२६) तो पतिलोक से भ्रष्ट हो जाती थी। दिव्य जल (चरणामृत), घृत और गोमूत्र पीने से सुरा पीने के पाप से शुद्धि होती थी (गरुड़ १।१०५।२४)। मधुमांस के खाने के पाप से शुद्धि व्रतों के करने से होती थी (गरुड़ १।१०५।३७)।

यद्यपि मांस निषिद्ध भक्षण[9] माना गया है, परन्तु खाने वालों का यह

१—गरुड़, १।९९।३३
२—वही, १।९९।३०
३—वही, १।१२२।७
४—वही, १।१२३।३
५—वही, १।१२३।५, ७
६—वही, २।१२।४८
७—वही, १।९६।६५, ६६
८—वही, १।९६।६६
९—वही, १।१०५।७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रिय आहार रहा है। मछली, हिरन, भेंड़, पक्षी, छाग (बकरा), चित्तल, हिरन (पार्षत), एण (भेड़ की जाति), रुरु (एक हिरन विशेष), शूकर, खरगोश (गरुड़ १। ९९। ३३–३४) आदि का मांस प्रचलित था। विविध प्रकार के अन्न बल के लिये[1] खाये जाते थे। तरह-तरह के व्यंजन बनते थे[2] मांस आदि के अतिरिक्त घी व तेल[3] और नमक (सैन्धव)[4] आवश्यक ही थे। ताम्बूल भक्षण[5] भी प्रचलित था। दुग्ध एक महोषधि ही माना गया है (गरुड़ १। १। २२)। इसका दान करना भी पुण्य था। अन्न पानादि[6] में भोजन शक्ति की विशेष आवश्यकता है (भोज्यं भोजनशक्तिश्च) और यह बड़ी तपस्या का ही फल मिलता है[7]। तपस्वियों के जीवन में फल-मूलादि औषधियों[8] का विशेष महत्व था। बच्चों को मिठाई प्रिय होती है[9]।

वस्त्राभरण

आहार-विहार के समान ही आच्छादन भी सभ्यता का अभिन्न अंग रहा है। मनुष्य और स्त्री तरह-तरह के कपड़ों और आभूषणों से अपने आप को सुसज्जित करते रहे हैं। साथ ही वह अपने आराध्य देव और देवी को भी सजाता चला आ रहा है। वस्त्राद्याभरण[10] का सभ्यता के इतिहास में इसी लिए विशेष महत्व है। कपड़ों का सभ्य समाज में इसीलिए विशेष महत्व है। विष्णु-पीताम्बर[11] प्रसिद्ध है। वस्त्रादिकों[12] का दान भी प्रचलित था। कौषेय, क्षौम, और पट्ट सूत्र से बने हुए विविध प्रकार के रेशमी, ऊनी (और्णकं) और सूती (कार्पासं) कपड़े प्रचलित थे। राजादि (क्षत्रिय) उच्च वर्ग के लोग

१—गरुड़, १। ७४। १
२—वही, १। २०५। १४८-१५०
३—वही, २। ३। १३
४—वही, १। २०१। १७
५—वही, १। २०५। १५१
६—वही, २। २१४। १८
७—वही, १। ११०। ३
८—वही, १। ४। ३१
९—वही, १। ११४। १८
१०—वही, १। ६२। १६
११—वही, १। ११। १
१२—वही, १। १२४। १९; २। ३। १४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कौषेय पट्टक तथा वैश्यों का ऊन और रेशम (क्षौमं) तथा शूद्रों का छाल, कपास आदि से सम्बन्ध था।[१] सूत भी काता जाता था।[२]

वस्त्रों के साथ ही साथ माला आदि अलंकरणों (गरुड़ १ । ८६ ।१४-१५) का भी प्रचलन रहा है। इनमें पुष्पगन्ध (गरुड १ । ९८ । ३४), तैल (गरुड़ १ । १०४ । ४) और आभूषणों का विशेष महत्व है। आभूषण भी भिन्न-भिन्न अंगों में विभिन्न धातुओं के बने हुए पहने जाते थे। कर्णभूषण, मणि (गरुड़ १ । ११० । १४) और मुकुट गरुड़ १।८६।१४ ग्रैवेयक (गरुड़, १ । ४३ । १३) आदि पहने जाते थे। सिन्दूर, कुंकुम और लाक्षारस (गरुड़ १ । ७० । ८) का प्रयोग होता था। चन्दन और मौक्तिकमाला (गरुड़ १ । ११७ । २-३) भी सर्व प्रिय थे।

मणि-मुक्ताओं और रत्नों को भी धारण किया जाता था। परन्तु ये गुणों और तदनुसार प्रभाव की दृष्टि से पहने जाते थे—

प्रथमं गुण सम्पदाभ्युपेतं प्रतिबद्धं समुपैति यच्च दोषम्।
अलमाभरणेन तस्य राज्ञो गुणहीनोऽपि मणिनभूषणाय ॥
गरुड़ १ । ६८ । ४२

स्त्रियां भी सन्तानोत्पत्ति के लिये बज्र धारण करती थीं। (गरुड़ १ । ६८ । ४३)।

गन्ध, विलेपन, मनोरम वस्त्रों और मालाओं से स्त्रियों में काम की वृद्धि होती है (गरुड़ १ । १०९ । ३५)। इसी प्रकार सुवेष पुरुष को देखकर स्त्री का स्खलन होना स्वाभाविक है (गरुड़ १ । ९१९ । ३६–३७।

छत्र (छाता), उपानह (जूता) मुद्रिका (गरुड़ २ । ८ । १६) आदि भी समाज में प्रचलित थे।

दास-दासी व्यवस्था

समाज में दासी-दास और भृत्यों[३] की प्रथा प्रचलित थी। गरुड़ पुराण की प्रतिष्ठा दास्यमोक्ष पर ही है। यह पराधीनता की निन्दा करता हुआ स्वाधीन वृत्ति की महिमा को प्रधानता देता है (गरुड़ १ । ११५ । ३७)। पराधीनता परम कष्ट और स्वाधीनता सुख का मूल था (गरुड़ १ । ११३ । ६०)। गरुड़ की माँ विनता नागों द्वारा दासी बना ली गयी

१—गरुड़, १ । ३३ । ७-८; यहाँ पर यज्ञोपवीत के योग्य सूत्र का वर्णन है। परन्तु सूत्र के बनने से उस प्रकार के वस्त्रों का बनना और प्रचलन स्वाभाविक है।

२—वही, १ । ४३ । ९

३—वही, १ । १०७ । १८; २ । २९ । ७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थी । गरुड़ ने तपस्या करने के बाद विष्णु से शक्ति का वरदान माँगा जिससे वह उसको दासता से मुक्त कर सके (गरुड़ १ । २ । ४८-४९ ।) विष्णु ने भी उसे वर देते हुए विश्वास दिलाया कि वह अवश्य ही अपने उद्देश्य में सफल होगा—

नागदास्यान्मातरं त्वं विनतां मोक्षयिष्यसि ।

गरुड़ १ । २ । ५०

सत्य ही स्वराज्य (स्वतन्त्रता) में ही सुख होता है (सुखं स्वराज्ये[1]) । इसीलिये दासीत्व (गरुड़ १ । ४६ । १०) को हेय कहा गया है । दासी-पुत्र[2] कुछ विशिष्ट श्राद्धों (एकोद्दिष्ट, पार्वणं) को करने का अधिकारी नहीं था ।

नाम करण के सम्बन्ध में कहा गया है कि शूद्रों का नाम दास युक्त रखना चाहिए[3] । इससे ज्ञात होता है कि दास्य भाव के पीछे सेवा की भावना निहित थी । दास कुल और राजकुल में विभेदन किया गया है[4] ।

१—ब्रह्मवैवर्त पु०, १ । १८ । ४३
२—गरुड़, २ । १५ । ३५
३—वही, १ । ११ । ९
४—वही, १ । ६४ । ८-९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

७—आर्थिक-जीवन

धर्म-अर्थ

प्राय: ऐसा माना जाता है कि प्राचीन भारत में भौतिक और लौकिक जीवन की उपेक्षा की गई थी तथा केवल आध्यात्मिक जीवन और दर्शन का ही विकास हुआ। यह एक भ्रान्ति है। गरुड़ पुराण के ही अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत में **अर्थ के स्वरूप और महत्व**, तथा अर्थशास्त्र और धन-विद्या का अध्ययन होता था। धन का वर्गीकरण, वृत्तियों (ऑक्यूपेशन्स) और आकर (खानों), कृषि, पशुपालन, वाणिज्य और उद्योगों का राष्ट्र और व्यक्ति के जीवन में महत्व का विवेचन भी गरुड़ पुराण में किया गया है।

'यतोऽभ्युदयनिश्रेयस सिद्धिः स धर्म:'—जिससे अभ्युदय अथवा लौकिक उन्नति-भौतिक विकास और निश्रेयस अथवा मोक्ष-आध्यात्मिक उन्नति हो, वही धर्म है। यही हिन्दू जीवन का आदर्श था, जिसके आधार पुरुषार्थ-चतुष्टय-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—हैं। लौकिक जीवन में धर्म, अर्थ और काम का त्रिवर्ग-साधन ही मुख्य लक्ष्य माना गया। संयमित, संस्कृत और सभ्य जीवन धर्म के बिना असम्भव है। धर्म ही शास्ता और नियामक है। त्रिवर्ग-प्राप्ति का मुख्य साधन अर्थ ही है। काम वह इच्छा शक्ति है जो मनुष्य को सौन्दर्य और सुख की ओर प्रेरित करता है। अत: त्रिवर्ग की त्रिवेणी से ही प्राचीन हिन्दू जीवन—ऋषि चर्या—का पवित्र आदश बना था। इसीलिये यहाँ के समाज में व्यक्ति को त्रिवर्ग का ज्ञान (धर्मकामार्थज्ञानमुत्तमम्)[१] कराया जाता था। जिस देश में याज्ञवल्क्य सदृश तत्वज्ञानी के दो पत्नियाँ हों और सम्पत्ति हो उसके प्रति यह कहना कि लौकिक जीवन की उपेक्षा की गई, भूल है। हाँ इतना सत्य है कि अमृतत्वस्य तु नाशास्तिवित्तेन् अर्थात धन से अमरता नहीं मिल सकती है।[२] समाज में उनकी तुलनात्मक महत्ता निश्चित थी।

धर्म ही नित्य-सनातन तत्त्व है। परन्तु ओषधियों-वनस्पतियों, फल-मूल,[३] गाय, बकरी, घोड़ा, गदहा, मेढ़ा आदि ग्राम्य (पालतू) पशुओं तथा

१—गरुड़, १ । ३ । ४

२—वृहदारण्यक उप० ४ । ५ । ३

३—वही, १ । ४ । ३१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्वापद, हाथी, बन्दर, पक्षी, जलचरपशु[1] आदि की आवश्यकता पड़ती ही रही है। इसका प्रमाण आज भी पुरातत्त्व हज़ारों-सैकड़ों वर्षों पहले की बनी हुई इनकी मूर्तियों को पृथिवी के गर्भ से निकाल कर दिखाता है। क्या पशु-पालन भारत या अन्य देशों की सभ्यता का आधार नहीं रहा? अस्तु सम्पत्ति, धन या अर्थ एक साधन था न कि साध्य।

अर्थ

सम्पूर्ण पृथिवी रत्नों की खान है—यथा धान्य, पशु और स्त्रियाँ आदि। किसी कार्य-प्रयोजन (अर्थ) की जिससे सिद्धि हो, उसे अर्थ कहते हैं।[2] अतः स्पष्ट है कि 'अर्थ' की प्रयोजकता और उपयोगिता के कारण ही इसका यह नाम पड़ा। जीवन में मनुष्य का काम बहुत सी चीज़ों से पड़ता है। परन्तु सबसे पहले उसे टिकने के लिये एक आधार चाहिये। छत से गिरते हुए बच्चे, नौजवान या बुड्ढे नर-नारी को पहले प्राण-रक्षा के लिये एक आधार, आश्रय, और अवलम्ब चाहिये, जिस पर टिक कर वह जीवन की साँस ले सके। अतः मनुष्य के आर्थिक विकास में सबसे पहले भूमि चाहिये। लेकिन यदि छत से गिरता हुआ वह आग या समुद्र में भी टिका, तो जीवन संदिग्ध है। अतः भूमि ही नहीं भूमि का स्वरूप, उसकी उर्वरता और सम्पत्ति शक्ति ही किसी व्यक्ति या जाति को सबल बना सकती है। इसीलिये कहा गया है कि "सर्वरत्नाकरा भूमिः" (गरुड़ १। २०५। ८४); इतना ही भूमि-गुण पर्याप्त नहीं था; वह धान्य, पशु, पुरुष और स्त्रियों से सम्पन्न हो तभी अर्थ के कार्य-योग का सम्पादन कर सकती है।[3]

अर्थ का महत्व

जीवन में अर्थ का महत्व होने से ही अर्थ का शास्त्रीय विवेचन हुआ तथा अर्थशास्त्र की प्रतिष्ठा हुई। शास्त्र-प्रणयन और ज्ञान-पद्धति भी चार पुरुषार्थों—धर्म, अर्थ और काम तथा मोक्ष—पर आधारित थी (धर्मकामार्थज्ञानमुत्तमम्)।[4] इसीलिये जीवन-यात्रा के चार मार्ग—धर्म-मार्ग, अर्थ-मार्ग, काम-मार्ग और मोक्ष-मार्ग बताये गये हैं:—

१—गरुड़, १। ४। ३२-३३

२—वही, १। २०५। ८४:

सर्वरत्नाकराभूमिधान्यानि पशवः स्त्रियः।
अर्थस्य कार्ययोगत्वादर्थ इत्यभिधीयते॥

३—वही, दृष्टव्य ऊपर नोट २

१—वही, १। ३। ४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्मञ्चार्थञ्च कामञ्च मोक्षञ्च कथयन्ति ते ॥

गरुड़, २ । ७ । १६

एको हि धर्ममार्गश्च द्वितीयश्चार्थमार्गकः ।
अपरः काममार्गश्च मोक्षमार्गश्चतुर्थकः ॥

वही, २ । ७ । १७

विभिन्न आचार्यों ने इन विभिन्न-मार्गों—चतुर्वर्ग साधनों—का स्वमति और देश-काल के अनुसार महत्व बताया । यथा—

गौतम ने, धर्म एव प्रधानः ।
कौटिल्य ने, अर्थ एव प्रधानः ।
वात्सायन ने, काम एव प्रधानः ।

परन्तु याज्ञवल्क्य सदृश वेदान्ती और आत्मवादी ऋषियों ने धर्म के दोनों तत्त्वों—अभ्युदय और निश्रेयस—का महत्व माना । जनक के पूछने पर याज्ञवल्क्य ने जनक को बताया कि वह उनके यहाँ पशुओं को प्राप्त करने की इच्छा से और ब्रह्म-चर्चा भी करने के लिये ही आये हैं :—

ओं जनको ह वैदेह आसाञ्चक्रेऽथ ह याज्ञवल्क्य आवव्राज । तँ हो वाच याज्ञवल्क्य किमर्थमचारीः पशूनिच्छन्नण्वन्तानिति उभयमेव सम्राडिति हो वाच ॥

वृहदारण्यक उप०, ४ । १ । १

परन्तु धन से सम्पन्न सारी पृथिवी ही मिल जाय तो भी धन से अमरता नहीं मिल सकती है ।[१] इसीलिये भारत के शास्त्रचिन्तकों ने धन को साध्य न मान कर साधन ही माना । परन्तु धन और विद्या (धन विद्या)[२] दोनों का ही महत्व था, विद्या का महत्व तभी है, जब वह अर्थ की सिद्धि कराये (अर्थ करी च विद्या)[३] । परन्तु अर्थ-साधना उचित रीति से न्यायपूर्वक और धर्मयुक्त होनी चाहिये (येऽर्था धर्मेण ते सत्या) और उसका उपयोग भी धर्मकार्य में ही होना अभीष्ट है (ये धर्मेण गताः श्रियः) तथा इसीलिये धर्मार्थी की प्रशंसा की गयी है (धर्मार्थी च महान्लोके तत्स्मृत्वा ह्यर्थकारणात्)[४] । परन्तु जिस अर्थ का दुरुपयोग होता है, उसकी निन्दा की गयी है (अर्थेनापि हि किं तेन यस्यानर्थे तु सङ्गतिः)[५] । अर्थ-अनर्थ का विवेक विद्या से ही होता है । अर्थ

१—वृहदारण्यक उप०, ४ । ५ । ३
२—गरुड़, १ । १८५ । १
३—वही, १ । ११५ । २०
४—वही, १ । ११३ । ३४
५—वही, १ । ११० । ६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्यूत[१], स्त्री को सन्तुष्ट करने (अर्थेन नारी[२]), दान करने[३] आदि में काम आता है। धन से ही धर्म-साधना होती हैं (धनेन धार्यते धर्मः)[४] और धर्म से ही अर्थ की भी प्राप्ति होती है (धर्मात्सञ्जायते ह्यर्थो)[५]। राजा आदि इसी कारण धन का सञ्चय करते हैं कि वे धन से आत्म-रक्षा और राष्ट्रवर्द्धक द्विजातियों की रक्षा करें। असमर्थ और अयोग्य राजा भी द्रव्य सञ्चय करते हैं। परन्तु राष्ट्र रक्षक महीपाल पुत्रवत् प्रजापालन और राष्ट्र रक्षण के लिये ही धन संचय करता है।[६] धन ही सच्चा मित्र है धन के अभाव में मनुष्य को सभी लोग छोड़ देते हैं :—

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः।
यस्यार्थाः स पुमान्लोके यस्यार्थाः स च पण्डितः॥
गरुड़, १।१११।१७

त्यजन्तिमित्राणि धनैर्विहीनं पुत्राश्च दाराश्च सुहृज्जनाश्च।
ते चार्थवन्तं पुनराश्रयन्ति अर्थो हि लोके पुरुषस्य बन्धुः॥
वही, १।१११।१८

अर्थ हीन व्यक्ति को उसके घर वाले भी छोड़ देते हैं (गरुड़, १।१०९।७)।

सम्पत्ति-साधन

भूमि क्या अत्यन्त प्राचीन युग की पृथु द्वारा पृथिवी-दोहन की कहानी[७] मनुष्य और प्रकृति के संयोग तथा तज्जनित सभ्यता (सिविलाईज़ेशन) के विकास का लिखित प्रमाण नहीं है? गरुड़ स्पष्ट कहता है—

दुदोह पृथ्वीं राजा प्रजानां जीवनाय हि।
गरुड़, १।६।८

मानव-जीवन पृथ्वी की शक्तियों पर ही आधारित है। यही ऋषियों का प्राचीनतम आविष्कार था जिसे हम आर्ष वेदों में ही प्रतिष्ठापित पाते हैं। पृथिवी-सूक्त और नदीसूक्त क्यों लाखों वर्षों के बाद भी जीवन्त हैं?

१—गरुड़, १।११४।५
२—वही, १।११४।१८
३—वही, १।११६।४-६
४—वही, २।२।२९
५—वही, २।२।३०
६—वही, १।१११।१४-१६
७—वही, १।६।८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसीलिये कि पृथिवी ही मनुष्य की मां है जो उसके जीवन के लिये (प्रजानां जीवनाय ही) प्रतिष्ठित है—

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः ।

अथर्ववेद, १२ । १ । १२

जननी मां जन्म देती है और दूध पिलाकर २–४ वर्ष पाल लेती है। लेकिन फिर वही मां चाहती है कि उसका पुत्र पृथिवी पर पैर टेके, खड़ा हो और चले। वह अपने जनित पुत्र को भूमाँ को सौंप देती है। वहीं वह शिशु गिरता-उठता संघर्ष करते-करते टिक जाता है। स्नेह वश हर बच्चा—मैं, तुम और सब—मिट्टी चाव से खाना चाहता है। यह उसका सहज स्नेह (स्पॉन्टे-नियस अफ़ेक्शन) है। पृथिवी ही धरित्री[1]—धरणी अर्थात् धारिका शक्ति बन गयी अन्त में भी यात्रा समाप्ति के बाद भी मनुष्य भूमाँ की ही गोद में विलीन होजाता है—

"उपसर्प मातरं भूमिं"

अस्तु सत्य है कि मनुष्य का भौतिक विकास और आर्थिक जीवन पृथिवी पर आधारित है। पृथिवी सम्पन्न और स्वर्णपूर्ण[2] वसुन्धरा[3] है। वही सबका आधार है—सा जगदाधारा उर्वी (गरुण १ । २१६ । १०)। वह रत्नपूर्णं (गरुड़ २ । ३१ । ४) भी है और विष्णु-पत्नी (भूर्वैष्णवी–गरुड़ २ । ३१ । ७) भी है। अस्तु अभ्युदय और निश्श्रेयस का मूलाधार पृथिवी पूज्या भी है।

भारत भूमि चित्र-विचित्रा, विलक्षणा और विशिष्टा है। उसके समुद्रों, नदियों, पर्वतों और वनों में भी रत्न होते हैं (गरुड़ १ । ६८ । ७)। पर्वतों से प्रवाहित होने वाली नदियों से सबकी वृद्धि और धन से सबकी पुष्टि होती है (गरुड़ १ । २०५ । ८३)। नदियाँ मधुर अमृत को प्रवाहित करती हैं (मधु क्षरन्तु सिन्धवः)[4]। इसीलिये भारत भूमि कर्म भूमि, पुण्य भूमि और वसुन्धरा कही गई है जो सबकी आराध्या भगवती-पृथिवी और प्रिय जन्मभूमि थी। इस भूमि भक्ति का प्रमुख कारण इसकी पोषिका शक्ति है—

पूषणमियं वै पूषेयँ हीदँ सर्वं पुष्यति यदिदं किञ्चित् ॥

बृहदारण्यक उप०, १ । ४ । १३

इस पर भाष्य—

पूषणम्-पुष्यतीति पूषा कः पुनरसौ इयं पृथिवी पूषा ।

१—गरुड़, १ । ६९ । १५
२—वही, १ । ६९ । १७
३—वही, २ । २४ । ७
४—वही, १ । २१० । १९

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

"पूषण—जो पोषण करता है, इसीलिये पूषा कहलाता है। किन्तु यह पूषा कौन है? ...... यह पृथ्वी पूषा है।" आज का अर्थशास्त्री भी लैन्ड (भूमि) को आर्थिक जीवन का मुख्य आधार मानता ही है।

(गाय) 'गो' शब्द भी पृथिवी का पर्याय है। ऋषियों ने भी गौ रूपी पृथिवी के महत्व का अनुभव कर उसे भी माता (वत्सला पोषिका) की संज्ञा दी। भारत ऐसे कृषि प्रधान देश ने सत्य ही इसे सभी प्रकार की सम्पत्तियों का मूलाधार माना था:—

या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवे व्यवस्थिता।
धेनु रूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु॥

गरुड़, २। २०। ४८

चतुर्वर्ग की साधिका शक्ति गाय-पृथिवी-सरस्वती (गावः पृथ्वी सरस्वती, गरुड़ २। ३१। ५) की त्रिवेणी ही है। अतः प्रजा (संतान, बच्चों) का भी पृथिवी, गाय और सरस्वती के प्रति धर्म था—

अनन्तं पृथिवी धर्मं ज्ञानं वैराग्यमग्निलः।
ऐश्वर्यं वायुपूर्वञ्च प्रकाशात्मानमुत्तरे॥

गरुड़, १। २८। ६

पृथिवी के अतिरिक्त पर्वत, नदी, वन और समुद्र आदि भी सम्पत्ति के मुख्य साधन हैं। पर्वतों से नदियाँ निकलती हैं और उनसे हमारे सभी काम उसी प्रकार सम्पन्न होते हैं जिस प्रकार संचित धन से सभी काम पूरे होते हैं:—

अर्थेभ्योऽपि विवृद्धेभ्यः सम्भूतेभ्यस्ततः।
क्रियाः सर्वाः प्रवर्त्तन्ते पर्वतेभ्य इवापगा॥

गरुड़, १। २०५। ८३

समुद्रतट (जलनिधेरुपकच्छ भूमिः)[१] पर्वतों, नदियों, वनों और समुद्रों में भी रत्नों की खानें (गरुड़ १। ६८। ६-७) मिलती हैं। इसीलिये इनसे विभूषित भारतभूमि समृद्ध और सशक्त थी—

विचित्ररत्नद्युति चारुतोया चतुः समुद्रा भवनाभिरामा।
मूल्यं न वा स्यादिति निश्चयो मे कृत्स्नामही तस्य सुवर्णपूर्णा॥

गरुड़, १। ६९। १७

परन्तु राष्ट्र सम्पत्ति राजा और प्रजा के शुभ कर्मों पर ही आधारित है (गरुड़ १। ६९। १९)।

१—गरुड़, १। ७२। २; देखिये, 'प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप' पृ० १३५-१४०, "वेलाकूलानि।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आर्थिक संस्थाएँ

कौटिल्य ने समाज शास्त्र को चार भागों में बाँट कर चार विद्याओं की प्रतिष्ठा बताई है—

वार्ता का विषय

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीति

इनमें वार्ता का सम्बन्ध आर्थिक जीवन से है, जिसके अन्तर्गत कृषि, पशुपालन और व्यापार (कृषिपशुपाल्ये वाणिज्ये च वार्ता) आते हैं। अर्थशास्त्र[1] बहुत से थे। उनमें इस समय कौटिल्य और बृहस्पति के अर्थशास्त्र ही प्रसिद्ध हैं। रामायण, महाभारत और पुराणों से भी अर्थ-विद्या के स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है। कामन्दकी नीतिसार और उस पर शंकरार्य की टीका से भी अर्थ-शास्त्र का परिचय मिलता है। पशुपालन पर शालिहोत्र अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ है। कृषि पर भी पराशर और वाणिज्य पर विदेह राज ने ग्रन्थों को लिखा। पुराणों से भी (अग्निपुराण, अ० २८७-२९१, हाथियों व घोड़ों पर) आर्थिक व्यवस्था का सुपरिचय प्राप्त होता है। गरुड़ के अनुसार भी कुषीद (महाजनी) कृषि, वाणिज्य और पशुपाल्यं (गरुड़ १। ९६। २८) वैश्यों के मुख्य कार्य थे।

परन्तु राष्ट्र समृद्धि पर राजा और प्रजा के शुभ कर्मों का फल पड़ने से शास्त्र चिन्तकों ने समाज के शुभ कर्मों का विधान भी बनाया था (देखिये वर्ण धर्म)। इनसे सम्बद्ध ही धन का भी वर्गीकरण किया गया। धन तीन प्रकार का कहा गया है—शुक्ल, शबल और कृष्ण। ये भी पुनः सात प्रकार के बताये गये हैं (गरुड़ १। २०५। ८६)।

तीन प्रकार की सभी सामाजिक सम्पत्ति है (अविशेषेण सर्वेषां वर्णानां त्रिविधंधनं)—

१—पैतृक सम्पत्ति (क्रमयात्तं),

२—भेंटोपहार आदि प्रीति पूर्वक मिली हुई सम्पत्ति (प्रीतिदत्तं),

और ३—दहेज-दान में जो पत्नी के साथ प्राप्त हो (प्राप्तञ्च सह भार्यया[1]) यह सामाजिक धन है। परन्तु ब्राह्मणों की त्रिलक्षणा विशेष सम्पत्ति-याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह से प्राप्त धन है; क्षत्रिय का भी तीन प्रकार का वैशेषिक धन होता है—पहला उचित करों से प्राप्त धन (शुद्धार्थं लब्धकरजं), दूसरा जुर्माना आदि से प्राप्त (दण्डाप्तं) और तीसरा विजय से प्राप्त (जयजं) धन है; इसी प्रकार वैश्य का त्रिलक्षण वैशेषिक धन—खेती, पशु पालन और

१—गरुड़, १। १०८। १

२—वही, १। २०५। ८७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यापार (कृषि गोरक्षवाणिज्यं) और शूद्र का धन द्विजातियों का अनुग्रह ही है। आपत्ति काल में ब्राह्मण भी महाजनी, खेती और व्यापार कर सकता है। इस प्रकार ऋषियों ने जीविका के बहुत से साधनों का प्रतिपादन किया है। इनमें महाजनी (सूदखोरी) ही सब से अधिक लाभ प्रद है।[१] इस प्रकार स्पष्ट है कि आर्थिक जीविका के उपायों और आर्थिक संस्थाओं पर सामाजिक व्यवस्था का कितना महत्व पूर्ण प्रभाव पड़ा।

कृषि—व्यापार और कृषि वैश्य की मुख्य वृत्तियाँ थीं (वणिक्कृष्यादि वैश्ये स्याद)[२]। कृषि[३] ही समाज का प्रमुख जीवनाधार है। इसीलिये इसका वैज्ञानिक विवेचन किया गया था। भूमि-खनन[४] और बीज-वपन[५] का कार्य करने के लिये ज्योतिष-नक्षत्रों की स्थितियों का विचार कर लिया जाता था। वृष्टि[६] का न होना और होना (अनावृष्टिः, वृष्टिः)[७] कृषिकर्त्ता[८]—कर्षक[९] (किसान) के जीवन में महत्व पूर्ण हैं। वर्षा होने पर वायु का प्रभाव पड़ता है (अनावृर्ष्टिदक्षावाहे वृष्टिः स्याद्वामवाहके)[१०]।

कृषि-उपद्रव—वर्षा का न होना, राजभय, चूहा आदि उपद्रवों से कृषि को हानि पहुँचती है (अनावृष्ट्या राजभयान्मूषिकाद्यै रुपद्रवैः कृष्यादि के भवेद्बाधा)[११]। अनावृष्टि से दुर्भिक्ष और राष्ट्र संपात[१२] होता है तथा कृषि के नाश होने से सामाजिक व्यवहार भी नष्ट होता है (सुभिक्षे कृषिनाशः स्याद् व्यवहारो विनश्यति) और लोक कलह भी होने लगता है[१३]। अतः स्पष्ट है कि कृषि पर ही राष्ट्र का जीवन निर्भर करता है।

१—गरुड़, १। २०५। ८६-९२
२—वही, १। १०७। ५
३—वही, १। ५१। ३
४—वही, १। ५९। १७
५—वही, १। ५९। २०
६—वही, १। ११५। ९
७—वही, १। २००। ९
८—वही, १। १०७। ८
९—वही, १। १०७। ९
१०—वही, १। २००। ९
११—वही, १। २०५। ९३
१२—वही, १। २१४। ३७
१३—वही, २। १०। २६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपज—'स्त्रीसम्पत्सुत धनधान्य गोपशु' (गरुड़ १ । ६८ । ३२) में धान्य का विशेष महत्व रहा है। धन का अभिन्न अंग धान्य कई प्रकार का होता है।

सप्तधान्यों[१] का उल्लेख मिलता है। यव, गेहूँ, जौ (गोधूमयव)[२], और चावल-तिल (व्रीहितिल)[३] प्रसिद्ध धान्य थे। जौ के सत्तू (सक्तुयावक) और यावकाहार[४] प्रचलित भोजन था। शाकमूल फल[५] भी होते थे। कपास[६] की भी खेती प्रसिद्ध थी। शर्कर[७] (शक्कर) के उल्लेख से सिद्ध होता है कि ईख की भी खेती होती थी।

शाक[८], फल-पुष्प[९] और वनस्पति[१०] का भी कृषि-जीवन में महत्व था। फल, मूलादिक औषधियाँ (ओषध्य: फल मूलिन्यो)[११] भी कम महत्वपूर्ण न थीं। अशोक के समय भी औषधियों के वृक्षों का आरोपण किया जाता था।

पशुपालन—कृषि के साथ-साथ पशुपालन भी आवश्यक है। गौ के महत्व[१२] के साथ ही साथ बैल, भैंस, हाथी, ऊँट, घोड़ा महत्वपूर्ण पशु थे जिनको शिक्षित और संयमित किया जाता था[१३]। हाथियों और घोड़ों (हस्त्यश्व)[१४] का सामरिक महत्व होने के कारण ही उनको स्वस्थ रखने के लिये हयायुर्वेद[१५] और गजायुर्वेद[१६] की प्रतिष्ठा हुई। अच्छा घोड़ा

१—गरुड़ १ । ११९ । ४; २ । ४ । ३९, २ । १८ । ९
२—वही, १ । ९६ । ६
३—वही, १ । ११७ । १३; १ । १२३ । ७
४—वही, १ । १२१ । ९
५—वही, १ । १२१ । ९
६—वही, १ । ६० । १४; १ । २१७ । २८; २ । ४ । ३९
७—वही, १ । ११७ । ४
८—वही, १ । ११७ । ४; १ । १२१ । ९
९—वही, १ । ११९ । ३
१०—वही, २ । १७ । १४
११—वही, १ । ४ । ३१
१२—वही, १ । १३१ । ९
१३—वही, १ । ५९ । २०-२१
१४—वही, १ । ६० । ६, १ । ११४ । ४१
१५—वही, १ । २०१ । १
१६—वही, १ । २०१ । ३३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मार नहीं सहता है[१]। तुर्किस्तान का घोड़ा उत्तम माना जाता था (उत्तमोऽश्वस्तुरुष्कजः)[२]। हाथी भी सर्वदा रक्ष्य था (वारणं रक्षयेत्सदा)[३]।

पशु पालतू और जंगली (ग्राम्यान् पशून् ... आरण्यांश्च)[४] होते थे। गाय, बकरी, मेढ़ा, घोड़ा, खच्चर, और गदहा ग्राम्य पशु थे तथा श्वापद, द्विखुर, हाथी, बन्दर, पक्षिगण, जलचर पशु और साँप या अन्य रेंगने वाले जंगली पशु हैं। जंगली पशु सात प्रकार के बताये गए हैं। सृष्टि के समय ही ब्रह्मा ने भेड़ों को वक्षस्थल से, मुख से बकरियों को, तथा पैरों से घोड़ा, हाथी, और गदहा आदि को जन्म दिया।[५] इनमें भी मृग, अहि (सांप), कपि, मार्जार, शूकर, पक्षी, नकुल और मूषिक यात्रा के समय दाहने आने पर शुभ माने गये हैं। जम्बूक (सियार), ऊँट और खर (गदहा) आदि यात्रा के समय बांए देखने पर शुभ होते हैं।[६] जंगली पशु हिंसक होते हैं।[७]

कौआ, कुत्ता, रासभ (गदहा), वृक और गृध्र[८] भी प्रसिद्ध जीव थे। अरण्य में रहने वाले द्वीपि (हाथी), वृक (भेड़िया), शरभ, कुँजर, सिंह और व्याघ्र आदि पशु थे।[९] परन्तु समृद्ध राष्ट्र गवाढ्यं[१०] (गोधन से भरा हुआ) था।

प्रह्लाद के वंश में ही निवात-कवचों (दैत्यों) का जन्म हुआ। ताम्रा से कन्यायें हुई जिनके नाम थे—शुकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, शुचि, और गृध्रिका। शुकी ने शुकों, (तोतों), श्येनी ने श्येन (बाज), भासी ने भास, (चील), गृध्रिका ने गिद्धों, शुची ने जलचर पक्षियों को और सुग्रीवी ने घोड़ों, ऊंटों और गदहों को जन्म दिया। ये सभी जीव ताम्रा की सन्तानें कहलाती हैं।[११] यह मनुष्य और पशु का सांकर्य है। दैत्यों से ही गिरते-गिरते जीव पशु-पक्षि योनि को प्राप्त हुआ। इससे यह भी ज्ञात होता है कि प्राचीन

१—गरुड़, १। ११०। १७
२—वही, १। २०१। ४
३—वही, १। २०१। ३७
४—वही, १। ४। ३२
५—वही, १। ४। ३०-३३
६—वही, १। ६०। १२, १३
७—वही, १। ७६। ४
८—वही, १। ७७। ४
९—वही, १। ७६। ४
१०—वही, १। ६५। २५
११—वही, १। ६। ४९-५२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारत में जीव विज्ञान का भी अध्ययन हुआ था। प्रसिद्ध ही है कि तेज़ पक्षी (विहंगमा कामगमा)[१] संदेश भी ले जाते हैं।

पशुओं की शुश्रूषा और चोरों से रक्षा करने वाले गोपालकों[२] अथवा गोपालों से व्रज और व्रजराज-गोवर्धनधर[३] गोप[४] ने इस देश के जन जीवन पर अमिट छाप लगा दी है।

पशुओं और पशुपालन के महत्व के कारण ही चरागाहों, ग्रामसीमा (वनभूमि), तड़ाग और आराम के क्षेत्रों में लोभ से खेती करना पाप माना जाता था—

गोचरं ग्राम सीमाश्च तड़ागारामगह्वरम्।
कर्षयन्ति च ये लोभात् प्रेतास्ते सम्भवन्ति हि॥

गरुड़, २। १२। ६

हस्ति और अश्व का सेना में विशेष महत्व था।[५] हस्तिप[६] (हाथियों का पालन, पोषण, संरक्षण और संवर्धन करने वाला) महत्वपूर्ण पदाधिकारी था। गज, उष्ट्र, बैल, भैंसा और गौ का दमनकर्म भी महत्वपूर्ण कार्य था[१]। अतः स्पष्ट है कि राष्ट्रीय जीवन में पशुपालन का कितना महत्व था।

वाणिज्य—वाणिज्य एक शुभ कर्म था[७] जिसका सम्बन्ध लाभादिकों और गमनागमन[८] से था। विभिन्न प्रकार के व्यापार देश में होते थे और उनसे वृद्धि-लाभ होता था।[९] विदेश गमन[१०] भी होता था। लाभ से प्राप्त धन से पितरों, देवताओं और ब्राह्मणों का सत्कार करना अभीष्ट था,

१—गरुड़, १। ८७। ४४
२—वही, १। १३२। १०
३—वही, १। १५। १३१
४—वही, १। १५। ११४

गोविन्दो गोपतिगोप: सर्वगोपीसुखप्रद:।
गोपालो गोपतिश्चैव गोमतिर्गोधरस्तथा॥

५—वही, २। १७। ४९
६—वही, १। १५। १३२
७—वही, १। ६७। ४
८—वही, १। ६७। १६
९—वही, १। २०५। ९४ (१):

देशं गतानां या वृद्धिर्नाना पण्योपजीविनाम्।

१०—वही, १। ६०। २१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिससे वे व्यापारी दोषों से मुक्त हो जाते थे।[१] व्यापार करना वणिक् का मुख्य कर्तव्य था[२] और वणिक् का प्रमादी होना महान् दोष था जिससे वह नष्ट हो जाता है।[३] वैदिश नगर[४] (विदिशा, मध्य प्रदेश) और महोदयपुर[५] (कन्नोज) आदि प्रसिद्ध नगर थे जिनका व्यापारिक महत्व प्रसिद्ध था। वैदिश नगर की समृद्धि और वैश्य जाति की उन्नति[६] के कारण ही वैदिश नगर के ही निकटस्थ वस्ती वैश्य नगर (वेसनगर) कहलाती थी।

यात्राएं दूर-दूर तक होती थीं।[७] नावों[८] का प्रयोग समुद्र या नदी पथ[१३] में किया जाता था।

पण्य विक्रय[९] व्यापारिक जीवन का मुख्य आधार था। परन्तु गाय, और बाग-ताल[१०] तथा स्त्रियों और अपने आपको बेंच देना (भार्यात्मपरि विक्रयः)[११] पाप था।

विनिमय (सिक्के)—

प्राचीन भारत में विनिमय-साधन की तीन कोटियाँ रही हैं—

१—वस्तु विनिमय (बार्टर) जैसे अन्न व शाक आदि;

२—धातु द्वारा विनिमय;

इन साधनों की कठिनाइयों और दोषों को दूर करने के लिये ही—

३—सिक्कों का प्रचलन प्रारम्भ हुआ।

निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि सिक्कों का प्रारम्भ कब हुआ। परन्तु वैदिक साहित्य, रामायण, महाभारत, पाली बौद्ध साहित्य और स्मृतियों तथा पुराणों में सिक्कों के प्रचलन के प्रमाण प्राप्त होते हैं।

१—गरुड़, १।२०५।९५
२—वही, १।१०७।५
३—वही, १।११५।१६
४—वही, २।१७।२२
५—वही, २।१७।५
६—वही, २।१७।२२-२५
७—वही, १।५९।२०, ३०, ३१, ४५; १।६०।१२
८—वही, १।१।२३; १।५९।२१
९—वही, १।१०५।५
१०—वही, १।१०५।१४, १५
११—वही, १।१०५।१७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुवर्णमाषक, पल, सुवर्ण, धरण, (सोने के सिक्के) और चाँदी के सिक्कों में कृष्णल, रौप्यमाषक, धरण, पुराण तथा तांबे के सिक्कों में कार्षापण का उल्लेख मिलता है (मनुष्मृति ८।१३४-१३६)। ये सुप्रसिद्ध प्राचीन सिक्के हैं जो अन्य स्मृतियों (याज्ञवल्क्य, नारद, विष्णु) और पुराणों में भी उल्लिखित किये गये हैं।[१] गरुड़ पुराण से भी प्राचीन सिक्कों पर महत्व पूर्ण प्रकाश पड़ता है। रूपकों,[२] माषकों[३] और धरणों,[४] तथा सुवर्ण[५] के उल्लेख मौक्तिक मूल्यों के मान-मूल्य के सम्बन्ध में आये हैं। रूपक प्रसिद्ध प्राचीन सिक्का था। माषक (माष[६]) और धरण मान (तौलने के बाँट) और सिक्के दोनों ही रूप में प्रचलित थे। दार्विक और भवक दो प्रकार के धरणों का उल्लेख है (गरुड़, १।६९।३०, ३१)। गुञ्जा[७] (घुँघुची) और शिक्य (गरुण, १।६९।३२, ३३) और कूप्य (गरुड़, १।६९।३४) भी उस युग के प्रसिद्ध मान थे। मनु के आधार पर गरुड़ कहता है—

सुवर्णो मनुना यस्तु प्रोक्तः षोडश माषकः।
तस्य सप्ततमो भागः संज्ञा रूपं करिष्यति ॥

गरुड़, १।७३।१७

शाणश्चतुर्माषमानो माषकः पंचकृष्णलः।
पलस्य दशमो भागो धरणः परिकीर्त्तितः ॥

वही, १।७३।१८

अर्थात् एक सुवर्ण १६ माषक का होता है और उसका सातवाँ भाग रूप (या रूपक) कहलाता है। १ शाण चार माष का होता है और १ माषक में ५ कृष्णल होते हैं तथा पल का दशवाँ भाग धरण कहलाता है। परन्तु मनु के अनुसार दश पल का एक धरण होता है (पलानि धरणं दश)।[८] अतः गरुड़ के अनुसार भी—

१—दृष्टव्य लेखक द्वारा—''न्युमिस्मेटिक ग्लीनिंग्स फ़ॉम दि पुराणाज'' पुराणम्, जि० ६, नं० २, जुलाई १९६४

न्युमिस्मेटिक ग्लीनिंग्स फ़ॉम दि आर्य मञ्जुश्रीमूलकल्प 'जर्नल ऑफ़ दि न्युमिस्मेटिक सोसाइटी, १९६४, जि०२६, भाग १

२—गरुड़, १।६९।२६; १।२१४।६४-६५

३—वही, १।६९।२७, २८, २९; १।७०।११; १।२१४।६४, ६५

४—वही, १।६९।३०, ३१

५—वही, २।१७।३९

६—वही, १।७२।१९

७—वही, १।६९।२९

८—मनुस्मृति ८।१३५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

	१ सुवर्ण	=	१६ माषक
		=	८० कृष्णल
	और १ शाण	=	४ माषक
		=	२० कृष्णल
मनु के अनुसार,	१ पल	=	४ सुवर्ण

पल भी रत्नों के मूल्य-सम्बन्ध में उल्लिखित किया गया है (मूल्यं पलस्य कथितञ्च शतानि पञ्च[१])। पल[२] और कर्ष[३]नामक मान भी प्रसिद्ध थे।

कर्ष, सुवर्ण, पलार्द्ध (आधा पल) और माषक[४] (अष्ट माषकः) के भी मान थे जो विद्वानों द्वारा प्रस्थ द्रव्य के सम्बन्ध में कहे गये हैं। पल, कुडव, प्रस्थ, आढ़क, द्रोण, तुला आदि भी प्रचलित थे[५]।

वृत्तियाँ—

ऋषियों ने जीविका के विभिन्न साधन बताये हैं (बहवो वर्त्तनोपाया ऋषिभिः परिकीर्तिताः)।[६] सामाजिक संगठन भी विभिन्न वृत्तियों पर आधारित है। वर्ण व्यवस्था के अनुसार भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के 'स्वधर्म' ही उनकी वृत्तियाँ हैं।[७] ब्राह्मणों की तीन वृत्तियाँ कही गई हैं (वृत्तित्रयमिदं प्राहुर्मुनयः श्रेष्ठवर्णिनः)।[८] इनका सम्बन्ध देश के बौद्धिक विकास से था। क्षत्रिय शस्त्रजीवी था, और वैश्य की जीविका पशुपालन, कृषि और व्यापार पर आधारित थी :

शस्त्रेणाजीवनं राज्ञो भूतानाञ्चाभि रक्षणम्।
पाशुपाल्यं कृषिः पण्यं वैश्यस्य जीवनं स्मृतम्॥

गरुड़, १। २०५। १२

१—गरुड़, १। ७७। ४
२—वही, १। १२८। १०, ११; १। १६७। ६१; १। १७३। ३०; वही, १। १८२। २; १। १८४। २०; १। १८५। २९; वही, १। २०१। १६, १७, २३, २७; २। २२। ४९, ५०
३—वही, १। १६७। ६१; १। १७४। ९; १। २०१। २१, २३
४—वही, १। २०२। ७२
५—वही, १। २०२। ७३-७६
६—वही, १। २०३। ९२ (१)
७—वही, १। १०६। २१-२५; १। १०७। ५, ६;
८—वही, १। २०५। ११

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शूद्र का सम्बन्ध सेवा–परिचर्या[१] से था। इसे आधुनिक शब्दावली और जीवन में 'लेबर' और सर्विस कहा जा सकता है। गरुड़ ने दस प्रकार की वृत्तियों का भी उल्लेख किया है :—

१—विद्या
२—शिल्प
३—भृति (मज़दूरी)
४—सेवा
५—गोरक्षा (पशुपालन)
६—विपणि (व्यापार)
७—कृषि
८—वृत्ति
९—भैक्ष्य
१०—कुषीद (महाजनी)[२]

सभी लोग अपने-अपने धन को न्याय पूर्वक कमाते थे।[३] मछली मारने[४] वालों का भी अपना एक विशिष्ट पेशा था। कारु, शिल्पी, वैद्य और दासी-दासों तथा राज्यभृत्यों की भी अपनी वृत्तियाँ थीं।[५]

विद्या-वृत्ति वालों को ही संभवतः मति-जीवी भी कहा गया है और इनको प्राणियों में श्रेष्ठ माना गया था (भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां मति जीविनः)।[६]

गानेवालों और वेश्याओं का भी अपना पेशा था।[७] शूद्रों की जीविका कारुकर्म भी थी।[८] कारुकर्म करने वाले शिल्पी ही थे :

तक्षा च तंत्रवायश्च नापितो रजकस्तथा।
पंचमश्चर्मकारश्च कारवः शिल्पिनो मताः ॥[९]

१—गरुड़, १। २०५। १३, ९८
२—वही, १। २०५। ९७
३—वही, १। २०५। ९८
४—वही, २। २८। १२
५—वही, २। २९। ७
६—वही, २। २। ११ (१)
७—वही, १। ५३। ८
८—वही, १। ४९। ४
९—आप्टे, संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी, पृ० १४५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रजकों (धोबियों), नटों, बांस का काम करनेवाले और चर्मकारों की वृत्तियों का भी उल्लेख मिलता है (रजकानांच शैलूषवेणुचर्मोपजीविनाम्) ।[१]

सेवा[२] वृत्ति भी आवश्यक और प्रसिद्ध काम था। इस प्रकार स्पष्ट है कि जीविका के विभिन्न साधन प्रचलित थे।

उद्योग-धन्धे

प्राचीन भारत के आर्थिक जीवन में उद्योग-धन्धों का भी कम महत्व-पूर्ण स्थान न था। वस्त्रों का उद्योग प्रसिद्ध था। विभिन्न प्रकार के ऊनी, (आविक),[३] रेशमी (कौषिक)[४] और सूती (कार्पासिकं)[५] वस्त्र प्रचलित थे। विभिन्न प्रकार के सूतों की बिनाई से वस्त्रोद्योग के विकास का परिचय मिलता है :

कौषेयं पट्टसूत्रं वा कार्पासं क्षौममेव च ।
कुशसूत्र द्विजानां स्याद्राज्ञां कौषेयपट्टकम् ॥

गरुड़, १ । ४३ । ७

वैश्यानाञ्चौर्णकं क्षौमं शूद्राणां नववल्कजम् ।

वही, १ । ४३ । ८ (१)

यद्यपि ऊपर यज्ञोपवीत-सूत्र का उल्लेख है, परन्तु इससे इन सूत्रों से बनने वाले वस्त्रों का भी ज्ञान होता है। पट्टवस्त्र[६] और क्षौम[७] सर्वप्रिय थे। वस्त्र सुन्दर (शोभनवस्त्र)[८] और रंगीन[९] भी होते थे। वस्त्रों में नील भी लगती थी। (गरुड़ १ । २१४ । ४९)। गुड़,[१०] शक्कर,[११] मद्य[१२] और सुरा[१३]

१—गरुड़, १ । २१४ । ९ (१)
२—वही, १ । ११५ । ५४
३—वही, १ । ५३ । ११
४—वही, १ । ५३ । ११
५—वही, १ । ४२ । ३
६—वही, १ । ६० । २२
७—वही, १ । ७१ । २१
८—वही, १ । ९७ । ३
९—वही, १ । ११ । ४; १ । १५ । ७७
१०—वही, १ । ११७ । ६
११—वही, १ । ११७ । ४; १ । १८१ । ५-६
१२—वही, १ । ३८ । ५; १ । ११४ । २५
१३—वही, २ । १३ । ८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का प्रयोग समाज में प्रचलित था। इसलिये उनका निर्माण भी होता था। तीन प्रकार की सुरा (सुराञ्च त्रिविधाम्)[1]—गौड़ी (शीरा या गुड़ की बनी हुई), पैष्टी (अनाज से खींची हुई) और माध्वी (द्राक्षा अथवा महुआ से बनी हुई)—का उल्लेख मिलता है।[2] तैल उद्योग भी प्रचलित था। औषधियों और तेलों[3] का निर्माण होता था। तेल विभिन्न प्रकार के बनते थे यथा सरसों का तेल (सार्षपं तैलं)[4] और रेंडी का तेल (एरण्ड तेल[5], तैलमेरण्डजं)[6] भी बनाया जाता था। शर्करा (शक्कर)[7] भी बनाई जाती थी।

तक्षण कला भी विकसित थी[8]। नावों के अतिरिक्त रथ और गहियों[9] का निर्माण होता था। नावों का प्राचीन भारतीय संस्कृति के इतिहास में विशेष महत्व है। मत्स्यावतार द्वारा विष्णु ने पृथिवी का उद्धार किया और मनु वैवस्वत को नाव पर चढ़ाकर डूबने से बचाया[10]। पात्रों और आसनों[11] का निर्माण भी तक्षण कार्य था। चन्दन आदि की लकड़ी से मूर्तियाँ भी बनती थीं[12]। बांस का भी काम होता था[13] और चमड़े[14] का भी काम होता था। चर्मोपजीवियों का उल्लेख मिलता है[15]। चमड़े की शुद्धि भी की जाती थी[16]। जूते (उपानह)[17] बनते थे। आसन[18] भी बनते थे। इस

---

१. गरुड़, पु० १ । १०० । १२ (१)
२. वही, १ । २१४ । ३१
३. वही, १ । ६० । १४ (१)
४. वही, १ । १०० । ९ ; १ । १८४ । २३
५. वही, १ । १७० । ४५ (२)
६. वही, १ । १७० । ६६,
७. वही, १ । १८४ । २, १३
८. वही, १ । ९७ । २
९ वही, १ । ५९ । २१
१०. वही, १ । १ । २३
११. वही, १ । ९७ । २
१२. वही, १ । २१४ । १
१३. वही, १ । २१४ । ९
१४. वही, १ । ९७ । १
१५. वही, १ । २१४ । ६
१६. वही, १ । ९७ । १
१७. वही २ । २१ । २
१८. वही २ । २१ । ९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकार हम देखते हैं कि गरुड़ पुराण के युग में विभिन्न प्रकार का कारु-कर्म[१] प्रचलित था। शिल्पियों का समाज में यथेष्ट सम्मान था।

भिन्न भिन्न धातुओं—लोहा,[२] चांदी, सोना,[३] सीसक (सीसा)—तांबा, टीन (त्रपुसीसकताम्राणां),[४] और कांसा[५] आदि का प्रयोग किया जाता था। इन से बर्तन और आभूषण बनाये जाते थे। सिक्के भी बनते थे। औषधि (लौह चूर्ण) के रूप में भी इनका प्रयोग होता था।

रत्न-मणि-मौक्तिक

रत्न, मणि और मौक्तिकों का भी कारबार प्रचलित था। गरुड़ पुराण के अनुसार रत्नशास्त्र[६] और मणिशास्त्र[७] विकसित शिल्प-विद्यायें थीं, जिनका देश के आर्थिक जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता था। रत्न-परीक्षा और उनका उनके गुणों के अनुरूप मूल्य–निर्धारण करना कुशल शास्त्रज्ञों का काम था।[८] वे जिन जिन देशों में उत्पन्न होते थे उनका प्रभाव उनके मूल्य और महत्व पर भी पड़ता था।[९] उनके रंगों के आधार पर भी उनका वर्गीकरण किया गया था।[१०] क्रय-विक्रय के लिये मान (तौल), और सिक्कों[११] का ज्ञान भी आवश्यक था। अस्तु स्पष्ट है कि यह शास्त्र कितना समुन्नत था[१२]। सिंहल और पारसीक देश भी रत्नों की उत्पत्ति के लिये प्रसिद्ध थे।[१३] इसी प्रकार तुरुष्क देश अच्छे घोड़ों के लिये प्रसिद्ध था (उत्तमोऽश्वस्तुरुष्कजः)।[१४] इससे यही परिलक्षित होता है कि तत्कालीन भारत भी अपनी सीमाओं के बाहर स्थित देशों से अपरिचित न था। इसीलिये पूर्व मध्यकालीन भारत का आर्थिक जीवन समृद्ध था।

---

१. गरुड़, १।४९।४
२. वही, १।६८।४६(१)
३. वही, १।९७।१
४. वही, १।९७।१
५. वही, १।९८।५
६. वही, पु०, १।७४।५
७. वही, १।६८।३४; १।७३।७; १।७५।७
८. वही, १।६८।१४
९. वही, १।६८।१६–१८; १।६९।२३–२४; १।७३।१६
१० वही, १।६८।२०–२५
११. वही, १।६९।२३–३४; १।७३।१८–१९
१२. वही, १।६९।२२
१३. वही, १।६९।२२-२४
१४. वही, १।२०१।४(१)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

८—धार्मिक जीवन और संस्थाएं

गुप्त-युग के पराभव से संध्या की गोधूलि वेला में कलि अपनी कालिमा से समाज को झांकने लगा। पाप का प्राबल्य और पतन का उन्मेष ही कलि है। ईशानवर्मन् के हड़हा अभिलेख में भी 'कलि-स्वभाव' और 'आचार-मार्ग' (श्लोक ८), श्रुतिपथ विधि (श्लोक ९) तथा सत्पथं(श्लोक १२) का उल्लेख किया गया है। इसी अभिलेख (श्लोक १५) में बताया गया है:-

प्रविशती कलिमारुतघट्टिता
क्षितिरलक्ष्य रसातलवारिधौ
गुणशतैरवबध्य समन्ततः
स्फुटित नौरिव येन बलाद्धृता ॥

इस समय कलि के प्रभाव से जर्जरित राष्ट्र की नौका टूट चुकी थी, जिसे चारों ओर से बांधकर बचाया गया था। इसी कलि ने देश में अन्धकार (कलिप्रवृत्ति तिमिरः, श्लोक १६) फैला दिया था।

पुराण-धर्म

कलि परस्पर कलह के अर्थ में भी प्रयुक्त किया गया है।[१] धार्मिक जीवन भी कलह से संकीर्ण हो गया था। संकीर्णता और कलह को दूर कर समवाय की स्थापना ही पुराणों का मुख्य उद्देश्य है। पुराणधर्म भक्ति पर विशेषतः आधारित है। पुराण-धर्म वस्तुतः रोग-ग्रस्त संसार को कल्याण-पद दिलानेवाली परमौषधि ही है। पुराणों के विभिन्न आख्यानों का यही उद्देश्य है कि सभी प्राणियों में सत्पथगामिनी सद्बुद्धि का विकास हो तथा वासनापरक पशु-बुद्धि का ह्रास हो।

मध्यदेश ही धर्म-देश रहा है[२]। धर्म-देश में ही द्विज-धर्म का विकास हुआ (संवर्तस्मृति, ४)। आहार, मैथुन, निद्रा, भय और क्रोध सभी में सुलभ हैं। परन्तु विवेक ही इनमें दुर्लभ है :—

---

१. उ० सु० क०, पृ० ७९ : सपत्नी कलिः, कुट्टनीकलिः, ब्राह्मणकलिः, वाणिज्यकलिः, अन्त्यजकलिः, जानपदः कलिः, सुभटकलिः...

२. गरुण, २।२।९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आहारो मैथुनं निद्रा भयं क्रोधस्तथैव च।
सर्वेषामेव जन्तूनां विवेको दुर्लभः परः ॥ गरुड़, २।२।८

इसी प्रकार देवताओं, मुनियों, पितरों और पक्षियों में धर्म, सत्य और विद्या भी सदैव विद्यमान रहते हैं। सभी 'भूतों में प्राणी श्रेष्ठ हैं; सभी प्राणियों में बुद्धिजीवी लोग श्रेष्ठ हैं; बुद्धिमानों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं; ब्राह्मणों में विद्वान्, विद्वानों में भी शिक्षित अथवा अधीत व्यक्ति (कृतबुद्धि); कृतबुद्धियों में भी कर्त्ता और उनमें ब्रह्मवादी श्रेष्ठ होता है। मनुष्य-जीवन की सफलता तभी है, जब वह स्वर्ग और मोक्ष की साधना में संलग्न हो। जो इन दोनों को प्राप्त करने का प्रयत्न न करे, वह आत्मवञ्चक है (गरुड़, २।२।११-१३)। वञ्चना यह है कि मनुष्य १०० पाकर १००० पाने की इच्छा करता है, १००० पाकर १ लाख और लखपती होकर वह राज्य चाहता है; राज्य पाकर सभी राजाओं पर चक्रवर्ती और चक्रवर्त्तित्व की प्राप्ति के बाद भी सुरत्व। देवता होकर इन्द्र होना चाहता है। सुरपति से भी आगे ऊर्ध्व गति चाहता है। परन्तु उसकी तृष्णा पीछे नहीं लौटती और तृष्णा मे फँस कर वह नरकगामी होता है। जो तृष्णा-मुक्त है वही स्वर्ग-वास पाते हैं (गरुड़, २।२।१४-१६)। सत्य ही कहा गया है:

तण्हक्खयो विरागो निरोधो निब्बानं

इस प्रकार मनुष्य के मन में विवेक उत्पन्न कर उसे सत्पथ पर लगाना ही धर्म और धार्मिकों का कर्म है। पुराण ऐसे सत्पुरुषों का अनुभूत जीवन दर्शन समाज के समक्ष रखते हैं कि सभी स्वधर्म का पालन करते रहें। अस्तु अपवर्ग की प्राप्ति का साधन ही धर्म है, जिसका पालन करना कर्तव्य है (धर्म एवापवर्गाय तस्माद्धर्मं समाचरेत्) और धर्म की प्राप्ति श्रद्धा से होती है न कि धनराशि से (गरुड़, २।२।३१)। इस प्रकार प्राचीन चिन्तकों ने मनुष्य के समक्ष सत्यार्थ में मनुष्य बनने का आदर्श रखकर उसे पशुता में ही विलीन हो जाने से बचाया। उसे मनुष्य जीवन के दोनों अन्तों—भुक्ति और मुक्ति—का महत्व बताया। यही भौतिक और आध्यात्मिक जीवन, अभ्युदय और निश्रेयस का योग था। इसी से मनुष्य सच्चा सुख पा सकता है।

गरुड़ पुराण का हिन्दुओं में विशेष महत्व है। जीवन की संध्या में मनुष्य जब उस अदृश्य परलोक की यात्रा का विचार करता है, उसका मन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कांप उठता है। वह अपने पापों से प्रकम्पित होकर त्रस्त हो जाता है। ऐसे संकट और संशय के समय में उसे शान्ति, धैर्य और साहस प्रदान करने के लिये गरुड़ पुराण का श्रवण कराना अभीष्ट माना गया है। एक प्रत्यक्ष सत्य है 'मृत्यु किसी को भी नहीं छोड़ती, चाहे वह वृद्ध हो, बालक हो या युवक। सुख-दुख आते जाते रहते हैं। अकेले ही जन्म लेता है और अकेले ही मर जाता है; तथा अकेले ही पाप अथवा पुण्य का भोग करता है। सब के देखते हुए ही मृत प्राणी सब को छोड़ देता है और उसके बान्धव लोग लकड़ी या लोहे की भांति उसके शरीर को श्मशान में छोड़कर विमुख लौट आते हैं। धर्म ही अकेला उसका सहायक-सखा होकर उसके साथ जाता है।[१]

धर्म और इसका स्वरूप

मानव जीवन के दो मुख्य उद्देश्य-अभ्युदय और निश्रेयस-हैं (यतोऽभ्युदय निश्रेयस सिद्धिः)। इनको भुक्ति-मुक्ति[२] भी कहा गया है और मनुष्य को ही भुक्ति और मुक्ति का अधिकारी कहा गया है (मानुष्यं तत्र भूतानां भुक्तिमुक्त्यालयं शुभं)[३]। यह पवित्र भारत भूमि स्वर्गापवर्ग के फलों का अर्जन क्षेत्र है।[४] सुकृति[५] और स्वकर्म[६] से ही मानुषत्व को प्राप्त कर देवत्व की भी प्राप्ति करने की साधना करता है। यही मुक्ति कहलाती है (सा मुक्तिर्ब्रह्मणा चैक्यं)[७]। मनुष्य अपनी विवेक बुद्धि और शास्त्र दृष्टि द्वारा देख सकता है कि संसार के भोग्य-पदार्थ क्षण भंगुर हैं और स्वयं मनुष्य का शरीर भी अस्थिर है। अस्तु ऋषियों और शास्त्र चिन्तकों ने नित्य वस्तु की प्राप्ति पर विशेष बल दिया। जो मनुष्य केवल उदर भरण में ही लगा रहता है, वह पशु ही है[८]। अतः मानव जीवन का उद्देश्य साधारण स्तर से ऊपर उच्च तथा उदात्त माना गया था।

---

१. गरुड़ पु० २। २। २१-२४
२. वही, १। ११९। १; १। १२४। २, १३
३. वही २। १। ५
४. वही २। १। ६
५. वही २। १। ५
६. वही २। १। ८
७. वही १। २१८। ९
८. वही १। ११५। ३१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसी कारण प्राचीन भारतीय जीवन में धर्म का विशेष महत्व रहा है। संसार-चक्र में चक्र के समान घूमते हुए[1] संसारी जीव को बंधन-मुक्ति की परम श्रेयस्कर अभिलाषा रही है। यही मुक्ति या मोक्ष कहलाता है जिसकी प्राप्ति धर्म से होती हैं (धर्मात् संजायते मोक्षो)। परन्तु अर्थ (धन) से काम (इच्छाएं, तृष्णा) बढ़ता है अर्थात् संसार से लगाव बढ़ता जाता है। मानव जीवन की द्विमुखी प्रवृत्तियाँ-प्रवृत्ति और निवृत्ति-हैं। ज्ञान से ही निवृत्ति अथवा अपराग और वैराग्य की प्राप्ति होती है[2]। संसार अर्थात् आवागमन, भ्रमण और संसरण से मुक्ति का साधन धर्म ही है, धर्म से ही सुख और ज्ञान प्राप्त होता है तथा ज्ञान से ही मोक्ष मिलता है

संसारोच्छित्तिहेतुश्च धर्मादेव प्रवर्त्तते।
धर्मात् सुखञ्च ज्ञानान्मोक्षोऽधिगम्यते ।। गरुड़, १। २०५। ९

मानव-चित्तवृत्तियों और चेष्टाओं का विश्लेषण कर ही ऋषियों ने पुरुषार्थ चतुष्टय-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष–की प्रतिष्ठा की। अतः लोक जीवन-यात्रा के चार ही मार्ग-धर्ममार्ग, अर्थमार्ग, का कार्ममार्ग और मोक्षमार्ग हैं।[3] मोक्षमार्ग का सम्बन्ध धर्म से है, क्योंकि धर्म से ही मोक्ष की प्राप्ति होती हैं।[4] मनुष्य-शरीर नश्वर है और कर्मानुसार देह भी बदलती रहती है।[5] शरीरों को पुराने कपड़ों के समान कहकर गीता के प्रसिद्ध उपदेश को दुहराया गया है।[6] इस प्रकार नित्य और अनित्य का विवेक ही ज्ञान की भूमिका है। ज्ञान से ही निवृत्ति और मोक्ष मिलता है। निवृत्ति तथा मोक्ष घर पर भी मिल सकता है, फिर घर छोड़कर तपोवन जाने की क्या आवश्यकता है (निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम्)[7]। इस प्रकार धर्म लोक-कल्याण और लोकमर्यादा की नियामिका शक्ति है जिसके आश्रय से संसार में रहकर अपने-अपने कर्मों और कर्तव्यों (स्वधर्म) के पालन करने से ही लौकिक और पारलौकिक सुख की प्राप्ति होती है तथा समाज में संकर और संकट (परस्पर कलह तथा कलि) का अभाव रहता है।

---

१. गरुण १। २१७। १-२
२. वही, १। ४९। २०
३. वही, २। ७। १६(२)-१७
४. वही, १। ४९। २०
५ वही, २। ८। ४१
६. वही, २। ८। ४२
७. वही, १। ११३। ९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्म के विविध रूप और सिद्धान्त प्रचलित थे। परन्तु ये विविध धार्मिक साधन और मार्ग एक ही लक्ष्य तक पहुँचाते हैं। ध्यान, कर्म, व्रत, आचार, अर्चन, स्तुति, जप, आदि धार्मिक क्रियायें और मोक्ष साधनों का समाहार ही धर्म है जो परम श्रेय को सुलभ कराता है।

प्राचीन भारतीय विचार पद्धति के अनुसार धर्म का मूल वेद है। वैदिक धर्म के भी मुख्य अंग कर्म-काण्ड और ज्ञान-मार्ग प्रचलित थे। परन्तु वैदिक धर्म को पौराणिक धर्म ने आत्मसात कर देवार्चन का स्वरूप दे दिया। देवोपासना में ही कर्म और ज्ञान (ध्यान) का भी समावेश हो गया। यही एक महान धार्मिक सुधारणा थी। देव-पूजा पद्धति स्वभावतः भक्ति की आधार शिला पर प्रतिष्ठित होकर समाज के सभी वर्णों और वर्गों को अपनी ओर आकृष्ट करने लगी। यहाँ तक कि भक्ति ने ही शूद्र, श्वपच, निषाद और द्विजाति में समता की प्रतिष्ठा की (गरुड़, १। २२२। ४९)। यही भक्ति-क्रान्ति का प्रारम्भ था। कर्म और ज्ञान मोक्ष प्राप्ति के साधन माने गये हैं[१]।

वेद सिद्धान्त (गरुड़ १। २१९। ३९) में कर्म (गरुड़ २। १३। ५-६) अथवा यज्ञों (गरुड़ १। ९४। २५) का विशेष महत्व है। इसी महत्व के कारण यज्ञशास्त्र की भी प्रतिष्ठा हुई (वेदार्थयज्ञशास्त्राणि, गरुड़ १। ९८। १४)। यज्ञ विविध प्रकार के होते थे। पञ्चयज्ञ (गरुड़ १। १०५। ५५), ग्रहयाग (नवग्रहों का यज्ञ, गरुड़ १। १०१। १-२), और अश्वमेध (गरुड़, २। १२। ६२) तथा राजसूय (गरुड़ १। १४५। १५) आदि प्रसिद्ध थे। परन्तु यज्ञों के विरुद्ध क्रान्ति घोष हुआ और फलतः ज्ञान, भक्ति और बौद्ध तथा जैनधर्म का प्रवर्तन हुआ था। पूर्व मध्य युग में भी कुमारिल ने वैदिक यज्ञों का प्रचार किया। परन्तु यज्ञ जनप्रिय न हो सके। शंकराचार्य की ज्ञानभक्ति ने अपना स्थान ग्रहण किया। तदन्तर रामानुजाचार्य ने भक्ति को दृढ़भूमि पर प्रतिष्ठित कर दिया। गरुड़ पुराण भी यज्ञों के स्थान पर विष्णु भक्ति को परम् श्रेयस्कर बताता है। यज्ञ करने से क्या लाभ है (किं यज्ञाराधने पुंसां)[२] और बड़ी-बड़ी यज्ञों को करने से वेदों के विद्वान भी उस गति को नहीं प्राप्त करते हैं, जिसको (विष्णु) भक्त लोग पाते हैं।[३] इतना होने पर भी वेद-धर्म का महत्व अक्षुण्ण था तथा सभी आस्तिक धाराओं का

१. वराह पुराण, ५। १६
२. गरुड़, १। २१९। ३१
३. वही, १। २१९। १८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मूलस्रोत वेदधर्म ही था जिसकी रक्षा के लिये विष्णु को स्वयं[१] अवतरित होकर दैत्यों (धर्मध्वंसकम्लेच्छों) और दैत्यधर्म को नष्ट करना अभीष्ट था[२]।

पौराणिक युगावस्था से भी प्राचीन भारत के धार्मिक विकास पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। प्रारम्भ में सत्युग धर्म के चारो अंगों से सम्पन्न था और धर्म के ये चार सिद्धांत सत्य, दान, तप और दया थे (कृते धर्मश्चतुष्पाच्च सत्यं दानं तपो दया[३])। मनुष्य सन्तुष्ट, ज्ञानी और चिरजीवी थे (गरुड़ १। २१५। ६)। त्रेता युग में केवल तीन ही आधार-सत्य, दान और दया (त्रेतायुगे त्रिपाद्धर्मः सत्यदानदयात्मकः) रह गये और मनुष्य यज्ञ धर्मपरायण हो गये (नरायज्ञपरास्तस्मिंस्तथा)[४]। द्वापर में धर्म के दो ही पाद रह गये (द्विपादविग्रहो धर्मः)[५]। प्रजा अपेक्षतया अल्पबुद्धि वाली हो गई और विष्णु रूपी व्यास ने एक वेद को चार भागों में विभक्त कर चार वेदों की रचना की।[६] वेद-धर्म के इस पौराणिक विकास वृत्त में ऐतिहासिक विकास क्रम भी दृष्टव्य है। ऋग्वेद के पहले ही मन्त्र में 'पूर्व ऋषियों' का उल्लेख मिलता है और सत्य, दान, दया और तप ही ऋषि-धर्म हैं। मोहन्जो-दारो की पशुपति-मुद्रा पर योगस्थ ऋषि को हिंसक पशुओं, हाथी, भैंसा, गैंडा और व्याघ्र से घिरा हुआ पाते हैं। इस मुहर-चित्र में तपश्चर्या की महत्ता का परिचय मिलता है। ऋग्वैदिक युग का प्रमुख धर्म यज्ञ-विधान था। इस प्रकार आगे चलकर यज्ञधर्म के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई और नये-नये मतों की प्रतिष्ठा हुई। पुराणों में इसे ही पतन और ह्रास का युग बताया गया है, जिसे प्रायः कलियुग के नाम से पुकारते हैं। द्वापर युग तक तो कृष्ण

---

१. गरुड़, १। १४२। १ : वंशादीन्पालयामास अवतीर्णो हरिः प्रभुः।
दैत्यधर्मस्य नाशार्थं वेदधर्मादिगुप्तये ॥

२. वही, १। १४२। ७ : नरसिंहोऽवतीर्णोऽथ हिरण्यकशिपुं रिपुम्।
दैत्यान्निहतवान्वेदधर्मादीनभ्यपालयत् ॥

नरसिंह और हिरण्यकशिपु के दृष्टान्त द्वारा आर्य चिन्तकों और सन्तों ने आततायियों का प्रबोधन किया :—

भक्तन को अपराध करे ताको फल गायो।
हिरण्यकश्यप प्रह्लाद परम दृष्टांत दिखायो ॥

नाभादास कृत भक्तमाल-छप्पय ८५

३. गरुड़, १। २१५। ५

४. वही, १। २१५। ८

५. वही, १। २१५। १०

६. वही, १। २१५। ११

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने धर्म की मर्यादा बनाये रखी। आगे चलकर कलियुग में धर्म केवल एक पाद का ही रह गया, जब मनुष्य दुराचारी और निर्दयी हो गये। इस प्रकार सतयुग में ज्ञान और तपस्या, त्रेता में रजोगुण की प्रधानता से यज्ञ और काम्यकर्म, और द्वापर में भी काम्यकर्म की प्रधानता बनी रही[१]। कलियुग में हिंसा, असत्य, मोह आदि प्रबल हो गये और राष्ट्र दस्युओं से पीड़ित किया गया तथा वेद-धर्म को नास्तिक सम्प्रदायों ने दूषित किया (दस्यूत्क्रुष्टा जनपदा वेदाः पाषण्ड दूषिताः)[२]। इस पौराणिक वृत्त में ऐतिहासिक तथ्यों का निरूपण किया गया है। यही पूर्वमध्य युग था जिसकी झांकी गरुड़ पुराण प्रस्तुत करता है।

गरुड़-युग—समन्वयात्मक दृष्टि

(श्री गारुडं पुण्यं पुराणं सारवाचकम्)
गरुड़ पु० १।२।६

गरुड़ पुराण का युग—पूर्व मध्यकालीन भारत—गुप्त युग की महाभागवत भित्ति पर प्रतिष्ठित था। यद्यपि इस युग का धार्मिक जीवन नानासम्प्रदायों के विविध शासनों और स्वरूपों से संकीर्ण हो गया था। संकीर्णता ने कलह को जन्म दिया और कलह के प्राबल्य तथा दुराचार ने ही इस युग को कलियुग बना दिया। गुप्त युग की गोधूलि-वेला में ही आंधी आयी थी और उसने राष्ट्र की मर्यादाओं को विचलित कर दिया। परन्तु गुप्तवंशैकवीर स्कन्दगुप्त ने पुनः राष्ट्र को बचाकर शक्ति, शासन और स्वधर्म-राग द्वारा अपने युग को सतयुग बना दिया जब सम्पूर्ण प्रजा में कोई भी व्यक्ति धर्म से रहित न था। परन्तु हूणों के आक्रमण शान्त न हुए और पवित्र मध्यदेश इन म्लेच्छों से आक्रान्त होकर त्राहि-त्राहि करने लगा। तभी, पुनः ४९८ ई० में विष्णु के अवतार रूप में ही बुधगुप्त ने मध्य देश की मर्यादा को बचाया[३]।

गुप्त वंश के पतन[४] में वाह्य आक्रमण के अतिरिक्त आन्तरिक कलह का

१. गरुड़, १।२१५।२२-२७
२. वही १।२१५।२८
३. दृष्टव्य—मेरी पुस्तक, स्टडीज़ इन स्कन्द पुराण, पार्ट वन, पृ० १८३-१८४
४. डा० बसाक—हिस्ट्री ऑफ नार्थ ईस्टर्न इण्डिया, अध्याय ४
डा० हेमचन्द्र रॉय चौधरी—पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ़ ऐन्शेन्ट इण्डिया, अपेन्डिक्स डी (पृ० ६२६-६३५)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विशिष्ट हाथ था। राज्य-हेतु तो कलह होता ही था, धर्म ने भी परस्पर संघर्ष उत्पन्न कर दिया था। इसीलिये पतन और कलह के युग को साहित्य और अभिलेखों में कलियुग कहा गया है। जब आर्यावर्त में मौखरियों, उत्तरकालीन-गुप्तों, पुष्यभूति वंश नृपतियों और गौड शासकों में राजनैतिक संघर्ष हो रहा था, उसी समय धार्मिक क्षेत्र में भी विशेषतः ब्राह्मण और बौद्ध धर्म के अनुयायियों में संघर्ष हो रहा था। साथ ही ब्राह्मणों और क्षत्रियों में भी युद्ध हो रहा था। यह हर्ष-शशांक युग था। शशांक ब्राह्मण और ब्राह्मण धर्म का उन्नायक था। हर्ष उदार और सहिष्णु होते हुए बौद्धधर्म का संरक्षक था। अस्तु यह युग क्षीण-युग था[1] जिसे सशक्त करने के लिये पुराणों में सूतों ने और अभिलेख में प्रशस्तिकारों ने राष्ट्रीय दोष बताकर उनका निराकरण कर विवेक द्वारा सत्पथ और सदाचार की प्रतिष्ठा करना ही अत्यावश्यक समझा।

इस सुधार-कार्य की आवश्यकता का उस समय अधिक अनुभव हुआ, जब सिन्ध में नास्तिक-यवन म्लेच्छों की स्थापना हो गई और राष्ट्र की स्वतन्त्रता ही खतरे में पड़ गई। अस्तु धार्मिक और सामाजिक एकता ही अभीष्ट थी। गुप्त कालीन स्वर्ण-युग की समन्वयात्मक चेतना ही राष्ट्र का परम श्रेयस्कर आदर्श था। समन्वय, सहयोग, सहानुभूति और सौहार्द की पृष्ठभूमि पर गुप्त युग का भागवत भवन निर्मित हुआ था, जो सबके कल्याण और सुख का साधन था। इसी स्पृहणीय आदर्श के मूल श्रोत 'वैष्णवी-वाक्सुधा' का गौरव गरुड़ पुराण में ऋषियों ने बताया है। उन्होंने ऐसा करते हुए यही कामना की कि सबका मंगल हो और सब लोग भद्रता को ही दृष्टि में रखें जिससे कोई दुखी न हो :—

सर्वेषां मंगलं भूयात्सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ।।

गरुड़, २ । ३५ । ५२

सभी पुराणों का यदि सम्यक विवेचन किया जाय तो उनमें यही समन्वयात्मक दृष्टिकोण का दर्शन प्राप्त होगा। यही हमारी ऋषि संस्कृति की विविधता और विभिन्नता में निहित मौलिक एकता है, जिसकी ओर

---

१. दृष्टव्य, लेखक का निबन्ध—शशांक और उनका युग—इतिहास परिषद १९६६—विवरण एवं विचार पृ० ४०–४३
इसे देहली में होने वाली भारतीय इतिहास परिषद की सभा में पढ़ा गया था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आधुनिक पुराण विवेचकों ने ध्यान नहीं दिया है। गरुड़ स्पष्टतः इस तथ्य की व्याख्या करते है :—

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्नाः नासावृषियस्य मतं न भिन्नम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः॥

गरुड़, १ । १०९ । ५१

विभिन्न श्रुतियों और ऋषि सम्प्रदायों के बावजूद धर्म का रहस्य गूढ़ ही है। सत्पथ वही है जो महापुरुषों द्वारा प्रशस्त किया गया है। वास्तव में यही धर्म-पथ भी है। प्राचीन भारतीय ऋषियों[1] ने सम्पूर्ण मानव जीवन को इस धर्म-पथ पर स्थापित कर धर्म के व्यापक स्वरूप का परिचय दिया। इस प्रकार धर्म ही समाज की आधार शिला थी और यही समाज की नियामिका शक्ति भी थी। अतः भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को क्षात्रधर्म में प्रवृत्त रहने का उपदेश देते हुए सभी लोगों को स्वधर्म का महत्व बताया।

गरुड़ पुराण भी इसी आदर्श को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये इसे भक्ति के सांचे में ढाल कर बताता है कि सकल लोक कर्ता हरि सर्वपूज्य हैं। स्वायम्भुव और विप्रादिकों द्वारा भी वे स्वधर्म के द्वारा आराध्य हैं।[2] इस प्रकार वर्णाश्रम धर्म का महत्व बताया गया है[3] भिक्षु-धर्म के साथ ही साथ सन्यास व योग का वर्णन करते हुए तीन प्रकार के योगियों का उल्लेख किया गया है। अन्तिम 'पारमेश्वरी भावना' है[4]। इस प्रकार मनुष्य धीरे-धीरे लोक यात्रा में अपना विकास—शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक—करता हुआ परम पुरुषार्थ (मोक्ष) की प्राप्ति करता है।

पुरुषार्थ चतुष्टय-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-मानवी शक्ति के चार महाफल हैं जिनको वह धर्म के द्वारा प्राप्त करता है। यदि भ्रम वश मनुष्य धर्म-पथ से अलग हट कर अधर्म[5] की ओर जाता है तो वह गर्त (नरक) गामी होता है।[6]

---

१. मोनियर विलियम्स, रेलिजस थॉट ऐन्ड लाइफ इन इन्डिया, (लन्दन, १८८३), पृ० ७, २५७

२. गरुड़, १।४९।१

३. वही, १।४९।२—१६

४. वही, १।४९।१७—१९

५. वही, २।२४।१ : श्रृणु ताक्ष्यं यथान्यायं धर्माधर्मस्य लक्षणं।
सुकृतं दुष्कृतं नृणामग्रे धावति धावति॥

६. वही, २।२१।१(i) ये नराः पापसंयुक्तास्ते गच्छन्ति यमालयम्।
वही, २।१५।४० (१) तैः सुवृत्तैः सुखं प्राप्तो दुर्वृत्तैर्नरकं व्रजेत्।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसीलिये ऐसा विश्वास बन गया है कि पुण्य से ही शुभ की प्राप्ति होती है और पुण्य कर्म के साथ ही साथ कृष्ण-भक्ति से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। ऋषियों ने इसी सत्य का ब्रह्मघोष किया :—

सुकृतस्य प्रभावेण स्वर्गो नाना विधो नृणाम् ।
भोगसौख्यादिरूपञ्च बलं पुष्टिः पराक्रमः ।। गरुड़, २।३४।१
सत्यं पुण्यवतां देव जायतेऽत्र परत्र च ।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं देववाक्यं तु नान्यथा ।। वही, २।३४।२
धर्मो जयति नाधर्मः सत्यं जयति नानृतम् ।
क्षमा जयति न क्रोधो विष्णुर्जयति नासुरः ।। वही, २।३४।३
एतत्सत्य मया ज्ञातं सुकृताच्छोभनं भवेत् ।
यथोत्कृष्टतमं पुण्यं तथा कृष्णपरो भवेत् ।। वही, २।३४।४

'धर्मो जयति नाधर्मः का सिद्धान्त ही ऋषि संस्कृति का मूलाधार है। ऋषि ही धर्म चिन्तक थे।[1] गौतम ऋषि (भगवान बुद्ध) ने भी यही उद्घोषित किया कि 'धम्मो हि सेट्ठो'। यह धर्म-गौरव का महत्व गुप्त-युग में हुआ, जब बुद्ध भी विष्णु के अवतार रूप में पूज्य बन गये। गरुड़ भी विष्णु-बुद्ध को अवतार मानते हैं। परन्तु इस युग में 'दिगम्बरों' (जैनों) को दुराचारी कहा गया है।[2] नग्नों को भी हेय दृष्टि से देखा गया है।[3]

नास्तिकों को कृतघ्न, रौद्र, साहसिक तथा शठ कहा गया है।[4] कलि-प्रभाव से दुष्टोक्तियों की भांति पाषण्डों की भी उक्तियाँ थीं।[5] पाषण्डियों से प्रपीड़ित होकर लोग विष्णु-पूजा नहीं करते थे। यह भी कलि-दोष ही था।[6] इस कलि के अन्धकार में ही जनपदों (राष्ट्र) में दस्युओं का प्राबल्य बढ़ गया तथा पाषण्डियों ने वेदों को दूषित कर दिया (दस्यूत्कृष्टा जनपदा वेदाः पाषण्ड दूषिताः)।[7] इसी प्रकार लोकायत, कुतर्क, प्राकृत और म्लेच्छ-भाषित को भी हेय कहा गया है।[8] इनका सम्बन्ध नास्तिक सम्प्रदायों से था। बुद्धरूपी विष्णु को वैष्णवी दृष्टि में पाषण्डों से रक्षा करने के लिये इच्छा प्रकट की गई है:—

१. गरुड़, १।५१।७ (२)
२. वही, २।३४।१३
३. वही, १।१०९।२४ (१) यहां पर प्रयुक्त 'नग्ना' सम्प्रदाय सूचक शब्द है।
४. वही, २।१७।३७ (१)
५. वही, १।२२२।२० (१)
६. वही, १।२१५। ३५ (१) : विष्णुं न पूजयिष्यन्ति पाषण्डोपहता जनाः ।
७. वही, १।२१५।२८ (२)
८. वही, १।९८।१७

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बुद्धः पाषण्डसघातात् कल्किरवतु कल्मषात्. (गरुड़, १।१९६।११-१)। मोह और मोह कर्त्ता दुष्टों[1] को भी घृणा की दृष्टि से देखा गया है। अन्य पुराणों में भी इन प्रवृत्तियों का उल्लेख मिलता है। इनसे ब्राह्मण धर्म और बौद्ध, जैन तथा अन्य नास्तिक सम्प्रदायों (पाषण्डो) में होने वाले संघर्ष का परिचय मिलता है। यह संघर्ष विष्णु और असुर (दैत्य) में भी था। नागभट द्वितीय और मिहिरभोज ने असुरों का दमन किया था।

यह धार्मिक दशा भारतीय इतिहास के उस युग का परिचायक है, जब सिन्ध में अरब वालों की सत्ता जम चुकी थी। यह ईसा की आठवीं शताब्दी से लेकर १०वीं शताब्दी का युग था जैसा महामहोपाध्याय डा० काणे व डा० हज़रा मानते हैं।[2] इस प्रकार यह युग हमारे राष्ट्र के इतिहास का क्षीण युग था। इस पतन से देश को बचाने के लिये पुराण-चिन्तक सूतों ने भेद-दृष्टि को मिटाकर एकता और समन्वय की अमृतमय लोक-पावनी धारा को प्रवाहित किया। पुराण ही, जिनका पठन और श्रवण समाज में प्रचलित था, लोक-सुधारण के प्रमुख साधन बने। कथा-वाचन द्वारा सदाचार और समन्वय का प्रचार किया गया। क्षत्रिय राज-सभाओं में भी पौराणिक-सूत मन्त्रिपद पर प्रतिष्ठित थे। इन्होंने राज-वर्ग पर भी ऐसी ही एकता और समन्वय की अमिट छाप लगाई कि सामाजिक और धार्मिक नव-चेतना का युग (रिनेसाँ) नव सन्देश को लेकर अवतरित हुआ। अभिलेखों में भी हम इस कलि स्वभाव को नष्ट कर आचार-मार्ग की प्रतिष्ठा करने वाले सम्राटों को पाते हैं। इन्हें विष्णु का अवतार माना गया। अस्तु इस युग में विष्णु-भक्ति को अपने नवोन्मेष के साथ समता और समन्वय के आदर्श को लेकर लड़खड़ाते राष्ट्र को संभालते हुए पाते हैं। इस प्रकार देश और काल की पृष्ठभूमि में इनकी व्याख्या करने से हमारे इतिहास के राजपूत युग पर जागरुक विचारों का ज्ञान होता है जो भक्ति आन्दोलन की विशेष अभिव्यक्ति है।

गरुड़ पुराण निस्सन्देह वैष्णव ग्रन्थ है जिसमें विष्णु-भक्ति तथा विष्णु-धर्म-विद्या का वर्णन किया गया है। परन्तु विष्णु के 'परं ब्रह्म' स्वरूप (गरुड़ १।२२०।३९) के साथ ही साथ अन्य देवी-देवताओं के पूजन का भी महत्व का वर्णन है। सभी प्रकार की देव-पूजा पर तान्त्रिक प्रभाव (अंग न्यास, मण्डल, मन्त्र, चक्र, यन्त्र आदि) बाहुल्यता से परिलक्षित होता है। योग की धार्मिक और दार्शनिक प्रक्रिया भी अधिकता से प्रचलित थी। एक ओर जब

---

१. गरुड़, १।१५।७०(२)—७१(१)

२. हज़रा-पुराणिक रिकर्ड्स, पृष्ठ १४३-१४४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामान्य जनता अपने उपास्य देवी-देवता को मूर्त्त रूप में पूजा कर रहा था, विज्ञ-विवेकी लोग निरंजन, सत्-चित स्वरूप का चिन्तन-ध्यान करते हुए ज्ञान-मार्ग द्वारा मोक्ष प्राप्त करने में लगे हुए थे। परन्तु भागवत चिन्तकों ने ज्ञान साधना के लिये घर छोड़कर जंगल में जाने से रोका और उन्हें यह बताया 'गृहेऽपिमोक्षः' अर्थात् घर पर भी मोक्ष मिल सकता है। घर पर रहते हुए ही स्वर्ग की प्राप्ति अथवा अपवर्ग सुख (मोक्ष) मिल सकता है। अस्तु मानव जीवन में भुक्ति और मुक्ति[1] के आदर्श को रखा। प्रवृत्ति और निवृत्ति के आदर्श पर भी इसे प्रस्तुत कर मानव जीवन को सन्तुलित मार्ग पर स्थापित किया जिसमें विभिन्न भारतीय दर्शनों का समन्वय परिलक्षित होता है। अन्तिम लक्ष्य तो ब्रह्मानन्द की ही प्राप्ति थी :

आनन्दं ब्रह्म तत्स्थानं······गरुड़ १।४९।२७

इसी परमानन्द स्वरूप 'पद्मस्थमानन्दमजरं हरिम्' का ब्राह्म मुहूर्त्त में ही उठकर हृदय में ध्यान करना आवश्यक था (गरुड़, १।५०।१-२)।

सुख-दुख

आनन्द के विविध रूप हो सकते हैं और हैं भी। एक चोर चोरी में आनन्द पाता है। व्यभिचारी व्यभिचार में तथा कुटिल व्यक्ति अपने कौटिल्य में ही आनन्द पाता है। अस्तु सुख-दुख के भी सत्य स्वरूप की विवेचना करना भी आवश्यक ही है। देवी भागवत पुराण, जो लगभग इसी युग की जीवन-झांकी प्रस्तुत करता है, पूँछता है :—

किं सुखं दुःखं······ कःशत्रुर्हितकर्त्ता को···।

देवीभागवत, १।१७।३६

अर्थात् सुख क्या है? दुःख क्या है? कौन शत्रु है? तथा कौन हित करने वाला है?

संसार में दो प्रकार के लोग हैं—एक रागी और दूसरे विरागी।[3] आत्म-चिन्तन में लीन विरागी ही एकान्त सेवन से सुख की प्राप्ति करता है।[4] विरागी पुरुष का घर ही तपोवन है (निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनं) और रागी मनुष्य के लिये वन भी दोष (और दुःख) का कारण होता है :

---

१. गरुड़, १।८२।१(२)
२. वही, १।४९।२०
३. देवी भागवत पु०, १।१७।३७
४. वही, १।१७।४५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः ।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्त्तते निवृत्तरागस्यगृहं तपोवनम्[1] ॥

इसीलिये गरुड़ पुराण भी निवृत्ति को ही सुख माना है :—

रागद्वेषादि युक्तानां न सुखं कुत्रचिद्द्विज ।
विचार्य्य खलु पश्यामि तत्सुखं यत्र निर्वृतिः ॥[2]

स्नेह से ही भय और दुख उत्पन्न होते हैं। अतः स्नेह ही दुःख का मूल है। उसके त्याग में ही महान् सुख है :—

यत्र स्नेहो भयं तत्र स्नेहोदुःखस्य भाजनम् ।
स्नेहमूलानि दुःखानि तस्मिंस्त्यक्ते महत्सुखम्[3] ॥

वैदिक-धर्म

प्राचीन भारतीय जीवन मे वेदों का विशेष महत्व रहा है। आर्ष मत के अनुसार 'वेदमूलमिदं जगत्' है। उत्तर-गुप्त काल के प्रसिद्ध हड़हा अभिलेख में श्रुतिपथ (श्लोक ८) और आचार-विवेक-मार्ग (श्लोक ५) अथवा सद्वृत्त (श्लोक १८) का महत्व बतलाया गया है। गरुड़ पुराण से भी वेद-धर्म का महत्व परिलक्षित होता है। हरि का अवतार ही दैत्यधर्म के नाश और वेद-धर्मादिगुप्तये (गरुड़, १।१४२।१) हुआ और नरसिंह ने तो दैत्यों का वध कर वेदधर्म की रक्षा की (गरुड़, १।१४२।७)।

आज के इतिहासकार-पुराणवेत्ता की दृष्टि में इन तथ्यों की कोई ऐतिहासिक महत्ता नहीं है। वह इसे कल्पना-गाथा कह कर आगे जल्पना में लग जायगा। पूर्व मध्यकालीन अभिलेखों में असुरों, दैत्यों और राक्षसों को ऐतिहासिक सम्राटों के विरुद्ध युद्ध करते पाते हैं। जिस प्रतिहार शासक रामभद्र को दुर्वल और व्यसनी कहा गया है[4], उसे भोज के ग्वालियर लेख में ही 'त्राताधर्मस्य' (श्लोक १२)—धर्म का रक्षक—कहा गया है। भोज ने 'असुरों' को अपने अस्त्रों से त्रस्त किया था (श्लोक २२)। पूर्व-मध्य युग में देवासुर संग्राम से वेद-धर्म को धक्का लगा। नास्तिक सैन्धव म्लेच्छों और पाषण्डियों ने श्रुतिपथ को ध्वस्त कर दिया (वेदाः पाषण्ड दूषिताः)[5]। समाज और राष्ट्र में इसकी प्रतिक्रिया होना आवश्यक थी।

---

१. गरुड़ पु० १।११३।९
२. वही १।११३।५७
३. वही १।११३।५८
४. डा० पुरी, हिस्ट्री ऑफ दि गुर्जर प्रतिहाराज़, पृ० ४९
५. गरुड़ पु०, १।२१५।२८(२)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह तो सुविदित ही है कि आचार्य कुमारिल भट्ट ने श्रुतिपथ की पुनः प्रतिष्ठा की और पूर्व मीमांसा द्वारा यज्ञ मार्ग (कर्मकाण्ड) का प्रचार किया। कुमारिल की वाणी गरुड़ पुराण में प्रतिध्वनित होती हुई सुनाई पड़ती है। अहिंसा के महत्व को बताते हुए (गरुड़, १।२२९।१४) श्री भगवान् कहते हैं।

विधिना या भवेद्धिंसा सा त्वहिंसा प्रकीर्तिता।

गरुड़, १।२२९।१५ (१)

अर्थात् वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति

(यहां पर विधि का सम्बन्ध वेद-विधि से है)।[1] जब यज्ञ वैदिक-विधि के अनुसार सम्पादित की जाय, तो उसमें सम्पन्न होने वाली पशु-हिंसा नहीं होती है।

परन्तु कुमारिल का यह मत समाज में जन-प्रिय न बन सका। स्वयं शंकराचार्य ने इस कर्म-मार्ग का खंडन कर ज्ञान मार्ग का उपदेश दिया :—

अहं ब्रह्मास्मि वाक्याच्च ज्ञानान्मोक्षो भवेन्नृणाम्

गरुड़, १।२२९।२८

महाभारत में भी यज्ञ तथा वैदिक विधि से होने वाली हिंसा को हेय बताया है :—

इज्यायज्ञश्रुतिकृतैर्यो मार्गैरबुधोऽधमः।
हन्याज्जन्तून् मांसगृध्नुः स वै नरकभाङ्नरः॥

अनुशासनपर्व ११५।४३

कर्ममार्ग तथा ज्ञानमार्ग का विवेचन रुचि के वृत्तान्त (गरुड़ १, अ० ८८) से स्पष्ट हो जाता है। रुचि ने कहा :—

अविद्या पच्यते वेदे कर्ममार्गाः पितामहाः।
तत्कथं कर्मणो मार्गे भवन्तो योजयन्ति माम्॥ गरुड़, १।८८।१९

परन्तु ज्ञान यज्ञ की श्रेष्ठता को ही प्रतिपादित किया गया है :—

१—दृष्टव्य—डा० दास गुप्ता, हिस्ट्री ऑफ़ इण्डियन फ़िलासफ़ी, भाग, १, पृ० ४०४-४०५

श्राद्ध आदि के समय मांस का खाना दोष युक्त नहीं माना गया था। परन्तु जो मनुष्य 'अविधि' से पशुओं को मार कर मांस खाता था, उसे नरक गामी होना पड़ता था :—

श्राद्धे देवान्पितृन्प्राच्र्य खादेन्मांसं न दोषभाक्।
वसेत्स नरके घोरे दिनानि पशुरोमतः॥गरुड़, १।९६।७१
सम्मितानि दुराचारो यो हन्त्यविधिना पशून्। वही, १।९६।७२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
ज्ञानयज्ञस्य सर्वाणि कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।। गरुड़, १।२२९।१२

आगे चलकर वेद-सिद्धान्त की भित्ति पर ही विष्णु-भक्ति की प्रतिष्ठा हुई और वैदिक धर्म से बढ़कर इस युग में विष्णु-भक्ति की महिमा मानी गई :—

विष्णुदेव परं ब्रह्म त्रिभेदमिह पठ्यते ।
वेदसिद्धान्तभानेषु तन्न जानन्ति मोहिताः ।। गरुड़, १।२१९।३९
मन्त्रयाजि सहस्रेभ्यः सर्ववेदान्त पारगः ।
सर्व वेदान्तवित्कोट्या विष्णुभक्तो विशिष्यते ।। वही, १।२१९।१२
किं यज्ञाराधने पुंसां सिध्यते हरिमेधसः ।
भक्तचैवाराध्यते विष्णुनान्यत्तत्रापि कारणम् ।। वही, १।२१९।३१

सत्य ही शंकराचार्य के बाद रामानुजाचार्य ने विष्णु भक्ति की महिमा का प्रचार किया । इसके अनुसार—

विष्णुमानन्दमद्वैतं विज्ञानं सर्वगं प्रभुम् ।
प्रणमामि सदा भक्तचा चेतसा हृदयालयम् ।। गरुड़, १।२२०।२

नारायण-स्तुति-कथा (गरुड़, १।२२०।२०), नाम-संकीर्तन (गरुड़, १।२२०।१५, १७) और नमन (गरुड़, १।२२०।१) आदि का प्रचार हुआ । दक्षिण से उत्तर तक विष्णु-भक्ति का अत्यधिक प्रसार हुआ । इस प्रकार गरुड़ पुराण में मध्य कालीन धार्मिक विकास का महत्वपूर्ण परिचय मिलता है । भक्ति ने ही दैत्यों और दैत्यधर्म के प्रकोप का भी दमन किया ।

गरुड़ के अनुसार श्रुतिधर्म, स्मृतिधर्म और शिष्टाचार तीन सनातन धर्म हैं (गरुड़, १।२०५।४) । श्रुतिधर्म के अन्तर्गत विभिन्न वैदिक देवताओं—अग्नि[1], मरुत[2], रुद्र[3], सोम[4], मित्र[5], वरुण[6], इन्द्र[7] (अमरेश)—का स्तवन

---

१. गरुड़, १।४८।६३, ६७; १।८६।५७-५९ १।१०२ २
नारदीय पु० १।११।८१ : यज्ञेश यज्ञविन्यास यज्ञविघ्नविनाशन ।।
यज्ञरूप यजद्रूप यज्ञांगत्वां यजाम्यहम् ।।

शान्ति पर्व अ० ३१८ में भगवान के दो सौ नाम गिनाये गये हैं जो नारद द्वारा की गई स्तुति में आते हैं । इनमें हमें निम्नलिखित नाम भी प्राप्त होते हैं :—

यज्ञ, महायज्ञ, यज्ञसम्भव, यज्ञयोनि, यज्ञगर्भ, यज्ञहृदय, यज्ञस्तुत, यज्ञभागहर और पञ्चयज्ञ (५९-६५), परमयाज्ञिक (७७) महायज्ञभागहर (१५१) ।

२. गरुड़, १।८७।४९
३. वही, १।८७।२९
४. वही, १।८९।५७-५९
५. वही, १।२०६।२७
६. वही, १।२०६।५-१४
७. वही, १।८९।३९ (२)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा यज्ञ-विधान प्रचलित था। परन्तु इन वैदिक देवताओं की गौण स्थिति हो गई थी। अब इनका स्थान पौराणिक देवताओं ने ले लिया था। गरुड़ पुराण के अनुसार विष्णु ही देवदेव थे और स्वयं यज्ञ भी उनका ही स्वरूप और नाम था (त्वं यज्ञ:)[1] :

जाते रुचेरजनयत् सुयमान् सुयज्ञ।
आकूति सूनुरमरानथ दक्षिणायाम्॥ भागवत पु०, २।७।२

सत्रे ममास भगवान हयशीरषाथो।
साक्षात् स यज्ञपुरुषस्तपनीयवर्ण:॥
छन्दोमयो मखमयोऽखिलदेवतात्मा।
वाचो बभूवुरुशती: श्वसतोऽस्य नस्त:॥ वही, २।७।११

यज्ञ[2]

मुनियों को यज्ञपरायण बताया गया है।[3] यज्ञशास्त्रों[4] का भी उल्लेख मिलता है। यज्ञ कई प्रकार के होते थे। पंचमहायज्ञों[5] का सम्पादन गृहस्थ का कर्तव्य कर्म था। महान् यज्ञों (महामखा:)[6] का उल्लेख मिलता है। अश्वमेध व वाजपेय[7] ऐसे ही महायज्ञ थे। ग्रह याग[8] प्रचलित थे। रोगों से बचाने के लिये भी यज्ञ किये जाते थे (यज्ञो रोगात् रक्षतु)[9]। होम[10] भी किये जाते थे।

गृहस्थ को सोम, पशु प्रत्ययन, ग्रहहेष्टि और चार्तुमास्य यज्ञों का करना आवश्यक था। इनके अभाव में वह वैश्वानरी इष्टि को करे। शास्त्र-निर्दिष्ट द्रव्य से कम में यज्ञ न करे।[11] शूद्र से भिक्षा लेकर यदि ब्राह्मण यज्ञ करे,

---

१. गरुड़, पु०, १।२२६।२५-२७
२. वही, १।१०७।२०
३. वही, १।१।५
४. वही, १।९८।१४ (२)
५. वही, १।५०।६३-७३; १।१०५।५५
६. वही, १।८६।१३
७. वही, १।२२९।१२ (१)
८. वही, १।१०१।१
९. वही, १।१९६।१०
१०. वही, १, अ० २०८
११. वही, १।९६।३१-३२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तो वह चाण्डाल होता है। इसी प्रकार बिना दिये हुए (चोरी) के द्रव्य से यज्ञ करे तो भास (एक पक्षी) या कौआ होता है।[1]

इससे स्पष्ट है कि द्रव्य हीन व्यक्ति यज्ञों को नहीं कर सकता था। इस दोष के कारण यज्ञों का महत्व कम होता गया और ज्ञान तथा भक्ति का मार्ग प्रशस्त हुआ।

उपनिषदों की भांति महाभारत भी यज्ञ की अपेक्षा ज्ञान को ही उत्तम साधन बतलाता है:—

ज्ञानं विशिष्टं न तथा हि यज्ञा।
ज्ञानेन दुर्गं तरते न यज्ञैः ॥

शान्तिपर्व, ३१९।१०९

ज्ञानामृतं

कुमारिल भट्ट के बाद शंकराचार्य ने वेदान्त का प्रचार किया। ज्ञान को ही दुःखनाशक और भव-भीति को मिटाने वाला कहा गया है :—

ज्ञानामृतं परं गुह्यं रहस्यमृषिसत्तम।
वक्ष्यामि शृणु दुःखघ्न भवबन्धभयापहम् ॥

गरुड़, १।२२४।५

परन्तु गरुड़ इस ज्ञानामृत को विष्णु-प्रसाद ही मानकर उनकी वन्दना करता है :—

अजमजरमनन्तं ज्ञानरूपं महान्तं शिवममलमनादिं भूतदेहादिहीनम्।
सकलकरणहीनं सर्वभूतस्थितं तं हरिममलममायं सर्वगं वन्द एकम् ॥

गरुड़, १।१।१

विष्णु प्रसाद से ही मायातन्त्र को काट कर मनुष्य का प्रबोध होता है:—

तृणादि चतुरास्यान्तं भूतग्रामं चतुर्विधम्।
चराचरं जगत् सर्वं प्रसुप्तं यस्य मायया ॥

गरुड़, १।२२४।६

तस्य विष्णोः प्रसादेन यदि कश्चित् प्रबुध्यति।
स निस्तरति संसारं देवानामपि दुस्तरम् ॥

वही, १।२२४।७

---

१. गरुड़, १।९६।३३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चन्देल मन्त्री और मनीषी कृष्ण मिश्र ने भी अपने ग्रन्थ प्रबोध चन्द्रोदय में विष्णु भक्ति की महिमा बताते हुए राष्ट्र का प्रबोध किया था। स्कन्द पुराण से भी ज्ञात होता है कि ध्यान-समाधि से मनुष्य प्रबुद्ध हो जाता है:—

विष्णोर्ध्यानसमाधेश्च प्रबुद्धो जायते सदा ।।[1]

देवार्चन

देव-पूजा प्राचीन भारतीय धर्म की एक विशिष्टता है जिसने पुराणों पर अपनी अमिट छाप लगा दी है। अस्तु देवोपासना पौराणिक धर्म की महान विशेषता है।

वैदिक युग में भी देवोपासना प्रचलित थी।[2] उपनिषद् युग में ही भक्ति का प्रादुर्भाव हुआ[3] और इससे देवोपासना में विशेष वृद्धि हुई। उनकी पूजा के लिये मूर्तियाँ और मन्दिर भी बनने लगे।[4] गरुड़ पुराण भी देवपूजन[5] के महत्त्व का वर्णन करता है। गया माहात्म्य में (१।८६।४—२३) मुण्डपृष्ठ पर्वत पर स्थित विभिन्न देवताओं का वर्णन किया गया है। इसे सर्वदेव-मयो (गरुड़, १।८६।४) कहा गया है। अन्यत्र भी सर्वदेव पूजा (सर्वदेवान्नमस्य १।२०५।१३४ क) का महत्व बताया गया है। परन्तु इन सभी देवताओं में विष्णु की प्रधानता बतायी गयी है।

सत्य ही विष्णु धर्म के मूर्त्त रूप थे (धर्मो हि भगवान विष्णुः)[6]। गरुड़ पुराण में विष्णु और उनके अवतारों, लीला-रूपों, व्यूहों तथा आयुधों और वाहन (गरुड़) आदि का ही विशेष महत्व दिया गया है। उसी सर्वव्यापी एक परमेश्वर हरि की वन्दना से ग्रन्थारम्भ होता है।[7] परन्तु अन्य देवी-देवताओं का भी महत्व अक्षुण्ण बना रहा। हरि वन्दना के बाद ही रुद्र, ब्रह्मा,

---

१. स्कन्द पु०, १।२।५४।५१ (२)
२. मोनियर विलियम्स, रेलिजस थॉट ऐन्ड लाइफ़ इन इन्डिया, (लन्दन, १८८३) अध्याय १, वेदिज़्म, पृ० ८—११; फ़र्कुहर, जे० एन०, एन आउट लाइन ऑफ़ दि रेलिजस लिटरेचर आफ़ इण्डिया (१९२०), पृ० १०-१३
३. जे० एन० बनर्जी, पौराणिक ऐण्ड तान्त्रिक रेलिजन, १-११
४. गरुड़, १।४५।३३
५. वही, १।३।२ (१); १।३४।१; १।३९।१; १।५०।५८,७४,७५; १।६२।१६; १।९८।११(१); १।२०५।१३३-१३४
६. वही, १।२१५।३
७. वही, १।१।१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गणेश और सरस्वती का भी स्तवन किया गया है ।[1] उसके बाद भक्तों का भी स्मरण किया गया है ।[2] यही भक्ति का समन्वयात्मक स्वरूप है, जिसकी उस समय राष्ट्र को आवश्यकता थी । देवार्चन[3] पौराणिक धर्म का 'मुख्य लक्षण है । मत्सर हीन होकर सभी देवताओं की पूजा[4] करना ही धर्म था । गरुड़ पुराण के युग में पंच देवोपासना (पंच देवों—विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य और गणेश की पूजा) प्रचलित हो चुकी थी ।

विष्णु

विष्णु ही सब देवताओं में पूज्य और ध्येय हैं, वह ही धर्म के प्रवंतक और (धर्म-विरोधी) दुष्टों को नष्ट करने वाले माने गये हैं।[5] परं-ब्रह्म परमात्मा नारायण परमेश्वर संसार की रक्षा के लिये ही विभिन्न अवतार भी लेते रहे हैं । गरुड़ पुराण इन अवतारों और वैष्णव लीलाओं से सम्बद्ध पुराण है । सभी अवतारों का उद्देश्य लोक-मर्यादा की सुरक्षा और उसके विरोधियों—राक्षसों, दैत्यों और म्लेच्छों—का दमन कर लोक-कल्याण की प्रतिष्ठा करना ही है । इसीलिये भगवान् स्वयं मंगल स्वरूप होते हुए सब का हित ही करते हैं; वही सबके पिता, माता, और बन्धु हैं । ऐसे भगवाम् का स्मरण ही मनुष्य को पापों से बचाकर परमार्थ की ओर ले जाता है ।

वैष्णव-धर्म

विष्णु के परमेश्वर रूप तथा महात्म्य से गरुड़ पुराण के युग में विष्णु-भक्ति अथवा वैष्णव धर्म की प्रधानता ज्ञात होती है । उनके विविध अवतारों और उनकी संख्या से वैष्णव धर्म कें विकास पर भी प्रकाश पड़ता है । वैदिक युग में भी विष्णु का उल्लेख मिलता है । आधुनिक विद्वान उन्हें 'आदित्य मात्र' मानते हैं । प्रो० बनर्जी का मत है कि वैष्णव धर्म का आधार विष्णु हैं जो वेदों में सौर देवता हैं । लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि यह देवता पौराणिक (वैष्णव) धर्म का मूलाधार था जो कालान्तर में विकसित हुआ । महाभारत के बहुत बाद के अंश में 'वैष्णव' पद का उल्लेख हुआ है । यहाँ पर कहा गया है (महाभारत, १८।६।९७)—

---

१. गरुड़ १।१।२
२. वही १।१।३-५
३. वही १।१।६-८
४. वही १।१।११-१२
५. वही २।३५।४४-४८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अष्टादश पुराणानाम् श्रवणाद् यत् फलं भवेत् ।
तत्फलं समवाप्नोति वैष्णवो नात्र संशयः ।।

पाद्मतन्त्र से, जो एक महत्वपूर्ण पांचरात्र संहिता है, इस धर्म के भिन्न-भिन्न नाम प्राप्त होते हैं।······इसके अनुसार सूरि, सुहृत्, भागवत्, सात्वत्, पञ्चकालवित्, एकान्तिक, तन्मय और पाञ्चरात्रिक भक्ति धर्म के विभिन्न नाम हैं। यहाँ पर वैष्णव' शब्द का उल्लेख नहीं मिलता है। वराहमिहिर भी 'वैष्णव' पद का उल्लेख नहीं करते······वैष्णव या परम वैष्णव गुप्त अभिलेखों में उपलब्ध होता है। अधिकांश गुप्त सम्राट अपने आपको परम भागवत कहते हैं। इससे सिद्ध होता है कि पौराणिक भक्ति का वैष्णव नाम उस समय तक प्रचलित नहीं हुआ था।"[1]

उपर्युक्त उद्धरण हरिवंश पुराण (गीता प्रेस) के भविष्य पर्व, १३५।४ में उल्लिखित हुआ है। इसी पर्व में वैष्णव यश (भविष्य पर्व १३५।६) और वैष्णव पद (भविष्य पर्व, १३५।११) का भी उल्लेख मिलता है। साथ ही हरिवंश पुराण प्रार्दुभावानुकीर्तनम् (हरिवंश पर्व, ४१।१७२, १७३, १७४) अर्थात् अवतारों की महिमा का वर्णन करता है। यहीं पर "वैष्णवः प्रार्दुभावः" (हरिवंश पर्व, ४१।१११) का उल्लेख मिलता है। उनके अवतारों के साथ ही साथ नारायण की भक्ति पूर्वक उपासना (शरण्यं सर्वभूतेशं भक्त्या नारायणं हरिम्)[1], महाभारत (खंड ६) के आश्वमेधिक पर्व में 'वैष्णव धर्म पर्व' (गीता प्रेस संस्करण, अ० १—२१) प्राप्त होता है। युधिष्ठिर ने भगवान् कृष्ण से धर्म के विषय में जिज्ञासा प्रकट की। उस समय उनकी राज सभा में उपस्थित वसिष्ठ आदि तत्त्वदर्शी मुनिगण तथा अन्य 'भागवत' लोग उस परम् उत्तम वैष्णव धर्म को सुनने की इच्छा से भगवान् कृष्ण को घेरकर बैठ गये—

वशिष्ठाद्यास्तपोयुक्ता मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ।
श्रोतुकामः परं गुह्यं वैष्णवं धर्ममुत्तमम् ।
तथा भागवताश्चैव ततस्तं पर्यवारयन् ।[2]

यहाँ पर 'वैष्णव धर्म' और "भागवताः" का उल्लेख विशेषतः दृष्टव्य है। यहाँ पर विविध आचार्यों और उनके धर्मों का उल्लेख हुआ है जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है।[2] इन्हीं धर्मों में "नारदीय धर्माः" का भी उल्लेख है।[3] यह

१. जे० एन० बनर्जी, पौराणिक और तान्त्रिक रेलिजन (कलकत्ता १९६६) पृ० १८-१९

२. हरिवंश पर्व, २४।१२।(१)

३. महाभारत, खंड ६, आश्वमेधिक पर्व, पृ० ६३०७ अ० ९२,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उल्लेख भक्ति धर्म का ही परिचायक है क्योंकि नारद भक्ति धर्म के एक प्रथित आचार्य हैं। युधिष्ठर भगवान के समक्ष विनीत भाव से शरणागत होकर पूँछते हैं :—

तस्माद्धि त्वां प्रपन्नस्य त्वद्भक्तस्य च केशव।
युष्मदीयान् वरान् धर्मान् पुण्यान् कथय मेऽच्युत ।।[1]

यहाँ कृष्णभक्त युधिष्ठिर' प्रपन्न भाव से, कृष्ण के ही श्रेष्ठ धर्मों (युष्मदीयान् वरान् धर्मान्) को जानना चाहते थे। कृष्ण को सात्वत भी कहा गया है। इसे 'परं धर्म' भी कहा गया है।[2] भगवान् ने उन्हें अपना परम् विराट रूप दिखाया। भगवान् ने सम्पूर्ण जगत् को अपने से उत्पन्न बताया और अपने द्वारा बताये हुए धर्म का महत्व कहा जिससे, स्वर्ग, यश और (दीर्घ) आयु की प्राप्ति होती है (स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं धर्मं) और इसी के श्रवण से पापों का भी नाश होता है।[3] श्रीकृष्ण के परम पवित्र और सत्य वचन को सुनकर देवर्षि, ब्रह्मर्षि, गन्धर्व, अप्सराएं, भूत, यक्ष, ग्रह, गुह्यक नाग, महात्मा बालखिल्यगण, तत्त्वदर्शी योगी तथा पाँच उपासना करने वाले भगवद्भक्त लोग उत्तम **वैष्णव धर्म** का उपदेश सुनने तथा भगवद्वचनों को सुनने आये। सभी ने नत मस्तक होकर भगवान् को प्रणाम किया :

एवं श्रुत्वा वचः पुण्यं सत्यं केशव भाषितम्।
प्रहृष्टमनसो भूत्वा चिन्तयन्तोऽद्भुतं परम् ।।
देवब्रह्मर्षयः सर्वे गन्धर्वाप्सरस्तथा ।
भूता यक्ष ग्रहाश्चैव , गुह्यका भुजगास्तथा ।।
बालखिल्यामहात्मानो योगिनस्तत्त्वदर्शिनः ।
तथा भागवताश्चापि पञ्चकालमुपासकाः ।।
कौतूहल समाविष्टाः प्रहृष्टेन्द्रिय मानसाः ।[4]
श्रोतुकामाः परं धर्मं वैष्णवं धर्मशासनम् ।
हृदि कर्तुं च तद्वाक्यं प्रणेमुः शिरसा नताः ।।

भगवान् केशव ने वर्ण धर्म का वर्णन करते हुए इसका महत्व बताया:—

एवं धर्मात्परं नास्ति महत्संसारमोक्षणम् ।
न च धर्मात्परं किंचित् पापकर्मव्यपोहनम् ।।

---

१. महाभारत, भाग ६, आश्वमेधिक पर्व, पृ० ६३०८ (श्लोक २, दाक्षिणात्य पाठ)
२. वहीं, श्लोक १४
३. वहीं, पृ० ६३०९—६३१०
४. वहीं. पृ० ६३११

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार यहाँ भी भगवान् ने स्वधर्म को श्रेष्ठ बताया :—

विगुणोऽपि स्वधर्मस्तु पापकर्म व्यपोहति ।
एवमेव तु धर्मोऽपि क्षीयते पापवर्धनात् ।।[1]

दान और आश्रम धर्म तथा गायत्री का महत्व बताते हुए[2] नास्तिकों, हेतुशास्त्र और कुदृष्टिपथ में लगे हुए तथा देवताओं और यज्ञों के निन्दकों की भर्त्सना की[3]। स्नान, और तर्पण, करने के बाद भगवान् का ध्यान करते हुए उनकी फूलों से पूजा करें। सबसे बढ़कर तुलसी का गुण माना गया है।[4] युधिष्ठर ने पुनः पूछा—

कथं त्वमर्चनीयोऽसि मूर्तयः कीदृशास्तु ते ।
वैखानसाः कथं ब्रूयुः कथं वा पाञ्चरात्रिकाः ।।

भगवान ने अपने अर्चन की विधि बताते हुए कहा—

"वेदी पर कर्णिकाओं से युक्त अष्टदल कमल बनाये। उस पर अष्टाक्षर (ओं नमो नारायणाय या ओं नमो वासुदेवाय) या द्वादशाक्षर (ओं नमो भगवते वासुदेवाय) मन्त्र के विधान से या वैदिक मन्त्रों और पुरुष सूक्त से मेरी मूर्ति की स्थापना करे। फिर सत्यं-अच्युत-पुरुष (सत्यस्वरूप अच्युत पुरुष की पूजा करे।) वैखानस (शास्त्र) के ज्ञाता मुझे अनिरुद्ध जानते हैं। पाञ्चरात्रिक लोग मुझे— वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इस प्रकार चर्तुमूर्ति (चर्तुव्यूह) स्वरूप बताते हैं। ये सभी तथा अन्य नाम भेद से मेरी मूर्तियाँ हैं। उन सबका अर्थ एक ही समझना चाहिए। इस प्रकार ज्ञानी (विद्वान) लोग मेरी पूजा करते हैं :—

श्रृणु पाण्डव तत्सर्वमर्चनाक्रममात्मनः ।
स्थण्डिले पद्मकं कृत्वा चाष्टपत्रं सकर्णिकम् ।।
अष्टाक्षरविधानेन ह्यथवा द्वादशाक्षरैः ।
वैदिकैरथ मन्त्रैश्च मम सूक्तेन वा पुनः ।।

---

१. महाभारत, भाग ६, आश्वमेधिक पर्व, पृ० ६३१२

२. वही, पृ० ६३१३—६३२०

३. वही, पृ०, ६३१४ : नास्तिकाय च यद्दत्तं...... ।

वही, पृ० ६३१५ : हेतुशास्त्रेषु ये सक्ताः कुदृष्टि प्रथमाश्रिताः ।
देवान् निन्दन्त्यनाचारा वृथा जीवन्ति ते नराः ।।
कुशलैः कृतशास्त्राणि पठित्वा ये नराधमाः ।
विप्रान् निन्दन्ति यज्ञांश्च वृथा जीवन्ति ते नराः ।।

४. वही, पृ० ६३६२ : नास्तिक्यं वेदनिन्दां च देवतानां च कुत्सनम् ।
द्वेषं दम्भं च मानं च क्रोधं तैक्ष्ण्यं विवर्जयेत् ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थापितं मां ततस्तस्मिन्नर्चयित्वा विचक्षण: ।
पुरुषं च ततः सत्यमच्युतं च युधिष्ठिर ।।
अनिरुद्धं च मां प्राहुर्वैखानसविदो जनाः ।
अन्ये त्वेव विजानन्ति मां राजन् पाञ्चरात्रिकाः।।
वासुदेवं च राजेन्द्र सङ्कर्षणमथापि वा ।
प्रद्युम्नं चानिरुद्धं च चतुर्मूर्तिं प्रवक्ष्यते ।।
एताश्चान्याश्च राजेन्द्र संज्ञाभेदेन मूर्त्तयः ।
विद्ध्यनर्थान्तरा एव मामेवं चार्चयेद् बुधः ।।

युधिष्ठिर ने पुनः पूछा कि भक्त कैसे होते हैं और उनके नियम क्या हैं:—

त्वद्भक्ताः कीदृशा देव कानि तेषां व्रतानि च ।
एतत् कथय देवेश त्वद्भक्तस्य ममाच्युत ।।

श्री भगवानुवाच—

अनन्यदेवताभक्ता ये मद्भक्तजनप्रियाः ।
मामेव शरणं प्राप्ता मद्भक्तास्ते प्रकीर्तिताः ।।

"जो दूसरे किसी देवता के भक्त न होकर केवल मेरी ही शरण ले चुके हों तथा मेरे भक्तों से प्रेम रखते हों वे ही मेरे भक्त बताये गये हैं ।"

"मेरे भक्त मुझको प्रिय लगने वाले व्रतों को करते है ।"[१] इन व्रतों का वर्णन किया गया है—यथा आचार, संयम, दान विशेषतः गोदान और भूमि-दान), अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि ।[२] इसी प्रसङ्ग में 'धर्म-सार' का वर्णन करते हुए आर्यावर्त, ब्रह्मावर्त ब्रह्मर्षिदेश और मध्यदेश का महत्व बताया गया है । मध्यदेश—हिमालय और विन्ध्य के मध्य तथा विनशन (कर्नाल प्रान्त) से पूर्व तथा प्रयाग से पश्चिम स्थित भूखंड) से बाहर स्थित प्रदेश को म्लेच्छ देश कहा गया है । इन तथ्यों पर मनुस्मृति के विचारों की छाप परिलक्षित होती है । मध्यदेश धर्म और आचार का घर था ।[३]

महाभारत के इसी अध्याय में 'द्वादशीव्रत' का वर्णन करते हुए केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ और दामोदर नामक विष्णु के बारह रूपों का प्रत्येक मास में पूजन का वर्णन मिलता है ।[४] विष्णु की इस पूजा विधि का वर्णन अनुशासन

---

१. आश्वमेधिक पर्व (अध्याय ६२) पृ० ६३४२
२. वही, पृ० ६३४३—६३४७
३. वही, पृ० ६३६०-६३६१
४. वही, पृ० ६३७०-६३७१, इसके अतिरिक्त एकादशी और द्वादशी का महत्व आगे फिर बताया गया है (पृ० ६३७२-६३७३)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पर्व (अध्याय १०९) में भी मिलता है।[१] युधिष्ठिर ने भगवान् की वन्दना करते हुए कहा—

चतुर्मूर्ते चतुर्बाहो चतुर्व्यूह नमोनमः।
लोकात्मँल्लोककृन्नाथ लोकावास नमोनमः॥[२]

इसके अतिरिक्त अश्वत्थ का भी विष्णुरूप में महात्म्य बताया गया है।[३] इस प्रकार भगवान् द्वारा वर्णित वैष्णवधर्म का उपदेश सुनकर सभी ऋषियों के हृदय में भगवद्भक्ति उमड़ आयी—

देवा ब्रह्मर्षयः सिद्धा गन्धर्वाप्सरसस्तथा।
ऋषयश्च महात्मानो गुह्यका भुजगास्तथा॥
बालखिल्या महात्मानो योगिनस्तत्त्व दर्शिनः।
तथा भागवताश्चापि पञ्चकालमुपासकाः।
कौतूहल समायुक्ता भगवद्भक्तिमागता।
श्रुत्वा तु परमं पुण्यं वैष्णवं धर्मशासनम्॥[४]

उपर्युक्त वैष्णव धर्म के वर्णन से हमें इसके स्वरूप का बोध होता है जो मनुस्मृति के समय (ई० पू० की पहली-दूसरी शताब्दी) तक स्थिर हो चुका था। हेलिओडोरस का बेसनगर गरुड़ध्वज अभिलेख भी लगभग इसी समय का है। इस लेख में "देवदेव वासुदेव" के गरुड़ध्वज की स्थापना हेलिओडोर ने कराई थी। यह यवनदूत भगवद्भक्ति-युक्त होने से ही भागवत भी कहा गया है। इसी लेख में दम-त्याग और अप्रमाद को अमृतपद कहा गया है।[५] इन तीन ही पदों में अमृतत्व को प्राप्त करने का भक्ति मार्ग कितने थोड़े शब्दों में समझाया गया है। कितना बहुश्रुत था भागवत यवनदूत। सनत्कुमार जी ने ऋषियों को अमृततत्व-भगवत्स्वरूप- का उपदेश दिया (शान्ति पर्व, अ० २२२)। भागवत-भक्त-नित्य नारायण परायण प्रह्लाद कहते हैं:—

आर्जवेनाप्रमादेन प्रसादेनात्मवत्तया।[६]
वृद्धशुश्रूषया शक्र पुरुषो लभते महत्॥

और भी—

अहंकारस्य च त्यागः प्रमादस्य च निग्रहः।
संतोषश्चैकचर्या च कूटस्थं श्रेय उच्यते॥[७]

---

१. अनुशासन पर्व १०९।३—१४
२. आश्वमेधिकपर्व, (अध्याय ९२), पृ० ६३७१
३. वही, पृ० ६३७४
४. वही, पृ० ६३८१
५. बेसनगर गरुड़ स्तम्भ लेख
६. शान्ति पर्व २२२।३४
७. वही, २८७।२१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्पष्ट है कि किस प्रकार अहंकार के त्याग और अप्रमाद तथा आत्मवत्तया श्रेय (अमृत) की प्राप्ति होती है।

ऊपर के विवेचन से 'भागवत' भगवद्भक्ति युक्त और वैष्णव धर्म के साधक वैष्णवों में कोई विशेष अन्तर नहीं है जैसा डा० जे० अन० बनर्जी मानते हैं।[1]

ऊपर के दिये हुए उद्धरणों में "भागवताः पञ्चकालमुपासकाः" का उल्लेख मिलता है जो वैष्णव धर्म के उपदेश को सुनकर भगवद्भक्ति में लीन हो गये। पाद्म तन्त्र में उल्लिखित "पञ्चकालवित्"[2] का तादात्म्य पञ्चकाल-उपासकों से किया जा सकता है।

वराह पुराण के अनुसार विष्णु के उपासक ही वैष्णव कहलाते हैं (वैष्णावा······विष्णुपूजन-तत्पराः)[3]। लिंग पुराण के अनुसार भी वासुदेव के भक्त वैष्णव कहलाते हैं [4]:—

वैष्णावा इति ये प्रोक्ता वासुदेवपरायणाः ॥

वही विष्णुभक्ति युक्त विष्णुभक्त भी है।[5] यही वैष्णव भी कहलाता है (वैष्णवोऽसौ प्रकीर्तितः)।[6] वही भक्त भी कहलाता है (स वै भक्त इति ज्ञेयः)। हरि की प्रतिमा का नित्य पूजन करने वाला विष्णुभक्त ही नारायण में नित्य निमग्न महाभागवत है:

प्रतिमां च हरेर्नित्यं पूजयेत्प्रयतात्मवान्।
विष्णुभक्तः स विज्ञेयः कर्मणा मनसा गिरा॥ लिंग पु०, २।४।१२

नारायण परो नित्यं महाभागवतो हि सः। वहीं, २।४।१३

अतः भागवत और वैष्णव में भेद नहीं होता है।[7]

---

१. पौराणिक-तान्त्रिक रेलिजन, पृ० १८-१९
२. वही, पृ० १८-२०
३. वराह पु०, २११।९
४. लिंग पु०, २।४।१ (क)
५. वही, २।४।२—६
६. वही, २।४।७
७. J.N. Farquhar The Religious Quest of India (OUP., 1920), पृ० १४२
(जे० यन० फ़र्क़ुहर, दि रेलिजस क्वेस्ट ऑफ़ इण्डिया,)
स्कन्द पुराण, २।१।२१।३८—६१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विष्णु-माहात्म्य (गरुड़ पु०, १, अ० २२२)

गरुड़ पुराण वैष्णव पुराण है (पुराणं गारुडं विष्णुकथाश्रयम्)[१]। इसके अनुसार नारायण ही एक 'देवानामीश्वरेश्वरः परमात्मा परं ब्रह्म'[२] परमेश्वर[३] पुराणपुरुष[४] और देवदेव सर्व लोकेश्वरेश्वर[५] हैं। वह सर्वेश्वर[६] हैं और उनसे बड़ा और कोई देवता नहीं है।[७] वह परमेश्वर (१।२२६।५२) विराटपुरुष हैं, जो ब्रह्म और रुद्र द्वारा वन्द्य हैं (१।३१।२६)। इस प्रकार गरुड़ पुराण से परमेश्वर का माहात्म्य ज्ञात होता है।

परन्तु ब्रह्मा, विष्णु और शिव की उपासना बिना पृथक भाव से करना चाहिए। सभी देवी-देवता विष्णु के ही स्वरूप हैं जो कार्य-कारण भाव से पृथक् रूप धारण करते हैं।[८]

ऐसा सर्वव्यापी सर्वेश्वर प्रभु (ईश्वरं परमं ब्रह्म, १।१५।१) ही परं जप्य (१।१५।३) है। उनके सहस्र नाम (पूर्व, अ० १५) का जप किया जाता है (१।१४५।३९)। इन सहस्रनामों (१।१९४।४-२९) से भी उनकी अनन्त शक्ति और गुणों का महत्व ज्ञात होता है। इन नामों से उनके रूपों का भी ज्ञान होता है।

अवतार

भगवान की भूमंडल पर लीलाएँ उनके अवतारों से सम्बन्धित हैं सृष्टि के लिये ही वे शरीर ग्रहण करते हैं (गरुड़, १।४।८-९)। अवतार-लीला का मुख्य उद्देश्य संसार की रक्षा करना (जगतो रक्षणार्थाय वासुदेवो........... अवतारान् करोत्यजः[९])। दुष्टों का दमन कर धर्म की रक्षा करना तथा सम्पूर्ण संसार का पालन करना भी अवतार का उद्देश्य था :—

---

१. गरुड़, १।१।११; १।२।१
२. वही, १।१।१२; १।२१९।३९
३. वही, १।२।२
४. वही, १।२।१९
५. वही, १।२।३७; १।१५।१५७ (१); १।४७।४३, १।१४१।१५; १।१९४।२२
६. वही, १।१६४।२-३
७. वही, १।२०५।७३ (१)
८. वही, १।४।८-१२
९. वही, १।१४५।४० (२)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दुष्टनिग्रहकर्त्ता हि धर्मगोप्ता त्वहं हर।
अवतारैश्च मत्स्याद्यैः पालयाम्यखिलं जगत् ॥

गरुड़, १।२।४०

अवतारों का उद्देश्य अधर्म का नाश और देवताओं तथा धर्म की रक्षा करना भी था[1]। मार्कण्डेय पुराण भी अवतार-वाद का वर्णन करते हुए कहता है कि "भगवान नारायण के द्वारा सम्पूर्ण कर्म सम्यक प्रकार साधित होते हैं; और उनके द्वारा प्रजापालनादि सब कार्य सम्पादित होते हैं तथा वह धर्म-संस्थापनकारिणी मूर्ति अर्थात् धर्म की रक्षा करने वाले हैं। हरि की शक्ति से ही पृथ्वी पर धर्मसंस्थापन भी होता है। उसी के द्वारा धर्म का विनाश करने वाले उद्धत असुर गणों का विनाश भी होता है और धर्म रक्षा-परायण देवताओं और साधुओं का रक्षण भी वही करते हैं। जिस समय धर्म की हानि होकर अधर्म की वृद्धि होती है, उसी समय धर्म का उद्धार करने के लिये भगवान अपने आपको उत्पन्न करते हैं।"[2] सत्य ही देवताओं का पृथ्वी पर अवतरण प्रजा के कल्याण और पृथ्वी का भार हरण करने के लिये होता है।[3] विष्णुधर्मोत्तर भी भगवान् के वराहादिक प्रादुर्भावों का वर्णन करता है।[4]

अवतारों की संख्या

विष्णु के अवतारों की संख्या असंख्य है (अवतारा ह्यसंख्येया हरेः[5])। गरुड़ पुराण में कई स्थानों पर अवतारों का वर्णन किया गया है (१।१।१२-३४; १।८६।१०-११; १। अ० १४२-१४५; १।१९४।१०-१८; १।१९६।६-१३ (१); १।२२५।१-६; २।२०।३१-३२)। कुछ स्थलों पर अवतारों का

---

१. गरुड़, १।१।१३; १।१४४।२
   वि० ध०, १।७४।४१-४३
२. मार्कण्डेय पुराण, ४।४६-५३
३. वही, ५।२०
४. वि० ध० १।१७२।८-११
५. वही, १।१।३४; भागवत पु० १।१३।२६
   भागवत पु०, १।३।५ (१) : एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम्
   नारदीय पु०, पूर्व खंड, २।४६ :
   एवमादीन्यनेकानि यस्य रूपाणि...।
   वि० ध०, १।७४।४४
   वही, १।१६०।१६ : प्रादुर्भावसहस्राणि......

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ही वर्णन किया गया है (१।१।१२-३४; १। अ० १४२-१४५; २।२०।३१-३२) और कुछ स्थलों पर स्तव, मन्त्र, तथा कवच आदि का उल्लेख करते हुए विष्णु के नामों का उल्लेख किया गया है। डा० हजरा ने अवतारों की तालिकाओं का उल्लेख, अ० १४२-१४५ (वंगवासी संस्करण के अनुसार जिसका उन्होंने प्रयोग किया है, १४६-१४९), अ० १९६ (वंगवासी, अ० २०२) और अध्याय १। इसमें अध्याय १ में डा० हजरा के अनुसार इक्कीस अवतार हैं। परन्तु गिनने से उनकी संख्या बाइस आती है जिनके नाम निम्न-लिखित हैं :—

कुमार, शौकर (वराह), देवर्षि (नारद), नरनारायण, कपिल, दत्त, यज्ञ, उरुक्रम (ऋषभ), पृथु, मत्स्य, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, नरसिंह, वामन, परशुराम, व्यास, राम (दाशरथि), राम (यादवनन्दन), कृष्ण, बुद्ध और कल्की[१]। यह अवतार तालिका भागवत पुराण (१।३।६-२५) से उद्धृत की गयी है और वहाँ भी अवतारों की संख्या बाइस ही है। डा० हज़रा ने तालिका नहीं दी है। परन्तु उन्होंने २२ अवतारों के स्थान पर २१ अवतारों की संख्या का उल्लेख किया है।

इन २२ अवतारों में मत्स्य, कूर्म, वराह नरसिंह, वामन, राम (जामदग्न्य), राम (दाशरथि), कृष्ण, बुद्ध और कल्कि नामक दशावतार भी सम्मिलित हैं जिनकी सूची १।८६।१०-११ और उत्तरार्ध (प्रेतकल्प; २।२०।३१-३२) में प्राप्त होती है :—

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्किस्तथैव च ॥

गरुड़, २।२०।३१

एतानि दशनामानि स्मर्त्तव्यानि सदा बुधैः।

वही, २।२०।३२ (१)

पूर्व खंड के अध्यायों १४२-१४५ में भी अवतारों की सूची (जिसका प्रारम्भ मत्स्य से होता है) प्राप्त होती है (मत्स्यादिक स्वरूपेण अवतारं करोत्यजः)[२]। ये मत्स्य, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, वराह, नरसिंह, पररशुाम, राम (दाशरथि, गरुड़, १।१४२।२-११); वासुदेव—बल[३] (गरुड़, १।१४४।१) और बुद्ध (गरुड़, १।१४५।४०) हैं। इनकी संख्या ११ है (ऐसा लगता है कि पाठ की अशुद्धि से कल्कि का नाम छूट गया है)। इनमें दशावतार की प्रसिद्ध

१. गरुड़, १।१।१३-३४
२. वही, १।१४२।२ (२)
३. वही, १।१४४।१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तालिका में उल्लिखित वामन और कल्कि नहीं मिलते हैं। धन्वन्तरि, मोहिनी और बल (राम) के नाम अधिक मिलते हैं।

इस तालिका में हरिवंश (कृष्ण माहात्म्य) का वर्णन करते हुए कहा गया है :—

वसुदेवात्तु देवक्यां वासुदेवो बलोऽभवत्।

गरुड़ १।१४४।१

स्पष्ट नहीं है कि यहाँ वासुदेव (कृष्ण) और बल (राम) दोनों का उल्लेख है अथवा बल (राम) का ही। इस अध्याय में कृष्ण की उपलब्धियों का ही वर्णन किया गया है। आगे के अध्याय (१४५) में भी महाभारत का वर्णन करते हुए कृष्ण के चरित्र का वर्णन किया गया है। पूर्व खंड के अध्यायों (१४६-२०२) में धन्वन्तरि के माहात्म्य स्वरूप में वैद्यक शास्त्र[1] का वर्णन किया गया है। अ० १४५ के अन्त में पुनः धन्वन्तरि के अवतार का उल्लेख हुआ है :—

यथा धन्वन्तरिर्विंशे जातः क्षीरोदमन्थने ॥

गरुड़, १।१४५।४१ (२)

देवादीनां जीवनाय आयुर्वेदमुवाच ह।
विश्वामित्रसुतायैव सुश्रुताय महात्मने ॥

वही, १।१४५।४२

विष्णु के अवतारी धन्वन्तरि (धन्वन्तरिर्विष्णुः[2]) का भी इस पुराण में विशेष महत्व प्राप्त होता है।

अध्यायों १९४, १९६ और २२५ में क्रमशः वैष्णव कवच, विष्णुधर्म-विद्या और मार्कण्डेय स्तोत्र के वर्णनों में भी विष्णु के विभिन्न नामों का उल्लेख हुआ है जो अवतारों के रूप में प्रसिद्ध हैं।

अध्याय १९६ में निम्नलिखित नाम मिलते हैं :—

१. शेष } १।१९६।६
२. मत्स्य }

३. त्रिविक्रम }
४. वामन } १।१९६।७
५. नरसिंह }

६. राम

---

१. गरुड़, १।२०२।१ (१) : एवं धन्वन्तरिः प्राह सुश्रुताय च वैद्यकम्।

२. वही, १।१७५।१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

७. वाराह
८. नारायण
९. कपिल
१०. दत्त
} १।१९६।८

११. हयग्रीव
१२. कुमार-मकरध्वज
१३. नारद
१४. कूर्म
} १।१९६।९

१५. धन्वन्तरि
१६. नाग
१७. यज्ञ
१८. व्यास
} १।१९६।१०

१९. बुद्ध
२०. कल्कि
२१. विष्णु
२२. नारायण (पुनरुक्ति, देखिये ऊपर नं० ८)
} १।१९६।११

२३. मधुहा
२४. माधव
२५. हृषीकेश
२६. जनार्दन
} १।१९६।१२

२७. श्रीधर
२८. पद्मनाभ
} १।१९६।१३ (१)

डा० हज़रा का मत है कि "अध्यांय २०२ (वंगवासी संस्करण, जो जीवानन्द संस्करण का अ० १९६ ही है) में विष्णु के अवतारों की संख्या १७ (सत्रह) है और उनमें चार नाम—राम, हयग्रीव, मकरध्वज और नाग—ऐसे हैं जो प्रथम अध्याय की अवतार-सूची में नहीं मिलते हैं।"[१] इस मत के विषय में प्रथमतः यही कहना है कि इस अध्याय में जहाँ तक जीवानन्द और पण्डित

---

१. पुराणिक रिकर्ड्स ऑन हिन्दू राइट्स ऐन्ड कस्टम्स, पृष्ठ १४४
वहीं, पृ० ८८ पर इसी अध्याय के आधार पर डा० हज़रा मत्स्य, त्रिविक्रम, वामन, नरसिंह, राम, वराह, नारायण, कपिल, दत्त, हयग्रीव, मकरध्वज, नारद, कूर्म, धन्वन्तरि, शेष, यज्ञ, व्यास, बुद्ध और कल्कि नामक उन्नीस अवतारों का उल्लेख करते हैं। इसी तालिका के सम्बन्ध में आगे चलकर यहाँ वे अवतारों की संख्या सत्रह ही मानते हैं। कहीं पर उनका प्रमाद ही है। पृ० १४४ पर वे नाग नामक अवतार का उल्लेख करते हैं, परन्तु पृ० ८८ पर दी हुई अवतार-तालिका में नाग का नाम उन्होंने नहीं दिया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुस्तकलाय काशी और अंग्रेज़ी अनुवाद (मन्मथ नाथ दत्त शास्त्री कृत, कलकत्ता, १९०८; अध्याय २२१) अवतारों की तालिका नहीं दी गयी है। विष्णु के विभिन्न रूपों, अवतारों, तथा आयुधों (चक्र, गदा, बाण, शंख, पद्म, धनुष) और वाहन (गरुड़)[1] का आवाहन किया गया है कि वे सब शत्रुओं का पराभव कर भक्त की रक्षा करें। इसमें हमें २७ नाम प्राप्त होते हैं न कि सत्रह (सम्भवत: वंगवासी संस्करण में सत्रह मिलते हों जैसा कि डा० हज़रा का कहना है। वंगवासी संस्करण यहाँ उपलब्ध नहीं है।) पहले अध्याय की तालिका में कुमार का नाम सबसे पहले प्राप्त होता है (देखिये पीछे दी हुई तालिका)। इस अध्याय में भी हमें कुमार का नाम मिलता है (हयग्रीवो देवतानां कुमारो मकरध्वज:)[2]। इसी प्रकार राम का नाम भी हमें पहले अध्याय की सूची में प्राप्त होता हैं—(सोलहवाँ अवतार परशुराम का है जिन्हें भी राम कहा जाता है, और (बल) राम (१।१।३१) का भी उल्लेख मिलता है)। कुमार-मकरध्वज का सम्बन्ध बेसनगर में (मध्य प्रदेश में स्थित विदिशा) उपलब्ध मकरध्वज[3] से है सम्भवतः यह मकरध्वज नामक विष्णु के अवतार से सम्बन्धित था।

इसी प्रकार अध्याय २२५ में मार्कण्डेय स्तोत्र का वर्णन करते हुए विष्णु के विभिन्न नामों का उल्लेख मिलता है, जो उनके अवतार हैं। ये नाम निम्न-लिखित हैं :—

दामोदर, अधोक्षज, वराह, वामन, विष्णु, नरसिंह, जनार्दन, माधव, पुरुष, लोकनाथ, सहस्रशिरस देव, महायोग, यज्ञयोनि और विश्वरूप[4]। इनके अतिरिक्त विष्णुसहस्रनाम (पूर्व खंड, अ० १५) का भी वर्णन किया गया है जिसमें भी हमें इन अवतारों के नाम प्राप्त होते हैं। बढ़ती हुई अवतारों और नामों की संख्या से विष्णु की व्यापकता ही परिलक्षित होती :—

विष्णुर्माता पिताविष्णुर्विष्णु: स्वजनबान्धवा: ।
यत्र विष्णुं न पश्यामि तत्र मे किं प्रयोजनम् ।

गरुड़, २।२०।३६

---

१. गरुड़. १।१९६।१३ (२)—१४

२. वही १।१९६।६ (१) (पंडित संस्करण काशी)
जीवानन्द संस्करण में हमें 'कुमारे मकरध्वज:' प्राप्त होता है। दोनों पाठों में कुछ अशुद्धि है। कुमार विष्णु का अवतार है जैसा कि हम विष्णुधर्मोत्तर (३।७१।७) से भी जानते हैं।

३. बैनर्जी, डेवलपमेंट ऑफ हिन्दू आइकनोग्राफी (द्वितीय संस्करण) पृ० १०४

४. गरुड़, १।२२५।१-६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वतमस्तके ।
ज्वालामालाकुले विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत् ।।

वही २।२०।३७

विष्णु की यह व्यापकता और प्रधानता पूर्व मध्ययुग में विकास के शिखर पर पहुँच गई थी । अभिलेख, सिक्कों और मूर्तियों तथा मन्दिरों से भी, जो कन्याकुमारी से लेकर बद्रीनारायण तक फैले हुए थे, यही सिद्ध होता है । दक्षिण में काँची, श्रीरंग, वेंकटाचल और एलोरा आदि के मन्दिरों में विष्णु और उनके विविध सुन्दर रूपाकृतियों से आज भी मुग्ध होकर मन-मस्तिष्क उनकी लीलाओं का स्मरण करने लगता है । यदि पुराणों में (गरुड़, पूर्व खंड अ० १४३-१४५; अग्नि पुराण, अ० ७-१४) में रामायण, और महाभारत तथा हरिवंश का उल्लेख विष्णु के राम-कृष्ण रूपों के माहात्म्य रूप में हुआ हैं, तो कुशल शिल्पी ने भी मन्दिर के अंग-प्रत्यंगों पर इनकी कथाओं को मूर्त्त किया है । पूर्व में पुरुषोत्तम क्षेत्र (पुरी) और द्वारका में भी उपलब्ध अवशिष्ट इसी तथ्य के साक्षी हैं । सर्वदेवमयी गया में गदाधर विष्णु की महिमा आज भी अक्षुण्ण हैं । मध्य प्रदेश में स्थित खजुराहो के विश्व-विश्रुत मन्दिरों में विष्णु अपने बहुरूपों से दृष्टव्य हैं । उत्तर प्रदेश में देवगढ़ (झाँसी प्रान्त), भिटरगांव और वृन्दावन अतीत की वैष्णवी शक्ति के शिल्प-तीर्थ हैं ।

विष्णु भक्ति

भक्ति और इसका स्वरूप

गरुड़ पुराण (पूर्व खंड) के अध्याय २१९ में विष्णु भक्ति का वर्णन किया गया है । भगवान् हरि भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं, न कि अन्य किसी साधन द्वारा ।[1] भक्ति का तात्पर्य (ईश्वर की) सेवा (भज् सेवायाम्) है । अस्तु यह सत्य ही है कि विद्वानों ने सेवा को भक्ति का साधन बताया है (तस्मात्सेवा बुधैः प्रोक्ता भक्तिसाधनभूयसी)[2] । यही लिंग पुराण में भी बताया गया है :—

आशु भक्ता भवंत्येव परमेश्वरसेवया ।
भज इत्येष धातुर्वै सेवायां परिकीर्तितः ।।

लिंग पु०, २।९।१९

तस्मात्सेवा बुधैः प्रोक्ता भक्तिशब्देन भूयसी ।।

वही, २।९।२० (१)

---

१. गरुड़, १।२१९।१
२. वही, १।२१९।३ (१)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसीलिये भक्ति को वाणी, मन, तन, और कर्म से (ईश्वर का) भजन भी कहते हैं :—

भजनं भक्तिरित्युक्ता वाङमनःकायकर्मभिः ।[1]

(भगवत्) रूप की चिंता (ध्यान) मानस भजन कहलाता है; प्रणव (ओ३म्) इत्यादि का जप करना वाचिक भजन कहलाता है; और प्राणायाम इत्यादि ही कायिक भजन है ।[2] लिंग पुराण में यह शिव भक्ति के सम्बन्ध में कहा गया है । इसीलिए पुराण कहता है :—

धर्माधर्ममयैः पाशैर्बंधनं देहिनामिदम् ॥

लिंग पु० २।६।२५ (२)

मोचकः शिव एवैको भगवान्परमेश्वरः ॥

वही, २।६।२६ (१)

कीर्त्यंते विषयाश्चेति पाशा जीवनिबंधनात् ।
तैर्बद्धाः शिवभक्त्यैव मुच्यंते सर्वदेहिनः ॥

वही, २।६।२७

पंचक्लेशमयैः पाशैः पशून्बध्नाति शंकरः ।
स एव मोचकस्तेषां भक्त्या सम्यगुपासितः ॥

वही, २।६।२८

इसी प्रकार नारदीय पुराण में विष्णु को ही भव-दुःख से बचाने वाला कहा गया है :—

एकः स देवो भवदुःखहन्ता परः परेषां न ततोऽस्ति चान्यः ॥
स्रष्टा स पाता सकलांतकर्त्ता विष्णुः समश्चाखिलसारभूतः ॥

नारदीय पु०, २।५४।१०

स्कन्द पुराण भी विष्णु को ही मुक्ति का एक कारण (मुक्त्येककारणं विष्णुं)[1] बताते हुए भगवद्भक्ति की महिमा बताता है :—

१—चर्तुवर्गफला भक्तिर्विष्णौ नाल्पतपः फलम् ।

२—अनाद्यविद्या सुदृढपञ्चक्लेशविवर्द्धिनी ॥ स्कन्द, २।२।११।६६

---

१. लिंग पु०, २।६।२२ (२)

२. वही, २।६।२४-२५ (१) :

रूपोपादान चिंता च मानसं भजनं विदुः ।
वाचिकं भजनं धीराः प्रणवादिजपं विदुः ॥ २४
कायिकं भजनं सद्भिः प्राणायामादि कथ्यते ।। २५

३. वही, २।६।२६ (१)

४. स्कन्द, २।२।१।१७ (१)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३—एकैवेयं विष्णुभक्तिस्तदुच्छेदाय जायते ।
४—भवारण्ये प्रदिपदं दुःखसंकट संकुले ॥ वही, २।२।१०।६७
५—नराणां भ्रमतां विष्णुभक्तिरेका सुखप्रदा ।
६—निरालंबे द्वन्द्ववात प्रोद्यतेस्मिन्सुदुस्तरे ॥ वही, २।२।१०।६८
७—निमग्नानां भवांभोधौ विष्णुभक्तिस्तरिः स्मृता ।
८—आश्रित्यैकां भगवतीं विष्णुर्भक्ति तु मातरम् ॥ वही, २।२।१०।६६
६—सन्तः सन्तुष्टमनसो न तु शोचन्ति जातुचित् ।
१०—विष्णुभक्तिसुधापानसंहृष्टानां महात्मनाम् । वही, २।२।१०।७०
११—ब्राह्म्यं पदं स्वल्पलाभो भाजनानां विमुक्तये ।
१२—त्रिविधो योंऽहसां राशिः सुमहाञ्जन्मिनां नृप ॥ वही २।२।१०।७१
१३—विष्णुभक्तिमहादाववह्नौ स शलभायते ।
१४—प्रयागगंगाप्रमुखतीर्थानि च तपांसि च ॥ वही, २।२।१०।७२
१५—अश्वमेधः क्रतुवरो दानानि सुमहांति च ।
१६—व्रतोपवासनियमाः सहस्राण्यर्जिता अपि ॥ २।२।१०।७३
१७—समूह एषामेकत्र गुणितः कोटिकोटिभिः ।
१८—विष्णुभक्तेः सहस्रांश समोऽसौ न हि कीर्तितः ॥ वही, २।२।१०।७४

चर्तुवर्ग (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) के फल को देनी वाली विष्णुभक्ति थोड़े तप का फल नहीं है (१) ।

अविद्या आदि के पंचक्लेशमय सुदृढ़ बन्धनों (पाशों) का उच्छेद केवल विष्णुभक्ति के द्वारा ही होता है (२-३)। यहां पर भक्ति योग का वर्णन किया गया है । पातञ्जल योग सूत्र (साधनपाद) सूत्र ३ में बताया गया है :—

अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्चक्लेशाः ।

अविद्यादि से ही क्लेश बन्धन सुदृढ़ होते हैं जो केवल विष्णु भक्ति से ही काटे जा सकते हैं । लिंग पुराण इसकी विशेष व्याख्या करता है :—

पंचक्लेशमयैः पाशैः पशून्बध्नाति शंकरः ।
स एव मोचकस्तेषाँ भक्त्या सम्यगुपासितः ॥
लिंग, २।६।२८

ये पंचक्लेश निम्नलिखित हैं :—

अविद्यामस्मितां रागं द्वेषं च द्विपदां वराः ।
वदंत्यभिनिवेशं च क्लेशान्पाशत्वमागतान् ॥
वही, २।६।२६

अर्थात् अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, और अभिनिवेश ही पाँच क्लेश हैं जो पाश (बन्धन) माने गये हैं । अविद्या पाँच प्रकार की है :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तमो मोहो महामोहस्तामिस्र इति पंडिता: ।
अंधतामिस्र इत्याहुरविद्यां पंचधा स्थिताम् ॥

वही, २।६।३०

शिव ही इन बन्धनों से छुड़ाने वाला है और कोई अन्य व्यक्ति या शक्ति नहीं मुक्त कर सकता है :—

ताञ्जीवान्मुनिशार्दूला: सर्वांश्चैवाप्यविद्यया ।
शिवो मोचयति श्रीमान् नान्य: कश्चिद्विमोचक: ॥

२।९।३१

अविद्यां तम इत्याहुरस्मितां मोह इत्यपि ।
महामोह इति प्राज्ञा रागं योगपरायण: ॥

वही, २।९।३२

द्वेषं तामिस्र इत्याहुरंधतामिस्र इत्यपि ।
तथैवाभिनिवेशं च मिथ्याज्ञानं विवेकिन: ॥

वही, २।६।३३

तमसोऽष्टविधा भेदा मोहश्चाष्टविध: स्मृत: ।
महामोह प्रभेदाश्च बुधैंदश विचिंतिता: ॥

वही, २।६।३४

अष्टादशविधं चाहुस्तामिस्रं च विचक्षणा: ।
अंधतामिस्रभेदाश्च तथाष्टादशधा स्मृता: ॥

वही, २।९।३५

इस प्रकार स्पष्ट है कि किस प्रकार अविद्यादि—तम, मोह, राग, द्वेष और मिथ्या ज्ञान—के द्वारा क्लेश-बंधन जकड़ते जाते हैं[1] । यदि मनुष्य उन बंधनों से मुक्ति चाहता है, तो उसे ईश्वर की शरण में आना ही पड़ेगा । द्वन्द्व रूपी वायु से विलोड़ित दुस्तर भवसागर में डूबने से बचाने वाली विष्णु भक्ति ही नाव है ।

ऊपर यह भी बताया गया है कि भक्ति का अर्थ सेवा से है। स्कन्द पुराण भी कहता है कि अतिशयता से की हुई वासुदेव की अनन्य सेवा को भक्ति कहते हैं :—

वासुदेवेतरान्देवान्कालमायावशीकृतान् ।
विदित्वा तेषु च प्रीतिं हित्वा तस्यैवनित्यदा ॥
गाढस्नेहेन या सेवा भक्तिरिति गीयते ॥

स्कन्द पु०, २।९।२५।६१

१. दासगुप्त, इण्डियन फ़िलासफी, जिल्द १, पृ० २६७

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

आगे स्कन्द कहते हैं :—

श्रवणं कीर्तनं तस्य स्मृतिश्चरणसेवनम् ।।
पूजा प्रणामो दास्यं च सख्यं चात्मनिवेदनम् ।।
इत्येतैर्न्नवभिर्भावैर्यः सेवेत् तमादरात् ।
अनन्यया धिषणया स हि भक्त इतीर्यते ।।

वही, २।६।२५।६३

श्रवण, कीर्तन, उस (प्रभु) का स्मरण, चरण-सेवन, पूजा, प्रणाम, दास्य, मुख्य और आत्मनिवेदन[1]—इन नव भावों से जो उनकी आदरपूर्वक अनन्य-चित्त से सेवा करता है वह भक्त कहलाता है। नव प्रकार की भाव-सेवा ही नवधा-भक्ति कहलाती है।

गरुण पुराण आठ ही प्रकार की भक्ति का उल्लेख करता है (भक्तिरष्ट-विधा ह्येषा)[2]। हरि-स्मरण, नाम-कर्मादि कीर्तन, चरण-सेवा, प्रणाम, पूजा, कथा-श्रवण, और सभी प्रकार से भक्तिभाव सहित विष्णु में लीन हो जाना मुख्य रूप से विष्णु भक्ति के साधन बताये गये हैं।[3] इनमें भी ध्यान, हरि-कथा, हरि-स्तुति(गोविन्द गुण स्तुति)गुण, कर्म और चिन्तन तथा केशव-स्मरण अधिक प्रचलित थे।[4] तर्पण, होम, सन्ध्या और वन्दन से भी विष्णु की प्राप्ति होती है। भगवान् विष्णु ही स्वयं धर्म हैं और उनकी पूजा ही तर्पण तथा होम, सन्ध्या तथा ध्यान-धारण भी सभी कुछ विष्णु ही है।[5] कलियुग में केवल कृष्ण के कीर्तन से ही महाबन्ध को तोड़ कर मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है। इसीलिये नित्य हरि ही ध्येय और पूज्य हैं।[6] गरुड़ हरि भक्ति के अति-रिक्त भक्तों के सत्संग की भी महिमा वताते हैं।[7] भगवान् की शरण में ही जाकर वैष्णव-पद को प्राप्त करते हैं। भक्त भगवान् से प्रार्थना कर यही चाहता है कि वह भक्ति को दृढ़ करें :—

---

१. भागवत पु०, ७।११।११ :

श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः ।
सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम् ।।

२. गरुड़, १।२१९।९
३. वही, १।२१९।१-८
४. वही, १।२२२।३५-४१
५. वही, १।२१५।२-३
६ वही, १।२१५।३६ (१); ३७
७. वही, १।२१८।३३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भवोद्भवक्लेशशतैंर्हतस्तथा परिभ्रमन्निन्द्रियरन्ध्रकैर्हयैः ।
नियम्य मां माधव मे मनोहयस्त्वदङ्घ्रिशंकौ दृढ़भक्ति बन्धने ॥[1]

परम ब्रह्म विष्णु (१।२१९।३९) ही मुक्ति के लिये नमस्कार करने योग्य हैं। विष्णु ही आनन्द स्वरूप अद्वैत विज्ञान हैं।[2] इस प्रकार पर अद्वैत भक्ति की महिमा बतायी गयी है जिस पर दक्षिण भारत के अद्वैत दर्शन का प्रभाव परिलक्षित होता है।[3] पूर्व मध्ययुग में भक्ति का प्रादुर्भाव और प्रसार दक्षिण भारत के द्रविड़ देश से प्रारम्भ हुआ था। साथ ही भक्ति-पूजा पर पंचरात्र[4] का प्रभाव विशेष रूप से पड़ा।

इस प्रकार हम गरुड़ पुराण के पूर्व खंड में चित्रित भक्ति के स्वरूप और विकास से ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में भारतीय धार्मिक जीवन में विष्णु की महिमा का दर्शन पाते हैं।

द्वितीय खण्ड (उत्तरार्ध) भी विष्णु की वन्दना से प्रारम्भ होता है।[5] विष्णु-स्मरण[6], विष्णु (कथा-लीला) श्रवण[7], दशावतार-मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, राम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि के नामों का स्मरण[8], और विष्णु-पूजा[9] के महत्व का उल्लेख है। अष्टाक्षर (ओं नमो नारायणाय अथवा ओं नमो वासुदेवाय) और द्वादशाक्षर (ओं नमो भगवते वासुदेवाय) मंत्रों के जप का भी महत्व बताया गया है।[10] विष्णु के सर्वव्यापी[11]—सर्वं विष्णुमयं जगत्—स्वरूप की प्रतिष्ठा की गयी है। असुरों पर विष्णु का जय-घोष होता सुनाई पड़ता है :—

---

१. गरुड़, १।२१९।३७
२. वही, १।२१९।३८
३. वही, १।२२०।१-२
४. जे० एन० फर्कुहर, ऐन आउटलाइन ऑफ रेलिजस लिटरेचर ऑफ इण्डिया, पृ० २३२-२३३
५. गरुड़, १।१।३७।९
६. वही, २।१।१-२
७. वही, २।१२।१२ (१); २।२०।१६ (१)
८. वही, २।१२।१८ (१)
९. वही, २।२०।३१-३२
१०. वही, २।२०।३४ (१)
११. वही, २।२०।३४ (२)
१२. वही, २।२०।३६-३७; २।३५।४५-४८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विष्णुर्जयति नासुर:[१]

उत्तरार्ध में ही हमें तुलसी[२] का भी वैष्णव माहात्म्य बताया गया है जिसे हमें पूर्वार्द्ध में नहीं पाते हैं। अस्तु स्पष्ट है कि उत्तरार्द्ध बाद में लिखा गया था और इसका समय ईसा की १२वीं शताब्दी के आस-पास का है, जब भारतीयों का असुरों के साथ घोर संघर्ष हो रहा था।

देवनिन्दक नास्तिकों[३], जिन्हें 'कृतघ्ना नास्तिका रौद्रास्तथा साहसिका: शठा:'[४] (क्रूर और दुष्ट तथा दुस्साहसी) कहा गया है, और सभी देवताओं के निन्दक दुराचारी दिगम्बरों[५] (नग्नों) की निन्दा की गयी है।

इसके साथ ही विष्णु भक्ति की महिमा बतायी गयी है और गरुड़ पुराण को वैष्णव शास्त्र (वैष्णवी वाक्सुधा)[६] कहा गया है। चन्देल मंत्री कृष्ण मिश्र ने भी अपने नाटक प्रबोध चन्द्रोदय में जैनधर्म और बौद्धधर्म के अनुयायियों के दोषों को दिखाते हुए विष्णु भक्ति का माहात्म्य बताया है।

ब्रह्मांड पुराण में त्रिविधा भक्ति-उत्तमा, मध्यमा और कनिष्ठा—का उल्लेख मिलता है। शिव, नारद, शुक, अम्बरीष, रंतिदेव, मारुति (हनुमान), बलि विभीषण, और प्रह्लाद की साधना उत्तम भक्ति बतायी गयी है। गोपियों, उद्धव, वसिष्ठ आदि मुनियों और मनु इत्यादि की भक्ति मध्यम कही गयी है। परशुराम की भी श्रीकृष्ण-भक्ति मध्यम प्रकार की ही बतायी गयी है।[७] भार्गव राम कृष्ण-भक्त थे। कृष्ण प्रेमामृत स्तोत्र का महत्व था।[८] इसी के प्रभाव से भार्गव राम भी भगवान् कृष्ण के वरदान से उनके ही अंशावेश स्वरूप को प्राप्त हुए।[९]

नवधा-भक्ति (भक्ति के नव भेद या लक्षण)

परम भागवत प्रह्लाद ने हिरण्यकशिपु को बताया कि विष्णु भक्ति के नौ भेद—(भगवान के गुण-लीला नाम आदि का) श्रवण, उनका कीर्तन, स्मरण,

१. गरुड़, २।३४।३ (२)
२. वही, २।१९।२२
३. वही, २।१०।१६
४. वही, २।१७ ३७
५. वही, २।३४।१३
६. वही, २।३५।४९
७. ब्रह्मांड, म० भा०, ३।३४।३८-४२
८. वही, ३।३४।४९-५०; ३।३६।१०-५९
९. वही, ३।३७।२९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाद सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्म निवेदन हैं। यदि भगवान् विष्णु में आत्म समर्पण के भाव से यह नौ प्रकार की भक्ति की जाय तो वही उत्तम अध्ययन (ज्ञान) है :—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

भागवत पु० ७।५।२३

इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा ।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ॥

वही, ७।५।२४

ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी नवधा भक्ति का वर्णन मिलता है :—

स्मरणं कीर्तनं नाम-गुणयोः श्रवणं जयः ।
त्वच्चारुरूपध्यानं त्वत्पादसेवाभिवन्दनम् ॥

ब्र० वै०, १।६।१५

समर्पणं चात्मनश्च नित्यं नैवेद्यभोजनम् ।
वरं वरेश देहीदं नवधा भक्ति लक्षणम् ॥

वही, १।६।१६

और

अर्चनं वन्दनं मन्त्रजपः सेवनमेव च ।
स्मरणं कीर्तनं शश्वद्गुण श्रवणमीप्सितम् ॥

वही, ४।१।३४

निवेदनं तस्य दास्यं नवधा भक्ति लक्षणम् ।
करोति जन्म सफलं कृत्वैतानि च नारद ॥

वही, ४।१।३५

'इन सब प्रकारों का वर्णन तथा परस्पर सूक्ष्म विभेद का विवरण भागवत में सुन्दरता से किया गया है। इस क्रम में एक मनोवैज्ञानिक आरोहण से भक्ति आरम्भ होती है भगवान के श्रवण से; भगवान् के नाम तथा गुणों के श्रोत से ग्रहण भक्ति की आरम्भिक सीढ़ी है जो कीर्तन, स्मरण आदि सोपानों से चढ़कर साधक को 'आत्मनिवेदन' के द्वारा भगवत-प्रासाद में पहुँचा देती है। आत्म समर्पण इस शृंखला की अन्तिम कड़ी है।''[1]

श्रवणम्

भारत की अध्यायात्म साधना में श्रवणं का विशेष महत्व है (श्रवणं मननं

१. पुराण-विमर्श, पृ० ४३८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ध्यानं ज्ञानानाञ्चैव साधनम्)[१]। श्रवण-क्रिया का साफल्य भगवान् विष्णु की कथाओं से प्रीति का होना ही है (तत्कथा श्रवणे प्रीतिः श्रवणं सफलं भवेत्) जिससे सभी प्रकार से भगवान् विष्णु में भक्ति-भाव की प्रतिष्ठा हो जाय (येन सर्वात्मना विष्णौ भक्तया भावो निवेशितः)[२]। जो मनुष्य भगवान के दिव्य गुणों का श्रवण नहीं करता है, उसे सभी धर्मों से विमुख बहरा आदमी ही समझना चाहिए :—

न श्रणोति गुणान् दिव्यान् देवदेवस्य चक्रिणः।
स नरो वधिरो ज्ञेयो सर्व धर्म बहिष्कृतः॥[३]

विष्णु स्मरण से हीन मनुष्य मरने पर प्रेतयोनि को प्राप्त होता है।[४] इसके विपरीत सदैव विष्णु स्मरण से मनुष्य प्रेत भाव से मुक्त हो जाता है।[५]

नारायण की कथाओं[६] से संवलित विष्णु-कथाश्रयम्[७] गरुड़ पुराण महार्थक[८] पुराण है जिसमें विष्णु का माहात्म्य[९] प्राप्त होता है। विष्णु के विभिन्न स्तोत्रों का वर्णन इस पुराण में मिलता है जिनके श्रवण करने से पुण्य प्राप्त होता है।[१०]

ब्रह्मवैवर्त पुराण में भगवान के गुणों को सदैव सुनने की इच्छा (शश्वद्-गुणश्रवणमीप्सितम्) को पहले न रखकर सातवें स्थान पर रखा गया है। हरिदास नामक भक्त-शिशु सदैव कृष्ण सम्बन्धी गाथाओं और पुराण का श्रवण करता था :—

कृष्ण सम्बिन्धिनीं गाथां शृणोति यत्र तत्र वै।
तत्संबन्धि पुराणं च तत्र तिष्ठिति बालकः॥

ब्र० वै०, १।२१।३

---

१. गरुड़, १।२२८।७
२. वही, १।२१९।७
३. वही, १।२१९।२३
४. वही, २।१२।१२
५. वही, २।१२।१८
६. वही, १।५।१०
७. वही, १।१।११; १।२।१
८. वही, १।२।९
९. वही, १।२।५२
१०. वही, १।३१।३०; १।३२।४१; १।३३।१५; १।९२।१८ १।२२३।२२; १।२२४।२३-२४; १२२५।१०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वृहन्नारदीय पुराण भी बताता है कि वे उत्तम कोटि के विष्णु भक्त हैं जिनकी सात्विकी बुद्धि सत्कथा-श्रवण करने में लगी रहती है :

सत्कथा श्रवणे येषां वर्तते सात्विकी मतिः।
तद्भक्तविष्णुभक्ताश्च ते वै भागवतोत्तमाः ॥

वृ० ना०, १।५।५२

इसी प्रकार पुराणों को श्रवण करने वाले भी उच्च कोटि के भागवत हैं (वृ० ना०, १।५।५९)। पुराण-श्रवण भी पवित्र कर्म था (गरुड़, १।१२५।७)। वराह मूर्ति की पूजा करते हुए (वराह) पुराण के सुनने का उल्लेख मिलता है श्रुत्वा पुराणं देवस्य माहात्म्य प्रतिपादकम्)[१]। भीष्म को ब्रह्मवैवर्त (पुराण) में पारंगत बताया गया है (भीष्मः सर्वगुणैर्युक्तो ब्रह्मवैवर्त पारगः)।[२] भीष्म महान् कृष्ण भक्त थे और ब्रह्मवैवर्त पुराण कृष्ण भक्ति का विशेष रूप से वर्णन करता है। जिनके शरीर में भगवन्नाम के श्रवण से आनन्द से रोमाञ्च हो, वही उत्तम भक्त हैं (वृ० ना०, १।५।६४)

विष्णु-कीर्तनं

विष्णु कीर्तनीय हैं (गरुड़, १।२।५४)। लोकनाथ के नामकर्मादिका कीर्तन करना और उसमें भाव-विभोर होकर आनन्द का अनुभव करना तथा हर्ष से रोमाञ्च होकर अश्रु बहाना ही भक्त का लक्षण है।[३] इस प्रकार भगवान तन्मयत्व से प्रसन्न होते हैं।[४]

विष्णु पुराण से ज्ञात होता है कि एक बार मुनि गण यह जानने के लिये व्यास के पास गये कि किस समय में थोड़ा सा भी पुण्य करने से महान फल होता है। उन्होंने देखा कि व्यास जी गंगा में स्नान कर रहे थे। अतः वे रुक कर उनकी प्रतीक्षा में वहीं बैठ गये। उन्होंने देखा कि व्यास जी ने गंगा में डुबकी लगाकर जल से उठते हुए कहा कि कलि ही साधु है और शूद्र साधु है।

साधु साध्विति चोत्थाय शूद्र धन्योऽसि चाब्रवीत् ॥[५]

"शूद्र ! तुम ही श्रेष्ठ हो, तुम ही धन्य हो।"

---

१. गरुड़, १।१२७।१८ (१)
२. वही, १।१४५।४
३. वही, १।२१९।३ (२)—४(१), २४
४. विष्णु १।१२।४१
५. वही, ६।२।७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह कह कर व्यास मुनि पुनः जल में डुबकी लगा गये और फिर ऊपर उठ कर कहने लगे :

निमग्नश्च समुत्थाय पुनः प्राह महामुनिः ।
योषितः साधु धन्यास्तास्ताभ्यो धन्यतरोऽस्तिकः ।[१]

"स्त्रियाँ ही साधु हैं । वे ही धन्य हैं और उनसे अधिक धन्य अन्य कौन है ?"

ऋषियों के पूछने पर कि उनके कथन-कलि साधु है, शूद्र साधु है और स्त्रियाँ साधु हैं—का क्या रहस्य है । व्यास जी ने उनको बताया :—

यत्कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन तत् ।
द्वापरे तच्च मासेन ह्यहोरात्रेण तत्कलौ ॥
तपसो ब्रह्मचर्यस्य जपादेश्च फलं द्विजाः ।
प्राप्नोति पुरुषस्तेन कलिस्साध्विति भाषितम् ॥
ध्यायन्कृते यजन्यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ॥[२]

इस प्रकार कलियुग में हरि-कीर्तन का माहात्म्य बताया गया है । इससे मनुष्य को थोड़े ही प्रयास से महान धर्म की प्राप्ति हो जाती है ।[३] ब्रह्म पुराण में भी व्यास जी ने यही कहा है ।[४]

नाम कीर्तन से सभी पापों से छुटकारा पाकर मनुष्य मोक्ष की ओर चल देता है ।[५] इसमें विष्णु सहस्र नाम का जप और कीर्तन अत्यन्त पुण्य माना

१. विष्णु, ६।२।८
२. वही, ६।२।१५-१७
३. वही, ६।२।१८
४. ब्रह्म पुराण, अ० २२९।६१-६५; इसी प्रकार, इससे मिलती-जुलती कहानी वराह पुराण (अध्याय ४९) में भी बतायी गयी है । यहाँ नारद के स्थान पर अगस्त्य जी कहते हैं :—

साधु साधु जगन्नाथ स्त्रीशूद्राः साधु साध्विति ॥
वराह, ४९।१६

द्विजाः साधु नृपाः साधु वैश्याः साधु पुनः पुनः ।
साधु भद्राश्व साधु त्वं साधु भोऽगस्त्य साधु ते ॥
वही, ४९।१७

साधु प्रह्लाद साधुस्ते ध्रुव साधो महाव्रत ।
वही, ४९।१८

५. गरुड़, १।२२०।१२—१७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया है ।[1] हरि के नामोच्चारण से मोक्ष प्राप्त होता है ।[2] इसी प्रकार—अनघ, वामन, शौरि, वैकुण्ठ, पुरुषोत्तम, दामोदर, पद्मनाभ, केशव, गरुड़ध्वज, गोविन्द, अच्युत, देव, अनन्त, अपराजित, अधोक्षज जगद्बीज, अनादिनिधन, विष्णु, त्रिलोकेश, त्रिविक्रम, नारायण, श्रीपति, श्रीधर, हरि, और वासुदेव के नामों का संकीर्तन कर भगवान से दुःखसागर से रक्षा करने की प्रार्थना करे ।[3] सत्य ही कलियुग में कीर्तन ही एक महागुण है :

कलेर्दोषनिधेर्विप्रा अस्ति ह्येको महागुणः ।।

गरुड़ १।२१५।३५

कीर्त्तनादेव कृष्णस्य महाबन्धं परित्जेत् ।।

वही, १।२१५।३६

इस प्रकार कलियुग में हरिकीर्तन का ही महत्व है (गरुड़, १।२१५।३७) ।

भगवान् के नाम कीर्तन को ही मनुष्य का परं धर्म कहा गया है। नामोच्चारण माहात्म्य से ही अजामिल जैसा पापी भी मृत्यु पाश से मुक्त हो गया (भागवत, ६।३।२२-२३) :

एतावतांलमघनिर्हरणाय पुंसां
संकीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नाम् ।
विक्रुश्य पुत्रमघवान् यदजामिलोऽपि
नारायणेति म्रियमाण इयाय मुक्तिम् ।।

भागवत, ६।३।२४

स्मरणं

देव-देव हरि का स्मरण[4] भी महत्वपूर्ण भक्ति है। शिशुपाल को स्मरणाभ्यास से ही सिद्धि प्राप्ति हुई ।[5] सत्य ही देव देव विष्णु के स्मरण से सिद्धि मिलती है ।[6] इसलिये जीवन का परं कल्याण हरि-स्मरण में ही है।[7] कलियुग में केशव के स्मरण से ही मनुष्य वह प्राप्त करता है, जो कृतयुग में ध्यान, त्रेता में मन्त्र-जप और द्वापर में अर्चन् से मनुष्य प्राप्त करता है ।[8]

---

१. गरुड़, १, अ० १५
२. वही, १।११४।३
३. वही, १।१३१।१०-१६
४. वही, १।५०।४०, ४५;
५. वही, १।२१९।३६ १।२२७।४५
६. वही, १।१६४।२२
७. वही, १।२१६।२, १६
८. वही, १।२०।२८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पादसेवनं

चरण सेवा भी महत्वपूर्ण भक्ति है। अहिशय्या पर सोते हुए विष्णु की चरण सेवा करते हुए लक्ष्मी को दिखाया गया है।

अर्चनं

अर्चनं का विशेष महत्व है। पूजा-स्तुति से ही भक्त अपने आराध्य को प्रसन्न करता है। अर्चन् शब्द से अर्चा (मूर्ति) और मूर्ति पूजा का भी महत्व परिलक्षित होता है। गरुड़ के युग में मण्डल में मूर्त्त रूप विष्णु की पूजा अधिक प्रचलित थी।[1] उनके विभिन्न विभवों और व्यूहों की पूजा होती थी।

विभिन्न उपचारों के साथ पूजा की जाती थी यथा आसन, आवाहन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र (दान), उपवीत, गन्ध, पुष्प, धूप, दीपक, नमस्कार, प्रदक्षिण और विसर्जन आदि।[2]

प्रणाम

मनुष्य भक्ति-भाव से विष्णु को दण्डवत् भूमि में प्रणाम कर नमस्कार पूर्वक पूज कर सद्गति प्राप्त करता है।[3] 'नमो नारायणाय' मन्त्र की ही एक मात्र शरण लेकर मनुष्य भव-सागर से पार हो जाता है।[4] वासुदेव को नमस्कार करने से बढ़कर अन्य कोई तीर्थ नहीं है।[5]

दास्यं (हरिदास्यं)[6]

भक्त सेवक होता है। उसे भगवान् की सेवा दास्य भाव से करना आवश्यक है। वैष्णव के लिये विष्णुदास्यं नितान्त आवश्यक है।[7]

सख्यं

सख्यं (सखा-भाव) भी भक्ति का एक महत्वपूर्ण भेद है। अर्जुन का कृष्ण

१. गरुड़, १।८।१
२. वही, १।७।४-५; १।३०।१-१८; १, अ० ३१-३४;
३. वही, १।२२०।१-६
४. वही, १।२२०।८; वराह पु०, ४९।३१
५. गरुड़, १।२२२।४७
६. ब्र० वै०, ४।२।५९।७५; ४।२।११३।४३
७. वही, ४।२।५९।६४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के प्रति अप्रतिम सख्य-भाव था। सुदामा के भी सख्य को देखिये :—

सख्युः प्रियस्य विप्रर्षेरंगसंगाति निर्वृतः।
प्रीतो व्यमुञ्चदब्बिन्दून् नेत्राभ्यां पुष्करेक्षणः॥

भागवत, १०।८०।१९

आत्मनिवेदनं

प्रपन्न-शरणागत भक्त वैष्णव पद को प्राप्त करते हैं।[१] अच्युताश्रय[२] और शीत तथा ताप की भीषणता से रहित वासुदेव तरु छाया का सेवन करना आवश्यक है।[३] भगवान् ही सबकी शरण हैं।[४] वह ही सर्वाश्रय हैं।[५] अतः ऐसे भगवान् के समक्ष भक्त का कल्याण आत्मनिवेदन में ही है। यही भक्ति की चरम सीमा है।

———

१. गरुड़, १।२१९।३८; १।२२६।५५-५६
२. वही, १ २२२।७,
३. वही, १।२२८।३१
४. वही, १।२२२।४६
५. वही, १।२२६।१५ (१)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शैवधर्म

यद्यपि गरुड़ पुराण मुख्य रूप से विष्णु-माहात्म्य परक ग्रंथ है, परन्तु इसमें भी शिव, उनके स्वरूप और उनकी उपासना के महत्व को पाते हैं। यह युग ही ऐसा था जब पंचायतन पूजा प्रचलित थी और इसमें शिव का भी अपना विशेष महत्व है। ग्रन्थारम्भ में ही अन्य पौराणिक देवी-देवताओं के साथ रुद्र की भी वन्दना की गयी है[1] :—

नमस्यामि हरिं रुद्रं ब्रह्माणञ्च गणाधिपम् ।
देवीं सरस्वतीञ्चैव मनोवाक्कर्मभिः यदा ।।

गरुड़, १।१।२

रुद्र की मूर्तियाँ भी पूजी जाती थीं।[2] माहेशी पूजा[3] मूर्ति रूप में महेश्वर-पूजा[4]—जिसमें वामदेव, तत्पुरुष, अघोर, भैरव आदि उनकी विभूतियों की पूजा की जाती थी, प्रचलित थी।[5] महेश्वर, मूर्ति[6] और लिंग[7] रूपों में, पूजे जाते थे। देवालय, मठ और प्रासाद भी उनकी पूजा के लिये बनाये जाते थे।[8] इस प्रकार त्रिमूर्ति—ब्रह्म विष्णु हरेशाना :—पूज्य थे।[9] अनंगत्रयोदशी-व्रत के सम्बन्ध में विभिन्न मासों में शिव की उनके विभिन्न नामों से—शिव,

---

१. गरुड़, १।१८।१८ :

एवं शिवाय कृष्णाय ब्रह्मणे च गणाय च ।
चण्डिकायै सरस्वत्यै महालक्ष्म्यादि पूजयेत् ।।
सूर्यादिशिवदुर्गा श्रीविष्णवर्चा रक्षयेद्गजम् ।।

वही, १।२०।३६ (१)
वही, २।७।१६ (१)

२. वही, १।८।२
३. वही, १, अध्याय ४०
४. वही, १।४०।२; १।४३।२५
५. वही, १।४०।५-१४
६. वही, १।४५।३१ (२)
७. वही, १।४२।११-१५
८. वही, १, अ० ४६-४८
९. वही, १।४८।६१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

योगेश्वर, नटेश्वर, वीरेश्वर, शम्भु, शूलपाणि, रुद्र आदि की पूजा जाती थी ।[1]

उनकी पूजा में भी रात्रि-जागरण करते हुए गीत-वाद्य का प्रचलन प्रसिद्ध था ।[2] शिवोपासना के साथ-साथ शैव व्रत—शिवरात्रिव्रत[3]—भी प्रचलित थे । अतः स्पष्ट है कि शैव धर्म के इतिहास पर गरुड़ पुराण महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है ।

"ईश्वर का क्रोध भयावह होता है । उसे मनुष्य अपनी प्रार्थना, प्रशस्ति और पूजा से प्रसन्न कर लेता है । तभी ईश्वर शिव (कल्याणमय) हो जाता है । रुद्र-शिव की उपासना प्राचीन काल में प्रतिष्ठित हो गयी थी ।"[4] ऋग्वेद में रुद्र के सूक्त[5] प्राप्त होते हैं । यजुर्वेद में एक पूरा अध्याय ही (रुद्राध्याय) इनकी स्तुति में कहा गया है । अथर्ववेद में भी रुद्र का महत्व प्रतिपादित किया गया है ।[6] यहाँ उनको सहस्राक्ष (सहस्र नेत्र वाले), नीलकण्ठ (नीलग्रीव) और (साथ ही) शितिकण्ठ भी कहा गया है (अथर्व. ११।२।५-६)। अथर्ववेद (११।२।१) में रुद्र के नामों में भव, शर्व और पशुपति का उल्लेख मिलता है । अथर्ववेद में रुद्र की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि "रुद्र का निवास अग्नि, जल, औषधियों और लताओं में ही नहीं है, बल्कि वह समस्त भुवनों की रचना करने वाले हैं । ऐसे रुद्र को नमस्कार है :—

यो अग्नौ रुद्रो य अप्सवन्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश ।
य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये ॥[7]

श्वेताश्वतर उपनिषद में भी रुद्र की महिमा का वर्णन किया गया है ।[8] वह एक ही है जो समस्त जीवों के भीतर निवास करता है । वही सभी लोकों की रचना कर उनकी रक्षा भी करता है :

---

१. गरुड़, १, अ० ११३
२. वही, १।११३।१४
३. वही, १, अ० १२४
४. भन्डारकर, वैष्णविज़्म-शैविज़्म, पृ० १०२
५. ऋग्वेद, १।११४; २।३३ और ७।४६
६. अथर्ववेद, ११।२ में रुद्र-स्तुति की गई है ।
७. वही, ७।८३
८. भन्डारकर, वैष्णविज़्म-शैविज़्म, पृ० १०६-११२; बैनर्जी, जे० एन०, पौराणिक ऐण्ड तान्त्रिक रेलिजन पृ० ६८-६९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु-
र्यइमाँल्लोकानीशत् ईशनीभिः ।
प्रत्यङ जनांस्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले
संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः ।।

श्वेताश्वतरोपनिषद, ३।२

वह परमदेव (रुद्र) परमेश्वर एक हैं जो सर्वव्यापी हैं (श्वेताश्वतर, ३।३)। वही परमेश्वर रुद्र सब के अधिपति हैं (श्वेताश्वतर, ३।४)। उनकी मूर्तियाँ—शिवा और अघोरा—है. तथा वह गिरिशन्त (पर्वत वासी) हैं (श्वेताश्वर, ३।५) आदि। इस प्रकार सर्वेश्वर रुद्र महर्षि भी हैं—

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।

श्वेताश्वतर, ३।१२

यही उपनिषद देव-भक्ति और गुरु भक्ति की भी महिमा बताता है :—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ

श्वेताश्वतर, ६।२३

इस प्रकार इस युग में रुद्र भक्ति की महिमा समाज में स्थापित हो चुकी थी।

रुद्र-शिव की महिमा हरप्पा संस्कृति में भी पशुपति और योगेश्वर के रूप में स्थापित हो चुकी थी। प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य में भी शिव के उल्लेख मिलते हैं।[1] पाणिनि के समय भी शिवोपासना प्रचलित थी।[2] पाणिनि ने स्वयं शिव की उपासना से व्याकरण का ज्ञान प्राप्त किया था।[3] पतंजलि भी रुद्र-शिव की उपासना का उल्लेख करते हैं।[4]

अभिलेखों और सिक्कों से भी ज्ञात होता है कि ईसा पूर्व की प्रारम्भिक शताब्दियों में ही शिव की उपासना प्रचलित थी। आगे की शताब्दियों में भी गुप्त युग और इसके पहले शिव उपास्य थे।[5] हर्ष का अत्यन्त सुन्दर सिक्का प्राप्त हुआ है। जिस पर उमामहेश्वर को बैठे हुए पाते हैं।[6] शशांक के

१. बैनर्जी, पौराणिक ऐण्ड तान्त्रिक रेलिजन, पृ० ७०
२. वही, पृ० ७२
३. स्कन्द पु० १।३ उ०।२।६८
४ पौराणिक ऐन्ड तान्त्रिक रेलिजन, पृ० ७३
५. वही, पृ० ७५-७८
६. जर्नल नुमिस्मेटिक सोसाइटी, XXVII, भाग १, पृ० १०३-१०६, प्लेट X, चित्र १.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिक्कों पर भी शिव के दर्शन होते हैं।[१] अस्तु गरुड़ पुराण के युग तक शंकर की उपासना विभिन्न रूपों में प्रचलित हो चुकी थी। यहां रुद्र को विष्णु का संहारक स्वरूप (रुद्रो भूत्वाऽसौ विष्णुश्च) बताया गया है।[२] रुद्र की पूजा भुक्ति और मुक्ति देने वाली है।[३] भूतेश (शिव) लोकानुग्रह करनेवाले हैं।[४]

शिवार्चनम्

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि अन्य देवी-देवताओं के साथ शिव की भी पूजा प्रचलित थी। उनके विविध नाम-रूपों की आराधना होती थी। सदाशिव (गरुड़, १।२०।८, ॐ ह्रां सदाशिवाय नमः) भैरव (गरुड़, १।२०।१४) रुद्र और शंकर (गरुड़, १।३४।३३-३४) भी त्रिमूर्ति में मुख्य स्थान रखते थे। शिव अशिव नाशक थे (गरुड़, १।४२।१)। इसलिये गरुड़ पुराण में भी पञ्चवक्त्रार्चनं-पंचवक्त्र शिव-सद्योजात की पूजा (पूर्वार्द्ध, अ० २१) और शिवार्चनं (पूर्वार्द्ध, अ० २२-२३) और माहेश्वरी पूजा (पूर्वार्द्ध, अ० ४०) का वर्णन मिलता है। शिव पूजा पर भी तान्त्रिक प्रभाव अधिकता से पड़ चुका था। उपासक महामन्त्र, होम (अग्नि कार्य) महामुद्रा, करांगन्यास, मण्डल-पूजा और दीक्षा आदि क्रियाओं द्वारा शिवत्व की प्राप्ति करता था।[५] धर्म, काम आदि (चर्तुवर्ग) की सिद्धि शिव पूजा से होती है (शिर्वाचनं प्रवक्ष्यामि धर्मकामादिसाधनम्)। इसमें मन्त्रों का अभ्यास होता था :[६]—

ओं हां आत्मतत्वाय विद्यातत्त्वाय हीं तथा।
ओ हूं शिवतत्वाय स्वाहा हृदा स्यात् श्रोत्रवन्दनम् ॥
भस्मस्नानं तर्पणञ्च ॐ हां यां स्वाहा सर्वमन्त्रकाः।
सर्वे देवाः सर्वमुनिर्नमोऽन्तो वौषडन्तकः ॥
स्वधान्ताः सर्वपितरः स्वधान्ताश्च पितामहाः।
....
ॐ हां तन्महेशाय विद्महे वाग्विशुद्धाय धीमहि
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥[७]

१. डे० हि० आ०, पृ० १५२, २७१; प्लेट IX, चित्र १२
२. गरुड़ १।२१६।३
३. वही १।१२४।२, १३ (२)
४. वही १।१२४।२० (१)
५. गरुड़, पूर्वार्द्ध, अ० २०
६. वही, १।२३।१
७. वही, १।२३।२-५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पूजा के सभी उपकरणों और उपचारों के साथ शिवमूर्ति का—

आवाहनं स्थापनञ्च सन्निधानं निरोधनम् ।
सकलीकरणं मुद्रादर्शनं चार्घ्यपाद्यकम् ॥

गरुड़, १।२३।१८

आचामभ्यङ्गमुदवर्त्तं स्नानं निर्मञ्छनं चरेत् ।
वस्त्रं विलेपनं पुष्पं धूपं दीपं चरुं ददेत् ॥

वही, १।२३।१९

आचामं मुखवासञ्च ताम्बूलं हस्तशोधनम् ।
छत्रचामरोपवीतं परमीकरणं चरेत् ॥

वही, १।२३।२०

रूपकल्पनकैकतत्वे जपो जपसमर्पणम् ।
स्तुतिनर्तिहृदाद्यैश्च ज्ञेयं नामांगपूजनम् ॥

वही, १।२३।२१

अग्नीश रक्षो वायव्ये मध्ये पूर्वादितन्त्रकम् ।
द्रन्द्राद्यांश्च यजेच्चण्डं तस्मै निर्माल्यमर्पयेत् ॥

वही, १।२३।२२

गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिभवतु मे देव तत्प्रसादात्त्वयि स्थिते ॥

वही, १।२३।२३

यत्किञ्चित् कर्म हे देव सदा दुष्कृतदुष्कृतम् ।
तन्मे शिवपदस्थस्य क्षयं कुरु यशस्कर ॥

वही, १।२३।२४

इससे शिव भक्त अपनी सिद्धि शिव के प्रसाद (प्रसन्नता और अनुग्रह) द्वारा ही प्राप्त करता है। शिव ही दाता और भोक्ता हैं और यह सम्पूर्ण संसार ही शिवमय है। शिव ही सर्वत्र महान् हैं और भक्त भी शिव में अपने को आत्मसात् करना परम् श्रेय मानता है। जो कुछ वह कार्य करता है वह सभी कुछ शिवार्पण करने में गौरवान्वित होता है। शिव के अतिरिक्त उसका अन्य कोई भी स्वामी नहीं है। इस प्रकार यह अनन्य शिवभक्ति है :—

शिवो दाता शिवो भोक्ता शिवः सर्वमिदं जगत् ।
शिवो जयति सर्वत्र यः शिवः सोऽहमेव च ॥

गरुड़, १।२३।२५

यत् कृतं यत् करिष्यामि तत् सर्वं सुकृत तव ।
त्वं त्राता विश्वनेता च नान्यौ नाथोऽस्ति मे शिव ॥

वही, १।२३।२६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यहाँ यह ध्यान दिलाना आवश्यक है कि विमकदफिस नामक कुषाण सम्राट के सोने के सिक्कों पर दूसरी ओर महेश्वर हाथ में त्रिशूल लिये हुए नन्दी के पास मुंडमाला पहने हुए खड़े हैं। यहीं पर खरोष्ठी लिपि में लिखा हुआ है :—

"महरजस रजतिरजस सर्वलोगइश्वरस महिश्वरस विमकठफिसस त्रतरस" यही मूर्त्त शिव महाराज वीमकडफिस का 'त्राता' और 'विश्व नेता' भी है।

इसके बाद ही, आगे चलकर गरुड़ में उपर्युक्त पूजा विधि के अतिरिक्त अन्य पूजा-प्रकार का भी उल्लेख किया गया है :

अथान्येन प्रकारेण शिवपूजां वदाम्यहम्।
गणः सरस्वती नन्दी महाकालोऽथ गंगया ॥

गरुड़, १।२३।२७

यमुना तु वास्त्वधिपो द्वारि पूर्वादितस्त्विमे।
इन्द्राद्याः पूजनीयाश्च तत्त्वानि पृथिवी जलम् ॥

वही, १।२३।२८

तेजो वायुर्व्योमगन्धो रसरूपे च शब्दकः।
स्पर्शो वाक् पाणिपादौ च पायूपस्थं श्रुतिस्त्वचौ ॥

वही, १।२३।२९

चक्षुर्जिह्वा घ्राणमनो बुद्धिश्चाहं प्रकृत्यपि।
पुमान् रागो द्वेषविद्ये कालाकालो नियत्यपि ॥ वही, १।२३।३०
माया च शुद्धविद्या च ईश्वरश्च सदाशिव।
शक्तिः शिवश्च तान् ज्ञात्वा मुक्तो ज्ञानी शिवो भवेत् ॥

वही, १।२३।३१

यहाँ सगण महेश्वर की सामान्य पूजा है जो तान्त्रिक प्रभाव से ओत-प्रोत न होकर शुद्ध भक्ति से अनुप्राणित है। द्वार पर गंगा-यमुना की स्थिति गुप्त युग का स्मरण कराता है जहाँ इन दो देव नदियों का रूपांकन तत्कालीन युग की विशिष्टता है। शिव-शक्ति (उमा-महेश्वर) के अतिरिक्त अन्य देव गण भी मूर्त्त किये हुए दृष्टव्य हैं। इस प्रकार की शिवोपासना से भक्त मुक्त (पाश-मुक्त), ज्ञानी और स्वयं शिव हो जाता है। शिव-शक्ति सच्चिदानन्द के परिचायक हैं।[1]

शिव पूजा का अन्य स्वरूप है जो दार्शनिक पक्ष से संवलित है। भक्त शिवात्मक-आत्मविद्या का सदा ध्यान करे। शिव स्वरूप (विद्या देह) को

---

१. दृष्टव्य, दासगुप्त, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलासफी, भाग ५, पृ० १००

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्तियों से युक्त (शिव-शक्तिमय) त्रिनेत्र सदाशिव का ध्यान करने से ही सदैव अमृत रहता है और यही शिवार्चन का परं फल है।[१]

अमृतेश-पूजन

शिवोपासना में मृत्युंजय का विशेष प्रभाव माना गया है।[२] इसीलिये मृत्युंजय महादेव की पूजा (मृत्युञ्जयार्चनम्)[३] भी होती है :

भजे सगिरिजं त्र्यक्षं च मृत्युंजयम्[४]

अर्थात् भवानी सहित त्रिनेत्र मृत्युंजय (शंकर) का स्मरण करता हूँ। शिव-सहस्रनाम में अमृताश, अमृतवपु[५] और अमृत[६] शिव (मृत्युञ्जय) के नामों का उल्लेख मिलता है।

अमृतेश महामन्त्र का जप शिव की पूजा के समान ही है। इसके जपने से मनुष्य पाप रहित होकर मृत्यु हीन हो जाता है। सौ बार जप से वेदफल, और १०८ बार जपने से यज्ञतीर्थफल की प्राप्ति तथा तीनों सन्ध्यायों में प्रतिदिन इसके जाप से मृत्यु और शत्रु पर विजय की प्राप्ति होती है।[७] दधीच ऋषि इसी महामन्त्र और मृत्युंजय की आराधना से अवध्य हो गये थे।[८]

गरुड़ के अनुसार अमृतेश्वर और अमृता देवी की मूर्तियों का पूजन और चिन्तन (ध्यान)[९] विधि पूर्वक सम्पूर्ण देव परिवार के साथ किया जाता था :

ॐ अमृतेश्वर भैरवाय नमः।[१०]

---

१. गरुड़, १।२३।४९-५२
२. शिव पु०, विद्येश्वर संहिता, सतीखंड अध्याय ३८; पद्मपु०, ६।२३६।३१-९३
३. गरुड़, १।१८।१
   शिव पु०, २।२।३८।५५
४. वही, २।२।३८।३४
५. वही, ४।३५।२७
६. वही, ४।३५।४०
७. गरुड़ १।१८।३-४
८. शिव पु०, २।२।३८।५५
९. गरुड़, १।१८।५-६
१०. वही, १।१८।७-१८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माहेश्वरी-पूजा

स्नान, आचमन कर आसन पर बैठ कर न्यास करने के बाद मण्डल में महेश्वर की पूजा परिवार देवताओं के साथ करनी चाहिए।[1] माहेश्वरी-पूजा शिव के विविध नाम-रूपों में की जाती थी। सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष, अघोर, और ईशान तथा शिव-परिवार—इन्द्र, अग्नि, यम, नैॠत, वरुण, वायु, सोम, ईशान, अनन्त-नागाधिपति और ब्रह्मा—की पूजा होती थी।[2] शिव का धूलिचण्डेश्वर (धूलिचंडेश्वराय नमः) रूप में ध्यान करते हुए शंकर का आवाहन, स्थापन, सन्निधान, सन्निरोध, और सकलीकरण करे। फिर न्यास और मुद्रा-दर्शन तथा ध्यान करे। तदनन्तर पाद्य, आचमन, अर्घ्य, उद्वर्तन, स्नान, सुगन्ध—अनुलेप, वस्त्रालंकार, भोग, अंगन्यास, धूप, दीप, नैवेद्यदान, हस्तोद्वर्तन, 'पाद्यार्घ्याचमन, गन्ध, ताम्बूल और गीतवादन, नृत्य आदि सहित रूप-ध्यान और जप करते हुए मूलमन्त्र से महेश्वर की पूजा करनी चाहिये।[3]

इस प्रकार की माहेश्वरी-पूजा विधान में तान्त्रिक-विधि का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है। पूजा के उपचारों के साथ-साथ मन्त्र, मुद्रा, मंडल और न्यास आदि की विशेषता है।

सांवत्सरिक पूजा (अनंगत्रयोदशीव्रत)

अनंग त्रयोदशी व्रत का वर्णन करते हुए शिव की प्रत्येक मास में होने वाली साल भर की पूजा का वर्णन किया गया है। यहाँ भी प्रत्येक मास में शिव की विभिन्न नामों से पूजा की गयी है। लिंग पुराण (१।८४।२३-७१) में 'प्रतिमासम् अनुक्रमात्-मार्गशीर्षकमासादि कार्तिक्यांतम् यथाक्रमम् (लिंग, १।८४।-३) का वर्णन प्राप्त होता है। प्रायः सभी व्रतों मे शिव-पूजन होता है (सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो रुद्रपूजनम्, लिंग, १।८४।२२)। गरुड़ के अनुसार हमें ज्ञात होता है :—

उपासक का भोजन	मास का नाम	शिव-नाम	पूजन-सामग्री
	मार्गशीर्ष (अगहन)	शिव	धतूरा और मल्लिका (मोतिया की दतून)

१. गरुड़, १।४०।२-५
२. वही, १।४०।५-११
३. वही, १।४०।१२-१४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपासक का भोजन	मास का नाम	शिव-नाम	पूजन-सामग्री
मधुकर खा कर	पौष (पूस)	योगेश्वर	बेलपत्र, कदंब की दतून, चन्दन, और शष्कुली (पक्वान्न) का नैवेद्य दे।
	माघ	नटेश्वर	कुन्द पुष्प, मोतियों की माला, पाकड़ (प्लक्ष) की दतून और पूड़ियों का नैवेद्य दे।
	फाल्गुन	वीरेश्वर	मरुवक (दौना मरुआ) के फूल (इसकी पत्तियाँ भी सुगन्धित होती हैं।), शक्कर, शाकमण्ड (फलादि का मांड) और आम की दतून दे।
कपूर	चैत्र	सुरूप	वट की दतून और शष्कुली का नैवेद्य दे।
	वैशाख	महारूप (शम्भु)	मोदकों (लड्डुओं) और अशोक पुष्प से पूजा कर, गुड़भक्त (गुड़भात) का नैवेद्य तथा उदुम्बर की दतून दे।
जातीफल	ज्येष्ठ	प्रद्युम्न	जातीफल (जायफल), चम्पा और बेल की दतून।
लौंग	आषाढ़ श्रावण	उमाभद्र शूलपाणि (शम्भु)	अगुरु की दतून और अपामार्ग (चिचड़ा), करवीर, घृत और गन्धासन तथा करवीर की दतून दे।
	भाद्रपद (भादों)	सद्योजात	वकुल पुष्प और पूपक (पुआ) दे।
	आश्विन (कुंआर)	सुराधिप	गन्धर्वाश (कस्तूरी ?) और मदन (वृक्ष) की दतून दे।
	कार्तिक	रुद्र	चम्पक (चम्पा) के फूल, मोदक, और खदिर की दतून दे।
	वर्ष के अन्त में	शिव	बदरी की दतून, क्षीर, शाक और पद्म।[1]

१. गरुड़, १।११७।१-१२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार वर्ष भर शिव की पूजा की जाती है। यहाँ हमको शिव के १२ नाम—शिव, योगेश्वर, नटेश्वर, वीरेश्वर, सुरूप, महारूप, प्रद्युम्न, उमाभद्र, शूलपाणि, सद्योजात, सुराधिप और रुद्र—प्राप्त होते हैं। शिव पुराण में नट रूप का वर्णन मिलता है।[1] उनके सहस्रनामों में 'नट'[2] और नर्तक, नृत्यप्रिय तथा नृत्यनित्य नामों का उल्लेख मिलता है।[3] इसी प्रकार महारूप का नाम भी शिव-सहस्रनाम में मिलता है।[4] शिवके इन नामों में प्रद्युम्न का विशेष रूप से उल्लेखनीय है क्योंकि प्रद्युम्न एक वैष्णव देवता हैं चर्तुव्यूहोपासना में जिनका विशेष स्थान है। यहाँ यह शिव के प्रतिनिधि माने गये हैं।

प्रद्युम्न कामदेव के अवतार भी माने गये हैं. जो कृष्ण के पुत्र थे। यहाँ अनंग (कामदेव) की पूजा के प्रसंग में प्रद्युम्न का नाम होना भी सार्थक है। इससे शिव और विष्णु की अभिन्नता भी परिलक्षित होती है।

शिव के पूजन के बाद रति और अनग की पूजा करके उद्यापन के साथ व्रत समाप्त किया जाता है।[5]

इन नामों के अतिरिक्त हमें ११ रुद्रों और आठ भैरवों के भी नाम मिलते हैं।

एकादश-रुद्र

एकादश रुद्रों के नामों में बहुत ही भेद प्राप्त होते हैं। गोपीनाथ राव ने एकादश रुद्रों की तीन तालिकाएँ दी हैं:—

I	II	III
अंशुमदभेदागम	विश्वकर्मशिल्प	रूपमण्डन
१. महादेव	अज	तत्पुरुष
२. शिव	एकपाद	अघोर
३. शंकर	अहिबुध्न्य	ईशान
४. नीललोहित	विरूपाक्ष	वामदेव
५. ईशान	रेवत	सद्योजात
६. विजय	हर	मृत्युंजय

१. शिव पु०, ३।३४।१७-२०
२. वही, ३।३५।५१
३. वही, ४।३५।४५
४. वही, ४।३५।८६
५. गरुड़, १।११७।१३-१५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

७. भीम	बहुरूप	किरणाक्ष
८. देवदेव	त्र्यम्बक	श्रीकण्ठ
९. भवोद्भव	सुरेश्वर	अहिबुध्न्य
१०. रुद्र	जयन्त	विरूपाक्ष
१२. कपालीश	अपराजित	बहुरूप
×	×	त्र्यम्बक[1]

रूपमण्डन की सूची में बारह नाम हैं।[2] डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल ने भी इन तीनों रुद्र-तालिकाओं को दिया है। उन्होंने रूपमण्डन तालिका का क्रम भी बदल दिया है और अहिबुध्न्य, विरूपाक्ष, बहुरूप तथा त्र्यम्बक के स्थान पर विजय, अघोरास्त्र और महादेव के नामों का समावेश किया है।[3] परन्तु डा० शुक्ल ने इन नये नामों को देकर उनकी न तो व्याख्या ही की है और न इस सुधार का कोई कारण ही बताया है। प्रतिमालक्षण (पृ० १८४-१८७) में उन्होंने रूपमण्डन का मूल पाठ भी उद्धृत नहीं किया है। डा० शुक्ल ने अपराजित पृच्छा से भी एक एकादश रुद्र-तालिका दी : "तत्पुरुष, अघोर, ईशान, वामदेव, सद्योजात, मृत्युंजय, किरणाक्ष, अहिबुध्न्य, विरूपाक्ष, बहुरूप और त्र्यम्बक।"[4] वहीं उन्होंने प्रतिमा लक्षण (पृ० १८६) पर मूल पाठ भी उद्धृत किया है:—

सद्योवामोऽघोर तत्पुरुषावीशान एव च।
मृत्युंजयश्च विजयः किरणाक्षोऽघोरास्त्रकः॥

अ० पृ०, २१२।१

श्रीकण्ठश्च महोदेवो रुद्राश्चैकादश स्मृताः॥

वही, २१२।२ (१)

डा० शुक्ल ने मूल पाठ उद्धृत करने के बावजूद भी अपराजितपृच्छा की तालिका में विजय, अघोरास्त्रक, श्रीकण्ठ और महादेव के नामों को न देकर अहिबुध्न्य, विरूपाक्ष, बहुरूप और त्र्यम्बक के नामों का उल्लेख करते हैं।

अपराजित पृच्छा में ही अन्यत्र भी हमें एकादश रुद्रों का उल्लेख मिलता है :

---

१. गरुड़, १।८७।२९ (१)
२. गोपीनाथ राव, हिन्दू आइकनोग्राफी, जिल्द २, भाग २, पृ० ३६६-३८८।
३. वास्तुशास्त्र, भाग दो, हिन्दू कैनन्स ऑफ आइकनोग्राफी ऐन्ड पेंटिंग, पृ० २७९-२८०
४. हिन्दू कैनन्स ऑफ आइकनोग्राफी, पृ० २७९-२८०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रभासेन कृता पूजा देव देव जगद्गुरोः ।
तुष्टः प्रभासं देवेशः पुत्रत्वं समुपागमत् ।।

अ० पृ०, ३१।७

वाचस्पर्तेभागिनेयं वसुहृन्नन्ददायकम् ।
प्रोवाच वचनं पुत्र एकादश ममांशकाः ।।

वही, ३१।८

सोमनाथः प्रभासश्च कर्दमः शशिभूषणः ।
निष्कदारव्यः सहस्राक्ष ऋणमुक्तिः पापान्तकः ।।

वही, ३१।९

अर्कस्थाल्यमनार्कस्वरं तव पुत्रा एकादश ।
एकादशैते रुद्राश्च प्रभासक्षेत्र सम्भवाः ।।

वही, ३१।१०

आठ-रुद्र

विभिन्न पुराणों में भी रुद्र का वर्णन प्राप्त होता है। विष्णु[१], वायु[२], ब्रह्माण्ड[३], मार्कण्डेय[४], कूर्म[५], और पद्म[६] में आठ रुद्रों—रुद्र, भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव—का वर्णन प्राप्त होता है।

एकादश-रुद्र

परन्तु, सम्भवतः कालान्तर में इनकी संख्या आठ से ग्यारह हो गयी। विष्णु पुराण में ही, जहाँ हमें आठ रुद्रों का उल्लेख मिलता है, ११ रुद्रों का भी वर्णन प्राप्त होता है :

हरश्च बहुरूपश्क त्र्यंबकश्चापराजितः ।

विष्णु, १।१५।१२३ (२)

वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतः स्मृतः ।
मृगव्याधश्च शर्वश्च कपाली च महामुने ।।

वही, १।१५।१२४

---

१. विष्णु, १।८।६-७
२. वायु, १।२७।४-१७
३. ब्रह्माण्ड १।२।१०।३-१७
४. मार्कण्डेय, ५२।५-७
५. कूर्म, १।१०।२४-२५
६. पद्म, ५।३।१८८-१९४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः ।

वही, १।१५।१२५ (१)

लिंग पुराण में भी एकादश रुद्रों[1] का उल्लेख है। उनके नामों को टीकाकार ने विष्णु पुराण से उद्धृत किये हैं। लगभग यही पाठ हमको गरुड़ पुराण में भी उपलब्ध होता है, जो विष्णु पुराण में मिलता है। ये नाम हैं—हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी, रैवत, मृगव्याध, शर्व और कपाली।[2] भागवत पुराण में भिन्न नाम मिलते हैं। ये निम्नांकित हैं :—

मन्यु, मनु, महिनस, महान्, शिव, ऋतध्वज, उग्ररेता, भव, काल, वामदेव और धृतव्रत।[3]

अपराजितपृच्छा[4] तथा अन्य शिल्प-ग्रन्थों में उनके प्रतिमा-लक्षण दिये गये हैं। इससे सिद्ध होता है कि उनकी मूर्तियाँ बनती थीं और वे उपास्य थे। प्रतिमास में होने वाली शिव पूजा में उपास्य शिव, सद्योजात और रुद्र के नाम एकादश रुद्रों में उल्लिखित है।

इसी प्रकार मृत्युंजय (अमृतेश) का भी नाम एकादश रुद्र की तालिका में मिलता है।

अष्ट-भैरवाः

असितांग, रुरु, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त भैरव, कपाली, भीषण और संहार नामक आठ भैरवों[5] की इस प्रकार शिव की पूजा सौम्य और असौम्य (उग्र) रूपों में होती थी।

दूर्वाष्टमी व्रत

दूर्वाष्टमी व्रत में भी—भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी को होने वाले व्रत दूर्वा, गौरी, गणेश और शिव की पूजा फलों और फूलों तथा व्रीहि आदि से की जाती है। दूर्वा-स्तुति के साथ-साथ शिव की वन्दना (शम्भवे नमः शिवाय च) भी की जाती है।[6]

---

१. लिंग, १।४१।४३
२. गरुड़, १।६।३५ (३)-३६
३. भागवत्, ३।१२।१२
४. अपराजितपृच्छा, सूत्र २१२
५. गरुड़, १।२४।७
६. गरुड़, १।१३१।१-२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिवरात्रि व्रत

शिवार्चन में शिवरात्रि पूजा का विशेष महत्व है। माघ और फाल्गुन मासों के बीच पड़ने वाली कृष्ण चतुर्दशी को यह पूजा होती है जब रात में जागरण भी होता है बहुत से पापियों ने इस व्रत और पूजा के प्रभाव से स्वर्ग की प्राप्ति की थी।[१]

शुक्ल और कृष्णपक्ष की अष्टमी और चतुर्दशी को भी शिवपूजन का महत्व बताया गया है।[२]

लिंग-उपासना

शिवरात्रि के महत्व को वर्णन करते हुए बताया गया है कि अर्बुद[३] गिरि पर एक निषादों का राजा रहता था। वह पर्वत पर मृगया के लिये गया। उसे कोई शिकार न मिला। वह भूखा-प्यासा रात्रि में वहीं एक तड़ाग के निकट झाड़ी में जागता हुआ बैठा रहा। इस तालाब के निकट ही एक लिंग भी था। उसके बैठने आदि से (विल्व) पत्ते टूट कर लिंग पर गिर पड़े। धूल धोने के लिये उसने पानी छिड़का था और वह जल भी लिंग पर गिरा। उसी समय संयोग से उसका एक बाण भी गिर पड़ा जिसे उठाने के लिये वह घुटनों के बल पर पृथिवी पर गिर कर उठाने लगा और उसने लिंग को छू कर बाण उठा लिया। इस प्रकार बिना जाने हुए ही उस निषाद-राज ने स्नान, लिंग-स्पर्श, पूजन और जागरण किया। प्रातः घर जाकर उसने भोजन किया। मरने पर वह मुक्त हो गया। अतः स्पष्ट है कि लिंग की पूजा और शिवमन्त्र—ॐ नमो नमः शिवाय[४]—का जप परम् कल्याण करने वाला है।

गया में शिवपूजा के लिये गयासुर क्षीराब्धि से कमल ले आया था।[५] गया में रुद्र (शिव) के पवित्र तीर्थस्थान कालेश्वर और केदार गया में रुद्र (शिव) के पवित्र तीर्थ स्थान थे, जिनके दर्शन से मनुष्य पितृ-ऋण से मुक्त हो जाता था।[६] इनके अतिरिक्त भी यहाँ अन्य शैव स्थान थे।

---

१. गरुड़, १।१२४।१-५

२. वही, १।१३७।२

३. वही, १।१२४।४ :
"निषादश्चाम्बुदे राजा............" अम्बुद अशुद्ध पाठ है। यहाँ पर अर्बुद होना चाहिये। श्री दत्त महोदय ने भी अंग्रेजी अनुवाद पृ० ३६५ में अर्बुद ही माना है।

४. वही, १।१२४।४-१८

५. वही, १।८२।४ (१)

६. वही, १।८३।५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शाक्त-धर्म

साहित्य और पुरातत्व से शक्ति-उपासना की प्राचीनता परिलक्षित होती है। हरप्पा संस्कृति में भी मातृ-देवी की उपासना प्रचलित थी। मोहंजोदारो, हरप्पा और तत्कालीन संस्कृतियों के अन्य केन्दों में ऐसी मूर्तियां उपलब्ध हुई हैं जिनसे मातृ-देवी की पूजा का साक्ष्य मिलता है। लौरियानन्दनगढ़ (मुजफ्फरपुर प्रान्त, बिहार) से उपलब्ध स्वर्ण-पत्र पर रूपांकित देवी भी मातृ देवी ही मानी गयी है। इससे भी इस धर्म की प्राचीनता परिलक्षित होती है।[1]

वैदिक साहित्य से भी ज्ञात होता है कि इस युग में देवी की पूजा होती थी। परन्तु ऋक्-संहिता युग स्तुति-युग था और उस अतीत काल में देवताओं—इन्द्र, वरुण, रुद्र आदि—की महानता थीऔर देवियों का अपेक्षतया कम महत्व था। परन्तु अदिति, उषा, सरस्वती, पृथिवी और वाक् के मन्त्रों से देवियों का महत्व परिलक्षित होता है।[2] डा० बनर्जी पौराणिक शक्ति-पूजा के महत्व का आधार देवी-सूक्त और विशेषकर मार्कण्डेय पुराण के देवी माहात्म्य को बताते हैं।[3] डा० आर० एन० मेहता शक्ति-उपासना के उदय पर विचार करते हुए मानते हैं कि मातृ-देवी की उपासना का मूल पाषाण युग-नवपाषाण युग-से खोजना चाहिए।[4] गरुण पुराण से भी ज्ञात होता है कि भगवती पृथ्वी[5] की उपासना का महत्व विद्यमान था :

ॐ ह्रीं पृथिवी तद्वर्णभुवनद्वीप समुद्रदिशामननन्ताख्यमासनं पूजयामि नमः।[6]
ॐ पृथिव्यै नमः[7]

---

१. पौराणिक-तान्त्रिक रेलिजन, पृ० ११०-१११
२. वही, पृ० ११२-११३
३. वही, पृ० ११३
४. 'शक्ति कल्ट ऐन्ड तारा' (ऐडिटेड बाई डा० डी० सी० सरकार), पृ० ६४
५. गरुड़, १।१९७।२३
६. गरुड़, १।२५।६ १।२८।६ (१)
७. वही, १।३०।५; १।३३।१७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देवार्चन में विशेष कर विष्णु के साथ पृथिवी[1] का विशेष सम्बन्ध ज्ञात होता है।

पुराणों में शक्ति-उपासना के उद्भव और विकास पर प्रकाश पड़ता है जिसकी ओर आधुनिक विद्वानों का ध्यान नहीं गया है। सृष्टि के लिये ब्रह्मा ने वर्षों तक उग्र तप किया। परन्तु कुछ भी न हुआ। क्रोधावेश में उनकी आँखों से आँसुओं की बूंदें गिर पड़ीं जिनसे भूत-प्रेतों की उत्पत्ति हुई। उनको देख कर ब्रह्मा ने आत्मग्लानि से अपने प्राण दे दिये। तब प्रभु के मुख से रुद्र का जन्म हुआ। उन्होंने अर्ध नारीश्वर होकर आधे अंश से ११ रुद्रों और आधे अंश से शिवा-उमा को जन्म दिया। उमा से लक्ष्मी, दुर्गा, सरस्वती, वामा, रौद्री, महामाया, वैष्णवी, कला, विकरिणी, काली और कमलवासिनी देवी का जन्म हुआ। बलविकरिणी, बलप्रमथिनी, दमनी और मनोन्मनी का भी जन्म हुआ। तथा उनसे बहुत सी हज़ारों स्त्रियों का जन्म हुआ।[2]

वायु पुराण से भी ज्ञात होता है कि ब्रह्मा के क्रोध से एक तेजस्वी पुरुष का जन्म हुआ जिसका आधा भाग स्त्री का था और आधा भाग मनुष्य का (अर्द्धनारीनरवपुः)। उसने अपने आपको अलग-अलग स्त्री और पुरुष के रूप में विभक्त कर लिया। पुरुष भाग से एकादश रुद्रों की उत्पत्ति हुई तथा शंकर की अर्द्धांगिनी स्त्री (शंकरस्यार्द्धकायिनी) ने अपने आपको दो भागों—शुक्ल और कृष्ण—में विभक्त कर लिया। उनके निम्नलिखित नाम हैं :—

स्वाहा, स्वधा, महाविद्या, मेधा, लक्ष्मी, सरस्वती, अपर्णा, एकपर्णा, पाटला, उमा, हैमवती, षष्ठी और कल्याणी। ये संसार में गौरी के नाम से प्रसिद्ध हैं। प्रकृति, नियता, रौद्री, दुर्गा, भद्रा, प्रमाथिनी, कालरात्रि, महामाया, रेवती, भूतनायिका, गौतमी, कौशिकी, आर्या, चण्डी, कात्यायनी, सती, कुमारी, यादवी देवी, वरदा, कृष्णपिंगला, बर्हिध्वजा, शूलधरा, परमब्रह्म-चारिणी, माहेन्द्री, इन्द्रभगिनी, वृषकन्या, अपराजिता, बहुभुजा, प्रगल्भा, सिंहवाहिनी, एकानसा (एकानंशा), दैत्यहनी, माया, महिषमर्दिनी, अमोघा, विन्ध्यनिलया, विक्रान्ता, और गणनायिका। इन नामों के पाठ करने से पाठक का पराभव नहीं होता है। यह सम्पूर्ण संसार ही देवियों से व्याप्त है।[3]

पद्म पुराण से भी ज्ञात होता है कि ब्रह्मा के क्रोध से प्रचण्ड, अर्द्धनारीनर शरीर वाले रुद्र का जन्म हुआ। ब्रह्मा के कहने पर उन्होंने अपने आपको दो भागों—स्त्री रूप और पुरुष रूप—में बाँट लिया फिर उन्होंने पुरुष को ११ भागों में (११ रुद्रों) बाँट डाला। स्त्री-स्वरूप को भी :

१. गरुड़, १।३४।१९
२. लिंग, १।४१।३८-४७
३. वायु, १।९।६८-९०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१—सौम्य रूप और

२—असौम्य रूप में तथा

क—सित (गौर) रूप और

ख—असित (काले) रूप में

विभक्त किया। पुरुष स्वयं स्वायंभुव मनु प्रजापति और स्त्री शतरूपा हुई। उन दोनों से प्रियव्रत, उत्तानपाद प्रसूति और आकूति का जन्म हुआ। प्रसूति का विवाह दक्ष से हुआ और उसने २४ कन्यायों को जन्म दिया :

श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, पुष्टि, तुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि और कीर्ति। धर्म ने दाक्षायणी से ११ कन्यायें उत्पन्न की ख्याति, शान्ति, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, संनति, अनुसूया, ऊर्जा, स्वाहा और स्वधा। इन्हें ऋषियों ने पत्नी स्वरूप में ग्रहण किया।[1] इसके बाद रौद्र रूपों (रौद्राणि········रूपाणि) वाली शक्तियों का जन्म हुआ।[2]

पुराणों के इन उद्धरणों से शक्तियों की उत्पत्ति और स्वरूप पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। प्रथमत: यही दृष्टव्य है कि रुद्र के जन्म और विकास—एक, एक से आठ और फिर ग्यारह—के साथ ही साथ शक्तियों का भी उद्भव और विकास हुआ। रुद्र के नारी-अंश से ही शक्तियों का जन्म हुआ और सभी शक्तियाँ स्त्रीत्व की परिचायिका हैं। पुरुष का जीवन स्त्री के अभाव में अशक्त ही रहता है और पुरुष का अकेले मन भी रमण नहीं करता है। इसीलिये स्त्री तत्व को शक्ति की उपयुक्त संज्ञा मिली। ऊपर उद्धृत पुराणों से शक्ति का स्वरूप भी ज्ञात होता।

शक्ति के दो रूप थे :

१—शुक्ला (गौरी) या सित्

२—कृष्णा, काली या असित्

अथवा इन्हें ही कहा गया है।

१—सौम्य अथवा अघोर

२—असौम्य अथवा घोर या रौद्री

गरुड़ पुराण में भी अघोर, घोर, रौद्र (१।३८।५) और अनुग्रहा शक्तय: (१।३४।२२) का उल्लेख मिलता है। देवी के यह दोनों स्वरूप रक्षण और संहार कार्यों से सम्बन्धित थे। भक्तों पर अनुग्रह करती हुए माताएँ उनका रक्षण करती है। परन्तु दुष्ट असुरों और राक्षसों का संहार करती हैं। एक

१. पद्म, ५।३।१६३-१७९

२. वही, ५।३।१८७

दृष्टव्य, देवी भागवत, ३।१३।१३-१६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बार मातृगणों ने शंकर से कहा कि "हम सभी देवताओं, असुरों और मनुष्यों को खा डालेंगी।" शंकर ने उनसे कहा "आप लोगों से सम्पूर्ण प्रजा की रक्षा होनी चाहिये। इसलिये आप अपने मन को इस घोर कर्म से अलग हटाइये।" परन्तु शंकर के कथन की उपेक्षा करते हुए उन देवियों ने तीनों लोकों को नष्ट कर दिया। जब मातृगण ने इस घोर कर्म को कर डाला, तब शंकर ने नृसिंह देव का आवाहन किया। शिव ने उनसे कहा कि "जो माताएँ अन्धक (असुर) के विनाश के लिये उत्पन्न हुई थीं, उन्होंने सारी प्रजा का ही भक्षण कर डाला। मैं उन्हें जन्म देकर मारना नहीं चाहता।" ऐसा रुद्र के कहने पर नरसिंह ने उन रौद्र मातृ गणों का संहार कर दिया।[1] यहाँ भी मातृ-वर्ग का जन्म शंकर से ही होना कहा गया है।

इस प्रकार शक्ति के दो मुख्य रूप –सौम्य और रौद्र हैं। इससे यह भी ज्ञात होता है कि रुद्र की उपासना के साथ ही साथ शक्ति की भी पूजा होती थी। हरप्पा संस्कृति में भी पशुपति-शिव की उपासना के साथ ही मातृ-देवी की पूजा भी प्रचलित थी।

विभिन्न पुराणों से उद्धृत देवी के विभिन्न नामों से ज्ञात होता है कि देवी विभिन्न भावनाओं—श्रद्धा, क्षमा, शान्ति, प्रीति आदि—और चित्तवृत्तियों की अधिष्ठात्री शक्ति भी थी।[2]

शक्ति और देवी-भक्ति

ऋग्वेद में शक्ति के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि शक्ति से उत्पादन और वृद्धि का बोध होता है। इसी विचार ने कालान्तर में शक्ति को 'स्त्रीत्व की सर्जिका शक्ति' का अर्थ दिया जिसके अनुसार संसार की उत्पत्ति ही इसके गर्भ से हुई (सर्व प्रपञ्च जननी)। ऋग्वेद में ग्ना-सम्बन्धी स्तुतियों में ग्ना स्त्री के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। ऋग्वैदिक शचियाँ दैवी शक्तियों की प्रतिनिधि हैं। ब्राह्मणों में ग्ना देवी को वाच् से सम्बन्धित किया गया है, जिसने ऋक्, सामन् और यजुः को जन्म दिया। ऋग्वेद (१०।१००।३५) में वाच् को ब्रह्म से प्रसूत कार्य शक्ति के रूप में पाते हैं। यहाँ भी वह सम्पत्ति और संरक्षण की देने वाली है। यहाँ वह मुख्य सृष्टि-शक्ति है। इसी ने मन्त्रों को जन्म दिया जिससे आगे चलकर मातृ का शक्ति, मन्त्र-मातृ अथवा परा वाच् का विकास हुआ। उपनिषदों में वह पराशक्ति के रूप में प्रगट होती है।

महाभारत के कई स्थलों पर शक्ति उपासना के उल्लेख प्राप्त होते हैं

---

१. गरुड़, १।२२३।१-११, १९-२१

२. दृष्टव्य, पद्म पु० ५, अ० ३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(वनपर्व, ३९।४, ७२; विराट अ० ६, भीष्म, अ० २३, आदि)। उनके विविध नाम—दुर्गा, उमा, पार्वती, चण्डी, काली, महाकाली, भद्रकाली, कपाली, कात्यायनी, कृष्णा, जया, विजया, कुमारी, कराली, कौशिकी, शाकम्भरी, स्कन्दमाता, सरस्वती, सावित्री, स्वाहा, स्वधा, ब्रह्मविद्या, माया, महानिद्रा आदि प्राप्त होते हैं। पुराणों में विशेषकर मार्कण्डेय पुराण में वह शक्ति-पूजा की महा अधिष्ठात्री देवी के रूप में विख्यात है। यहाँ परमा शक्ति के रूप में देवी-माहात्म्य का वर्णन किया गया है। शाक्त तन्त्रों में दैवी शक्ति के रूप में देवी का वर्णन मिलता है। शाक्तों ने यहाँ देवी की आराधना परम् ब्रह्मस्वरूपिणी रूप में की है।[1]

सभी पुराणों में समास-व्यास रूप से देवी का माहात्म्य दिया गया है। स्कन्द पुराण के एक उपाख्यान से देवी भक्ति पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। यहाँ भीम देवी को स्त्री मान कर उनकी आराधना नहीं करना चाहते हैं। इसी विचार से कृष्ण आदि पुरुष देवों की महिमा बताते हुए देवी को हेय बताते हैं। परन्तु इस निन्दा से पराभूत भीम अपनी नेत्र ज्योति खो बैठते हैं और पुनः देवी प्रसाद से ही इसे प्राप्त करते हैं।[2] इससे देवी भक्ति की स्थापना पर प्रकाश पड़ता है। इसके विकास में एक ऐसा युग आया जब पुरुष स्त्री—चाहें वह देवी क्यों न हो—के समक्ष नतमस्तक होने के लिये तैयार न था।

ब्रह्म वैवर्त पुराण भी शाक्त-धर्म के इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है। यहाँ राधा ही परमाशक्ति हैं। सरस्वती, सावित्री, लक्ष्मी, दुर्गा, पद्मा, आदि की महिमा बताते हुए मूल प्रकृति—ईश्वरी और उसके पाँच अंगों—ईशा शक्ति, नारायणी पद्मा, सरस्वती, सावित्री और राधा—(पंचविधा देव्यः)—का वर्णन मिलता है।[3] ब्रह्म वैवर्त पुराण शक्ति शब्द की व्युत्पत्ति—व्याख्या करता है :—

ऐश्वर्यवचनः शक् च ति पराक्रमवाचकः।
तत्स्वरूपा तयोर्दात्री या सा शक्तिः प्रकीर्तिता:॥

ब्रह्म वैवर्त, २।२।१०

---

१. शक्ति कल्ट ऐण्ड तारा, एडिटेड बाई डी० सी० सरकार, पृ० १६—
जी० शास्त्री : दि कल्ट ऑफ शक्ति

२. स्कन्द पु०, १।२।६५।१३, ३६-५२

३. ब्रह्म वैवर्त, २।१।१-५९
देवी भागवत, स्कन्ध ९, अ० १-२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अर्थात् 'शक्' शब्द ऐश्वर्य का बोधक है और 'ति' शब्द पराक्रम वाचक है। अस्तु ऐश्वर्य और पराक्रम रूपधारिणी देवी को ही शक्ति कहते हैं।

वह शक्ति भग रूपा भी है। भग समृद्धि, बुद्धि, सम्पत्ति और यश की परिचायिका है। इसी से उस शक्ति को भगवती और उस (भगवती शक्ति) से संयुक्त आत्मा को भगवान् कहते हैं :

समृद्धि बुद्धि सम्पत्ति यशसां वचनो भगः।
तेन शक्तिर्भगवती भगरूपा च सा सदा ॥

ब्रह्म वैवर्त, २।२।११

तया युक्तः सदाऽऽत्मा च भगवांस्तेन कथ्यते।

वही, २।२।१२ (१)

जिस प्रकार अग्नि में दाहिका शक्ति है; चन्द्र और पद्म में शोभा है; तथा रवि में प्रभा है; उसी प्रकार वह प्रकृति आत्मा से सदा संयुक्त रहती है और उससे भिन्न नहीं है। जैसे स्वर्णकार बिना सोने के कुण्डल नहीं बना सकता और कुम्हार मिट्टी के बिना घट नहीं बना सकता है; उसी प्रकार ब्रह्मा भी शक्ति के अभाव मे सृष्टि की रचना करने में असमर्थ है। इसीलिये वह शक्ति—सर्वशक्ति स्वरूपा—है और ईश्वर उससे युक्त होकर ही शक्तिमान् कहलाता है :—

यथाऽग्नौ दाहिका चन्द्रे पद्मे शोभा प्रभा रवौ।
शश्वद्युक्ता न भिन्ना सा तथा प्रकृतिरात्मनि ॥

ब्रह्म वैवर्त, २।२।७

बिना स्वर्णं स्वर्णकारः कुण्डलं कर्तुमक्षमः।
बिना मृदा कुलालो हि घटं कर्तुं नहीश्वरः ॥

वही, २।२।८

नहि क्षमस्तथा ब्रह्मा सृष्टिं स्रष्टुं तया बिना।
सर्वशक्तिस्वरूपा सा तया स्याच्छक्तिमान्सदा ॥

वही, २।२।९

प्रकृति-व्याख्या

इसी प्रकार प्रकृति शब्द की व्याख्या करते हुए नारायण कहते हैं :

प्रकृष्टवाचकः प्रश्च कृतिः सृष्टिवाचकः।
सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता ॥

ब्रह्म वैवर्त, २।१।५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुणे प्रकृष्टसत्वे च प्रशब्दो वर्तते श्रुतौ ।
मध्यमे कृश्च रजसि तिशब्दस्तमसि स्मृतः ।।

वही, २।१।६

त्रिगुणात्मस्वरूपा या सर्वशक्तिसमन्विता ।
प्रधाना सृष्टि करणे प्रकृतिस्तेन कथ्यते ।।

वही, २।१।७

प्रथमे वर्तते प्रश्च कृतिः स्यात्सृष्टिवाचकः ।
सृष्टेराद्या च या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता ।।

वही, २।१।८

योगेनऽऽत्मा सृष्टिविधौ द्विधा रूपो बभूव सः ।
पुमांश्च दक्षिणार्धांगो वामांगः प्रकृतिः स्मृतः ।।

वही, २।१।९

सा च ब्रह्मस्वरूपा स्यान्माया नित्या सनातनी ।
यथात्मा च तथा शक्तिर्यथाग्नौ दाहिका स्मृता ।।

वही, २।१।१०

अर्थात् प्रकृति परमेश्वरी त्रिगुणात्मका है और वह परमेश्वर की सृष्टि में प्रधान सहायिका है । योग से सृष्टि करने के लिये ही उसने अपने आपको दो भागों—पुरुष और प्रकृति(स्त्री)—में विभक्त कर दिया । दाहिना भाग पुरुष और बाँया भाग प्रकृति (स्त्री) रूप हुआ । परन्तु पुराण कहता है कि योगी लोग स्त्री-पुरुष का भेद नहीं करते हैं और सभी कुछ ब्रह्ममय ही है :—

अत एव हि योगीन्द्रः स्त्रीपुंभेदं न मन्यतेः ।
सर्वं ब्रह्मञ्छश्वत्पश्यति नारद ।।

ब्रह्म वैवर्त, २।१।११

देवी भागवत पुराण में भी देवी-माहात्म्य का वर्णन मिलता है । संसार की सभी विभूतियाँ परा-शक्ति के प्रसाद ही से महत्व को प्राप्त हैं और वे सभी पराशक्ति से ही समुद्भूत भी होती हैं ।[१] इसलिये वह सच्चिदानन्दमय ब्रह्मरूपिणी हैं जिनकी आराधना की जाती है ।[२] गौरी, लक्ष्मी और सरस्वती, इन तीन देवियों से युक्त होकर तीनों देव (शिव, विष्णु, और ब्रह्मा) सृष्टि कार्य में संलग्न हो गये । एक बार ब्रह्मा से वर पाकर हालाहल दैत्य प्रबल हो गये । उन्होंने कैलास और वैकुण्ठ को घेर लिया । बड़ी कठिनता से शिव

१. देवी भा०, ७।२८।२-३
२. वही, ७।२९।१६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और विष्णु ने उन्हें मार दिया। महाशक्ति के प्रभाव से ही उन्होंने दानवों को मारा था। परन्तु उन्होंने शक्ति की उपेक्षा की। तब गौरी और लक्ष्मी को हँसी आ गई। इससे दोनों ही देवताओं को क्रोध आ गया। उसी क्षण गौरी और लक्ष्मी, दोनों ही शक्तियाँ शंकर और विष्णु से अलग होकर अन्तंधान हो गईं। शक्तियों के हटते ही वे दो प्रधान देवता शक्ति और तेज से हीन होकर विक्षिप्त और अचेत हो गये :—

ततस्ते देवते तस्मिन्क्षणे त्यक्त्वा तु तौ पुनः।
अंर्तहिते चाभवतां हाहाकारस्तदा ह्यभूत्॥

देवी भा०, ७।२९।३२

निस्तेजस्कौ च निःशक्तौ विक्षिप्तौ च विचेतनौ।
अवमानात्तयोः शक्त्योर्जातौ हरिहरौ तदा॥

वही, ७।२९।३३

इसी प्रकार देवी की अपार महिमा का वर्णन किया गया है।[१] ब्रह्मवैवर्त के ही शब्दों और भावों में पंचधा प्रकृति के स्वरूप और गुण-गौरव का वर्णन करते हुए प्रकृति शब्द की व्याख्या की गई है।[२] उसके विभिन्न नामों और चरित्रों का महत्व बताते हुए कहा गया है कि वह भारत भूमि और उसकी प्रजा पर विशेष रूप से अनुग्रह करने वाली है।

ब्रह्मादिभिरदृष्टा या सर्वैदृष्टा च भारते॥

देवी भा०, ९।१।५४ (१)

यत्पादपद्मसंस्पर्शात्सद्यः पूता वसुन्धरा।
यत्स्पर्शदर्शने चैवेच्छंति तीर्थानि शुद्धये॥

वही ९।१।६८

कल्पवृक्षस्वरूपा या भारते वृक्षरूपिणी।
भारतीनां प्रीणनाय जाता या पर देवता॥

वही, ९।१।७०

वह विश्वजननी प्रकृति ब्रह्मरूपा[३] उस समय विद्यमान थी जब विश्व में कुछ भी न था :

---

१. देवी भा०, ३।१।३१-३७; ५।२०।१-११
२. वही, ९।१।४-११
३. वही, २।७।५९ (२)—६०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यदा न वेधा न च विष्णुरीश्वरो न वासवो नैव जलाधिपस्तथा ।
न वित्तपो नैव यमश्च पावकस्तदाऽसि देवि त्वमहं नमामि ताम् ।।
जलं न वायुर्न धरा न चांबरं गुणा न तेषां च न चेंद्रियाण्यहम् ।
मनो न बुद्धिर्न च तिग्मगुः शशी तदाऽसि देवि त्वमहं नमामि ताम् ।।[१]

देवी भागवत के युग तक—लगभग ईसा की बारहवीं शताब्दी, जो गरुड़ पुराण का भी समय था—देवी भक्ति भारत भूमि में अति महत्व के साथ प्रतिष्ठित हो चुकी थी।

देवी-आराधना

पंचायतन पूजा[२] में अन्य धार्मिक सम्प्रदायों—शैव, वैष्णव, सौर, और गाणपत्य—के साथ ही साथ शाक्त सम्प्रदाय भी प्रसिद्धि पा चुका था। देवी भी दो रूपों—सगुण और निर्गुण—में आराध्य थी।[३] देवी पूजा भी अन्य देवताओं की भाँति नियम, व्रत, मंत्र और उपचारों (चंदनागुरुकर्पूरैः कुसुमैश्च सुगंधिभिः ।··· ·········पूजयेज्जगतां धात्रीं धूपैर्दीपैविधानतः, फलैर्नाना विधैरर्घ्यं प्रदातव्यं········ ···अन्नदानं प्रकर्तव्यं), भक्तिपूर्वम् होम गीतवादित्र-नृत्य, वस्त्रालंकार आदि से विधिवत की जाती है। जो मांस भक्षी है, वह पशुहिंसा कर महिष, अज, वराह आदि की बलि भी देता है[४] इस प्रकार देवी पूजा पर तांत्रिक प्रभाव प्रचुर मात्रा में पड़ चुका था।

इसी प्रकार दुर्गा पूजा महानवमी के दिन विधिवत की जाती थी।[५] गरुड़ भी महिष की बलि देने का उल्लेख करता है।[६] अन्य मातृ-देवियों—ब्रह्माणी, माहेशी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा, चण्डिका, जयन्ती, मंगला, काली, भद्रकाली, कपालिनी, दुर्गा, शिवा, क्षमा, धात्री,

---

१. देवी भा० २।७।६१-६२

२. वही, ११।१७।३५

३. वही, १।९।८६-८७ :

आराध्या परमा शक्तिः सर्वैरपि सुरासुरैः ।
नातः परतरं किंचिदधिकं भुवनत्रये ।। ८६
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं वेदशास्त्रार्थ निर्णयः ।
पूजनीया पराशक्तिर्निर्गुणा सगुणाऽथवा ।। ८७

४. वही, ३।२६।२५-३७

५. गरुड़ १।११६।६ (१), १।१३३।३-१७; १।१३५।१-२

६. वही, १।१३३।१४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वाहा, और स्वधा[1] तथा गौरी, काली, उमा, दुर्गा, भद्रा, कान्ति, सरस्वती, विजया, लक्ष्मी, शिवा और नारायणी[2] की पूजा होती थी। देवी को 'रुधिर-मांसमद्य प्रिया'[3] कहा गया है।

अष्ट शक्तियाँ

इस प्रकार स्पष्ट है कि देवियों के बहुत से नाम और रूप थे।[4] इनमें अष्ट शक्तियाँ—रुद्रचण्डा, प्रचण्ड्या, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती, चण्डरूपा और चण्डिका—दुर्गा की रक्षाशक्ति स्वरूपिणी थीं।[5] इनमें प्रचण्डता की भावना परिलक्षित होती है। आज भी महोबा (महोत्सवनगर, जो चन्देलों का राजनगर था) में विशाल चण्डिका देवी की मूर्तियों को पूजित होते हुए पाते है।

नव-शक्तियाँ (नवशक्ति शिवादि)[6]

देवी के नव (९) नाम-रूप अधिक प्रसिद्ध हैं। यह नौ देवियाँ—ब्रह्माणी, महेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्रदेवता (ऐन्द्री), चामुण्डा, चण्डिका और भैरवा—भी पूजित होती थीं।[7]

वैष्णवी शक्तियाँ—

विष्णु शक्ति की भी उपासना होती थी।[8] वैष्णवी शक्तियों में—कूर्म शक्ति[9], लक्ष्मी[10], श्री[11], तथा रुक्मिणी, सत्यभामा, सुनन्दा, नाग्नजिती, मित्रवृन्दा और जाम्बवती[12] (कृष्ण की शक्तियाँ) तथा त्रैलोक्यमोहिनी[13],

---

१. गरुड़, १।१३४।३-४
२. वही, १।३८।१-४;
३. वही, १।३८।५
४. वही, १।१२९।९; १।१९८।७-१०
५. वही, १।२४।३
६, वही, १।२५।१०
७ वही, १।२४।६
८. वही, १।२८।५ (१)
९. वही, १।२८।५ (२)
१०. वही, १।३८।३६; १।२१०।२७
११. वही, १ १२०।१
१२. वही, १।२८।१०-११
१३. वही, १।२९।१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुभद्रा[1] और गदा देवी[2] भी पूजित थीं। परन्तु इनमें सर्व श्रेष्ठा वैष्णवी (१।१३४।३) और वाराही देवियाँ (१।१९८।८।९) थीं।

शैवी-शक्तियाँ

शिव शक्ति के रूप में अमृता (१।१८।६) गौरी (१।४५।३२०१), उमा, शिवा (१।३८।२) और माहेश्वरी (१।५६।१०) या माहेशी (१।१३४।३) की पूजा होती थी।

त्रिपुरा भी शिव शक्ति ही थी जिसकी पूजा विशेष रूप से (पूर्वार्द्ध, अ० १९८) में वर्णित है। इनकी पूजा अन्य देवियों—ब्रह्माणी, माहेशी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, अपराजिता, विजया, मोहिनी, त्वरिता स्तम्भिनी, जृम्भिणी, और कालिका आदि के साथ होती थी। त्रिपुरा के साथ ही ज्वालामुखी की भी पूजा होती थी।……………ध्यान, अर्चन जप (मन्त्र जप) और होम से देवी सदैव सिद्धि देने वाली है।[3] कोशल (आधुनिक अवध प्रान्त, उत्तर प्रदेश) के गाँव-गाँव में अम्बिका देवी के मन्दिर स्थापित किये गये थे।[4] काशी राज्य में भी दुर्गा के मन्दिर बनाये गये।[5]

इस प्रकार पृथिवी पर देश-देश में देवी पूज्या बन गई और अन्त में सम्पूर्ण भारत में सभी वर्णों के लोगों द्वारा भवानी की पूजा होने लगी :

सर्वत्र भारते लोके सर्ववर्णेषु सर्वथा।
भजनीया भवानी तु सर्वेषामभवत्तदा ।।[6]

ब्राह्मी

ब्रह्मा की शक्ति ब्राह्मी या ब्रह्माणी (१।१९८।९) भी प्रसिद्ध देवी थी।

सरस्वती (१।१।२; १।१०।४; १।१८।१८; १।२८।३; १।४५।३२-१) का भी सम्बन्ध ब्रह्मा से था। इनको ही वाक्[7] और विचार से सम्बन्धित किया गया है। विद्या-सरस्वती की पूजा होती थी।[8]

इस प्रकार गरुड़ पुराण के अध्ययन से देवी भक्ति (शाक्त धर्म) पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है।

---

१. गरुड़, १।८६।१८, २६
२. वही, १।१९४।७
३. वही, १।१९८।६-१०
४. देवी भा० ३।२५ ३५-४०
५. वही, ३।२५।४१-४२
६ वही, ३।२५।४३-४४
७. वही, १।१९८।४;
ब्रह्म वै०, २।७।२ (२) :
वागधिष्ठातृ देवी सा तेन वाणी च कीर्तिता ।।
देवी भा०, ९।८।२
८. गरुड़, १।८६ २३ (१)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सौर-धर्म (सूर्यार्चनं)

प्राचीन धार्मिक सम्प्रदायों में सौरधर्म का भी एक विशेष महत्व है जो सूर्य की उपासना पर आधारित है। ब्रह्मा, शंकर, और विष्णु आदि देवताओं के साथ-साथ सूर्य की भी पूजा होती थी (गरुड़, १।५०।५८)।

सूर्य पूजा के करने से भुक्ति (अभ्युदय) और मुक्ति (निःश्रेयस) की प्राप्ति होती है। इससे चतुर्वर्ग की भी सिद्धि होती है।[1] विष्णुरूपी सूर्य को भुक्तिमुक्तिदाता कहा गया है और उनका देव पूजा में महत्व था।[2]

सन्ध्योपासना और गायत्री-जप[3] का महत्व आज भी अक्षुण्ण है। गायत्री का जप करते हुए देव-देव दिवाकर के समक्ष भूमि पर पड़ कर उपासक प्रणाम और स्तवन करे[4]।

ॐ खखोल्काय शान्ताय कारणत्रय हेतवे।
निवेदयामि चात्मानं नमस्ते ज्ञानरूपिणे ॥
गरुड़, १।५०।२७

त्वमेव ब्रह्म परममापोज्योतीरसोऽमृतम्।
भूर्भुवः स्वस्त्वमोङ्कारः सर्वो रुद्रः सनातनः ॥
वही, १।५०।२८

एतद्वै सूर्यं हृदये जप्त्वा स्तवनमुत्तमम्।
प्रातःकाले च मध्याह्ने नमस्कुर्याद्दिवाकरम् ॥
वही, १।५०।२९

उपर्युक्त स्तवन से न केवल तीनों सन्ध्यायों में—प्रायः, मध्याह्न और सायं—सूर्य की पूजा का उल्लेख मिलता है। प्रत्युत सूर्य के महत्व का भी आभास होता है। [जिन्हें परम् ब्रह्म कहा गया है]

'उदुत्यं चित्रमित्येव तच्चक्षुः' इत्यादि सौर और वैदिक मन्त्रों से गायत्री का जप करना भी महत्वपूर्ण है।[5] गायत्री मंत्र में भी सविता[6] की श्रेष्ठता

१. गरुड़, १।७।१-२
२. वही, १।३९।१-२, २०
३. वही, १।५०।२३-२४
४. वही, १।५०।२५-२६
५. वही, १।५०।४८-४९; १।२०९।८
६. वही, १।२०६।८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का प्रतिपादन किया गया है। मुनिगण उनकी स्तुतियाँ करते हैं—(स्तुवन्ति मुनयः सूर्यं), गन्धर्व उनके सामने (उनके गुणगान) गाते हैं और अप्सराएँ उनके सामने नृत्य करती हैं।[1] इस प्रकार स्पष्ट है कि सूर्योपासना भी पूजा के सभी उपचारों के साथ होती थी। इससे सूर्य भक्ति का महत्व परिलक्षित होता है।

पूजा-विधि

सूर्यमूर्ति की पूजा अन्य ग्रहों—सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु, केतु—के साथ मन्त्रों द्वारा होती थी :—

सर्यादिपूजां वक्ष्यामि धर्मकामादिकारिकाम् ॥

गरुड़ १।७।२

ॐ सूर्यासनाय नमः ॐ नमः सूर्यमूर्त्तये। ॐ ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः। ॐ सोमाय नमः। ॐ मंगलायः नमः। ॐ बुधायः नमः। ॐ बृहस्पतये नमः। ॐ शुक्राय नमः। ॐ शनैश्चराय नमः। ॐ राहवे नमः। ॐ केतवे नमः। ॐ तेजश्चण्डाय नमः ॥ वही, १।७।३

यह पूजा षोडषोपचारों—आसन, आवाहन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान वस्त्र, उपवीत, गन्ध, पुष्प, धूप, दीपक, नमस्कार, प्रदक्षिणा, विसर्जन—के साथ मन्त्रपूर्वक करनी चाहिये[2] :

पाद्यादीन् मूलमन्त्रेण दत्त्वा सूर्याय शंकर।
नैवेद्यान्ते धेनुमुद्रां दर्शयेत् साधकोत्तमः ॥

गरुड़, १।३९।१५

जप्त्वा चाष्टसहस्रन्तु तच्च तस्मै समर्पयेत्।
ऐशान्यादिषु भूतेश तेजश्चण्डन्तु पूजयेत् ॥

वही, १।३९।१६

---

१. गरुड़, १।५८।२१

२. वही, १।७।४-५ :

आसनावाहनं पाद्यमर्घ्यमाचमनं तथा।
स्नानं वस्त्रोपवीतञ्च गन्ध पुष्पञ्च धूपकम् ॥
दीपकञ्च नमस्कारं प्रदक्षिणविर्सजने।
सूर्यादीनां सदा कुर्यादिति मन्त्रैर्वृषध्वज ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ॐ तेजश्चण्डाय हुं फट स्वधा स्वाहा वौषट् ।
निर्मात्यञ्चार्पयेत्तस्मै ह्यर्घ्यं दद्यात्ततो हर ।।

वही, १।३९।१७

तिलतण्डुलसंयुक्तं रक्तचन्दन चर्चितम् ।
गन्धोदकेन संमिश्रं पुष्पधूप समन्वितम् ।।

वही, १।३६।१८

कृत्वा शिरसि तत्पात्रं जानुभ्यामवलिंगितः ।
दद्यादर्घ्यन्तु सूर्याय हृन्मन्त्रेण वृषध्वज ।।

वही, १।३६।१६

गणं गुरून्पूज्याथ सर्वान्दिवान्प्रपूजयेत् ।
ॐ गं गणपतये नमः । ॐ अं गुरुभ्यो नमः ।।
सूर्यस्य कथिता पूजा कृत्वैतां विष्णु लोकभाक् ।।

वही, १।३९।२०

पुनः अध्याय १६ और १७ (पूर्वार्द्ध) में सूर्यार्चन का वर्णन मिलता है। अध्याय १६ में सूर्यार्चन सूर्य के मूलमन्त्र के साथ सूर्य और अन्य ग्रहों के साथ किया जाता है। साथ ही भास्कर-गायत्री का जप करते हुए दिग्देवताओं की भी पूजा की जाती हैं। अन्त में सूर्य (मूर्ति) का विसर्जन भी कर दिया जाता है।[1]

सूर्य का मूलमन्त्र

'ॐ खखोल्काय नमः' यही सूर्य का मूल मन्त्र है, जिसके जप से मनुष्य भुक्ति-मुक्ति को प्राप्त करता है।

सूर्य-कवच—

इस कवच मन्त्र के जप से मनुष्य की सभी प्रकार से रक्षा होती है। अन्य देवी-देवताओं के कवच मन्त्रों की भाँति ही सूर्य-कवच भी है :—

ॐ खखोल्काय त्रिदशाय नमः। ॐ विचि ठठ शिरसे नमः। ॐ ज्ञानिने ठठ शिखायै नमः ॐ सहस्ररश्मये ठठ कवचाय नमः।[2]

१. गरुड़, १।११६।९-१९
२. वही, १।१६।१०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सूर्य का अघनाशन मन्त्र—

इस सूर्य के मन्त्र-जाप से पाप जल कर नष्ट हो जाता है। यह सूर्य का अग्नि मन्त्र है :—

ॐ सर्वतेजोऽधिपतये ठठ अस्त्राय नमः।
ॐ ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल ठठ नमः।
अग्नि प्रकार मन्त्रोऽयं सूर्यस्याघविनाशनः[1] ॥

भास्कर गायत्री

इस मन्त्र में यहाँ सूर्य का ध्यान करते हुए सूर्य की वन्दना की गयी है कि वह भक्त को (सत्कर्म की ओर) प्रेरित करे।

ॐ आदित्याय विद्महे विश्वभावाय धीमहि तन्नः सूर्यः प्रचोदयात् ॥[2]

इस गायत्री के साथ उपासक सकलीकरण क्रिया को करे। वह धर्म को पूर्व में, यम को दक्षिण में, दण्डनायक और वैश्रवण को उत्तर में, श्याम-पिंगल को उत्तर-पूर्व दिशा में, दीक्षित को दक्षिण-पूर्व में, वज्रपाणि (इन्द्र) को दक्षिण पश्चिम और भू, भुवः तथा स्वः को उत्तर पश्चिम में पूजे। इसी प्रकार चन्द्र, भौम, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु को भी पूजे। फिर चतुर्भुज सप्ताश्ववाहन भगवान् सूर्य का आवाहन कर विसर्जन करे।[3] यहाँ विसर्जन मन्त्र में सूर्य को भगवत कहा गया है :

ॐ नमो भगवते आदित्याय सहस्रकिरणाय…[4]

इससे सूर्य-भक्ति की प्रतिष्ठा परिलक्षित होती है।

अध्याय १७ (पूर्वार्द्ध) में भी सूर्यार्चन का वर्णन करते हुए अष्ट पत्र वाले पद्म के स्वरूप का चित्रण कर उसमें हरि (सूर्य) का पूजन बताया गया है। उसके मध्य भाग में खखोल्क (सूर्य) को स्थापित कर यन्त्र रूप में स्नान करायें; दक्षिण-पूर्व में (सूर्य) देव का हृदय स्थापित करे; उत्तर-पूर्व में शिर, दक्षिण-पश्चिम में शिखा, पौरन्दरी दिशा में धर्म, नेत्र को उत्तर-पश्चिम में, पश्चिम में उनके अस्त्र को, उत्तर-पूर्व में सोम, पौरन्दरी दिशा में लोहित (मंगल), दक्षिण-पूर्व में बुध, दक्षिण में बृहस्पति, दक्षिण-पश्चिम में शुक्र, पश्चिम में शनि, उत्तर-पश्चिम में केतु, और राहु को उत्तर में स्थापित करे।

---

१. गरुड़, १।१६।११
२. वही, १।१६।१२
३. वही, १।१६।१३-१९
४. वही, १।१६।१९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूसरे कक्ष में द्वादशादित्यों—भग, सूर्य, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता धाता, विवस्वान्, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र, और विष्णु—की पूजा करे। फिर पूर्वादि दिशाओं में इन्द्र और अन्य देवताओं जया, विजया, जयन्ती, अपराजिता और शेष, वासुकि, इत्यादि नागों की पूजा करे।[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि ग्रहों और द्वादशादित्यों का भी सूर्य पूजा में विशेष महत्व है। सूर्य के अतिरिक्त अन्य देवी-देवता भी पूजे जाते थे। इससे तत्कालीन देवोपासना पर भी महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है।

अध्याय ३९ (पूर्वार्द्ध) में भी सूर्य के पूजन का वर्णन किया गया है। यहां भी सूर्य और उनके सहायक देवों की उपासना के अतिरिक्त पद्म की भी उपासना का परिचय मिलता है :—

ॐ पद्माय नमः। ॐ कर्णिकायै नमः[2]।......

कालप्रिय (कालपी, उत्तर प्रदेश) में इस समय जिस कालपदेव (सूर्य) की उपासना की जाती है वह एक पद्म ही है।

नित्य प्रातःकाल और मध्याह्न में देवदेव दिवाकर का पूजन, स्तवन और जप तथा हवन करना धार्मिक कृत्य था।[3]

---

१. गरुड़, १।१७।१-९

२. वही, १।३९।४

३. वही, १।५०।२५-२९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गाणपत्य

प्राचीन भारत के धार्मिक जीवन में गणेश का विशेष महत्व रहा है। अन्य देवी-देवताओं के साथ-साथ उनकी भी पूजा होती रही है।[१] ग्रन्थ के प्रारम्भ में जिन देवताओं की वन्दना की गई है उनमें गणाधिप भी है।[२] स्वर्गदायिनी गणों की पूजा है अतः गणाधिप को पूजना चाहिये।[३] महेश्वर (शिव) के साथ गणों की पूजा होती थी।[४] कालान्तर में गणेश की पूजा पर आधारित एक पृथक् गाणपत्य सम्प्रदाय ही बन गया और छः देवों की पूजा में गणेश का भी स्थान निर्धारित हो गया :—

देवषट्कं च संपूज्य कृत्वा चाऽऽवाहनं घटे।
गणेशं च दिनेशं च वह्निं नारायणं शिवम् ॥
दुर्गां पञ्चोपचारैश्च संपूज्य व्रतमारभेत् ॥[५]

इन देवी-देवताओं की पूजा से मनुष्य शुद्ध हो जाता है।[६] गणेश की पूजा विघ्नों के नाश के लिये (गणेशं विघ्ननाशाय)[७] की जाती है। इसीलिये इनको विघ्नेश भी कहा जाता है।[८] मार्गशीर्ष (अगहन) में शुक्लपक्ष की चतुर्थी को गण की पूजा विद्या, श्री, कीर्ति, आयु, पुत्रादि की देने वाली है।[९] इसी प्रकार अन्य अवसरों (चतुर्थी विशेष रूप से) पर गणेश की पूजा का महत्व है।[१०]

---

१. गरुड़, १।१३१।१; १।१९९।१
२. वही, १।१।२
३. वही, १।२४।१ :

वक्ष्ये गणादिकाः पूजाः सर्वदाः स्वर्गदाः पराः।
गणासनं गणमूर्तिं गणाधिपतिमर्च्चयेत् ॥

४. वही, १।२४।१५
५. ब्रह्म वैवर्त, ४।२७।१२६-१२७
वही, २।४।३५-३६
६. वही, २।१०।९३
७. वही, २।१०।९४। (१)
८. गरुड़ १।४२।२ (१); १।४३।१० (१)
९. वही, १।१२९।१६
१०. वही, १।१२९।१७-१९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गणपति पूजा

अन्य देवी-देवताओं की पूजा की भाँति गणेश-पूजा भी उपचारों के साथ होती है। गणेश की पूजा में भी व्रत, होम, मन्त्र, और जप आदि का महत्व है। अन्य देवताओं की भांति गरुड़ में गणेश-गायत्री का भी महत्व प्राप्त होता है।

माघ के शुक्लपक्ष में चतुर्थी के दिन व्रत का विशेष महत्व है। मूल मन्त्र :—

ॐ गः स्वाहा। ग्लौं ग्लां हृदये गां गीं गूं ह्रूं ह्रीं शिरः शिखा।
गूं वर्म गोञ्च गौं नेत्रं गोञ्च आवाहनादिषु ।।

गरुड़, १।१२९।११

आगच्छोल्काय गन्धोल्कः पुष्पोल्क धूपकोल्ककः।
दीपोल्काय महोल्काय बलिञ्चाथ विसर्जनम् ।।

वही, १।१२९ (१२)

सिद्धोल्काय च गायत्री न्यासोऽगुष्ठादि रीरितः ।।

वही, १।१२९।१३ (१)

इस प्रकार मूल मन्त्र का जप तथा षडंगन्यास भी किया जाता है। पुनः गणपति-गायत्री का जप किया जाता है—

ॐ महाकर्णाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ।।

गरुड़, १।१२९।१३ (२)

दृष्टव्य, अग्नि पुराण, १७९।४

यहाँ गणपति के नाम—महाकर्ण, वक्रतुण्ड, और दन्ती—दृष्टव्य हैं।

गणों की तिल होम आदि से भी पूजा करनी चाहिए :—

पूजयेत्तिलहोमैश्च एते पूज्या गणास्तथा।
गणाय गणपतये स्वाहा कूष्माण्डकाय च ।।
अमोघोल्कायैकदन्ताय त्रिपुरान्तकरूपिणे ।।

गरुड़ १।१२९।१४

इस प्रकार हँसते हुए, ताल देकर नाचते हुए पुजा करने से महाफल प्राप्त होता है :—

ॐ श्यामदन्त विकरालास्याहवेशाय वै नमः।
पद्मदंष्ट्राय स्वाहान्तमुद्रा वै नर्त्तनं गणे ।।
हस्ततालञ्च हसनं सौभाग्यादिफलं भवेत् ।।

गरुड़, १।१२९।१५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शुक्ल पक्ष की चतुर्थी को और विशेषकर मार्गशीर्ष (अगहन) की शुक्ल चतुर्थी, अथवा सोमवार-चतुर्थी को गणेश का पूजन खण्ड-लड्डुओं (मोदकों) से करने पर सभी इच्छाओं की पूर्ति होती है। इसी प्रकार मदन चतुर्थी के दिन मदनकों से पूजा करने पर भी पुत्रादिकों की प्राप्ति होती है। किसी भी मास की चतुर्थी के दिन विघ्ननाशक—गणपति की पूजा-वन्दना—ॐ गणपतये नमः—से सभी इच्छाओं की पूर्ति होती है।[1] इसी प्रकार विनायक की मूर्ति की पूजा करते हुए उनके नामों का कीर्तन करे तो वह सद्गति और स्वर्ग तथा मोक्ष को प्राप्त करता है।[2] उनके ये १२ नाम निम्नलिखित हैं :—

गणपूज्य, एकदन्ती, वक्रतुण्ड, त्र्यम्बक, नीलग्रीव, लम्बोदर, विकट, विघ्नराज, धूम्रवर्ण, बालचन्द्र (विनायक) गणपति और हस्तिमुख।[3] इन नामों का विवेचन गणपति के महत्व तथा उनके स्वरूप (प्रतिमा) के लक्षणों का परिचायक है। कुछ नामों का महत्व दृष्टव्य है :—

गण-पूज्य—

गणपति या गणाधिपति (गणों के अधिपति) होने से, स्वभावतः, वह गण-पूज्य थे और इसी दृष्टिकोण से उनकी यह संज्ञा भी सोद्देश्य सार्थक है।

नारदीय महापुराण (पूर्वार्द्ध) अ० ६८ में महागणपति की प्रसन्नता के लिये गणेश मन्त्रों का वर्णन किया गया है। यहाँ भी हमको षडंग न्यास और मूल गायत्री (१।६८।३-१६), ध्यानरूप (१।६८।१७) और गणेश पूजा का वर्णन मिलता है (१।६८।१९-३५)। यहाँ भी वक्रतुंड, एकदंष्ट्र, महोदर, गजास्य, लम्बोदर, विकट, विघ्नराट् और धूम्रवर्ण (१।६८।७१-७२) नाम मिलते हैं। अग्नि पु० (३०१।४) भी दृष्टव्य है।

त्र्यम्बक

त्र्यम्बक शब्द का उल्लेख ऋग्वेद में (त्र्यम्बकम् यजामहे सुगन्धिं पुष्टि-वर्धनम्, ७।५९।१२) मिलता है। इस पर सायण का भाष्य है :

---

१. गरुड़, १२९।१६-१९

२. वही, १।१२९।२०

३. वही, १।१२९।२१-२२ :

गणपूज्य एकदन्ती वक्रतुण्डश्च त्र्यम्बकः।
नीलग्रीवी लम्बोदरो विकटो विघ्नराजकः॥
धूम्रवर्णो बालचन्द्रो दशमस्तु विनायकः॥२१
गणपतिर्हस्तिमुखो द्वादश वै यजेद्गणम्।
पृथक् समस्तं मेधावी सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥२२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"त्र्यम्बकं, त्रयाणां ब्रह्मविष्णुरुद्राणाम् अम्बकं पितरं यजामहे। सुगन्धिं प्रसादितकीर्तिम्। पुष्टिवर्धनं जगद्बीजम्। उरुशक्तिमित्यर्थः। उपासकस्य वर्धनमणिमादि शक्तिवर्धनम्।"

त्र्यम्बक को रुद्र भी माना गया है। ऋग्वेद में ही गणपति की स्तुति की गयी है :—

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे

"गणेश के जिस विशिष्ट रूप का वर्णन पुराणों में उपलब्ध होता है उसका आभास वैदिक ऋचाओं में स्पष्ट रीति से मिलता है। निम्नलिखित मन्त्रों में गणपति को 'महाहस्ती', 'एकदन्त', 'वक्रतुण्ड' तथा 'दन्ती' कहा गया है—

आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्रामं संगृभाय।
महाहस्ती दक्षिणेन।
एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि।
तन्नो 'दन्ती' प्रचोदयात्॥[1]

एकदन्त नाम से "स्पष्ट है कि गणपति साक्षात् सृष्टि के लिये माया की प्रेरणा करने वाले जगदाधार समस्त सत्ता के आधारभूत परम ब्रह्म के ही अभिव्यक्त रूप हैं।............गणेश का दूसरा नाम 'वक्रतुण्ड' है। इससे भी ऊपर के सिद्धान्त की सिद्धि होती है।"[2]

इसी प्रकार 'नीलग्रीव' नाम प्रायः नीलकण्ठ शिव के लिये प्रयुक्त किया जाता है। यहाँ पर गणेश का यह नाम भी उनके महत्व का परिचायक है।

गजास्य (हस्तिमुख) गण की मूर्ति को प्रासाद में स्थापित कर पूजा जाता था।[3] प्रासादों, देवालयों और मठों में भी बाहर की ओर वास्तु पूजा के लिये गणाधिप की मूर्ति स्थापित की जाती थी।[4] आज भी प्राचीन मन्दिरों में गणेश की प्रतिमाओं को प्रतिष्ठित पाते हैं।

गया में भी 'गण' और 'विघ्नेश' की पूजा अन्य देवी-देवताओं के साथ की जाती थी।[5] इस प्रकार स्पष्ट है कि तत्कालीन धार्मिक जीवन में गणेशपूजा का पर्याप्त विकास हो चुका था।

---

१. पु० वि०, पृ० ४८१-४८२
२. वही, पृ० ४८४
३. गरुड़, १।४५।३३
४. वही, १।४६।६
५. वही, १।८६।१९-२० (१)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उमा-महेश्वर

शिव-शिवा की भी उमा-महेश्वर रूप में पूजा होती थी ।[1] उदय गिरि (मध्य प्रदेश, विदिशा के निकट) के शिखर पर शिव-पार्वती और उनके परिवार को मूर्त रूप में पाते हैं (चित्र १) । मुंडियार [सैदपुर और भिटरी, (प्रान्त गाजीपुर) के बीच सड़क पर स्थित एक गाँव] में भी उमा महेश्वर की सुन्दर मूर्ति (चित्र २) प्राप्त होती हैं । इसी प्रकार एलोरा की कला में शिव-पार्वती के उत्कृष्ट मूर्त रूप (चित्र ३) मिलते हैं । संस्कृत साहित्य में भी कवियों ने भी शिव-शिवा की वन्दना की हैं (मुद्राराक्षस, अंक १, श्लोक १)।

१. गरुड़ १।१२०।११ (१); १।१२९।५ (२);

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रह्म पूजा

ग्रन्थारम्भ की देव-स्तुति में हरि और रुद्र के साथ ही ब्रह्मा का भी स्तवन किया गया है।[1] इससे यही ज्ञात होता है कि ब्राह्मण त्रिदेव-त्रिमूर्ति में ब्रह्मा का महत्वपूर्ण स्थान था। उन्हें पितामह[2] कहा गया है जो उनके पुरातन स्वरूप का परिचायक है। चर्तुमुख ब्रह्मा रजोगुण प्रधान होकर शरीर धारण करते तथा सम्पूर्ण चराचर की सृष्टि करते हैं।[3]

उनकी मूर्तियाँ भी बनती थी जिससे सिद्ध होता है कि ब्रह्मा की भी पूजा प्रचलित थी।[4] चैत्रादि में गन्ध, पुष्पार्चन, दान, निर्माल्य होम आदि से ब्रह्म-देव की पूजा की जाती थी।[5] पुष्कर राजस्थान में ब्रह्मा का प्रसिद्ध मन्दिर है।

त्रिमूर्ति

पौराणिक धर्म के प्रमुख आराध्य तीन देवता—ब्रह्मा, विष्णु और महेश—थे। गरुड़ पुराण के अनुसार विष्णु ही ब्रह्मा बन कर सृष्टि करते हैं और स्वयं हरि उसका पालन करते हैं। रुद्र रूप से वही प्रभु संसार का संहार भी करते हैं।[6] इससे इन तीनों देवताओं की अभिन्नता परिलक्षित होती है। विद्वान व्यक्ति को इन देवताओं में भेद नहीं करना चाहिये (ब्रह्मविष्णुशिवान् देवान्न पृथग्भावयेत्सुधीः)।[7] तीनों ही संसार के कारण मात्र हैं और तीनों देवताओं की एक ही मूर्ति के त्रिगुणस्वरूप हैं :

एकामूर्तिस्त्रयोदेवा ब्रह्मविष्णु महेश्वराः।
रजः सत्त्वतमोभिश्च संयुताः कार्यकारकाः॥

देवी भा०, १।८।४

एलिफ़ैन्टा की त्रिमूर्ति अपनी भव्यता और गरिमा के लिये विश्व-विश्रुत है।

---

१. गरुड़, १।१।२
२. वही, १।२।१३
३. वही, १।४।९
४. वही, १।४५।३१-३३
५. वही, १।१२९।२
६. वही, १।४।११
७. वही, १।२०५।७४ (१)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कार्तिकेय-उपासना

ब्राह्मण देव-परिवार में कार्तिकेय का भी महत्वपूर्ण स्थान है, यद्यपि वे दौड़ में गणेश से पीछे रह गये। कार्तिकेय-उपासना किसी सम्प्रदाय को जन्म न दे सकी, जैसा कि गणेश-पूजकों का गाणपत्य सम्प्रदाय बना। साहित्यिक और पुरातत्त्व परक साक्ष्यों से सिद्ध होता है कि ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में ही कार्तिकेय की उपासना उनके विभिन्न नामों द्वारा होती थी।

पाणिनीय सूत्रों में उल्लिखित 'स्कन्दक'—स्कन्द (कार्तिकेय) की मूर्ति—और पतञ्जलि के महाभाष्य में वर्णित स्कन्द और विशाख[२] सिद्ध करते हैं कि धार्मिक जीवन में स्कन्द का प्रवेश हो चुका था। इन की मूर्तियों के बनने के पीछे भक्ति भावना निहित है। प्रो० डी० आर० भन्डार्कर के अनुसार प्राचीन समय में स्कन्द, कुमार, विशाख और महासेन चार देवताओं के नाम थे। उनका यह मत हुविष्क के सिक्कों पर इनके मूर्त रूपों और उल्लिखित नामों पर आधारित हैं।[३] परन्तु पुराणों में ये सब नाम एक ही देवता कार्तिकेय को दिये गये हैं। प्रो० बनर्जी भी स्कन्द और विशाख को कुछ विभिन्न लक्षणों के परिचायक मानते हैं।[४] यौधेयों के देव कार्तिकेय ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों से लेकर ईसा की नवीं और दसवीं शताब्दी तक उपास्य बने रहे, जैसा कि सोमदेव सूरी ने अपने यशस्तिलक काव्य में वर्णन किया है।[५] इसलिये यह मत कि गुप्त युग के बाद उत्तरी भारत में स्कन्द-कार्तिकेय की उपासना का पृथक अस्तित्व नहीं रहा[६], अमान्य ही है। इनकी स्वतन्त्र मूर्तियाँ भी उपलब्ध होती हैं और पुराणों में भी इनकी उपासना के प्रचुर प्रमाण मिलते हैं। कुछ पुराणों—विष्णु धर्मोत्तर आदि—में गणेश की भाँति स्कन्द को भी विष्णु का अवतार मान लिया गया।[७]

---

१. पा० भा०, पृ० ३५७, ३५८
२. इ० प०, पृ० १८२
३. वही, पृ० १८२-१८३
४. पौ० ता० रे०, पृ० १४७
५. यौधेयों का इतिहास, पृ० ६
६. पौ० ता० रे०, पृ० १५०
७. वि०ध०, ३।७१।७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गरुड़ पुराण जगत की रक्षा करने के लिये जिस वासुदेव रूपी कुमार का उल्लेख करता है, वह कुमार कार्तिकेय ही हैं :—

जगतो रक्षणार्थाय वासुदेवोऽजरोऽमरः ।
स कुमारादि रूपेण अवतारान् करोत्यजः ।।

गरुड़, १।१।१३

विष्णुधर्मोत्तर भी यही कहता है :

चतुरात्मा हि भगवान्वासुदेवः सनातनः ।
प्रादुर्भूतः कुमारस्तु देवसेना निनीषया ।।

वि० ध०, ३।७१।७

कुमार के यह चार रूप, कुमार, स्कन्द, विशाख और गुह हैं ।[१] इस प्रकार ईसा की सातवीं शताब्दी और उसके बाद कुमार (कार्तिकेय) का महत्व बहुत बढ़ गया था ।

गरुड़ पुराण के अनुसार अग्नि के पुत्र कुमार थे और कुमार से शाख, विशाख, नैगमेय और पृष्ठत थे; तथा कृत्तिकाओं के पुत्र कार्तिकेय थे ।[२] षण्मुख (छः मुँह वाले) स्कन्द की प्रासाद में स्थापना और पूजा प्रचलित थी । इनकी पूजा से मनुष्य चर्तुवर्ग की प्राप्ति करता था ।[3] स्कन्द और विशाख को बलि भी दी जाती थी ।[४] इससे तान्त्रिक प्रभाव परिलक्षित होता है ।

भादों (भाद्रपद) के मास में कार्तिकेय की पूजा होती थी ।[५] इसी प्रकार

---

१. वि० ध० ३।७१।३, डा० प्रियबाला शाह, विष्णुधर्मोत्तर पृ० १५१ :

"Vāsudeva having four hands became Kumāra in order to lead the army of gods."

यहाँ पर चार भुजाओं का उल्लेख वैंकटेश्वर प्रेस के विष्णुधर्मोत्तर में नहीं मिलता है ।

२. गरुड़, १।६।३३ :

अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे व्यजायत् ।
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठतः ।।
अपत्यं कृतिकानां तु कार्तिकेय इति स्मृतः ।।

३. गरड़, १।४५।३३

४. वही, १।१३४।२ :

तस्याग्रतो नृपः स्नायाच्छक्रं कृत्वा तु पैष्टकम् ।
खड्गेन घातयित्वा तु दद्यात्स्कन्दविशाखयोः ।।

५. वही, १।१३०।१ (१)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्रत रखते हुए षष्ठी की तिथि में भी कार्तिकेय की पूजा अर्थ प्रदान करती है ।[१] गया में भी कार्तिकेय की पूजा का महत्व था ।[२]

पुण्ड्रवर्धन (महास्थान, उत्तरी बंगाल) में कार्तिकेय का मन्दिर था (पुण्ड्रवर्धनकं तीर्थं कार्तिकेयश्च यत्र च)[३] । कार्तिकेय नाम का एक तीर्थ भी था ।[४]

द्वारदेवता

जिनकी पूजा से भुक्ति और मुक्ति की प्राप्ति होती है उनमें द्वारस्थ-धाता, विधाता, गंगा, यमुना, द्वार श्री, दण्ड प्रचंड, वास्तुपुरुष, कूर्म, अनन्त, भूमि, धर्म, दुर्गा, गण, सरस्वती आदि देवी देवताओं और आयुधों की पूजा होती थी ।[५] बहुत से अन्य देवता भी थे जिनकी पूजा प्रचलित थी । सम्पूर्ण मन्दिर का वाह्यांग और द्वार देवी-देवताओं के रूपों से अभिमंडित किये जाते थे (चित्र ४) इनमें द्वार-देवताओं का विशेष स्थान था । गरुड़ पुराण के अध्ययन से इन द्वार देवताओं की महिमा पर प्रकाश पड़ता है :

द्वारे धाता विधाता च गंगा यमुनया सह ।।

गरुड़, १।२८।१

शंखपद्मनिधी चैव शारङ्गः शरभः श्रिया ।
पूर्वे भद्रः सुभद्रो द्वौ दक्षौ चण्डप्रचण्डकौ ।।

वही, १।२८।२

पश्चिमे बल प्रबलौ जयश्च विजयो यजेत् ।
उत्तरे श्रीश्चर्तुद्वारे गणो दुर्गा सरस्वती ।।

वही, १।२८।३

इसी प्रकार दूसरी जगह बताया गया है :—

द्वारे नन्दिमहाकालौ गंगा च यमुनाऽथ गीः ।
श्रीवत्सं वास्त्वधिपतिं ब्रह्माणञ्च गणं गुरुम् ।।

गरुड़, १।२३।१४

---

१. गरुड़, १।११६।५ (२)
२. वही, १।८६।२० (२)
३. वही, १।८१।१५ (३)
४. वही, १।८१।९ (१)
५. वही, १।१२६।१-१०
दिक्पालों की भी पूजा होती थी (गरुड़, १।४८।१८-२०) ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शक्तचनन्तौ यजेन्मध्ये पूर्वादौ धर्मादिकम् ।
अधर्माद्यञ्च वह्न्यादौ मध्ये पद्मस्य कर्णिके ।।
वामा ज्येष्ठा च पूर्वादौ रौद्री काली शिवा सिता ।।

वही, १।२३।१५

ऊपर शिवालय के द्वार पर शिव परिवार के देवताओं की प्रतिष्ठा का उल्लेख है।

विष्णु-पूजा में विष्णु परिवार का वर्णन मिलता है (गरुड़, १।३१।१४; १।३४।१७-१९) इस प्रकार प्रासादों में विभिन्न दिशाओं में द्वारपालों को स्थापित किया जाता था (गरुड़, १।४७।४१) और प्रासादों में देवताओं को स्थापित कर उनकी पूजा होती थी। गरुड़ के अनुसार वासुदेव ही परम पूज्य देवता थे (१।४७।४३)।

गरुड़-उपासना

(वैनतेयाय नमः, गरुड़, १।१७२।१९)

सर्वकार्यार्थं सिद्धयर्थं पातु मां गरुड़ सदा।

गरुड़, १।१९४।९ (२)

वासुदेव भक्त गरुड़ स्वयं भगवान् के प्रसाद से उपास्य बन गये थे। भगवान् ने उनको अपना वाहन स्वीकार करते हुए कहा कि उनकी (भगवान) तरह गरुड़ भी कीर्तनीय होगा :

यथाहं कीर्त्तनीयोऽथ तथा त्वं गरुड़ात्मना ।[1]

गरुड़ पुराण में सब कुछ गरुड़ भगवान ही है :

पुराणे गारुड़े सर्वं गरुड़ो भगवानथ ।[2]

गरुड़ ही हरि हैं (गरुड़ः स हरिः) ।[3] उनके दर्शन और स्मरण से ही नागादिकों का नाश हो जाता है।[4] सभी कार्यों में सिद्धि को देने वाले गरुड़ हैं (एष साक्षाद्भुवेत्ताक्ष्यः सर्वकर्म प्रसाधकः) ।[5] उनका ध्यान करना चाहिये विशेष कर नागों और विष से बचने के लिये (ताक्ष्यं ध्यायेत् ततो नित्यं) ।[6]

१. गरुड़, १।२।५४ (१)
२. वही, १।३।४
३. वही, १।३।७
४. वही, १।३।६
५. वही, १।१९७।१९
६. वही, १।१९७।२९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वारस्थ देव गणों में भी स्थापित गरुड़ पूज्य थे (गरुड़ं पूजयेदग्रे) ।[१] लिंग पुराण में घोर आसुर भाव और नागों को नष्ट करने वाले ग्यारह गरुड़ों की स्तुति की गयी हैं ।[२] सत्यत: राष्ट्र आसुरी नागों से आक्रान्त था और नाग-भय से मुक्त करने वाले गरुड़ ही थे । उनकी सुन्दर प्रतिमायें भी बनती थीं (चित्र ५) ।

नाग-यक्ष पूजा

नागों और यक्षों की भी पूजा होती थी । वासुकि, तक्षक, कालीय, मणिभद्रक, ऐरावत, धृतराष्ट्र, कर्कोटक, धनञ्जय—अथवा, अनन्त, वासुकि, शंख, पद्म, कम्बल, कर्कोटक, धृतराष्ट्र आदि नागों की पूजा की जाती थी ।[३] विष्णु के अवतारों में ही नाग का भी उल्लेख किया गया है कि वह उपासक को क्रोध से बचावे (नाग: क्रोधवशात् किल)[४] । ऊपर उल्लिखित मणिभद्र विशेष रूप से दृष्टव्य है क्योंकि प्राचीन नाग-यक्ष उपासना पद्धति में मणिभद्र यक्ष का नाम अति प्रसिद्ध है । गरुड़ के अध्ययन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि इस युग में भी जब तान्त्रिक विचारों का प्रभाव सभी धर्मों पर पड़ चुका था, यक्ष पूजा प्रचलित थी और रोगों से बचने के लिये उपासना-मन्त्रों में महायक्ष का भी विशेष स्थान था :

ॐ नम: खड्गवज्रपाणये महायक्षसेनापतये स्वाहा ।[५]

देवी भागवत पुराण (१२।८।१९-४६) में यक्ष के तेज और बल से अभिभूत अग्नि, वायु और इन्द्र के पराभव का सुन्दर वर्णन मिलता है । यहाँ यह यक्ष-रूप जगदम्बिका देवी का ही रूप था ।[६]

सिद्धाश्रम (बक्सर, बिहार प्रदेश) में विश्वामित्र की यज्ञ की रक्षा करते हुए राम ने ताड़का नामक यक्षी का वध किया था ।[७] अत: ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में बिहार प्रदेश में यक्षों और यक्षिणियों की प्रधानता थी । रामायण में इन्हें राक्षस, दुराचारी और पापी कहा गया है ।[८] ये यज्ञ

---

१. गरुड़, १।३४।१८ (२)

२. लिंग १।८२।६२-६४

३. गरुड़, १।१२९।२३-२८

४. वही, १।१९६।१०; यहाँ यह नाग विष्णु के अनन्त स्वरूप का परिचायक है ।

५. वही, १।७८।१० (१)

६. देवी, भा०, १२।८।१९

७. गरुड़, १।१४३।५

८. बालकांड, ३०।२१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विरोधी थे। बिहार प्रदेश से प्राचीन यक्ष और यक्षिणियों की मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं (अग्रवाल, स्टो०इ०आ०, पृ० १०९-११८)।

शिलार्चन (पाषाण-पूजा)

वासुदेव-विष्णु की पूजा चक्रान्वित शिला रूप में होती थी।[1] यही शालग्राम-शिला थी जिसके स्पर्श मात्र से पापों का नाश होता है।[2] शालग्राम शिलाएँ गंडकी नदी में पाये जाने वाले पवित्र पत्थर होते थे। शालग्राम-शिला में ही विष्णु की चौबिस मूर्तियों की कल्पना कर पूजा की जाती थी। इसी प्रकार द्वारका शिला में हरि की प्रतीकोपासना प्रचलित थी।[3]

१. गरुड़, १।६६।१
२. वही, १।४५।१
३. वही, १।४४।१३-१४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनशन–प्राणत्याग

यह देश अति विचित्र है जहाँ भगवान् पर विश्वास करते हुए तथा उसका स्मरण करते हुए प्राणी अपने प्राणों को त्याग देता रहा है। इस प्रकार प्राण-त्याग भी एक धर्म बन गया और यह धर्म पूर्व मध्य युग में विशेष रूप से प्रचलित था। प्रतिहार सम्राट नागभट द्वितीय और राष्ट्रकूट शासक अमोघ वर्ष प्रथम तथा चन्देल शासक धंग ने इसी रीति से अपने प्राणों को उत्सर्ग किया। स्कन्द पुराण में इसका विशेष वर्णन मिलता है।

गरुड़ पुराण भी प्रायश्चित्त विधि का वर्णन करते हुए इसका उल्लेख करता है :—

> कुर्यादनशनं वाथ भृगोः पतनमेव च।
> ज्वलन्तं वा विशेदग्नि जलं वा प्रविशेत्स्वयम् ॥

गरुड़, १।५२।३

अनशन, भृगुतुंग (पर्वत) की चोटी से गिरना, अग्नि-प्रवेश अथवा जल प्रवेश स्वयं ही करे।

अनशन को महान् तप (तपो नानशनात्परम्)[1] कहा गया है। देह त्याग से भी उपासक सद्गति को प्राप्त करता है (आदेहपतनाद्देवि तेऽपि यास्यन्ति सद्गतिं)[2]। राजा चित्रसेन त्रिमूर्ति का ध्यान करता हुआ भृगुतुंग से गिर कर प्राण देना चाहता था।[3] वह देव-भक्ति में लीन होकर प्राण त्याग विधि से जीवन का अन्त करना चाहता था।[4] इसे ही अनशन कहते थे। योगाग्नि से भी शरीर को भस्म कर दिया जाता था।[5]

---

१. गरुड़, १।२२२।११ (१); स्कन्द, २।१।१७।१९
दृष्टव्य, यू०एन० घोषाल, स्ट०इ०हि०क०, पृ० ४७९-४८६, अ० १५
के० सी० चट्टोपाध्याय, जर्नल यू० पी० हिस्टॉरिकल सोसाइटी, अंक १०, (पुराना सं०) पृ० ६५-७६

२. स्कन्द, ५।३।४।३७

३. वही, ५।३।५५।१-३

४. वही, ५,३।१८४।२५

५. गरुड़, १।२२२।१४-१७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गरुड़ भी अनशन विधि का महत्व और स्वरूप बताता है :

कस्मादनशनं पुण्यमक्षयं गतिदायकम् ।
स्वगृहन्तु परित्यज्य तीर्थे वै म्रियते तु यः ॥

गरुड़, २।२६।१

किस प्रकार अनशन अत्यन्त पुण्य कर्म है जो सद्‌गति को देने वाला है । भगवान् स्वयं कहते हैं :—

कृत्वा निरशनं यो वै मृत्युमाप्नोति कोऽपि चेत् ।
मानुषीं तनुमुत्सृज्य मया तुल्यो विराजते ॥

गरुड़, २।२६।५

जो अनशन करके मर जाता है, वह भगवान् से सायुज्य को प्राप्त करता है ।

जो भी सन्यास भाव से तीर्थ या घर में मरता है, उसकी भी वही उत्तम गति होती है । जो रोगी अनशन करके मरता है, वह पुनः जन्म लेने पर रोगी नहीं होता है । अतः अनशन मनुष्यों को वैकुण्ठ देने वाला है और स्वस्थावस्था में ही देह से (देहत्याग द्वारा) मनुष्य मोक्ष को प्राप्त करे :—

तस्मानशनं नृणां वैकुण्ठपददायकम् ।
स्वस्थावस्थेन देहेन साधनं मोक्षलक्षणम् ॥

गरुड़, २।२६।१२

तीर्थ में अनशन-व्रत द्वारा प्राण त्याग का विशेष महत्व है ।[1]

१. गरुड़, २।२६।१४-२४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नास्तिक सम्प्रदाय

नास्तिक (नास्तिकः क्षुद्रः)[१] की निन्दा की गयी है। यह सत्य भी है क्योंकि नास्तिक धर्म-हीन (धर्मवर्जितः) और अधर्म करने वाला था जैसा कि वेण था।[२]

पाषण्डों को भी नास्तिक माना गया है। पाषण्डों ने वेदों को दूषित कर दिया था[३] और पाषाण्डों के प्रभाव के कारण ही लोग विष्णु को भी (कलि-युग में) नहीं पूजते हैं।[४] यह लोग, 'दम्भ हेतुकपाषण्डिवक[५]' वृत्ति वाले भी कहे गये हैं। यहाँ 'हेतुक' (तार्किक) बौद्धों का परिचायक है। इन्हें हेतुवादी या सर्वास्तिवादी भी कहा गया है।[६] यह बौद्धों का एक सम्प्रदाय था।[७] इन पाषण्डिक वृत्तियों को वर्ज्य बताया गया है। इसलिये पाषण्डियों को पतित कहा गया है। इसी प्रकार दिगम्बरों को भी दुराचारी और सभी देवताओं की निन्दा करने वाला कहा गया है (दिगम्बरा दुराचारा सर्वदेवावनिन्दकाः)[८]। गरुड़ पुराण में 'लोकायतं कुतर्कञ्च प्राकृतं म्लेच्छभाषितम्' को सुनने से वर्जित किया गया है। ये सभी नास्तिक सम्प्रदायों से सम्बन्धित शास्त्र ही हैं जिनके सुनने या पढ़ने से द्विज अधोगति को प्राप्त करता है।[९] इस प्रकार स्पष्ट है कि गरुड़ पुराण नास्तिक सम्प्रदायों—बौद्ध, जैन, और चार्वाक तथा नास्तिक-म्लेच्छों के प्रभाव और प्राबल्य से ब्राह्मण धर्म और संस्कृति को बचाना चाहता था। ये उस समय बहुत ही प्रबल थे :—

कृतघ्ना नास्तिका रौद्रास्तथा साहसिकाः शठाः।[१०]

सिन्धु देश में भी बसे हुए साहसिक, शठ और रौद्र नास्तिकों को ही

१. गरुड़, २।३५।१९ (१)
२. वही, १।६।५
३. वही, १।२१५।२८ (२)
४. वही, १।२१५।३५
५. वही, १।९६।३५ (३)
६. दासगुप्त, हि० इ० फि०, भाग १, पृ० ११२
७. कीथ, बु० फि०, पृ० १५०; २८५, नोट ३
८. गरुड़, १।३४।१३ (१)
९. वही, १।९८।१७
१०. वही, २।१७।३७ (१)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"सैन्धवा म्लेच्छा नास्तिका यवनास्तथा"[१] कहा गया है। ये नास्तिक अरब विजेता ही थे जिन्हें अभिलेखों में ताजिक कहा गया है। इन ताजिकों ने सम्पूर्ण देश में दुःख-दावाग्नि को फैला दिया था।[२] इनके धर्म को ही गरुड़ पुराण में दैत्यधर्म भी कहा गया है। विष्णु को भी दैत्यधर्म के विनाश और वेदधर्मादि की रक्षा के लिये अवतरित होना पड़ा था।[३] पूर्वमध्य युग के अभिलेखों में भी असुरों और दैत्यों का उल्लेख मिलता है।[४] मध्य देश में होने वाले देवासुर संग्राम का वर्णन किया गया है। यहाँ पर उल्लिखित दैत्यों की पहचान 'मुक्तकच्छशिखाविहीन'[५] तुरुष्कों से की जा सकती है। अस्तु तत्कालीन आक्रमणकारी म्लेच्छ-तुरुष्कों के म्लेच्छ धर्म (तुलना कीजिये, म्लेच्छभाषितम्) को ही दैत्यधर्म भी कहा गया है जो वेद-धर्म को नष्ट कर देना चाहता था।

बौद्ध धर्म

गरुड़ पुराण में 'शाक्य, शुद्धोदन और बाहुल'[६] का उल्लेख मिलता है। ये तीनों ही राजा गौतम (बुद्ध) से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं। शाक्य के पुत्र शुद्धोदन ही सिद्धार्थ (गौतम बुद्ध) के पिता थे और राहुल (यहाँ गरुड़ का पाठ बाहुल का शुद्ध पाठ राहुल ही है) बुद्ध के पुत्र का नाम था।[७] गरुड़ पुराण ने इस राजवंशावली में सिद्धार्थ का नाम नहीं दिया है। यह सत्य ही है। सिद्धार्थ ने राज्य त्याग कर दिया था और शुद्धोदन के बाद राहुल ही राजा हुआ।

बुद्ध

यह शाक्यवंशीय शुद्धोदन-सुत सिद्धार्थ ही बौद्धधर्म के प्रवर्तक बने और इतिहास उन्हें बुद्ध के नाम से जानता है। इन्हें ब्राह्मण धर्म ने विष्णु के अवतार स्वरूप में स्वीकार कर लिया था।[८] परन्तु राम, कृष्ण, धन्वन्तरि आदि विष्णु के अवतारों का यहाँ विशेष वर्णन मिलता है जब कि किसी भी

---

१. गरुड़, १।५५।१५ (१)
२ वही, १।१४२।१
३. कार्पस इन्सक्रिप्शनम इन्डिकेरम, भाग ४, पृ० ९९
४. मिहिरभोज की ग्वालियर प्रशस्ति, श्लोक २, ४, २२
५. स्कन्द पुराण, १।१।१४।१४
६. गरुड़, १।१४१।७ (२)-८ (१)
७. डा० क० ए०, पृ० ११, ६७
८. गरुड़, १।८६।११; २।२०।३१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुराण में बुद्ध के जीवन-चरित्र का वर्णन नहीं प्राप्त होता है। इसका कारण यही ज्ञात होता है कि समाज में उस समय भी बुद्ध के उपदेश और उनका प्रवर्तित मार्ग मोह रूपी ही था। सामान्यत: समाज उस समय भी निवृत्ति-मार्ग और सन्यास (घर छोड़ कर सन्यासी हो जाना तथा गृहस्थधर्म की उपेक्षा) का अनुमोदन नहीं करता था।[1]

फिर भी गरुड़ पुराण बुद्ध के जीवन पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है :—

तत: कलेस्तु सन्ध्यान्ते सम्मोहाय सुरद्विषाम्।
बुद्धो नाम्ना जिनसुत: कीकटेषु भविष्यति ।।

गरुड़, १।१।३२

अन्यत्र भी कहा गया है :

वासुदेव: पुनर्बुद्ध: स मोहाय सुरद्विषाम्।
देवादीनां रक्षणाय अधर्महरणाय च ।।

गरुड़, १।१४५।४०

दुष्टानाञ्च वधार्थाय अवतारं करोति च ।।

वही, १।१४५।४१ (१)

बुद्ध, जिनको जिन पुत्र कहा गया है, कीकट (मगध, विशेष कर गया प्रान्त) में अवतरित होना बताया गया है। उनके अवतरण का उद्देश्य देवताओं के शत्रु दैत्यों को मोहित कर देवताओं की रक्षा और अधर्म का नाश करना बताया गया है। बुद्ध को पाषण्डों के संघात से रक्षा करने वाला भी बताया गया है (बुद्ध: पाषण्डसंघातात् अवतु)।[2]

अग्नि पुराण में बुद्धावतार का वर्णन करते हुए बताया गया है कि पहले, प्राचीन काल में, देवासुर युद्ध में देवता पराजित हो गये थे। वे 'रक्षा करो' 'रक्षा करो' चिल्लाते हुए ईश्वर की शरण में गये। वही (ईश्वर) मायामोह रूप में शुद्धोदन का पुत्र होकर उत्पन्न हुआ। उसने दैत्यों को मोहित कर दिया जिससे उन्होंने वेद धर्म को त्याग दिया और वे बौद्ध बन गये। उसके बाद वही आर्हत बन गया जिसने अन्य आर्हतों (जैनों) को भी बनाया। इस प्रकार वेद धर्म-विहीन बौद्ध और जैन ही पाषण्डी बने।[3]

विष्णु पुराण (३।१७-१८ अध्यायों) में इसका विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। यहां 'नग्न' के स्वरूप की व्याख्या करते हुए मायामोह (३।१७।४१) का जन्म और उसके द्वारा दैत्यों को मोहित करने का वर्णन किया गया है

१. गरुड़, ११३।९
२. वही, १।१९६।११ (१)
३. अग्नि पु० १६।१-४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिससे वे वेद मार्ग से बहिष्कृत हो गये (विष्णु, ३।१७।४२)। मयूर पिच्छ-धारी, दिगम्बर और मुण्डित केश वाले मायामोह ने दैत्यों को वेद-विरुद्ध उप-देश देकर उन्हें स्वधर्म से च्युत कर दिया तथा वे (दैत्य) आर्हत हो गये (विष्णु, ३।१८।१-१२)।

इसी प्रकार मायामोह ने रक्ताम्बर धारण कर दूसरे दैत्यों को बोधि मार्ग—बुध्यत (जानो), बुध्यध्वम् (समझो) आदि—शब्दों से बुद्ध धर्म का निर्देश किया (विष्णु, ३।१८।१५-१६)। इस प्रकार मायामोह ने अन्य भी अनेक दैत्यों को मोहित कर पाषण्ड-वाद में दीक्षित किया (विष्णु, ३।१८।२२)।

बुद्ध को अग्नि पुराण (४९।८) में शान्तात्मा कहा गया है। शान्तात्मा को विष्णु का अवतार भी माना गया है (बनर्जी, डे० हि० आ०, पृ० ३९२) बृहत्संहिता में भी बुद्ध को शान्त कहा गया है (पौ० ता० रे०, पृ० ४७)। गरुड़ पुराण भी बुद्ध की शान्त नाम से स्तुति करता है :

जयस्तेऽस्तु निरालम्ब जय शान्त सनातन।
जय नाथ जगत्पुष्ट जय विष्णो नमोऽस्तु ते ॥
गरुड़, १।२२६।१६

यहाँ ऊपर और अन्यत्र भी बुद्ध को सत्य, आनन्द, अद्वय, स्वप्रकाश, नित्य, शुद्ध आदि रूप में भी चित्रित पाते हैं :—

स्वप्रकाशं निराकारं सदानन्दमनादि यत्।
नित्य शुद्धं बुद्धमृद्धं सत्यमानन्दभद्वयम् ।
गरुड़, १।४४।४

विष्णु पुराण जिन नग्नों—बौद्धों और जैनों—की निन्दा करता है उन्हें ही गरुड़ पुराण में दुराचारी दिगम्बर कहा गया है। ऊपर कहा गया है कि हेतुवादी-पाषण्डमतानुयायी भी बौद्धों का एक सम्प्रदाय ही है। इस प्रकार गरुड़ इन प्रमुख पाषण्ड-मतों का संक्षिप्त परन्तु स्पष्ट उल्लेख करता है। देवी भागवत (४।१३।५४-६१) से जानते हैं कि पाखण्ड-पंडित बृहस्पति ने दैत्यों को जैन धर्म का उपदेश किया था। वहीं दिगम्बरों, बौद्धों, और चार्वाकों को वेद-श्रद्धा हीन कहा गया है (देवी भा०, १२।८।४)। कला में भी जैन तीर्थ-करों को नग्नावस्था में—दिगम्बर रूपांकित पाते हैं (चित्र नं० ६)।

गरुड़ में इन पाषण्डों के विचारों को भी उल्लिखित पाते हैं। यहाँ अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह तथा तप[1] के सिद्धान्तों का महत्व प्रति-पादित किया गया है जो जैन धर्म के मूलाधार हैं। परम तप और शरीर शोषण (गरुड़, १।२२९।२०) का जैन धर्म में विशेष महत्व है।

---

१. गरुड़, १।२२९।१४-२०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लोकायत—

"ये लोग भूतवाद और उच्छेदवाद के मानने वाले थे। कौटिल्य ने लोकायतों का उल्लेख किया है।..........व्याकरण में कुछ प्राचीन उदाहरण हैं जिनसे सूचित होता है कि लोकायत शास्त्र के उद्भट पंडितों की संज्ञा चार्वी थी। पीछे उसी से चार्वाक शब्द बना..............। लोकायत सम्प्रदाय अति प्राचीन था और सम्भावना यही है कि पाणिनि के नास्तिक सम्प्रदायों में उसकी भी गणना थी।"[1] गरुड़ पुराण भी इसे नास्तिक सम्प्रदायों में रखता है।[2]

"सम्भवतः इस लोक (संसार) पर ही विश्वास करने के कारण इसे लोकायत कहा गया।[3] प्रत्यक्ष-प्रमाण पर ही विश्वास करते हुए इसके मतानुयायियों को परलोक का अस्तित्व अमान्य है।

इस प्रकार गरुड़ पुराण से प्राचीन भारत के विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों और रीतियों पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है जो यहाँ के धार्मिक जीवन और संस्थाओं के ज्ञान के लिये अत्यधिक आवश्यक है।

---

१ पा० का० भा०, पृ० ३८४-३८५

२. गरुड़, १।९८।१७ (१)

३. पा० का० भा०, पृ० ३८४, डा० अग्रवाल का विचार है कि "इनके दर्शन का लोक में सबसे अधिक प्रचार होने से सम्भवतः ये लोकायत कहे गये।"

हि० इ० फि०, भाग १, पृ० ७८, नोट २ में डा० दास गुप्त भी यही मानते हैं :—

"Lokāyata (literally, that which is found among people in general)...........".

इतना सत्य अवश्य है कि यह मत अधिक प्रचलित था (कीथ, बुद्धिस्ट फिलॉसफी, पृ० १३५-१३६)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तान्त्रिक–धर्म

विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों और उपासना-पद्धतियों, उनकी धार्मिक क्रियाओं और रीतियों पर प्रचुर तान्त्रिक प्रभाव परिलक्षित होता है। देव-पूजा में मंत्र, मंडल, मुद्रान्यास आदि तान्त्रिक विधियों की बाहुल्यता का दर्शन होता है। यदि इसका कहीं पर कम प्रभाव पड़ा था तो वह वासुदेव भक्ति थी। भक्ति का पूजा विधान पाञ्चरात्र विधि से प्रभावित था। यहाँ पर भी जनार्दन (विष्णु) की पूजा में तान्त्रिक मन्त्रों का प्रयोग होता था।[1] अन्य देवताओं की उपासना में भी तान्त्रिक मन्त्रों का प्रयोग मिलता है। परन्तु वेद-विरोधी तान्त्रिक विचारों और उपासना को अग्राह्य बताया गया है। वेद ही धर्म मार्ग का प्रमाण माना गया है। पुराणों में जहां-तहां तांत्रिक विचारों को पाते हैं। परन्तु यहाँ वेद-अविरोधी तन्त्रों का ही अनुमोदन किया गया है। कुशास्त्र, कामाचारी, पाशुपत अथवा वेद-विरोधी वैखानस (साधुओं) की निन्दा की गयी है। अत: पौराणिक धर्म को वेदोक्त सद्धर्म ही माना गया है।[2] यहाँ आचार हीन धर्म का समर्थन नहीं किया जाता।[3] इसीलिये श्रुति-सम्मत तांत्रिक मत को भी प्रश्रय मिला और उसको धार्मिक कृत्यों में स्थान प्राप्त हुआ। स्नान, गायत्री, संध्याभिवन्दन, मंत्र-जप, (रुद्राक्ष तथा भस्म धारण, शिवोपासना में) होम और मंडल-पूजा, अंगन्यास, तप, व्रत, उपवास, दीक्षा आदि क्रियायें तांत्रिक विधियाँ थीं[4]। कालान्तर में कामाचारी प्रभाव पड़ने से मांस, मदिरा आदि का भी प्रयोग होने लगा और जैसा ऊपर कहा गया है कि शक्ति—उपासना में इसने विशेष रूप से अपना अधिकार जमा लिया। इसलिये तांत्रिक विधि को अस्त्र विद्यादिक कर्म कहा गया है :—

अस्त्रविद्यादिकं कर्म तांत्रिको विधिरुच्यते[5]

शिवोपासना के अन्तर्गत भस्म धारण के महत्व का वर्णन करते हुए देवी भागवत पुराण में तंत्रोक्तवर्त्म (तंत्रोक्तमार्ग) और तांत्रिक पूजकों का उल्लेख मिलता है :

१. गरुड़, १।२०५।१३७

२. देवी भा०, ११।१।२४-३२

३. वही, ११।२।१-२

४. वही, पूर्वार्द्ध, अ० ७-१२, १६-३६, ३८-४३; १।६६।२०-२१; अ० १९८, २०७, २०८, २१०

५. वही, ११।३।३ (२)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तंत्रोक्तवर्त्मना सिद्धं भस्म तांत्रिकपूजकैः ।
यत्र कुत्रापि दत्तं चेत्तद्ग्राह्यं नैव वैदिकैः ॥
देवी भा०, ११।१२।११

ऊपर तांत्रिक पूजकों (तंत्रोक्त मार्ग का अनुसरण करने वालों) और वैदिक (पूजकों) में विरोध परिलक्षित होता है। वैदिक उपासकों को तंत्र मार्ग से सिद्ध भस्म को तांत्रिक पूजकों से नहीं ग्रहण करना चाहिये । परन्तु इसके पहले बताया जा चुका है कि शिव (मूर्ति) के सान्निध्य में वैदिक शैवों द्वारा सम्पादित भस्म परम भक्तिपूर्वक ग्रहण कर लेनी चाहिये :

शैवैः सम्पादितं भस्म वैदिकैः शिवसन्निधौ ।
भक्त्या परमया ग्राह्यं प्रार्थयित्वा तु पूजयेत् ॥
देवी भा०, ११।१२।१०

इस प्रकार वैदिक शैवों और तांत्रिक शैवों में भेद कर तांत्रिकों को हेय दृष्टि से देखा गया है । इसका कारण तांत्रिकों का सम्बन्ध शूद्रों, कापालिकों, पाखंडियों आदि से था । तंत्रोक्त मार्ग से सिद्ध भस्म वैदिकों के लिये तो ऊपर अग्राह्य कही गई है । परन्तु शूद्र, कापालिक, और पाखंडी उसे भक्ति पूर्वक ग्रहण कर धारण कर सकते हैं ।[१] वैदिक विधि वेद मंत्रों और वेदोचिताचार[२] पर आधारित है । शूद्रों और अंत्यजों के हाथ से भस्म नहीं लेनी चाहिये ।[३] भस्म चारों वर्ण के लोग—शूद्र भी—यक्ष, राक्षस, गन्धर्व स्त्री मुनि और संकर (मिश्र जाति) के लोग भी धारण कर सकते थे ।[४] द्विजाति वा अन्य जाति के लोग भी, चाहें वे सभी आश्रमाचारों (आश्रमों के धर्म) को त्याग कर सभी वैदिक क्रियायों (अग्निहोत्र आदि) को लुप्त कर चुके हों, भस्म-त्रिपुंड्र धारण कर शिव को प्राप्त कर लेते हैं । इसमें इनके कुल या व्रत की भी पहचान नहीं की जाती है । अंत्यज, अधम अथवा मूर्ख और पंडित सभी शिवार्चन के अधिकारी हैं ।[५]

इस प्रकार दो प्रकार के शैव उपासक थे :

१—वे द्विजाति जो आश्रमाचार और नित्य कर्मों को करते हुए शिव भक्त थे;

---

१. देवी भा०, ११।१२।१२
२. वही, ११।१२।२१, २२
३. वही, ११।१२।३६
४ वही, ११।१२।१२-१३
५. वही, ११।१२।३०-३४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा २—वे जो संकर जातीय, अन्त्यज, अधम और आश्रमाचार हीन होकर शिवार्चन करते थे। दूसरी कोटि के शिव भक्त ही कापालिक आदि थे जिनको पाषण्ड कहा गया है। पहली कोटि के भक्त वैदिक शैव थे।

अस्तु स्पष्ट है कि उस समय की (पूर्व मध्य काल, ईसा की १०-१२ वीं शताब्दी) उपासना पद्धति में वैदिक और तांत्रिक विधियों का प्रचार था। यह बात देवी भागवत के अध्ययन से स्पष्ट हो जाती है। देवी पूजा दो प्रकार की बताई गयी है :

१—आभ्यंतर, और

२—बाह्य

बाह्य पूजा के भी दो रूप हैं :

क—वैदिकी और

ख—तांत्रिकी।[1] मूर्ति भेद से वैदिकी पूजा के भी दो भाग हैं। वैदिक पूजा वैदिक उपासकों द्वारा वैदिक दीक्षा से युक्त होकर ही करना चाहिये।

वैदिक्यर्चाऽपि द्विविधा मूर्तिभेदेन भूधर।
वैदिकी वैदिकैः कार्या वेददीक्षा समन्वितैः ॥[2]

तांत्रिकी पूजा तंत्रोक्त विधि पर आधारित है :

तंत्रोक्तदीक्षावद्भिस्तु तांत्रिकी संश्रिता भवेत्।
देवी भा०, ७।३९।५ (१)

यहीं बताया गया है कि धर्म, सत्यतः, वही है जो श्रुति और स्मृतियों में प्रतिपादित किया गया है। अन्य शास्त्रों में वर्णित धर्म केवल धर्माभास ही है। श्रुतियों पर ही स्मृतियाँ आधारित हैं। इसीलिये मनु आदि द्वारा कथित धर्म ही प्रामाण्य है। तंत्रों में कथित धर्म को वैदिकों द्वारा नहीं ग्रहण करना चाहिये। अन्य लोगों के बनाये शास्त्र अज्ञान परक हैं और उनमें अज्ञान-द्वेष की दुष्टता है। इसीलिये उनकी प्रमाणता मान्य नहीं है। अतः मुमुक्षु लोग धर्म के लिये वेद का आश्रय लें। जो वेद धर्म को छोड़ कर अन्य धर्म को माने उसे राजा अपने राज्य से बाहर निकाल दे। श्रुति-स्मृति के विरोधी शास्त्र तामस प्रधान हैं जैसे वाम (वामाचार), कपालक, कौलक, भैरवागम आदि।[3]

---

१. देवी भा०, ७।३९।२-३
२. वही, ७।३९।४
३. वही, ७।३९।१५-२७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शैव, वैष्णव, सौर, शाक्त और गाणपत्य, तथा आगमों में कहीं-कहीं वेदों का अविरोधी अंश भी है जिसे वैदिकों को ग्रहण करना चाहिए। वैदिक उपासक वेद का ही आश्रय लें।[१] यह वैदिक पूजा का प्रथम रूप है जिसमें अनन्य भक्ति, योग और ज्ञान की प्रधानता है। उपासक अपने में धर्म पूर्वक ज्ञान-परंब्रह्म—को प्रकाशित करे।[२] स्पष्ट है इस प्रथम पूजा के स्वरूप में भक्ति, योग और ज्ञान की प्रधानता है। मूर्ति का अभाव है। दूसरे प्रकार की पूजा में मूर्तियों और देव के प्रतीकों—मंडल, लिंग, पट आदि—की प्रधानता है। आभ्यंतरिक ज्ञान हो जाने पर बाह्य पूजा को छोड़ दे।[३]

बाह्य तांत्रिक पूजा में गुरु-पूजा, न्यास, यन्त्र, मन्त्र, दिग्बंध, पूजोपचार आदि का प्रभाव परिलक्षित होता है।[४] गरुड़ पुराण के अध्ययन से भी इसी वेद-सम्मत तांत्रिक पूजा को विभिन्न सम्प्रदायों—शैव, वैष्णव, सौर, शाक्त और गाणपत्य—में प्रचलित पाते हैं। वेद विरोधी पाषण्ड-विधि की निन्दा की गयी है। इस पुराण के अध्ययन में वेद विरोधी सम्प्रदायों—वाम, कापालिक, और कौल आदि जिन पर तांत्रिक उपासना का अवैदिक प्रभाव अधिक पड़ा—का उल्लेख नहीं मिलता है।

---

१. देवी भा०, ७।३९।३०-३३ (१)
२. वही, ७।३९।३१ (२)—३८ (१)
३. वही, ७।३९।३९ (२)—४६
४. वही, स्कन्ध ७, अ० ४०; यहीं, स्कन्ध ५, अ० ३४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाप–पुण्य और प्रायश्चित्त

हिन्दू समाज में पाप-पुण्य की भावना बड़ी बलवती है। इसका आधार कर्म-फल ही है—

पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पाप: पापेनेति।

अर्थात् पुरुष पुण्यकर्म से पुण्यवान होता है और पापकर्म से पापी होता है। इसीलिये कर्म की प्रशंसा की गयी है[1] और कर्म-प्रधान भूमि (भारत) को भी कर्मभूमि अथवा पुण्यभूमि की संज्ञा मिली। पुण्य कर्म करने वाला महान् ऐश्वर्य को प्राप्त करता है। अनजाने से पाप हो जाने पर भी धर्मार्थी चान्द्रायण आदि व्रतों से[2] प्रायश्चित्त कर उस पाप कर्म से विरत होता है। कर्तव्य कर्म के न करने और निन्दित कार्य के करने से मनुष्य का पतन होता ही है। यही सोच कर (भूला हुआ मनुष्य फिर सत्पथ पर लग जाय) प्रायश्चित्त का विधान बना। इसके करने से वह स्वयं और सम्पूर्ण समाज भी प्रसन्न होता है।[3] पश्चात्ताप रहित प्रायश्चित्त के न करने से मनुष्य नरकों को जाता है। अत: प्रायश्चित्त-पश्चात्ताप से ही पाप-क्षय होता है।[4] इस प्रकार शास्त्र चिन्तकों और राष्ट्र निर्माताओं ने आर्य-समाज, अथवा सभ्य और संस्कृत समाज की प्रतिष्ठा की। आज भी साधू गाता हुआ समाज का उद्-बोधन करता है—

मति बाँधौ गठरिया अपजस की
जब जमराज लेने को अइहैं, कसर निकासैं तोरी नस-नस की।

इस प्रायश्चित्त विवेक को जागृत करने के लिये ही भयावह नरक के दर्शन से मनुष्य का दुर्बल मन कँपा दिया गया। दस्यु-व्याध रूपी ब्राह्मण पुत्र की जब आँखें खुली तो उसने यही कहा—नष्टोऽहम्—मैं मिट गया। तभी वह व्याध आदि कवि बाल्मीकि बन गया, जब उसने पाप-पुण्य का विवेक कर अपने आपको पहचाना। प्राचीन भारतीय अभिलेखों में भी विशेषत: ताम्र-शासन पट्टों में भूमिदान का अतिक्रमण करने वालों को महापातक, पातक,

---

१. बृहदारण्यक उपनिषद, ३।२।१३
२. गरुड़ १।१०५।६९-७०
३. वही, १।१०५।१-२
४. वही, १।१०५।३

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और उपपातकों का ध्यान दिलाया गया है।[१] गरुड़ भी महापाप और उप-पापों[२] तथा पातकों[३] का वर्णन करता है। पाप तीन प्रकार (पातकं त्रिविधं) के होते थे, उनसे मुक्ति मानुष्य जीवन में ही सम्भव थी।[४] ज्ञान-दृष्टि से शुभाशुभ का विवेक उत्पन्न होता है। परन्तु अज्ञान-तिमिर से घिरा होने पर, और बाल्यकाल में बालभाव से तथा युवास्था में स्त्री सुख से अन्धा होता है। परन्तु इन आकर्षक रूपों में आसक्त न होकर जो तत्त्व को देखता है वही कर्म बन्धन से मुक्त होता है (यः पश्यति स मुक्ति भाक्)।[५]

---

१. गरुड़ २।३१।१४ :

स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत् वसुन्धराम्।
षष्टिवर्ष सहस्राणि विष्टायां जायते कृमिः॥

२. वही, १।१०५।४०

३. वही, १।१०५।३१

४. वही, २।१३।१७

५. वही, २।१३।२१-२२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तीर्थ-संग्रह

भारत के धार्मिक जीवन में तीर्थानुगमन[१] का विशेष महत्व[२] है। तीर्थ सेवन से सुख की प्राप्ति होती है।[३] तीर्थ-धर्म भी इन्द्रिय-दमन, भाव-शुद्धि और ब्रह्म ध्यान से सम्बन्धित है। राग-द्वेष के मल को धोकर ज्ञान-ध्यान में गोता लगाना ही हितकर है। इसीलिये मानस-तीर्थ में स्नान करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। भेद-रहित बुद्धि से सबको ब्रह्ममय-तीर्थ जानने वाला ही सच्चा तीर्थिक कहा गया है।[४] एक साधारण मनुष्य भी विश्वास करता है कि तीर्थ के जल में स्नान करने से मनुष्य सभी पापों से छूट जाता है।[५] सभी पर्वत और नदियाँ देव-सेवित ही हैं।[६] तीर्थ-सेवन से स्वदेश-राग भी बढ़ता है। कर्म भूमि (भारत) को भी तीर्थ कहा गया है।[७] भारत पुण्य देश है। जहाँ लोग तीर्थ यात्रा करते हुए सम्पूर्ण पृथिवी का भ्रमण करते रहे हैं[८]। भारत के नवों (९) भागों की भी पूजा होती थी :—

भारतस्य तथा भेदाः पूजनीयाश्च ये नव ।।[९]

गरुड़ पुराण के पूर्वार्द्ध अध्यायों ६६, ८१, ८२-८६ (गया माहात्म्य), १२७, १४२-१४३ (रामायण-प्रसिद्ध तीर्थ जिनका सम्बन्ध रामचरित्र से है); और उत्तरार्द्ध-अध्यायों २४।७९-८०, तथा २८।३ (सात मोक्षपुरियाँ), १९ में तीर्थ तालिकाएँ प्राप्त होती हैं। यहाँ स्थानाभाव से तीर्थ-विवेचन और तीर्थ-विवरण नहीं हो सका है। अस्तु गारुड़ी तीर्थ-तालिका वर्ण क्रमानुसार नीचे दी जा रही है। कोष्ठक के अन्दर सभी सन्दर्भ गरुड़ के ही हैं।

अक्षयवट—(१।८३।२२, १।८४।३०, १।८५।२३) गया का तीर्थ है।

---

१. गरुड़, २।१२।२४
२. वही, २।१०।३२
३. वही, २।१४।१८
४. वही, १।८१।२२-२४
५. वही, १।४८।४५
६. वही, १।८१।२५
७. ब्रह्म पु० ७७।२१
८. नीलमत पु०, १२४; दृष्टव्य कश्यप तीर्थयात्रा १२५-१३८
९. वही, ७११

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अत्रि आश्रम—(१।१४३।१४) दण्डकारण्य के मुख-द्वार पर स्थित था रामायण, (किष्किन्धा का०, अ० १)।

अयोध्या—(१।८१।७, १।१४३।८, १२, १४, ५१) रामराज्य की राजधानी और एक पवित्र मोक्षपुरी (२।२८।३) थी।

अरविन्द गिरि—(१।८६।६) और **अरविन्द वन** (१।८६।५) गया के तीर्थ थे।

अर्बुद—(२।२४।८०, २।२८।१९) पवित्र आबू तीर्थ (राजस्थान) है।

अवन्तिका—(२।२८।३) या उज्जयिनी, एक मोक्षपुरी थी।

अश्वमेध—(१।८३।१३), **अंगारेश** (१।८३।१७) और **आग्नेय** (१।८३।२४) गया के तीर्थ हैं।

आर्य तीर्थ—(१।८१।७)

इरावती नदी—(१।८१।२१) पंजाब की रावी या यू० पी० की राप्ती है।

उद्यन्त—(१।८५।२३) प्रभास का निकटस्थ पर्वत उज्जयन्त जो गया में भी स्थित बताया गया है।

ऋष्यमूक—(१।१४३।२५) दक्षिण का प्रसिद्ध पर्वत, तुंगभद्रा के तट पर अनगंडी से ८ मील दूर स्थित है। यहाँ राम, हनुमान और सुग्रीव का मिलन हुआ था।

उत्तर मानस—(१।८३।२५; १।८४।६)

एकाम्र—(१।८१।११) उड़ीसा में स्थित भुवनेश्वर का प्राचीन नाम है।

ऐन्द्र—(१।८३।२८); **कटक** (१।८१।९)

कनखल—(१।८१।२८; १।८४।९) हरिद्वार के निकट यू० पी० का पवित्र स्थान है।

कनका नदी—(१।८३।२१) गया क्षेत्र का तीर्थ है।

कपाल मोचन—(१।५२।७) वाराणसी का तीर्थ है।

काञ्ची—(२।२८।३) एक मोक्षपुरी, आधुनिक कांजीवरम (मद्रास प्रदेश) है।

काम तीर्थ, कामर तीर्थ—(१।८१।९)

कामरूप—(आसाम) यहाँ कामाख्या देवी हैं (१।८१।१५)।

कार्तिकेय—(१।८१।६); **कालञ्जर** (१।८१।१८) बांदा प्रान्त में है (यू० पी०); **कालसर्पि** (१।८१।१०); **कालिन्दी-यमुना** (१।१२७।१०); **कालेश्वर** (१।८३।५; १।८६।३२); **काशी** (२।२८।३) एक मोक्ष पुरी है। **कुब्जक** (१।८१।१०); **कुब्जाम्र** (१।८१।१०) सम्भवतः हृषीकेश या कनखल है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुरुक्षेत्र—(१।६६।५; १।८१।३; १।८२।१४; १।८४।४; १।१२७।१०; १।२०५।११५; १।२१०।२१; २।२४।८०; २।२८।१९) हरियाना में प्रसिद्ध तीर्थ है।

कुशावर्त—(१।८१।२८); **कृतशौच** (१।८१।११); **केदार** (१।८१।६; १।८३।५) पौड़ी-गढ़वाल (यू० पी०) में प्रसिद्ध तीर्थ है। **कैलास**—(१।२।१०) हिमालय में प्रसिद्ध है। **कोटितीर्थ** (१।८१।२०; १।८३।२३); कोटीश्वर (१।८३।१३); **कोणगिरि** (१।८१।२६) उड़ीसा का कोणार्क है।

क्रौंचपाद—(१।८६।६) गया में है।

क्षीराब्धि—(१।८४।४) विष्णु-स्थल है।

गज—(१।८३।१६); गण्डकी (१।८१।२१) गण्डक नदी है।

गदाधर—(१।८३।७, १८; १।८४।१३, १४) गया का वैष्णव तीर्थ है जहाँ गदाधर (विष्णु) ने गयासुर का बध किया था (१।८२।५-६)।

गदालोल—(१।८३, १४४ १।८४।२८)

गयापुरी—(१।८६।३८), **गया** (१।६६।५; १।८१।३०; १।८२।९, १०, १३, १५, १६; १।८३।१, २०; १।८४।१, ३, ४, १२, २२; १।८५।२१, २२) का माहात्म्य पूर्वार्द्ध अ० ८२-८६ में दिया गया है। गया क्षेत्र पाँच कोस के विस्तार में पवित्रता के लिये प्रसिद्ध था (१।८२।१०; १।८२।३)। गया-श्राद्ध (१।८२।१३-१८) आज भी पुण्य कार्य माना गया है। यह बुद्ध (१।१।३२), विष्णु और पितामह का भी प्रिय स्थान था (१।८२।६)। भारत के अन्य प्रसिद्ध तीर्थ भी यहाँ हैं (१।८५।२३)। यहीं पवित्र प्रेत शिला भी थी (१।८६। १, २) **गयादित्य** सूर्य का भी प्रिय स्थान था (१।८३।१७)।

गया शिर—(१।८३।३, २०; १।८४।१, ३, १२, २२, २४, २५; १।८६।८) या गया शीर्ष (१।८४।२०, २७, ३२, ३३, ३५) पवित्र पहाड़ी थी जो श्राद्ध करने के लिये प्रसिद्ध थी।

गंगा—(१।८१।१), **गंगाद्वार** (१।८१।२८) और **गंगासागर संगम** (१।८१।२) प्रसिद्ध तीर्थ हैं।

गायत्र—(१।८३।२८), **गायत्री** (१।८३।१२, २६) और **गृध्रेश्वर** (१।८३।१२, २६) गया तीर्थ है।

गोकर्ण—(१।८१।१८) प्रसिद्ध और प्राचीन शिव स्थल है जो नैपाल में भी प्रसिद्ध है (वराह पुराण)।

गोका मुख—(१।८१।१४)। **गोकुल** (१।२२५।२) और गोवर्धन (१।२२६।१२) ब्रज मण्डल में कृष्ण लीला-स्थल हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गोगृह—(१।८२।१४), **गोमक** (गोपति देव, १।८३।१६, २३) गया के तीर्थ हैं।

गोदावरी—(१।८१।१७) दक्षिण की प्रसिद्ध नदी है।

गोवर्धन—(१।८१।२०) नासिक के पास की पवित्र पहाड़ी है।

गौरी (मंगला)—गया का देवी-तीर्थ है (१।८३।१६)।

चन्द्रभागा—(१।६६।६; १।८१।११); **चित्रकूट** (१।८१।७, बांदा प्रान्त, यू० पी० का प्रसिद्ध तीर्थ है); जम्मूसर (१।८१।१२); **त्रिपुष्कर** (१।१२७।९) **तापी** (१।८१।२६, ताप्ती नदी); **तुंगभद्रा** (१।८१।८); दक्षिण मानस (१।८३।२५; १।८४।७); दशाश्वमेध (१।८४।२३); देवकोटक (१।८१।११); **देव रुद्रपद** (१।८४।२०); **द्वारवती** (१।६६।५) या द्वारका एक मोक्षपुरी थी (२।२२।३) और यहाँ की पवित्र पाषाणमूर्ति, द्वारावती शिला थी (पूर्व० अ० ६६); **द्वारका** (१-६६।५; १।८१।५; २।२४।७९)। धर्मक (१।८५।२३), धर्मारण्य (१।८३।११, १।८४।१५, १६), धेनुकारण्य (१।८३।२७) या धेनुवन (१।८३।१२); धेनुपृष्ठ, (१।८५।२३) और नगस्थ-ईश्वर (१।८३।११) गया क्षेत्र के तीर्थ हैं।

नन्दितीर्थ—(१।८१।२०), नरतीर्थ (१।८३।२८), नर्मदा (१।६६।६), नर्मदा-भेद (१।८१।१७), नासिक्य (१।८१।२०, नासिक), नाभितीर्थ (१।८३।२१), नील पर्वत (१।८१।२८), नैमिष या नैमिषारण्य (१।६६।५, १।८१।७७, १।१२७।१०, २।२४।८०, २।३०।१३) आधुनिक नीमसार (सीतापुर प्रान्त, यू० पी०) है।

पयोष्णी—(१।८१।१७)। पशुपति (१।८१।१४) नैपाल का प्रसिद्ध तीर्थ है।

पुण्ड्रवर्धन—(उत्तरी बंगाल) में कार्तिकेय-मन्दिर था (१।८१।१५)।

पुनः पुनः नदी (१।८३।१, १।८४।५) गया की पुनपुना नदी है।

पुरुषोत्तम—(१।६६।६) उड़ीसा का प्रसिद्ध क्षेत्र—जगन्नाथपुरी—है।

पुष्कर—(१।६६।५, १।८१।७, २।३०।१३) राजस्थान का प्राचीन प्रसिद्ध तीर्थ है।

प्रणीता नदी—(१।८१।२७) गोदावरी की सहायक नदी है (ज्या० डि०, पृ० १५९)।

प्रभास—(१।८१।४, १।८६।१; १।१२७।१, २।२८।१९) सौराष्ट्र का प्रसिद्ध तीर्थ है। यही सोमनाथ मन्दिर था (१।८१।४)।

प्रभासेश—(१।८३।१३) गया का तीर्थ है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रयाग—(१।६६।५, १।८१।२, २।२४।८०) प्रसिद्ध तीर्थ है (उ० प्र०), जो गया में भी गया था।

प्राची सरस्वती—(१।८१।५); प्रेतशिला(१।८५।१-६, १।८६।१) फल्गु (१।८३।१८, २०; १।८४।१३, १४, २०), फल्गवीश (१।८३।१६) और फल्गुचंडी (१।८३।१६) गया के तीर्थ हैं।

बदरिकाश्रम—(१।२।२) में नारायण-आश्रम (१।८१।६) था। बिन्दुसर (१।८१।२१); ब्रह्मतीर्थ(१।८१।११, १।८३।२४), ब्रह्मसर (१।८५।२३; १।८६।५ गया तीर्थ), ब्रह्मेश्वर (१।८३।१५, १।८६।३१, गया-तीर्थभाण्डीर (१।८१।१४), भीमरथा (१।८१।२१); भीष्मतर्पण (१।८३।२६, गयातीर्थ); भूतेश्वर (२।२८।२०); भृगुक्षेत्र (२।२८।१९); भृगुतुंग (१।८१।९), भृगुपत्तन (भृगोः पत्तनमेव, भृगुपतन; १।५२।३), मतंगवापी (१।८४।१५, गया के धर्मारण्य में स्थित); मथुरा (१।८१।११) एक मोक्षपुरी थी (२।२८।३)। मन्दार (१।८१।१५, जहाँ मधुसूदन का मन्दिर था)। महाकाल (१।६६।६, उज्जैनी का प्रसिद्ध शिवस्थल); महाकेशी (१।८१।११); महानदी (१।८१।२६, १।८३।२८, १।८५।२३); मायापुरी (२।२८।३, एक मोक्षपुरी, जो हरिद्वार के निकट मायापुर है); मार्कण्डेयेश्वर (१।८३।१७); माहिष्मतीपुरी (१।८१।१८), मुण्डपृष्ठ (गया का तीर्थ है, १।८३।२, १५, १।८४।२६, १।८६।५, २४); मोहदण्ड (१।८१।१५); मौनादित्य (१।८३।८); रथमार्ग (१।८३।५), राजगृहवन (१।८३।१), रामतीर्थ (१।८३।२४) और रामह्रद (१।८३।२४) गया के तीर्थ हैं। **रामेश्वर** (१।८१।९, १।८३।१४, १।८६।३१)। रुद्र (१।८३।५), रुद्रपाद (१।८४।२३), रुद्रेश्वर (१।८६।३०)और वटमूल (१।८४।२९) गया के तीर्थ हैं। वरदा (१।८१।१७)। वाराणसी १।५२।७, १।६६।५, १।८१।३, १।८४।५) प्रसिद्ध विश्वेश्वर तीर्थ है। **वासव**—(गया तीर्थ, १।८३।२८); **विन्ध्य** (१।८१।१७, २८); **वाराह** (१।८१।१४); **विपाशा** (१।८१।१०); विरज (१।८१।१९); **विरजा** (गया तीर्थ है १।८४।४); **विशाला** (गया तीर्थ. १।८४।४, ३४); **वेणी** (१।८१।२१); **वैतरणी** (गया तीर्थ, १।८३।२३); **वैनायक** (१।८१।८); **वैष्णव** (१।८३।२८); **शम्भलग्राम** (१।८१।६)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शालग्राम (१।१५।१२६, १।६६।५, १।८१।१४) विष्णु शिलाओं के लिये प्रसिद्ध था। **शुक्रतीर्थ** (१।८१।१८); **शूकर तीर्थ** (१।६६।६); **शोण महानद** (१।८१।११, १।८४।५); **श्रीरंग** (१।८१।२६); **श्रीपर्वत** या **श्रीशैल** (१।८१।८); **श्वेतद्वीप** (१।८३।१०, १।८५।२३) पवित्र (१।२।२९, १।८१।७); **सरस्वती** (१।५२।६, १।६६।६) नदी है जो गया क्षेत्र को भी पवित्र करने गयी थी। **सप्त गोदावर** (१।८१।२६); **सप्त सारस्वत** (१।८१।५); **सारस्वत** (१।८३।२९); **सावित्र** (१।८३।२९); सावित्री (१।८३।१०); **सिद्धेश** (१।८३।१७); **सिंधुसागर संगम** (२।२४।८०)। **सेतुबन्ध** (१।८१।८) में स्नान करना पुण्य था (१।५२।७)। सोमतीर्थ (१।८३।२४); सोमनाथ (१।८६।३०); स्वामितीर्थ (१।८१।१४); स्वर्गद्वारेश्वर (१।८३।१४, गया तीर्थ); स्वर्णाक्ष (१।८१।१९); हरिक्षेत्र (२।२८।१९); हरिद्वार (१।८१।२) और हंसतीर्थ (१।८३।२३)।

तीर्थों की पहचान आदि स्थानाभाव से नहीं हो सकी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

९—गरुड़ दर्शन

दु:ख से तड़प कर मनुष्य त्राण की खोज करता हैं। कुछ लोग दूसरों के दु:ख से ही स्वयं दुखी हो जाते हैं। सन्त और ऋषि ऐसे ही व्यक्ति हैं। शाक्य गौतम ऋषि (बुद्ध) दु:खी लोगों के कष्टों से ही प्रभावित होकर त्यागी बने थे। केवल पेट को भरने वाला मनुष्य तो पशु ही माना गया है। अत: मानव दर्शन जीवन के उदात्त स्वरूप—बुद्धि और आत्मा—से सम्बद्ध है। विद्या-विहीन पुरुष को भी पशु ही बताया गया है (गरुड़, १।१०९।४८)। बुद्धि का विकास शास्त्र-सम्बोध से ही होता है (शास्त्रसम्बोधितधियः)[1] शास्त्र-गर्भा बुद्धि से ही धैर्यशील मनुष्य अपने उद्देश्य की प्राप्ति कर लेता है।[2] विद्या ही अविद्या जनित मोह को नष्ट कर ममत्व-मल को धोकर आत्म-दर्शन कराती है—

प्रक्षाल्यतेऽनुदिवसं य आत्मा निष्परिग्रहः।
ममत्वपङ्कदिग्धोऽपि विद्याम्भोभिर्वरं हि तत् ॥

गरुड़, १।८८।१२

अनेकभवसंभूतकर्मपङ्काकितो बुधैः।
आत्मा तत्त्वज्ञानतोयैः प्रक्षाल्य नियतेन्द्रियैः ॥

वही, १।८८।१३

परन्तु तत्व-ज्ञान का उदय ममत्व और अहंता के नष्ट होने से ही होता है। यह भी विद्या की ही देन है जो ब्रह्म-रस का पान कराता है—

ममेति मूलं दुःखस्य न ममेति निर्वत्तते।
दत्तात्रेयो ह्यलर्काय इममाह महामतिः ॥

गरुड़, १।२१८।२

अहमित्यंकुरोत्पन्नो ममेति स्कन्धवान्महान्।
गृहक्षेत्राश्चशाखाश्च यत्र दाराभिपल्लवः ॥

वही, १।२१८।३

धनधान्ये महापात्रे पापमूलोऽति दुर्गमः।
विधिवत्सुखशान्त्यर्थं जातो ज्ञानमहातरुः ॥

वही, १।२१८।४

---

१. गरुड़, १।७२।७
२. वही, १।११३।२८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

छिन्नो विद्याकुठारेण ते गता लयमीश्वरे ।
प्राप्य ब्रह्मरसं पीतं नीरजस्कमकण्टकम् ॥

वही १।२१८।५

ऊपर दत्तात्रेय द्वारा उपदिष्ट विद्या का उल्लेख किया गया है जिससे ब्रह्म-रस का आस्वादन होता है। यह आन्वीक्षकी विद्या ही थी—

षष्ठमत्रेरपत्यत्वं दत्तः प्राप्तोऽनुसूयया ।
आन्वीक्षिकीमलकीय प्रह्लादादिभ्य ऊचिवान् ॥

गरुड़ १।१।१९

इसी कारण फ़िलासफ़ी का अर्थ विद्यानुराग है। दर्शन भी उसी 'सत्यं हि परभं बलं' की खोज करता है और वह धीरे-धीरे अभ्यास तथा विरक्ति से उत्पन्न जागृति से ही सम्भव है। आन्वीक्षिकी विद्या (दर्शन या फ़िलासफ़ी) यह अभ्यास कराती है :—

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि ।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि ॥

कठोपनिषद १।३।१३

गरुड़ का भी आदेश है—

अस्थिरेण शरीरेण स्थिरं कर्म समाचरेत् ॥

गरुड़ २।३५।३९

इस प्रकार ऋषियों ने ध्रुव और अध्रुव का विभेदन कर मनुष्य को विद्या का ही आश्रय लेने का उपदेश दिया (गरुड़ १।११०।१-२)। उन मनीषियों ने क्षणभगुंर संसार और मरणशील प्राणियों के शरीर के गुणों को बताते हुए आत्मा के स्वरूप को जानने का निदेश किया—

जातस्य मर्त्यलोकेऽस्मिन्प्राणिनो मरणं ध्रुवं ।
पूर्वं काले मृतानां तु प्राणिनाञ्च खगेश्वर ॥

गरुड़, २।२१।२३

सूक्ष्मो भूत्वा त्वसौ वायुर्निर्गच्छ त्यस्य तद्गलात् ।
नवद्वारै रोमभिश्च जातानां तालुरन्ध्रकात् ॥

वही, २।२१।२४

पापिष्ठानामपानेन जीवो निष्कामति ध्रुवम् ॥

वही, २।२१।२५

कालाहतः पतत्येव निराधारो यथा द्रुमः ।
पृथिव्यां लीयते पृथ्वी आपश्चैव तथाप्सु च ॥

वही, २।२१,२६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तेजस्तेजसि लीयेत् समीरे च समीरणः ।
आकाशे च तथाकाशं सर्वव्यापी तु शंकरे ॥

वही, २।२१।२७

तत्र कामादयः पञ्च काये पञ्चेन्दियाणि च ।

वही, २।२१।२८

पंचेन्द्रियसमायुक्तं प्रविवेश नवे गेहे गृहे दग्धे यथा गृही ॥

वही, २।२१।३१

शरीरे ये समासीनाः सम्भवे सर्वधातवः ।
मूत्रं पुरीषं तद्योगाद्ये चान्ये धातवस्तथा ॥

वही, २।२१।३२

पित्तं श्लेष्मा तथा मज्जा मांसं मेदस्तथैव च ।
अस्थि शुक्रञ्च स्नायुश्च देहेन सह दह्यते ॥

वही, २।२१।३३

एकस्तम्भस्नायुबद्धं स्थूणाद्वय विभूषितम् ।
इन्द्रियैश्च समायुक्तं नवद्वारं शरीरकम् ॥

वही, २।२१।३५

विषयैश्च समाक्रान्तं कामक्रोधसमाकुलम् ।
रागद्वेषसमाकीर्णं तृष्णादुर्गतिसंयुतम् ॥

वही, २।२१।३६

लोभजालपरिच्छिन्नं मोहवस्त्रेण वेष्टितम् ।
सुबद्धंमायया चैव चेतनाधिष्ठितं पुरम् ॥

वही, २।२१।३७

षाट्कौशिक समुत्पन्नंपूरं पुरुषसंश्रितम् ।
एतद्गुणसमायुक्तं शरीरं सर्वदेहिनाम् ॥

वही, २।२१।३८

तिष्ठन्ति देवताः सर्वा भुवनानि चतुर्दश ।
आत्मानं ये न जानन्ति ते नराः पशवः स्मृताः ॥

वही, २।२१।३९

जो मनुष्य आत्मा के स्वरूप को नहीं जानते वे पशु ही हैं। इसी आत्म-ज्ञान को ब्रह्मज्ञान भी कहा गया है। वह ही अवस्था और स्थान आनन्द का है जहाँ से फिर इस दुःख-बहुल जगत में लौटना नहीं पड़ता है—

आनन्दं ब्रह्म तत् स्थानं यस्मान्नावर्त्तते पुनः ॥

गरुड़, १।४९।२७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसी सत्य-ब्रह्मज्ञान, आत्मज्ञान या तत्त्वज्ञान (गरुड़ १।२२४।८) की प्राप्ति विभिन्न मार्गों और सिद्धान्तों से होती है। योग[1], वेदान्त सांख्य[2], न्याय, मीमांसा[3] आदि प्रसिद्ध दार्शनिक सिद्धान्त हैं जो अपनी-अपनी दृष्टि के अनुसार विवेक-प्रक्रिया बताते हैं। इन सिद्धान्तों के अतिरिक्त शैवदर्शन और वैष्णव दर्शन (गीता दर्शन) का भी उल्लेख मिलता है। योग-दर्शन अत्यन्त प्रसिद्ध और प्रभावोत्पादक था जिसने सभी आस्तिक और नास्तिक दशर्नों को प्रभावित किया है।

योग—

अथ योगं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिकरं परम्।
ध्यायिभिः प्रोच्यते ध्येयो ध्यानेन हरिरीश्वरः ॥

गरुड़, १।१४।१

विष्णु और शिव ही ध्येय हैं, क्योंकि वे नित्य (गरुड़ १।१४।२-५) और सर्वज्ञ हैं—

बोद्धा बुद्धिस्थितः साक्षी सर्वज्ञो बुद्धिवर्जितः ॥

गरुड़, १।१४।६

बुद्धिधर्मविहीनश्च सर्वः सर्वगतोमतः।
सर्वप्राणिविनिर्मुक्तः प्राणधर्मविवर्जितः ॥

वही, १।१४।७

प्राणि प्राणो महाशान्तो भयेन परिवर्जितः।
अहंकारादिहीनश्च तद्धर्म परिवर्जितः ॥

वही, १।१४।८

तुरीयः परमो धाता दृग्रूपो गुणवर्जितः।
मुक्तो बुद्धोऽजरो व्यापी सत्य आत्मास्म्यहं शिवः ॥

वही, १।१४।१०

एवं ये मानवा विज्ञा ध्यायन्तीशं परं पदम्।
प्राप्नुयुस्ते च तद्रूपं नात्र कार्या विचारणा ॥

वही, १।१४।११

पौराणिक-दर्शन-शास्त्र भी योग के प्रवर्तक मुनि महायोगी (गरुड़ १।१५।४५) शिव-पद-परं पद—को ही ध्येय बताता है।

---

१. गरुड़, १।२।३६; १।१४।१

२. वही, १।२२७।१, ४१, ५०

३. वही, १।२१५।२१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सत्य ही—

आत्मविद्या च सदा ध्यायेत् शिवाख्यकम् ॥

गरुड़ १।२३।४९

शिवतत्त्वात्मकं चादौ विद्यातत्त्वात्मकं ततः ।
आत्मतत्त्वात्मकं पश्चाद्देवकाख्यं ततोऽर्चयेत ॥
ॐ ह्रौं शिवतत्वाय नमः । ॐ ह्रीं विद्यातत्त्वाय नमः ।
ॐ ह्रां आत्मतत्वाय नमः ॥

वही १।४२।१९

इस आत्मतत्व को अष्टांग-योग[1] से जाना जाता है—इस सांग महायोग का उपदेश दत्तात्रेय (गरुड़ १।२१८।१-२) व शौनक (गरुड़ १।२१९।३३) ने दिया था । प्राज्ञ लोग ही अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, पाँच यम, नियम, शौच, सन्तोष, तप, आसन, प्राणायाम, धारण आदि क्रियाओं द्वारा ब्रह्म से सायुज्य (ऐक्य) प्राप्त होता है ।

अष्टांग—

यमश्च नियमः पार्थ आसनं प्राणसंयमः ।
प्रत्याहारस्तथाध्यानं धारणार्जुन सप्तमी ।
समाधिरिति चाष्टांगो योग उक्तो विमुक्तये ॥

गरुड़ १।२२९।१३

प्राणायाम, जप, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि योग के छः प्रसाधक बताये गये हैं (गरुड़ १।२२७।१८) ।

सभी इन्द्रियों की विषयों में प्रवृत्ति है । उनसे मन की निवृत्ति ही प्रत्याहार कहलाता है । इन्द्रियों का ऐन्द्रिक विषयों से हटा लेने में ही कल्याण है और बुद्धि से ही प्रत्याहार की संस्थिति सम्भव है । बारह प्रकार के प्राणयामों से जब तक क्रिया होती है, तब तक मन को ब्रह्म के चिन्तन में लगा देना चाहिये । यही ध्यान है और बारह धारण प्रक्रियायें हैं । नित्य-तुष्टि और युक्त मन की स्थिति को समाधि कहते हैं । ध्यान करते हुए साधक का मन चलायमान नहीं होता है और ब्रह्म प्राप्ति की अवधि तक काल को धारणा कहते हैं । ध्येय ही में मन लगा रहता है और ध्येय का ही दर्शन होता है—उसी अवस्था को ध्यान कहते हैं । जब सर्वत्र ध्येय ही दिखलाई पड़ता है और उसी ध्येय से तन्मयता आ जाती है तथा द्वैत भाव मिट जाता है, वही समाधि है । समाधि में ही मन ब्रह्मानन्द या ब्रह्मरस को पी कर मुक्त हो जाता है ।[2]

---

१. गरुड़ १।२१७।३७
२. वही १।२२७।२२-३१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्त की अस्थिरता, भ्रान्ति और दौर्मनस्य ही योग के बाधक हैं। इसी लिये ये दोष हैं। स्थिति के लिये स्थूल रूप का चिन्तन किया जाता है। परमात्मा के बिना संसार में कुछ भी नहीं है। ऐसे इस विश्वरूप को जान कर ही मुक्ति मिलती है।

उस ब्रह्म को जानने के लिये ही ऋषियों ने विभिन्न दर्शनों की प्रतिष्ठा की। वह ऋषि ही क्या जिसका मत स्वतन्त्र और अलग अपना ही न हो।[१] विभिन्न प्रकार से उसे जानते हैं—

आत्मानमात्मना केचित्पश्यन्ति ध्यान चक्षुषा।
सांख्यबुद्धया तथैवान्ये योगेनानेन योगिनः॥

गरुड़ १।२२७।४१

ब्रह्मप्रकाशकं ज्ञानं भवबन्धविभेदनम्।
तत्रैकचित्तता योगो परमात्मान्धवत्स्थितः॥

वही १।२२७।४२

आत्मा-ब्रह्म का योग ही उत्तम योग है (गरुड़ १।२२७।४९):

ब्रह्मात्मनोर्यदैकत्वं स योगश्चोत्तमोत्तमः।
बाह्यरूपैन मुक्तिस्तु चान्तस्थैः स्याद्यमादिभिः।
साङ्ख्यज्ञानेन योगेन वेदान्त श्रवणेन च॥

गरुड़ १।२२७।५०

प्रत्यक्षतात्मनो या हि सा मुक्तिरभिधीयते।
अनात्मन्यात्मरूपत्वमसतः सत्स्वरूपता॥

गरुड़, १।२२७।५१

सांख्य का उपदेश आचार्य कपिल ने किया था :—

पंचमः कपिलो नाम सिद्धेशः कालविप्लुतम्।
प्रोवाच सूरये सांख्यं तत्त्वग्रामविनिर्णयम्॥

गरुड़, १।१।१८

१. गरुड़ १।१०९।५१ :

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्नाः नासावृषिर्यस्यमतं न भिन्नं॥

स्कन्द पुराण १।२।६५।४१ :

मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गीता–दर्शन

गीता सभी आस्तिक दर्शनों का समवाय है जो मुक्ति अथवा कैवल्य प्राप्ति का सरल-सुगम मार्ग है। यह योग (ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे), सांख्य, और वेदान्त ज्ञान का मधुर अमृत है। गरुड़ के अनुसार—

गीतासारं प्रवक्ष्यामि अर्जुनायोदितं पुरा।
अष्टांगयोगयुक्तात्मा सर्वं वेदान्तपारगः॥

गरुड़, १।२२९।१

आत्मलाभः परो नान्य आत्मदेहादिवर्जितः॥

वही, १।२२९।२

आत्म लाभ के विभिन्न-वेदान्त और योग-उपायों का निरूपण करने के बाद (गरुड़ पूर्वा० अध्याय २२९) गरुड़ पुराण भी आनन्द चैतन्य, ब्रह्म-सायुज्य और मोक्ष का प्रतिपादन करता है—

अहं ब्रह्मेत्यवस्थानं समाधिरमिधीयते।
अहं ब्रह्मास्मि वाक्याच्च ज्ञानान्मोक्षोभवेन्नृणाम्॥

गरुड़, १।२२९।२८

श्रद्धयानन्दचैतन्यं लक्षयित्वा स्थितस्य च।
ब्रह्माहमस्म्यहं ब्रह्म अहं ब्रह्म पदार्थयोः॥

वही, १।२२९।२९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्षात्र–दर्शन

जिस राजपूत शौर्य और बलिदान ने कर्नल टाड से मनीषी को मुग्ध कर दिया वह एक अद्‌भुत दर्शन था। वह ही राजपूत फ़िलासफ़ी थी। आधुनिक इतिहासकारों का विचार है कि पूर्वमध्य युग राजपूतों के समक्ष कोई ऐसा आदर्श नहीं था जो साहस, शक्ति और धैर्य के साथ ही साथ उनकी आधार शिला होती। यह भ्रम और अज्ञता है। सत्य है कि राजपूतों में भी दोष थे और उनकी गलतियों का देश पर बहुत बुरा असर पड़ा; परन्तु वे सैकड़ों वर्ष तक राष्ट्र रक्षण को अपना धर्म मान कर उस धर्म का पालन करते हुए रण-भूमि में मृत्यु का आलिंगन करते रहे और क्षत्राणी-वीरांगनाएँ आग की लपटों का आलिगन करती रहीं। उनके जीवन में अवश्य ही एक दिव्य-दर्शन था जिस की प्रेरणा से मौत को अमृत-पद मानते रहे। उसका कर्त्तव्य था—

शस्त्रेणाजीवनं राज्ञो भूतानाञ्चाभिरक्षणम् ॥

गरुड़, १।२०५।१२

विदेशी सत्ता की स्थापना और उसके आतंकों से प्रजा पीड़ित थी। ऐसे युग में प्राणि-रक्षण और देश-भंग को बचाना कष्ट कार्य था (गरुड़ १।११५·२)। गीता दर्शन की उत्पत्ति युद्ध-भूमि में हुई थी जब अर्जुन अपने हथियारों को फेंक कर युद्ध से पराङ्मुख हो गये थे। भगवान ने संसार और संसार के निर्माता विराट पुरुष के स्वरूप को दिखाते हुए मनुष्य के मर्त्य रूप को दिखाया और पुनः उसे लड़ने के लिये तैयार कर दिया—

यौधिष्ठिरी दौर्योधिनी कुरुक्षेत्रं ययौ चमूः।
भीष्म द्रौणादिकान् दृष्ट्वा नायुध्यतगुरूनिति ॥

अग्नि पुराण, १४।१

पार्थं ह्युवाच भगवान्नशोच्या भीष्ममुख्यकाः।
शरीराणि विनाशीनि न शरीरी विनश्यति ॥

वही, १४।२

अयमात्मा परं ब्रह्म अहं ब्रह्मास्मि विद्धि तम्।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो योगी राजधर्मं प्रपालय ॥

वही, १४।३

कृष्णोक्तोऽथार्जुनोऽयुध्यद्रथस्थोवाद्यशब्दवान् ॥

वही, १४।४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अस्तु, गीता-दर्शन ने स्पष्टतः क्षत्रियों को संकट काल में राजधर्म पालन करने की प्रेरणा दी। इस राजविद्या से ही सुख की प्राप्ति और दुःख की निवृत्ति होती है (श्रीमद्गीता, ९.२)। पूर्व मध्यकाल में शक्ति होते हुए भी पराभूत राजपूतों को इसी उत्तम राजविद्या ने जीने के सहारा और संघर्ष करने का बल दिया—

तेषां दैन्यापनोदार्थं सम्यग्दृष्टिक्रमाय च।
ततोऽस्मदादिभिः प्रोक्ता महत्यो ज्ञान दृष्टयः।।

योगवसिष्ठ, २।११।१६

अध्यात्मविद्या तेनेयं पूर्वं राजसु वर्णिता।
तदनुप्रसृता लोके राजविद्येत्युदाहृता।।

वही २।११।१७

राजविद्या राजगुह्यमध्यात्मज्ञानमुत्तमम्।
ज्ञात्वा राघव राजानः परा निर्दुःखता गताः।।

वही २।११

योगवसिष्ठ ईसा की नवीं और दसवीं शताब्दी का ग्रन्थ है जिसका काश्मीरी प्रणेता देख रहा था, पास ही खड़ा हुआ, कि काश्मीर के शाही राजा गज़नवियों के साथ संघर्ष कर रहे थे। राजा जैपाल ने अपने प्राणों को चिता में जला कर त्याग दिया था। उस युग में प्राण त्याग भी एक धर्म बन गया था। अस्तु, स्पष्ट है कि राजधर्म और अध्यात्मज्ञान से ही राजाओं की दुःख से निवृत्त हुई। यतः—

राज्यानि संपदः स्फाराभोगो मोक्षश्च शाश्वतः।
विचारकल्पवृक्षस्य फलान्येतानि राघव।।

योगवसिष्ठ २।१४।३८

कार्यं संकट संदेहे राजा जानाति राघव।
निष्फलं सफलं वापि विचारेणैव नान्यथा।।

वही, २।१४।३८

गरुड़ पुराण के नीतिसार सम्बन्धी अध्यायों में दुःख और चिन्ता ग्रस्त राजाओं को प्रबल प्रबोध और प्रोत्साहन दिया गया है। प्रथमतः आवश्यक था चित्त को स्थिर करना—

पन्थान इव विप्रेन्द्र सर्व साधारणः श्रियः।
मदीया इति मत्वा वै न हि हर्षयुतो भव।।

गरुड़, १।११४।७४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्तायत्तं धातुवश्यं शरीरं चित्ते नष्टे धातवोर्यान्ति नाशम् ।
तस्माच्चित्तं सर्वदा रक्षणीय स्वस्थे चित्ते धातवः संभवन्ति ।।

वही १।११४।७५

राष्ट्र की वृद्धि ओंकार से और राजा की वृद्धि योग से होती है (गरुड़ १।१११।१५)। अतः शास्त्र-बुद्धि से राजा मनस्ताप को मिटाकर समबुद्धि (योग) का आश्रय लेकर ही राज्य की रक्षा और वृद्धि करें—

अन्धो हि राजा भवति यस्तु शास्त्रविवर्जितः ।
अन्धः पश्यति चारेण शास्त्रहीनो न पश्यति ।।

गरुड़, १।१११।१९

यस्य पुत्राश्च भृत्याश्च मन्त्रिणश्च पुरोहिताः ।
इन्द्रियाणि तस्य राज्य चिरं न हि ।।

वही, १।१११।२०

मनस्तापं न कुर्वीत् आपदं प्राप्य पार्थिवः ।
समबुद्धिः प्रसन्नात्मा सुखदुःखे समोभवेत् ।।

वही, १।१११।२३

धीराः कष्टमनुप्राप्य न भवन्ति विषादिनः ।
प्रविश्य वदनं राहोः किं नोदेति पुनःशशी ।।

वही, १।१११।२४

धिग्धिक् शरीरसुख लालित मानवेषुमाखेदयेद्धनकृशं हि शरीरमेव ।
सद्दारका ह्यधन पाण्डुसुताः श्रुताहि दुःखं विहाय पुनरेव सुखं प्रपन्नाः ।।

वही, १।१११।२५

यही अध्यातम दर्शन था जिसने क्षत्रिय वीरों और शूरों को स्वधर्म और स्वदेश रक्षा से विरत न किया। प्रसिद्ध उक्ति है—

"निष्चेष्ट होकर बैठ रहना यह महादुष्कार्य है।
हे पार्थ प्रण पूरण करो देखो अभी तो सूर्य है।"

शत्रु पराभव करने में राजपूत निश्चेष्ट होकर हार कर भी हार कर बैठ न रहा। वह देश-वेदी पर आत्मोत्सर्ग करता रहा। सच्चा शूर वही था—

आपत्सु मित्रं जानीयात् रणे शूरं रहः शुचिम् ।

गरुड़ १।१०९।८

आपत्तिकाल में भाई को ही भाई छोड़ कर शत्रु से जा मिले। तो भी चिन्ता क्या—

न कश्चित्कस्यचिन्मित्रं न कश्चित्कस्यचिद्रिपुः ।।

गरुड़ १।११४।१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शूर की भी परीक्षा रणों में ही होती है। अच्छा घोड़ा चाबुक की मार नहीं सहता, सिंह गज-गर्जना भी नहीं सहता और शत्रु के घोर शब्द को नहीं सहता है; वह विभवहीन होकर भी नीच और दुष्ट की सेवा नहीं करना चाहता और सत्य ही सिंह घास न खाकर हाथियों का ताजा रक्त ही पीता है (गरुड़ १।१११।१७-१८)। यही शूर-दर्शन या क्षात्र-व्रत, खड्ग-व्रत या राजपूत फ़िलासफी थी जिसने बप्पा रावल, पृथ्वीराज चौहान, राणा हम्मीर, सांगा, राणाप्रताप, राणा राजसिंह, आदि को अमर बना दिया।

प्रश्न हैं कि शूर से किस प्रकार के सिपाही का बोध होता है और कौन स्वर्ग का अधिकारी है—

भगवञ्छूर शब्देन कीदृशः प्रोच्यते भटः।
स्वर्गालंकरणंकःस्यात् को वा डिम्भाहवे भवेत्॥

योगवसिष्ठ, ३।३१।२३

परिपाल्यस्वदेशैक पालने यः स्थितः सदा।
राजामृतास्तदर्थं ये ते वीरा वीरलोकिनः॥

वही, ३।३१।२६

इससे अधिक उत्कट और उदात्त राष्ट्रीय भावना का पता इतिहास में नहीं मिलता कि राजपूत सदा ही इसी वीर-गति और परिपाल्य-स्वदेशैक पालन के यज्ञ में रक्त से आहुति देता रहा। उसने देश की आवाज पर अपने को उत्सर्ग कर दिया और माँ को छोड़कर कायरता से भाग जाना राजपूत-शौर्य या क्षत्रिय दर्शन नहीं था—

क्षत्रियः सन्न देशं स्वं त्यक्ष्यामि क्लीबवद्भयात्।
धीरा भवाम्ब कः शक्तो वराको मां प्रबाधितुम्॥

कथा सरित सागर, ७४।६४

यहीं पर नीति, दर्शन और देश प्रेम की भावुकता में संघर्ष उत्पन्न होता है। देश-प्रेम और मातृभूमि-भक्ति का सिद्धान्त है—

दुस्त्यजा जन्मभूमिः (हर्ष चरित, प्रथम उच्छ्वास पृ० १७)

सत्य ही आपद्ग्रस्त राष्ट्र को निस्सहाय छोड़ कर अन्यत्र चला जाना महादुष्कर्म है। जननी-भक्ति को छोड़ना अत्यन्त दुष्कर है (दुस्त्यजश्चानुरागो)।[१] परन्तु नीतिकार कहता है कि अपनी रक्षा सदैव करनी चाहिये (आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि)।[२] सम्भवतः इसी विचार से

१. भागवत पुराण, १०।२६।१३
२. गरुड़ पु०, १।१०६।१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रभावित होकर राजपूत भी आत्मनिवेदन करते रहे। परन्तु अपनी रक्षा देश छोड़कर भी करनी आवश्यक थी—

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्॥

गरुड़, १।१०९।२

अतः स्पष्ट है कि दार्शनिक पृष्ठभूमि में ही मध्यकालीन चेतना और वैचारिक क्रान्ति का दर्शन होता है जिसका उद्देश्य पारतन्त्र्य-पराभव के बाद स्वातन्त्र्य सुख ही था—

रागद्वेषादियुक्तानां न सुखं कुत्रचित् क्वचिद्द्विज।
विचार्य्य खलु पश्यामि तत्सुखं यत्र निर्वृतिः॥

गरुड़, १।११३।५७

सर्वं परवशं दुःखं सर्वात्मवशं सुखम्।

वही, १।११३।६०

सुखं दुःखं मनुष्याणां चक्रवत्परिवर्त्तते॥

वही, १।११३।६१

सुख-दुख तो आते जाते रहते हैं। यही राजपूत की भी धारणा थी और यही उसका जीवन-दर्शन था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१०–विद्या, शिक्षा और वाङ्मय

शिक्षा तथा विद्या का महत्व

प्राचीन भारतीय संस्कृति ज्ञान प्रधान संस्कृति है जिसने विद्या के महत्व को सत्य स्वरूप से पहचाना और उसके विकास के लिये यथेष्ट प्रयत्न किया। प्रसिद्ध वाक्यों में गरुड़ पुराण विद्या की महिमा का वर्णन करता है कि वे माता पिता शत्रु ही हैं जो अपने बच्चों को नहीं पढ़ाते हैं। वे अशिक्षित रह कर सभा में शोभा नहीं पाते हैं। जैसे हंसों के बीच बगुलों की दशा होती है इसी भांति अशिक्षित व्यक्तियों की दशा विद्वानों की सभा में होती है। विद्या ही सबसे महान् रूप और धन है; विद्या ही कल्याण करने वाली है; विद्या जनप्रिय बनाने वाली और सबसे बड़ा गुरु है, विद्या ही दुःख दूर करने वाला बन्धु है; विद्या ही परम् देवता है; विद्या के बल पर मनुष्य राजमण्डल में पूजा जाता है; विद्याविहीन मनुष्य पशु ही है; घर की द्रव्य हरी जा सकती है, परन्तु विद्या को दूसरा व्यक्ति नहीं हर सकता है।[१] इस प्रकार इस कथन से शिक्षा और विद्या का महत्व ज्ञात होता है। साथ ही विद्या-प्राप्ति में माता-पिता का सहयोग महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसलिये विद्या स्पृहणीय थी।[२] अज्ञानरूपी महावृक्ष को विद्यारूपी कुठार से काट कर ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होती है।[३] समाज में भी मतिजीवी और कृतबुद्धि विद्वानों तथा ब्रह्मवादियों का सम्मान था।[४] इसलिये पठनं[५] (पढ़ाई या शिक्षा) का जीवन में विशिष्ट स्थान था। जो बाल्यकाल में बाल भाव से (अज्ञानता से) विद्या नहीं पढ़ते हैं; युवावस्था में धन के अभाव, स्त्रियों तथा कामासक्ति के कारण नहीं पढ़ पाते हैं, वे इस संसार में मनुष्य रूप में पशु ही हैं और वृद्धावस्था में सूखकर मुर्झा जाते हैं।[६]

१. गरुड़, १।११५।८०-८२

२. वही, १।१२९।१६

३. वही, १।२१८।५

४. वही, २।२।११-१२

५. वही, १।६२।१६

६. वही, १।१०९।४८-५०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विद्या और शिक्षा का महत्व था कि इनके प्रभाव से बच्चा प्रबुद्ध बन कर उच्च से उच्च आदर्शों की उपलब्धि कर सकता है। इसके प्रतिकूल अशिक्षा पुत्र के जीवन को नष्ट कर देती है (अशिक्षया यथा पुत्रो)।[१] कुपुत्र कुल को ही नष्ट कर देता है (कुपुत्रस्तु कुलं यद्वत्)।[२] अतः स्पष्ट है कि शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य के व्यक्तित्व और उसमें सद्‌बुद्धि का विकास था। इसीलिये पिता का कर्तव्य था कि पुत्र को विद्याभ्यास में लगाये (पुत्रं विद्यासु योजयेत्)।[३]

उपनयन और विद्यारम्भ

उपनयन के बाद ही बालक ब्रह्मचारी बन कर गुरु के घर रहे और वेदाध्ययन करे। वहाँ रहकर गुरु-शुश्रूषा और शौच तथा आचार व्रतों को करते हुए सावधानी के साथ स्थिरबुद्धि से वेदाध्ययन करे।[४] वहाँ वह कभी गुरु के प्रतिकूल आचरण न करे; और एकाग्रचित्त होकर गुरु के कहने पर पढ़े। गुरु के स्नान कर चुकने के बाद वह स्वयं स्नान करे और गुरु के लिए समिधा, जल, कुश तथा पुष्पादि ले आवे। गुरु की आज्ञा लेकर भिक्षान्न भोजन करे।[५]

गरुड़ पुराण भी बताता है कि आठवें वर्ष में ब्राह्मण का (क्षत्रिय का ११ वर्ष में और वैश्य कुल रीति के अनुसार) उपनयन करे। गुरु शिष्य का उपनयन कर उसे महाव्याहृति मन्त्रों को बताकर वेदों को पढ़ाये और शौच तथा आचार की शिक्षा दे। इसी प्रकार गुरु नित्य कर्म-शौच, स्नान, संध्या, गायत्री, अग्निकार्य प्राणायाम, स्वाध्याय, आदि की शिक्षा दे। शिष्य भी समाहित चित्त से गुरु की उपासना करता हुआ स्वाध्याय करे और गुरु से बुलाये जाने पर अध्ययन करे। वह गुरु को सब कुछ बता दे। मन, वचन और कर्म से गुरु का हित करे (गुरु भी शिष्य के प्रति यही भाव रखते हुए व्यवहार करे)।[६]

शिष्य

ऊपर के वर्णन से शिष्य के कर्तव्यों और चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। उसकी वेश-भूषा भी इसके अनुरूप ही थी।

१. गरुड़, १।१२७।७ (१)
२. वही, १।१२७।४ (१)
३. वही, १।११०।१० (१)
४. विष्णु पु०, ३।९।१-२
५. वही, ३।९।४-६
६. गरुड़, १।९४।१-१४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह दण्ड, मृगचर्म, उपवीत और मेखला को धारण करे। वह आत्म-वृत्ति के लिए द्विजों के यहां से अनिन्दित भिक्षा को लावे। अग्निकार्य करने के बाद विनीतभाव से गुरु की आज्ञा लेकर भोजन करे। मधुमांस को त्याग दे और ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे।[1]

देव-पूजा और गुरु उपासना तथा गुरु का हित करते हुए वेदाभ्यास करना शिष्य का मुख्य कर्तव्य था।[2]

गरुड़ पुराण शिष्य और पुत्र को लाड़-प्यार करने की अपेक्षा ताड़ना पर विशेष बल देता है। लालन करने में बहुत से दोष हैं और ताड़ना में बहुत से गुण। इसीलिए शिष्य और पुत्र को प्यार करने के बजाय ताड़ना दे :—

लालने बहवो दोषास्ताड़ने बहवो गुणाः।
तस्माच्छिष्यञ्च पुत्रञ्च ताड़येन्न तु लालयेत् ॥[3]

गुरु

गुरु वही है जो शिष्य को शौचाचार की क्रियायों में दीक्षित कर वेद का ज्ञान दे (स गुर्रुयः क्रियाः कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति);[4] जो उपनयन कराकर वैदिक ज्ञान दे वह आचार्य है; 'एकदेश उपाध्याय' अर्थात् जो उसी स्थान (देश) में रहता है, जहाँ शिष्य रहता है, वह उपाध्याय कहलाता है (एम० एन० दत्त, अंग्रेजी अनुवाद-पृष्ठ २६४, यही मानते हैं)। परन्तु इसके बजाय ऐसा लगता है कि 'जो वेदों के एक भाग को पढ़ाता था वह उपाध्याय कहलाता था।[5]

कृष्ण के गुरु सान्दीपनि का उल्लेख मिलता है कि कृष्ण ने उनके पुत्र को पुनः गुरु को वापस लाकर दे दिया और इस प्रकार उन्होंने अपने गुरु को प्रसन्न किया।[6] महाभारत से ज्ञात होता है कि कृष्ण और बलराम ने सान्दिपनि गुरु से षडंग वेद, लेख्य, गणित, गान्धर्ववेद, वैद्यक, हस्तिशिक्षा, अश्वशिक्षा, धनुर्वेद आदि को पढ़ा था। सान्दिपनि धनुर्वेद के श्रेष्ठ आचार्य (इष्वस्त्रवराचार्य) थे।[7]

---

१. गरुड़, १।९४।१५-१९ (१)
२. वही, १।५०।३२-३३ (१)
३. वही, १।११५।९
४. वही, १।९४।१९ (२)-२०
५. वही, १।१४४।११ (२)
६. सभापर्व, दाक्षिणात्य पाठ, पृ० ८०२
७. गरुड़, १।५०।३३-३४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विप्राध्यापक स्वयं वेदाभ्यास और जप करते हुए तथा धर्मशास्त्र, वेद और वेदांगों का स्वयं अध्ययन करते हुए अध्यापन करते थे ।[१] सत्य ही कहा गया है कि विप्र जीवन पर्यन्त अध्ययन करता रहता है । गरुड़ पुराण भी सत्य ही कहता है कि 'विप्राणां भूषणं विद्या'—विप्रों का भूषण विद्या—है ।

ऊपर के वर्णन से स्पष्ट है कि गुरुकुल ही शिक्षा के केन्द्र थे । और विद्या बहुत ही तप तथा परिश्रम से प्राप्त होती थी । जो सुख से विद्या प्राप्त करना चाहते हैं वे पण्डित (बुद्धिमान्) नहीं हैं । सुखेन विद्यां वांछन्ति वै ये न च पण्डितास्ते) ।[२]

शिक्षा के विषयों में भी, जैसा ऊपर के वर्णन से ज्ञात होता है, विभिन्न शास्त्र, पढ़ाये जाते थे । वेदों के साथ-साथ विविध शास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन होता था । पौराणिक सूत को सर्वशास्त्रविशारद कहा गया है ।[३] शास्त्रों के अध्ययन से ही विद्वानों का ही बौद्धिक विकास होता है (शास्त्र-सम्बोधितधियः सूरयः) ।[४]

वाङ्मय

शास्त्रों की विविधता को हम १८ विद्याओं-चार वेद, छः वेदांग, मीमांसा, न्याय, पुराण, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, अर्थशास्त्र, धनुर्वेद और गान्धर्ववेद[५]—से जान सकते हैं । एक वेद को विष्णु रूपी व्यास ने चार वेदों में तथा १८ पुराणों को बनाया ।[६] उनको अपने सभी शिष्यों को व्यास ने पढ़ाया भी—पैल को ऋग्वेद, जैमिनि को सामवेद, सुमन्तु को अथर्ववेद तथा महामुनि वैशम्पायन को यजुर्वेद और सूत को पुराण । अठारह पुराणों को जानने वाले हरि ही हैं ।[७]

अठारह पुराणों और उपपुराणों के नाम निम्नलिखित हैं :—

अठारह पुराण

ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत, भविष्य, नारदीय, स्कन्द, लिंग, वराह,

---

१. गरुड़, १।११३।१३ (१)
२. वही, १।११४।१९ (२)
३. वही, १।९६।१० (१)
४. वही, १।१।३ (१)
५. वही, १।७२।७ (२)
६. वही, १।८७।६०-६१; १।२१५।२१
७. वही, १।२१५।११-१३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मार्कण्डेय, अग्नि, ब्रह्मवैवर्त्त, कूर्म, मत्स्य, गरुड़, वायु और ब्रह्माण्ड ।[१] इस पुराण तालिका में शिव (शैवं) और वायु (वायवीयम्) विशेष रूप से दृष्टव्य हैं। साथ ही वामन पुराण का नाम नहीं दिया गया है।

अठारह उप पुराण

(१) सनत्कुमारोक्तं (२) नारसिंहम् (३) स्कन्दं (४) शिव पुराण (शिवधर्माख्यं)-नन्दीश्वर भाषितम् (५) दुर्वाससोक्तं (६) नारदोक्तं (७) कपिलं (८) वामनं (९) उशनसेरितम् (१०) ब्रह्माण्डं (११) वारुणं (१२) कालिका (१३) माहेश्वरं (१४) साम्बं (१५) पराशरोक्तम् (१६) मारीचं (१७) भार्गवं। डा० हज़रा इस तालिका में १५वें स्थान पर सौर पुराण को लेते हैं।[२]

दृष्टव्य है कि वामन पुराण उपपुराणों की तालिका में उल्लिखित हुआ है।

धर्मशास्त्र (धर्मशास्त्राणि)

याज्ञवल्क्य के अनुसार धर्म-शास्त्र प्रणेता निम्नलिखित है :—

मनु, विष्णु, यम, अंगिरस, वसिष्ठ, दक्ष, संवर्त्त, शातातप, पराशर, आपस्तम्ब, उशनस, व्यास, कात्यायन, बृहस्पति, गौतम, शंख, लिखित, हारीत, और अत्रि ऋषि, जिन्हें धर्मोपदेशक बताया गया है।[३] इनके ग्रन्थों में आचार, दान, धर्म, संस्कार आदि का वर्णन मिलता है। इसीलिये इन्हें धर्मशास्त्र कहते हैं। धर्मशास्त्रों का सामाजिक और बौद्धिक जीवन में महत्व-पूर्ण स्थान था।[४] इसे ही स्मृतिशास्त्र भी कहते हैं और धर्माध्यक्ष को समस्त स्मृति शास्त्र का ज्ञान होना आवश्यक था।[५]

पूर्वार्द्ध अ० ९३-१०६ तक याज्ञवल्क्य के वचनों का वर्णन है जिस पर याज्ञवल्क्य स्मृति का प्रभाव स्पष्टत: पड़ा है। अ० १०७ (पूर्वा०) में पराशर स्मृति के वचनों का संकलन मिलता है।[६]

---

१. गरुड़, १।२१५।१६

२. स्ट० उप०, भाग १, पृ० ९, नोट १५

३. गरुड़, १।९३।४ (२)-६

४. वही, १।९८।१४

५. वही, १।११२।९

६. चाणक्य नीति शाखा सम्प्रदाय, (लुडविक स्टर्न बैक), पृ० LIV

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अर्थशास्त्र

अर्थशास्त्र का उल्लेख १८ विद्याओं के अन्तर्गत किया गया है। परन्तु किसी भी विशेष अर्थशास्त्र का नाम नहीं दिया गया है।

अर्थशास्त्र का प्रमुख विषय राजनीति और अर्थ नीति ही है। गरुड़ पुराण में नीतिसार खण्ड (राजनीतिक विषयक अध्यायों) को बृहस्पति संहिता कहते हैं। बृहस्पति का अर्थशास्त्र भी प्राचीन प्रसिद्ध ग्रन्थ था। इस समय केवल बार्हस्पत्य (अर्थशास्त्र) सूत्र रूप में ही उपलब्ध है। राजा का कर्तव्य था कि वह राष्ट्र में धनुर्वेद और अर्थशास्त्रों की रक्षा करे।[1] इससे अर्थशास्त्र का महत्व ज्ञात होता है।

विविध शास्त्र

वेद वेदांगों के अतिरिक्त रामायण, महाभारत, हरिवंश और गीता तथा दर्शनशास्त्रों की प्रसिद्धि थी इन महत्वपूर्ण शास्त्रों के अतिरिक्त, नाराशंसी-गाथिका, इतिहास-पुराण[2], गन्धर्व-विद्या, धनुर्वेद[3], शब्दशास्त्र, दण्डनीति[4] रत्नशास्त्र, आयुर्वेद या वैद्यक शास्त्र. कामशास्त्र[5], व्याकरण, और शिल्पशास्त्र आदि का परिचय और प्रभाव गरुड़ पुराण में परिलक्षित होता है। इनमें से कुछ शास्त्रों—दण्डनीति, रत्नशास्त्र, आयुर्वेद और व्याकरण तथा रामायण-महाभारत-हरिवंश तथा गीता का विशेष रूप से वर्णन मिलता है। दण्डनीति का विवेचन पीछे अ० ४ में किया जा चुका है।

इनके अतिरिक्त बार्हस्पत्य दर्शन, जैन साहित्य, बौद्ध वाङमय तथा म्लेच्छशास्त्र (लोकायतं कुतर्कञ्च प्राकृतं म्लेच्छभाषितम्)[6] का भी परिचय मिलता है। इस प्रकार गरुड़ पुराण से प्राचीन वाङमय के इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है।

---

१. गरुड़, १।१११।२६ (२)
२. वही, १।९४।२८
३. वही, १।१११।२६
४. वही, १।११४।१४
५ वही, १।१७८।१८ (२)
६. वही, १।९८।१७ (१)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रत्न–शास्त्र

रत्न-ज्ञान

प्राचीन भारत में विद्वानों ने केवल दर्शन और उच्च विचार के क्षत्रों को ही न देखा और जाना था, प्रत्युत भौतिक जीवन की गलियों का दर्शन कर व्यवहारिक पक्ष की प्रतिष्ठा की थी। धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक जीवन में रत्नों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। अतः रत्न-ज्ञान का शास्त्रीय विवेचन आवश्यक ही था। गरुड़ पुराण, पूर्वार्द्ध में, (अ० ६८-८०) वज्र परीक्षा (अ० ६८), मुक्ताफल परीक्षा (अ० ६९), पद्मराग परीक्षा (अ० ७०), मरकत परीक्षा (अ० ७१), इन्द्रनील परीक्षा (अ० ७२), वैदूर्य परीक्षा (अ० ७३ व ७६), पुष्पराग परीक्षा (अ० ७४) कर्केतन परीक्षा (अ० ७५), पुलक परीक्षा (अ० ७७), रुधिराख्य रत्न परीक्षा (अ० ७८), स्फटिक रत्न परीक्षा (अ० ७८) और विद्रुम रत्न परीक्षा (अ० ८०)' का विवेचन किया गया है।

इस प्रकार स्पष्ट है इस युग तक रत्न-शास्त्र का अध्ययन होता था और गरुड़ में रत्न-शास्त्रविदों (१।७४।५), सूरयः (१।७२।७), बुधैः (१।७२।१४), मणिशास्त्रविद (१।७३।७; १।७५।७) और रत्नशास्त्रविदों (१।७४।५) का उल्लेख मिलता है।

रत्न-शास्त्र-विद को बहुत से अन्य शास्त्रों का भी ज्ञान होना आवश्यक था। उनको रत्नों के गुण-दोषों का विचार और तदनुसार उनके महत्व-मूल्य का जानना भी आवश्यक था। यह सर्वशास्त्रों के ज्ञान[1] से ही सम्भव था। शास्त्रज्ञ और कुशल रत्न परीक्षक ही उनके मूल्य और मान के जानने वाले कहे गये हैं।[2] अच्छे विद्वान लोग ही देशकाल के अनुरूप इनके मूल्यों का निर्धारण करते हैं (मूल्यं प्रकल्प्यमेषां बिबुधवरैंदेशकालविज्ञानात्)। मण्डी (बाजार) के पास ही देशों में पाये जाने वाले रत्नों का मूल्यकम और उसी जाति के दूरस्थ देशों में होने वाले रत्नों का मूल्य अधिक होता है।[3] इसलिये उसको देश-काल का ज्ञान होना भी परमावश्यक था। साथ ही आकर (खान) से प्राप्त रत्न शिल्पियों से संस्कृत होकर ही मूल्यवान् बनता था (रत्नं······

१. गरुड़, १।६८।११
२. वही, १।६८।१४
३. वही, १।७६।८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संस्कृतं शिल्पिना सद्यो मूल्यं किञ्चिल्लभेत्ततः) ।[१] अतः रत्न का महत्व-मूल्य शिल्पी के योग से बढ़ जाता है (मूल्यं भवेच्छिल्पविशेषयोगात्) ।[२] अतः रत्न-ज्ञान के लिए (रत्नज्ञानाय)[३] भूगोल (देश), ज्योतिष (काल-विज्ञान) के अतिरिक्त शिल्पशास्त्र का भी ज्ञान वांछनीय ही था। इसके अतिरिक्त रत्नों के मूल्यों के निर्धारण करने में (रत्नानां मूल्यनिश्चये)[४] मानों और मुद्राओं (सिक्कों) का भी ज्ञान आवश्यक ही था। इस प्रकार पुराण से तत्कालीन प्रचलित मानों और सिक्कों—कृष्णल, माष (माषक), रूपं (रूपक), शाण, पल, धरण, सुवर्ण[५]—का भी ज्ञान होता है। रूपक (चाँदी का सिक्का जिस पर रूप अंकित होता था—पंचमार्क सिक्का) अधिक प्रचलित था। इस प्रकार असली-नकली रत्न की पहचान के लिये ही सर्वशास्त्रसंबलित रत्नशास्त्र का अध्ययन और ज्ञान आवश्यक था।

अन्य विद्याओं की भाँति ही रत्न शास्त्र का भी उदय और विकास ब्रह्मा और व्यास से हुआ था—

वैदूर्य्यपुष्परागाणां कर्केतनभीष्मकयोः ।
परीक्षा ब्रह्मणा प्रोक्ता व्यासेन कथिता द्विज ॥

गरुड़, १।७३।१

व्याकरण शास्त्र

किसी भी संस्कृति की सुरक्षा उसकी भाषा पर आधारित है। भाषा की परिपक्वता और सुरक्षा उसकी व्याकरण पर आधारित है। भाषा और साहित्य के ज्ञान के लिये व्याकरण की परम आवश्यकता है। पाणिनि व्याकरण के बहुत बड़े आचार्य माने गये हैं। उनके पहले भी कई व्याकरण—प्रवक्ता हो चुके थे। स्वयं पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में पूर्वाचार्यों का उल्लेख किया है। पाणिनि की अष्टाध्यायी पर महामुनि कात्यायन का विस्तृत वार्तिक ग्रन्थ है। पाणिनि पर लिखे गये वार्तिकों में कात्यायन का वार्तिक ही प्रसिद्ध ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ स्वतन्त्र रूप से उपलब्ध नहीं होता है। पतंजलि के महाभाष्य में ही विशेषतः इन वार्तिकों की उपलब्धि होती है।

कुछ लोग प्रायः कात्यायन को वररुचि का दूसरा नाम मानते हैं। स्कन्द

१. गरुड़, १।७९।३
२. वही, १।८०।२
३. वही, १।८०।४
४ वही, १।७३।१९
५. वही, १।७३।१४-१९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुराण कात्यायन को याज्ञवल्क्य से कात्यायनी में उत्पन्न पुत्र बताता है। विद्वान कात्यायन का समय ई० पू० ३५० मानते हैं। म० म० गिरिधर शर्मा वार्तिककार का समय ई० पू० की सातवी शताब्दी मानते हैं। इस प्रकार ये याज्ञवल्क्य के निकट स्थित होते हैं।

कात्यायन-व्याकरण

प्राचीन भारत में शब्द-शास्त्र[1] का विशेष अध्ययन किया गया था। बाल-बुद्धि के विकास के लिये गरुड़ पुराण भी संक्षिप्त रूप से कात्यायन के व्याकरण का प्रतिपादन करता है :—

अथ व्याकरणं वक्ष्ये कात्यायन समासतः।
सिद्धशब्दविवेकाय बालव्युत्पत्तिहेतवे ॥

गरुड़, १।२०३।१

व्याकरण शास्त्र के प्रमुख आचार्य पाणिनि मुनि हुए हैं जिन्होंने उग्र तपस्या द्वारा वैयाकरणों में मुख्यता प्राप्त की। उनकी अष्टाध्यायी पर पतंजलि ने महाभाष्य लिखा। पतंजलि मुनि भी व्याकरण शास्त्र के महान् प्रणेता थे। "कात्यायन ने अपने वार्तिक सूत्रशैली में रचे। कात्यायन पाणिनि के सबसे योग्य, प्रतिभाशाली और वैज्ञानिक पारखी एवं एक प्रकार से व्याख्याता हुए हैं। उनका व्याकरण विषयक निजी ज्ञान उच्च कोटि का था। पाणिनि के सूत्रों पर वार्तिक रचकर उन्होंने सूत्रों की पृष्ठभूमि का परिचय दिया एवं उस सम्बन्ध में होने वाले अनेक विचारों की तुलनात्मक ढंग से समीक्षा की। उन्होंने सूत्रों पर नए विचारों की उद्भावना की, कालांतर में जहां नए प्रयोग उत्पन्न हो गए थे वहां पाणिनि-सूत्रों के साथ उन्हें मिलाने का सुझाव दिया और व्याकरण सम्बन्धी सिद्धान्तों के जो मतमतांतर थे उन पर शास्त्रार्थ चलाया……कहीं उन्होंने पाणिनि के सूत्रों में पढ़े हुए शब्दों का मंडन किया है, कहीं दूसरों से उठाई हुई शंकाओं का उत्तर दिया है, कहीं दूसरों की शकाओं की निस्सारता दिखाकर नई दृष्टि से पाणिनि के सूत्रों में शंकास्थलों का संकेत किया है, कहीं अपनी-पराई सभी शंकाओं का निराकरण करके सूत्र की शुद्धता का मंडन किया है, एवं जहां उन्हें जँचा वहाँ सूत्र अथवा उसके एक भाग की आवश्यकता भी दिखाई है। उनकी वार्तिकों की संख्या लगभग ४२६३ हैं, जो उनके पाणिनि-विषयक श्रम का परिचय देते हैं। इस प्रकार की बहुमुखी समीक्षा से पाणिनि का शास्त्र एकदम तप गया है।"[2] अस्तु स्पष्ट है कि कात्यायन व्याकरण शास्त्र

१. गरुड़, १।११४।१४
२. पा० भा०, ७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के कितने निष्णात पण्डित थे। उनके अन्तिम वाक्य से 'भगवतः पाणिने सिद्धम्' से न केवल पाणिनि के प्रति श्रद्धा प्रस्फुटित होती है, प्रत्युत् पाणिनीय शास्त्र की सिद्धि तथा कात्यायनी सूत्रों की उपयोगिता परिलक्षित होती है। निस्सन्देह कात्यायन एक सिद्ध पुरुष थे और उनका व्याकरण-शास्त्र भी 'सिद्ध-शब्द विवेकाय' ही बना। यह व्याकरण इस प्रकार है :—

सुप्तिङन्तं पदं ख्यातं सुपः सप्त विभक्तयः।
स्वौजसः प्रथमा प्रोक्ता सा प्रातिपदिकात्मके॥

गरुड़ १।२०३।२

सुप्तिङन्तं पदं

अर्थात् सुबन्तं तिङन्तं च पदसंज्ञं स्यात्। सुबन्त और तिङन्त की पदसंज्ञा होती है अर्थात सुप् और तिङ् प्रत्ययों के अन्त में लगने से पद बनता है। प्रातिपदिक में लगने वाले प्रत्ययों को सुप् और धातु में लगने वाले प्रत्ययों को तिङ् कहते हैं।

इसी प्रकार विभक्तियों और कारकों के रूप, लिंग, वचन और पुरुष के अनुरूप प्रयोजन और प्रयोग का वर्णन किया गया है। इसके धातुओं-आत्मनेपद् और परस्मैपद के रूपों, प्रयोजन-प्रयोग का वर्णन किया गया है (पूर्वाद्ध, अ० २०३)।

अ० २०४ (पूर्वाद्ध) में सन्धियों, समासों (६ समास—कर्मधारय, द्विगु, तत्पुरुष, बहुव्रीहि, अव्ययीभाव, और द्वन्द्व, १।२०४।११-१३,) तद्धित (जैसे पांडव, शैव, ब्राह्मय और ब्रह्मता), अजन्त पुल्लिग, हलन्त और लिंग-विवेचन करते हुए उदाहरण भी दिये गये हैं। इस प्रकार संक्षेप में कुमार ने कात्यायन को व्याकरण की शिक्षा दी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैद्यक—शास्त्र

राष्ट्रोन्नति प्रजा के शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक स्वास्थ्य पर निर्भर करता है। जब प्रजा रोग-ग्रस्त होगी तो वह कभी सुखी नहीं रह सकती। यही विचार कर भारतीय ऋषियों ने आयुर्वेद की प्रतिष्ठा जीवन की दिव्यता को निखारने के लिये की। आयुर्वेद को एक उपवेद भी माना गया है। इससे भी इस विद्या का महत्व परिलक्षित होता है।

ऋग्वेद में भी (९७ सूक्त, मंडल १०) में औषधीस्तुति से ओषधि-विज्ञान की प्राचीनता और उसका महत्व ज्ञात होता है। यहाँ इस स्तुति में बताया गया है कि औषधियों की कल्पना देवताओं ने की। इन से आरोग्यता और स्वास्थ्य प्रदान करने के लिये प्रार्थना की गई है: "हे पुष्प फल से सम्पन्न औषधियों! तुम रोगी पर अनुग्रह करने वाली बनो। ···पुरुषों को आरोग्य प्रदान कर रोगों से पार लगाओ।"[1] जो इन औषधियों के गुण-धर्म को जानता है वह मेधावी पुरुष चिकित्सक कहलाता है, क्योंकि वह रोगों को शमन करने वाले विभिन्न यत्नों को करता है।[2] फलवाली, फलहीन, पुष्प वाली या पुष्पहीन औषधियों को बृहस्पति उत्पन्न करते हैं।[3]

गरुड़ पुराण (१।२१५।२१) के अनुसार भी आयुर्वेद १८ विद्याओं में एक महत्वपूर्ण विज्ञान था, भारतीय विद्याओं में वैद्यक शास्त्र अत्यन्त प्रचलित रहा है। गरुड़ पुराण (पूर्वार्द्ध, अ० १४६-२०२) अर्थात् ५७ अध्यायों में चिकित्सा शास्त्र अथवा आयुर्वेद के विभिन्न अंगों, सर्व-रोगनिदान (पूर्व० अ० १४७-१६८), अनुपान-विधि (पूर्व०, अ० १६९), ज्वरादि रोगों की चिकित्सा (पूर्व०, अ० १७०-१७३), नाना प्रकार के द्रव्यों और औषधियों तथा मन्त्रादिकों का वर्णन (पूर्व०, अ० १७४-१९२) किया गया है। पूर्व०, अ० २०२ में वैद्यक औषधियों का वर्णन भौगोलिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है। विभिन्न देशों में होने वाली औषधियों के नाम देश नामों पर ही आधारित थे, यथा—

वर्द्धमानक, हैमवती, कलिंगेन्द्र, कौन्ती, रामठं, काश्मीर वाह्लिकं, काश्मरी, श्रीपर्णी, ताम्रपर्णी, समंगा, मलयजं, उशीरं, काम्पिल्ल, कालिन्दी,

---

१. ऋग्वेद, १०।८।९७।१-५

२. वही, १०।८।९७।६

३. वही, १०।८।९७।१५; १०।८।९७।१९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गाँगेरुकी, सिन्धुसैन्धव, सिन्धूत्थमणि, काशीशं, सौराष्ट्रीमृत्तिकाक्षारं, काक्षी (काच्छी?), ताप्यं ताप्युत्थसम्भवम् (?) नैपाली, रसः पारद, ताम्रं औदुम्बरं, सौवीरकं, और राजवृक्षं च रैवत संज्ञकं (पूर्व०, अ० २०२।३, १५, १६, १९, २२, २४, २६, २८, ३१, ३३, ४६, ४९, ५०, ६०, ६३, ६४, ६५, ६७, ८३)। अतः वैद्य के लिये भूगोल का जानना, देखना और औषधि परिचय करना परमाश्वयक था।

अन्य वेदों के साथ ही आयुर्वेद का भी अध्ययन किया जाता था।[1] सुश्रुत संहिता के अध्याय २ में आयुर्वेद उपनयन का वर्णन आयुर्वेद के अध्ययन का महत्व सिद्ध करता है। इस उपनयन संस्कार में ब्रह्मा-प्रजापति, अश्विनी-कुमारों और इन्द्र तथा धन्वन्तरि, भरद्वाज और आत्रेय आदि की पूजा की जाती थी। इससे यही परिलक्षित होता है कि वैदिक शिक्षा के समान ही आयुर्वेद की शिक्षा का भी यथेष्ट महत्व था।

भास्कर संहिता

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के अनुसार विष्णु ने ही विप्र रूप धारण कर वैद्यकी संहिता की प्रतिष्ठा की (विप्ररूपी जनार्दनः संहितां वक्तुमारेभे संहितार्थं च वैद्यकमी)।[2] उन्होंने बताया कि "ईश्वर ने सर्व मंगलमय चारों वेदों की रचना के साथ ही आयुर्वेद का भी प्रणयन किया। इसे पंचम वेद कहा गया है जिसको सूर्य (भास्कर) ने भगवान से प्राप्त कर स्वतन्त्र संहिता बनाई। भास्कर ने ही अपनी आयुर्वेद संहिता को अपने शिष्यों को दी और उन्हें इसका अध्ययन भी कराया। उनके शिष्यों ने ही अन्य संहिताएं बनाईं (ब्रह्म वै०, १, अ० १६)। (भास्करश्च स्वशिष्येभ्य आयुर्वेदं स्वसंहिताम्। प्रददौ पाठयामास ते चक्रुः संहितास्ततः)[3]। उन शिष्यों और उनके द्वारा रचे गये आयुर्वेद तन्त्रों के नाम भी दिये गये हैं। धन्वन्तरि, दिवोदास, काशीराज, दो अश्विनीकुमार, नकुल, सहदेव, अर्कि, च्यवन, जनक, बुध, जाबाल, जाजलि, पैल, करथ और अगस्त्य नामक १६ आचार्य वेद वेदांगों में पारंगत थे।[4] उन्होंने चिकित्सा

---

१. दिव्यावदान ३२८।९ : ऋग्वेदोऽधीतः यजुर्वेदोऽधीतः अथर्ववेदोऽधीतः आयुर्वेदोऽधीतः।

२. ब्रह्मवैवर्त, भाग १, १६।६ (आनन्दाश्रम १९३५ ई०);
महाभारत (शान्ति पर्व, २१०।२१): कृष्णात्रेयश्चिकित्सतम्; अर्थात् कृष्णात्रेय को चिकित्सा शास्त्र का ज्ञान हुआ।

३. ब्रह्मवैवर्त, १।१६।७-११

४. वही, १।१६।११-१४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शास्त्र के मूल १६ ग्रन्थों (चिकित्सा शास्त्र बीजानि तन्त्राण्येतानि षोडश)[१] को आयुर्वेद रूपी समुद्र का मन्थन कर (मथित्वा ज्ञानमन्थेनैवायुर्वेद पयोनिधिम्) प्रगट किया। जिनसे अन्य विद्वानों ने इस विद्या को प्राप्त किया।[२] प्रथमतः धन्वन्तरि भगवान् ने चिकित्सातत्त्वविज्ञान नामक तन्त्र, दिवोदास ने चिकित्सादर्पणं, काशीराज ने चिकित्सा कौमुदीं, अश्विनी कुमारों ने चिकित्सा-सारतन्त्रं, नकुल ने वैद्यक सर्वस्वं, सहदेव ने व्याधिसिन्धुविमर्दनस्, यमराज (अर्कि) ने ज्ञानार्णवं-महातन्त्र, च्यवन ऋषि ने जीवदानं, योगीजनक ने वैद्यसंदेहभंजनम्, चन्द्रपुत्र (बुध) ने सर्वसार, जाबाल ने तन्त्रसारकम्, जाजलिमुनि ने वेदांगसार-तन्त्र, पैल ने निदानं, करथ ने सर्वधर-तन्त्रं और अगस्त्य ने द्वैधनिर्णय-तन्त्रं की रचना की।[३] ये १६ बीजग्रन्थ भास्कर संहिता[४] पर ही आधारित थे।

धान्वन्तरं वैद्यकं

अन्य पुराणों की भांति ही गरुड़ भी धन्वन्तरि को विष्णु का अवतार बताता है। उन्होंने देवादिकों के जीवन रक्षण के लिये आयुर्वेद का प्रणयन कर विश्वामित्र के पुत्र महात्मा सुश्रुत से उसकी व्याख्या की (गरुड़ १।१४५। ४१-४२) पहले भी आत्रेय आदि मुनियों द्वारा इसका विवेचन किया गया था (गरुड़ १।१४६।१)। गरुड़ पुराण में वैद्यक शास्त्र का निरूपण धन्वन्तरि द्वारा सुश्रुत पर की गई व्याख्या (एवं धन्वन्तरिः प्राह सुश्रुताय च वैद्यकम्) पर ही आधारित है।[५] इसमें रोगों का निदान करते हुए वैद्यक शास्त्र का वर्णन किया गया है (वैद्यकं सनिदानकम्)।[६]

इस विज्ञान को जीवदानं (च्यवन कृत)[७] और संजीवनी विद्या[८] भी कहा गया है। धान्वन्तर वैद्यक का भी यही उद्देश्य था :—

देवादीनां जीवनाय आयुर्वेदमुवाच ह।
विश्वामित्रसुतायैव सुश्रुताय महात्मने ॥

गरुड़, १।१४५।४२

---

१. ब्रह्म० वै०, १।१६।२२
२. वही, १।१६।२३
३. वही, १।१६।१५-२१
४. वही, १।१६।२४
५. गरुड़, १।२०२।१
६. वही, १।३।३
७. ब्रह्मवैवर्त, १।१६।१९
८. स्कन्द पुराण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसे गारुड़ी विद्या भी कहते थे जिसकी दक्षता से ही कश्यप ने जले हुए वृक्ष को पुनः जीवन दान दिया था[१]:—

कश्यपो गारुड़ाद् वृक्षं दग्धं चाजीवयद्यतः ।
गरुड़: स हरिस्तेन प्रोक्तं श्री कश्यपाय च ।।

गरुड़ १।३।७

मुनि कश्यप एक प्रसिद्ध वैद्य थे जिनको तक्षक द्वारा डसे हुए परीक्षित की चिकित्सा के लिये बुलाया गया था[२] । वह वैद्यक में निपुण ब्राह्मण थे ।[३] रास्ते में ही कश्यप के ज्ञान और मन्त्रशक्ति से प्रभावित होकर (तक्षक द्वारा विष से दग्ध वृक्ष को हरा कर देने पर) धन के लोभ से अनेक रत्नों को देकर वापस कर दिया ।[४] कश्यप का यह कार्य महान पातक कहा गया है ।

स्कन्द कहते हैं कि "जो चिकित्सा करने में समर्थ होता हुआ भी जीव रक्षा नहीं करता है उसे ब्रह्म घातक कहा जाता है । क्रोध, काम, लोभ अथवा मात्सर्य से मूढ़ होकर (कार्य-विमुख) जो विष रोग से पीड़ित प्राणी की रक्षा नहीं करता वह महा पापी समझा जाता है । वह जाति और समाज से च्युत कर दिया जाता है । न तो कोई उससे बोले ही और न उसकी बात का जवाब ही दे ।[५] इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में वैद्यक शास्त्र और कर्म मानवता और मंगल की उदात्त भित्ति पर प्रतिष्ठित था ।

आयुर्वेद के विज्ञान और चिकित्सा की यथार्थता तथा धर्म और दयालुता से व्याधितत्त्व-परिज्ञान (डायग्नोसिस) और वेदना-निग्रह (रोग निवारण) करना ही वैद्य की वैद्यकी (वैद्यस्य वैद्यत्वं) है । वैद्य के हाथ में आयु का देना नहीं है (न वैद्य: प्रभुरायुषः) ।[६] जब तक सांस रहे चिकित्सा करनी चाहिये । काल की गति को कौन जानता है :—

यावत्कण्ठगताः प्राणा मुमूर्षोर्मानवस्य हि ।
तावच्चिकित्सा कर्तव्या कालस्य कुटिला गतिः ।।

स्कन्द, २।१।११।७९

यही भिषग्विद्या के पण्डितों का मत है (स्कन्द २।१।११।८०) ।

विभिन्न कायिक और मानसिक रोगों का निदान, औषधियों का वर्णन तथा पथ्यापथ्य पर विचार किया गया है । अपथ्य ही रोगों की जड़ है अस्तु 'धन्वन्तरिश्चापथ्याच्च······रक्षतु' ।[७]

---

१. गरुड़, १।२।५५
२. स्कन्द पु०, २।१।११।२८-३०
३. वही, २।१।११।९४
४. वही, २।१।११।३१-४५
५. वही, २।१।११।७०-७४
६. ब्रह्मवैवर्त, भाग १, १६।२५-२६
७. गरुड़, १।१९६।१०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रोग–विज्ञान

गरुड़ पुराण में उल्लिखित रोग निदान आत्रेय आदि मुनियों के मतों पर ही आधारित है। इसे धन्वन्तरि सुश्रुत को पढ़ाते हैं। रोग, पाप्म, ज्वर, व्याधि, विकार, दुष्टं, आमय, यक्ष्मा, आतंक, गद और आबाध, शब्द पर्याय (समानार्थक) ही हैं।[1] निदान (मूल कारण), पूर्वरूप (प्रारम्भिक रोगलक्षण) रूप (लक्षण, रोग की वर्तमान दशा), उपशय (वृद्धि) और संप्राप्ति रोग विज्ञान के पांच अंग हैं।[2] निमित्त, हेतु, आयतन, प्रत्यय, उत्थान तथा कारणों को ही निदान कहते हैं जिनसे रोग का पूर्वरूप जाना जाता है।[3] दोष विशेष के ज्ञान बिना ही जिन लक्षणों से उत्पद्यमान रोग जाना जाय उन लक्षणों को सामान्य पूर्व रूप कहते हैं। अल्पता के कारण विशिष्ट व्याधि के विशिष्ट रूपों के कुछ व्यक्त हों तो उसे रोग का विशिष्ट पूर्व रूप कहते हैं। अतः व्याधि के लक्षणों की अदृष्टावस्था में जब पीड़ा का अनुभव हो रहा है, रोग का प्राग्रूप कहलाता है। व्यक्त हुआ पूर्व रूप ही रूप कहलाता है। अर्थात् जब पूर्वावस्था मे प्रतीयमान अव्यक्त लक्षण ही व्यक्त होकर रोग का ज्ञान कराते हैं तब उन्हें रूप कहते हैं। संस्थान, व्यञ्जन, लिंग, लक्षण, चिह्न और आकृति रूप के ही पर्याय हैं।[4] हेतु विपरीत, व्याधिविपरीत, हेतु और व्याधि दोनों के विपरीत तथा हेतुविपरीत अर्थकारी (हेतु आदि के समान प्रतीत होने पर भी विपरीत क्रिया करने वाला), व्याधिविपरीत अर्थकारी और हेतु व्याधि उभय विपरीतार्थकारी औषध, अन्न तथा विहार के परिणाम में सुखदायक उपयोग को उपशय कहते हैं। इसी को सात्म्य भी कहते हैं उपशय के विपरीत अनुपशय होता है, जिसको व्याध्यसात्म्य भी कहते हैं।[5] दोष जिस प्रकार के निदानों से दूषित होकर और जिस प्रकार ऊर्ध्व आदि भिन्न गतियों के द्वारा शरीर में धातु आदि को दूषित कर रोग को उत्पन्न करता है उसे सम्प्राप्ति कहते हैं। जाति और आगति इसके पर्याय हैं।[6]

---

१. गरुड़, १।१४६।१-२
२. वही, १।१४६।३; मा० नि० १।४
३. गरुड़, १।१४६।४; मा० नि० १।५
४ गरुड़, १।१४६।५-६; माधव निदान १।६-७
५. गरुड़, १।१४६।७-८; माधव निदान १।८-९
६. गरुड़, १।१४६।९; । यथा दुष्टेन दोषेण यथा चानुविसर्पता।
निवृत्तिरामयस्यासौ सम्प्राप्तिर्यातिरागतिः॥

माधव निदान १।१० : में दूसरे पद में याति के स्थान पर जाति प्राप्त होता है :—

निवृत्तिरामयस्यासौ सम्प्राप्तिर्जातिरागतिः।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्प्राप्ति भेद

संख्या, विकल्प, प्राधान्य, बल और काल की विशेषताओं के आधार पर सम्प्राप्ति के भेद किये जाते हैं—जैसे यहीं पर कहा जाता है कि ज्वर आठ प्रकार के होते हैं (यह संख्या सम्प्राप्ति हुई)। रोगों की उत्पत्ति में कारणभूत दोषों की अंशांश कल्पना (न्यूनाधिक्य आदि का विवेचन), विकल्प, सम्प्राप्ति, स्वतन्त्रता और परतन्त्रता द्वारा दोषों का प्राधान्य या अप्राधान्य विवेचन प्राधान्य सम्प्राप्ति, हेतु, पूर्वरूप, और रूप की सम्पूर्णता या अल्पता के द्वारा बल या अबल का विवेचन बल सम्प्राप्ति और दोषानुसार रात्रि, दिन, ऋतु एवं भोजन (के परिपाक) के अंश (आदि, मध्य और अन्त) द्वारा रोगकाल का ज्ञान काल सम्प्राप्ति (व्याधिकालो) कहा जाता है।[1]

इस प्रकार निदान के सामान्य अभिधेयों (निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति) का विवेचन किया गया है। उसका विस्तार से वर्णन किया गया है[2]।

द्विविध-निदान

सभी रोगों का मूल कारण दोष का कुपित होना ही है (सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपितामलाः)।[3] उस दोष-प्रकोप का भी कारण अनेक प्रकार के अहित पदार्थों का सेवन (तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहित सेवनं)।[4] यह प्रसिद्ध ही है कि—द्विविधं हि रोगस्य कारणं विप्रकृष्टं सन्निकृष्टं च—अर्थात् रोग के दो कारण हैं, प्रथमतः विरुद्ध आहारादि का सेवन (विप्रकृष्ट) और वातादि विकारों का प्रकोप (सन्निकृष्टं)। सुश्रुत का मत है—

नास्ति रोगो विना दोषैर्यस्मात्तस्माद्विचक्षणः।
अनुक्तमपि दोषाणां लिंगैर्व्याधिमुपाचरेत्॥

सु० स०, अ० ३५

अहित (ऊपर कह चुके हैं कि विविधाहित सेवनं) तीन प्रकार का कहा गया है और यह तीनों (वायु, पित्त, तथा कफ) का योग ही है जो तिक्ता (तीता), उष्ण, कषाय, आम्ल, रूक्ष या अधिक भोजन करने से अथवा दौड़ने, चढ़ने, (कुछ भारी चीज) उठाने, जोर-जोर से बातचीत करने, रात में जागरण, अथवा अधिक कार्य करने, भय, शोक, चिन्ता, थकान (व्यायाम)

---

१. गरुड़, १।१४६।१०-१२; माधव, १।११-१३
२. गरुड़, १।१४६।१३ (१); माधव, १।१४ (१)
३. गरुड़, १।१४६।१३ (२); माधव, १।१४ (२)
४. गरुड़, १।१४६।१४ (१); माधव, १।१५ (१)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ओर मैथुन वायु को प्रकोपित कर देते हैं जो रात्रि या दिन के अन्त होने पर, ग्रीष्म काल में और भोजन के समय स्वतः परिलक्षित होती रहती है ।[१] कटु, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण, क्रोध, दाह, अपच आदि से पित्त कुपित्त हो जाता है जिसका उभार शरत्कालीन दिवसों या रात्रि के बीच विशेषतः होता है ।[२] मीठा, अम्ल, नमक (नमकीन), चिकनई और अत्यधिक शीतल पदार्थों आदि से कफ कुपित हो जाता है । एक जगह ही अधिक समय तक बैठे रहना, नींद न आना, दिन में सोने से कफ कुपित होता है । इसका प्रकोप वसन्त ऋतु में दिन या रात के पूर्व भाग में बढ़ता है ।[३] वायु, पित्त और कफ की विषमता और अव्यवस्था से ही रोग उत्पन्न होते हैं ।

इसी प्रकार गरुड़ पुराण में असंख्य औषधियों और उनके प्रयोग का वर्णन दिया गया है । गरुड़ पुराण के अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका में विद्वान् शास्त्री यम० एन० दत्त का विचार है कि गरुड़ पुराण का लेखक उस समय के बौद्ध साहित्य से परिचित था । सुश्रुत संहिता ई० पूर्व की दूसरी शताब्दी में नागार्जुन द्वारा लिखी गयी थी । गरुड़ पुराण का लेखक नागार्जुन के ग्रन्थों और अन्य बौद्ध आचार्यों से जिन्होंने वैद्यक पर लिखा है, परिचित था ।[४]

---

१. गरुड़ १।१४६।१४-१६

२. वही १।१४६।१७

३. वही १।१४६।१८-१९

४. गरुड़ पुराणम्, (इंग्लिश ट्रान्सलेशन प्रिफ़ेस, पृ० ii-iii

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

११–मूर्तिकला और देव-प्रतिमाएं

हिन्दू संस्कृति और सभ्यता के अन्य पक्षों की भाँति प्राचीन भारतीय कला का धर्म से अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है।[1] देव-प्रतिमाएं देवार्चन[2] से सम्बन्धित हैं। स्पष्ट है कि अर्चा (मूर्ति) का आधार उसकी अर्चा (पूजा) ही है। धार्मिक जीवन में देवार्चा (देव पूजा) का विशेष महत्व है। अस्तु, मूर्ति कला और प्रतिमा-विज्ञान को समझने के लिए पूजा-रहस्य का जानना आवश्यक है। ऊपर बताया गया है कि पूजा के दो मुख्य प्रकार-आभ्यन्तर और बाह्य थे। बाह्य पूजा के भी दो स्वरूप थे—वैदिक और तांत्रिक। वैदिक पूजा के भी दो भेद थे और ये भेद 'मूर्तिभेदेन' (अर्थात् मूर्ति भेद से) किये गये हैं।[3] इसका एक भेद था कि निरंजन और निराकार की पूजा तथा उसके ही साकार स्वरूप की पूजा इसका दूसरा भेद था। तांत्रिक पूजा में भी देवी-देवताओं की मूर्तियों की पूजा की जाती है। जैसा ऊपर बताया जा चुका है कि अधिकांशत: तांत्रिक-पूजा तामसी और राजसी गुण प्रधान पूजा पद्धति है। अत: तांत्रिक-पूजा की मूर्तियाँ भी ऐसी ही बनायी गई। तांत्रिक पूजा के अन्तर्गत ही नाग, यक्ष और शक्ति (चण्डी, चामुण्डा, आदि) की पूजा के लिए प्रतिमाएँ बनीं। तांत्रिक पूजा तंत्रोक्त विधान पर आधारित थी।

इसी पूजा विधान के दो मुख्य स्वरूप भी थे—वैदिक और नास्तिक। जो श्रुति-स्मृति विरुद्ध शास्त्र—वाम, कापालक, कौलक और भैरवागम—थे उनकी निन्दा की गई है। परन्तु शैव, वैष्णव, सौर, शाक्त और गाणपत्य मतों को कुछ-कुछ वेद सम्मित होने से मान्य बताये गये हैं। परन्तु समाज में ये धार्मिक मत चलते ही रहे। भारत के धार्मिक प्रवाह को यदि गंगा का रूप कहें तो अनुचित न होगा। जिस प्रकार असंख्य धाराएँ—नदियों, नालियों और गन्दे नाले—इसमें गिर कर अपने रूप को गंगा के रूप में बदल देते हैं और सभी लोग उसे पवित्र मानने लगते हैं; ठीक उसी प्रकार सभी धार्मिक रीतियाँ—वैदिक और तान्त्रिक—भी मन्दिर में अपने रूप को छोड़कर मान्य बन गयीं। मन्दिर के सामने ही मिथुन-दृश्य मिलते हैं। सात्विक वृत्ति वाला धार्मिक मनुष्य चौंक कर खड़ा हो जाता है; सोचने लगता है·········और तभी

१. दृष्टव्य, बनर्जी, डे० हि० आ०, पृ० २-४

२ गरुड़, १।३४।१

३. देवी भा०, ७।३९ २-४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोई विदेशी पाश्चात्य इसका कारण भी पूछ बैठता है। प्रायः हम उसकी सही व्याख्या भी नहीं कर पाते। इसका उत्तर प्राचीन धार्मिक जीवन में विभिन्न विचारों का एक समन्वय ही है। दृष्टव्य, कृष्णमिश्र कृत प्रबोध चन्द्रोदय, जहाँ विष्णु-भक्ति, क्षपणक-जैन और बौद्ध धाराओं का संगम—भक्ति संगम चित्रित किया गया है :—

"In this manner it has held out the right hand of brotherhood to the Fetish—worshipping aborigines of India; it has stopped to the demonolatory of various savage tribes; it has not scrupled to encourage the adoration of the fish, the boar, the serpent, trees, plants, stones and devils; it has permitted a descent to the most degrading cults of the Dravidian races; while at the same time it has ventured to rise from the most grovelling practices to the loftiest heights of philosophical speculation........ ..."[1]

बुद्ध में योगी शिव और जनपालक जर्नादन (विष्णु) के रूप को देख सकते हैं। हिन्दू धर्म के पाँच मतों—शैव, वैष्णव, शाक्त, गाणपत्य और सौर तथा छठे पाशुपत (कापालिक) की स्थापना का श्रेय शंकराचार्य (षण्मत स्थापक) को दिया जाता है। आनन्दगिरि ने शंकर दिग्विजय (ईसा की नवीं और दसवीं शताब्दी) में बताया है कि उस समय शिव, विष्णु और ब्रह्मा के उपासकों के अतिरिक्त सूर्य, चन्द्र, कुवर, यम, वरुण, शेष और बहुत से देवी-देवताओं के उपासक थे।[२] मन्दिरों में और इनके बाहर लोकपाल, द्वारपाल आदि रूपों में इनको मूर्त पाते हैं। गरुड़ पुराण में इन द्वार-देवताओं की प्रमुखता प्राप्त होती है जिसे हम गुप्त युग और इसके बाद पूर्व मध्यकाल के बने मन्दिरों में पाते हैं। खजुराहो के मन्दिरों का युग (नवीं और बारहवीं शताब्दी) भी गरुड़ पुराण का युग है। यहाँ भी शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर, गाणपत्य तथा जैन सम्प्रदायों की संगति मन्दिरों और मूर्तियों में हुआ। यही चन्देल युग की विशिष्टता थी। यहाँ भी मन्दिरों के अलंकृत द्वार गरुड़ पुराण की साक्षी देते हैं। कुछ मन्दिर प्रचलित प्रथित पंचायतन पूजा के आदर्श उदाहरण हैं। मूर्तिकला अपने अभिमंडित स्वरूप में यहाँ साक्षात दृष्टव्य है।[3]

---

1. Monier Williams, Religious Thought and Life in India, Part I (London, 1883) p. 58.
२. वही, पृ० ५९
३. दृष्टव्य—डा० उर्मिला अग्रवाल, खजुराहो स्कल्पचर्स (=ख० स्क०)
डा० रामाश्रय अवस्थी, खजुराहो की देव प्रतिमाएँ (=ख० दे०)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आयुधों की पूजा भी गरुड़ पुराण में विशेष महत्व के साथ वर्णित मिलती है। खजुराहो में हमें आयुध पुरुषों के मूर्त रूप मिलते हैं। गंगा-यमुना के द्वार देवताओं की भव्यता भी कलासौष्ठव का प्रत्यक्ष उदाहरण है।

देवताओं की प्रतीक और पाषाण पूजा भी प्रचलित थी। शिवलिंग, वाण-लिंग (नर्मदा में होने वाले श्वेत पाषाण) और शालग्राम (गंडकी में पाये जाने वाले काले पत्थर) की पूजा शैव और वैष्णवों में प्रचलित है। गरुड़ पुराण में शालग्राम-शिला का वर्णन करते हुए ही विष्णु की २४ मूर्तियों (केशवादि——कृष्णान्त अर्थात् प्रथम या आदि केशव से लेकर अन्तिम कृष्ण तक) का वर्णन मिलता है (पूर्वार्द्ध, अ० ४५)। शालग्राम शिला पर बने हुए लक्षणों और लांछनों के अनुसार ही देवी भागवत पुराण में विष्णु के विभिन्न नाम-रूपों का वर्णन मिलता है :

अहं च शैलरूपेण गंडकीतीर सन्निधौ।
अधिष्ठानं करिष्यामि भारते तव शापतः॥ ५६

कोटिसंख्यास्तत्र कीटास्तीक्ष्णदंष्ट्रावरायुधैः।
यच्छिला कुहरे चक्रं करिष्यंति मदीयकम्॥ ५७

एकद्वारं चतुश्चक्रं नवीन नीरदोपमम्।
नवीन नीरदाकारं **लक्ष्मीनारायणाभिधम्**॥ ५८
एक द्वारं चतुश्चक्रं नवीननीरदोपमम्।
लक्ष्मीजनार्दनो ज्ञेयोरहितो बनमालया॥ ५९
द्वारद्वये चतुश्चक्रं गोष्पदेन विराजितम्।
रघुनाथाभिधं ज्ञेयं रहितं बनमालया॥ ६०
अतिक्षुद्रं द्विचक्रं च गोष्पदेन बिराजितम्।
तद्वामनाभिधं ज्ञेयं रहितं बनमालया॥ ६१
अतिक्षुद्रं द्विचक्रं च नवीनजलदप्रभम्।
विज्ञेयं **श्रीधरं** रूपं श्रीपदं गृहिणां सदा॥ ६२
स्थूलं च वर्तुलाकारं रहितं बनमालया।
द्विचक्रं स्फुटमत्यंतं ज्ञेयं **दामोदराभिधम्**॥ ६३
मध्यमं सप्तचक्रं च छत्रभूषण भूषितम्।
रणरामाभिधं ज्ञेयं शरतूणसमन्वितम्॥ ६४
मध्यमं सप्तचक्रं च छत्रभूषणभूषितम्।
राजराजेश्वरं ज्ञेयं राजसंपत्प्रदं नृणाम्॥ ६५
द्विसप्तचक्रस्थूलं च नवनीरदसुप्रभम्।
अनंताख्यं च विज्ञेयं चर्तुवर्गफल प्रदम्॥ ६६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चक्राकारं द्विचक्रं च सश्रीकं जलदप्रभम् ।
सगोष्पदं मध्यमं च विज्ञेयं **मधुसूदनम्** ।। ६७
सुदर्शनं चैक चक्रं गुप्तचक्रं **गदाधरम्** ।
द्विचक्रं हयवक्राभं **हयग्रीवं** प्रकीर्तितम् ।। ६८
अतीव विस्तृतास्यं च द्विचक्रं विकटं सति ।
नरसिंहं सुविज्ञेयं सद्यो वैराग्यदं नृणाम् ।। ६९
द्विचक्रं विस्तृतास्यं च वनमाला समन्वितम् ।
लक्ष्मीनृसिंहं विज्ञेयं गृहिणां च सुखप्रदम ।। ७०
द्वारदेशे द्विचक्रं च सश्रीकं च समं स्फुटम् ।
वासुदेवं तु विज्ञेयं सर्वकाम फलप्रदम ।। ७१
प्रद्युम्नं सूक्ष्मं चक्रं च नवीननीरदप्रभम् ।
सुषिरच्छिद्रबहुलं गृहिणां च सुखप्रदम् ।। ७२
द्वैचक्रे चैकलग्ने च पृष्ठं यत्र तु पुष्कलम् ।
संकर्षणं सुविज्ञेयं सुखदं गृहिणां सदा ।। ७३
अनिरुद्धं तु पीताभं वर्तुलं चातिशोभनम् ।
सुखप्रदं गृहस्थानां प्रवदंति मनीषिणः ।। ७४
शालग्रामशिला यत्र तत्र सन्निहितो हरिः ।
तत्रैव लक्ष्मीवसति सर्वतीर्थसमन्विता ।। ७५

देवी० भा०, ९।२४।५६-७५

ऊपर के उद्धरण से ज्ञात होता है कि :—

(१) विष्णु के विभिन्न नाम उनके भिन्न-भिन्न रूपों पर आधारित थे और रूपों का विभेदन लक्षणों के आधार पर किया गया था । अतः यह विवरण शालग्राम शिला पर आधारित होते हुए भी विष्णु की विविध मूर्तियों पर प्रकाश डालता है।

(२) शालग्राम शिला पर लांछनों—चक्र, छत्र, बनमाला, शरतूण (रणराम—परशुराम से सम्बद्ध), हयवक्त्राम (घोड़े का मुँह-हयग्रीव का), तथा विस्तृतास्यं (अथवा विवृतास्यं चौड़ा खुला हुआ मुंह)—नरसिंह को नदी में रहने वाले करोड़ों कीड़ों ने अपने पैने दाँतों से बनाया था (देवी भा०, ९।२४।५७) ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि ये विभिन्न मूर्तियां प्रकृति निर्मित थीं । प्रकृति किसी भी मूर्ति-विधान का अनुसरण नहीं करती थी । कालान्तर में जब शिल्पी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी इन विविध मूर्तियों को बनाने लगा तभी मूर्ति-विधान का प्रणयन किया गया ।

प्रारम्भिक शिल्पी-विश्वकर्मा आदि भी इसीलिए देव शिल्पी[१] कहे गये हैं, जो शिल्पी भी थे और शास्त्रज्ञ (अशेष शिल्पविशेषाचार्य:)[२] भी । उन्होंने मूर्तियाँ भी गढ़ी और तद्विषयक मूर्ति-विद्या की भी प्रतिष्ठा की । आगे चल कर उनकी शिष्य परम्परा की कृतियों से यहाँ शिल्प और शास्त्र समृद्ध होता रहा ।

यहाँ यह भी ध्यान दिलाना आवश्यक है कि मूर्ति पूजा भी अपने प्रारम्भिक काल में प्रतीकोपासना थी । ये शालग्राम, विष्णु के पाषाण प्रतीक ही थे । शंखचूड के शापवश विष्णु ने पाषाण-रूप स्वीकार कर लिया तथा गंडकी के निकट ही उन्होंने अपना अधिष्ठान बनाया :—

अहं च शैलरूपेण गंडकीतीर सन्निधौ ।
अधिष्ठानं करिष्यामि भारते तव शापत: ।।

देवी भा०, २४।५६

पद्म पुराण गल्लकी (गण्डकी) माहात्म्य के सम्बन्ध में बताता है कि वहाँ नित्य नारायण भगवान् निवास करते हैं । ऋषि, देवता, रुद्र, नाग और यक्ष भी (इसीलिए) वहाँ उस स्थूलरूपधारी विष्णु के समीप रहते हैं । इस स्थान पर बहुत प्रकार की मूर्तियां हैं । इस विष्णु स्थल में चौबिस मूर्तियाँ (चतुर्विशति मूर्तीनां जातय: सन्ति तत्र वै) और मत्स्यरूप, कूर्मरूप, वाराही (मूर्ति), नारसिंही, वामनी, राममूर्ति, परशुराम, कृष्णरूप, बुद्ध, कल्कि और कपिल की मूर्तियां हैं । वहाँ अन्य भी विविधाकार वाली बहुत-सी विभिन्न मूर्तियाँ हैं ।[३] इससे स्पष्ट है कि शालग्राम का प्रसिद्ध विष्णु क्षेत्र विविध मूर्तियों का आगार था । पुराणों—पद्म, अग्नि और गरुड़—में विष्णु की चौबिस मूर्तियों का वर्णन शालग्राम मूर्तियों के वर्णन में ही किया गया है । अग्निपुराण के अ० ४६-४७ में शालग्राम शिला और अ० ४८ में विष्णु की २४ मूर्तियों का वर्णन किया गया है । पद्म पुराण के पाताल खंड में उल्लिखित विष्णु की चतुर्विशति मूर्तियों का वर्णन गोपीनाथ राव, जितेन्द्र नाथ बनर्जी, द्विविजेन्द्र नाथ शुक्ल और रामाश्रय अवस्थी प्रभृति लेखकों ने किया है । परन्तु इन्होंने राव का ही अनुकरण किया है । पद्म पुराण के इसी अध्याय में चौबिस मूर्तियों के बाद

१. गरुड़, १।६।३४ (२)
विष्णु पुराण १।१५।११९-१२१, ४।२।९७
२. विष्णु पु०, ४।२।९८
३. पद्म पु०, ६।७६।५-१२ (१)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शालग्राम शिला के लांछनों के अनुसार अन्य विष्णु रूपों की कल्पना की गयी है। इसी अध्याय के अन्त में ब्रह्मा, महेश्वर, देवियों, दिवाकर, गणेश और स्कन्द की मूर्तियों का भी उल्लेख करते हुए यह बताया गया है कि ये मूर्तियाँ प्रासादों में प्रतिष्ठापित कर पूजी जाती थीं।[१] गरुड़ पुराण भी पद्म पुराण के इस अध्याय का वर्णन करते हुए इन मूर्तियों का उल्लेख करता है।[२] इनके अतिरिक्त अन्य अध्यायों में भी गरुड़ पुराण ब्रह्मा, विष्णु और उनकी विविध अवतार-मूर्तियों, शिव, देवी, गणेश, स्कन्द और सूर्य तथा अन्य देव मूर्तियों का उल्लेख करता है। साथ ही हम विष्णु के विभिन्न पशु रूपों[3] का भी उल्लेख पाते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि गरुड़ पुराण हिन्दू मूर्ति कला के अध्ययन का महत्वपूर्ण साधन है और इस ओर विद्वानों का ध्यान नहीं गया।

भारतीय धर्म के इतिहास में क्रिया योग[४] का विशेष महत्व है। इससे ही मूर्ति पूजा को बल मिला। ध्यान[५] का मूर्तिकला से घनिष्ठ सम्बन्ध है। विष्णु की आराधना में विष्णु का ध्यान करना आवश्यक है। मूर्ति का ध्यान[६] करने से मुक्ति मिलती है। उसके ही सामने स्तवन और जप भी होता है।[७] ध्यान का धार्मिक साधना में विशेष महत्व है।[८] इसी प्रकार अन्य देवी-देवताओं का भी चिन्तन किया जाता है। इस ध्यान के आलम्बन के लिए ही मूर्तियाँ बनतीं हैं। साकार[९] की ही मूर्तियाँ चन्दन, स्वर्ण[१०] तथा पाषाण और

---

१. पद्म पुराण, पाताल खंड, अ० ७८

२. गरुड़, पूर्वार्द्ध, अ० ४५

३. वही, १।८७।८, १२, १६, २०, २४, ३०, ५५

४. वही, १।३४।२२; मत्स्य पु०, अध्याय २५७,

मत्स्य, २५७।२ :

क्रियायोगं प्रवक्ष्यामि देवतार्चानुकीर्तनम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं यस्मान्नान्यत् लोकेषु विद्यते ॥

५. गरुड़, १।२।४३ (१)

६. वही, १।२।१२-१३; १।२२२।१, ३४

७. वही, १।४४।१४

८. वही, १।२०२।१-१४, ३५

९. विष्णु पु०, ३।४६।३-६

१०. वही, १।३७।७ (१)

प्रतिमा चन्दनस्वर्णनिर्मितां प्रतिपूज्य च ॥

वही, २।१७।३९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्रों[1] में भी बनती थीं। मत्स्य पुराण के अनुसार सोने, चांदी. तांबे, रत्न, पत्थर, लकड़ी, लोहे और काँसे की भी मूर्तियाँ बनती थीं :—

सौवर्णी राजती वापि ताम्री रत्नमयी तथा।
शैली दारुमयी चापि लोहसंघमयी तथा॥

मत्स्य०, २५७।२०

रीतिका धातुयुक्ता वा ताम्रकांस्यमयी तथा।
शुभदारूमयी वापि देवतार्चा प्रशस्यते॥

वही, २५७।२१

१. लिंग पु०, २।५९।४३ (१):

शिलोद्भवानां बिंबानां चित्राभासस्य वा पुनः॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२—ब्रह्मा

ब्रह्मा को **लोकपितामह**[१] कहा जाता है। यह इनकी ज्येष्ठता और महिमा का परिचायक है। परन्तु उनको कमलोद्भव[२] भी बताया गया है। वह विष्णु की नाभि से निसृत कमल से उत्पन्न हुए बताये और दिखाये जाते हैं।

वह चतुर्मुख (ब्रह्मा चतुर्मुखी भूत्वा)[३] दण्ड और कमण्डलु लिए हुए हैं :—

ब्रह्मा चतुर्मुखो भूत्वा दण्डीकमण्डलुयुगान्वितः।[४]

परन्तु "कमण्डलु" के बाद का पाठ अशुद्ध है। पद्म पुराण में मिलता है :

ब्रह्मा चतुर्मुखो दण्डी कमण्डलुस्रगुन्नतः ॥[५]

(यहाँ भी स्रक् के स्थान पर स्रुक् पाठ होना चाहिए।)

इस पाठ के अनुसार ब्रह्मा दण्ड, कमण्डलु और स्रुक् (लकड़ी का स्रुवा जिससे होमाग्नि में घी डालते हैं) लिए हुए कहे गये हैं।

विष्णुधर्मोत्तर के अनुसार ब्रह्मा को देववर (देवताओं में श्रेष्ठ) और सभी से वन्दित (सर्वदेवनमस्कृत) कहा गया है। उनके चारों मुँह चार वेदों—ऋग्वेदः पूर्ववदनं यजुर्वेदस्तु दक्षिणाम् पश्चिमं सामवेदः स्यादाथर्वण-मथोत्तरम्—के प्रतीक ही हैं। उनकी चारों भुजाएँ चार दिशाएँ ही हैं, जिनमें कमण्डलु और अक्षमाला धारण करते हैं। वे यज्ञ कार्य करते हैं।[६]

मत्स्य पुराण के अनुसार ब्रह्मा की चार मुख वाली कमण्डलु लिए हुए प्रतिमा बनानी चाहिये; कहीं-कहीं हंसारूढ़ रूप में और कहीं कमलासन के रूप में; चार भुजाएँ होती हैं, बायें हाथ में कमण्डलु और दाहिने हाथ में स्रुव; उसी प्रकार बाएँ (नीचे के अन्य हाथ) में दण्ड तथा (दाहिने निचले हाथ में) उसी प्रकार (पूर्ववत्) स्रुव धारण किये हुए हों।[७] गरुड़ बहुत ही संक्षिप्त रूप में ब्रह्मा की मूर्ति का वर्णन करता है।

१. गरुड़ पु०, १।८९।६
२. वही, १।८९।४
३. वही, १।४।९
४. वही, १।४५।३१ (१)
५. पद्म पु० ४।७८।४३ (१)
६. विष्णु ध०, ३।४६।७-११
७. मत्स्य पु०, २५७।४०-४२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मथुरा संग्रहालय (D-२०) में कमलासनस्थ चतुर्भुज मूर्ति, जिसके हाथों में स्रुव और स्रुक् दिखाया गया है, डा० अग्रवाल के मत से ब्रह्मा की प्रतिमा है ।

D-२२ में चतुर्भुज ब्रह्मा दण्ड-कमण्डलु धारण किये हुए हैं । ये मध्य-कालीन मूर्तियां हैं ।[1]

---

१. ज० यू० पी० हिं० सो०, सं० २२ (१९४९) पृ० १०३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३—विष्णु

परम ब्रह्म के भी दो रूप हैं—सूक्ष्म और स्थूल (विष्णु पु० १।२।३) योगी लोग पहले पहल अरूप नामक परम रूप (सूक्ष्म) का चिन्तन नहीं कर सकते। इसलिए उन्हें हरि के स्थूल रूप का ही ध्यान करना चाहिए। सभी देवता—हिरण्यगर्भ, भगवान् वासुदेव, प्रजापति, मरुत, वसु, रुद्र, भास्कर आदि सब भगवान् हरि के ही मूर्त्त रूप हैं।[1]

भगवान् का मूर्त रूप चित्त को भगवान् में स्थिर कर देता है। जिस रूप का ध्यान किया जाता है वह जानों :—

प्रसन्नवदनं चारुपद्मपत्रोपमेक्षणम् ।
सुकपोलं सुविस्तीर्णललाटफलकोज्ज्वलम् ।। ८०
समकर्णान्तविन्यस्त चारुकुण्डलभूषणम् ।
कम्बुग्रीवं सुविस्तीर्णं श्रीवत्सांकितवक्षसम् ।। ८१
बलित्रिभंगिना मग्ननाभिना ह्युदरेण च ।
प्रलम्बाष्टभुजं विष्णुमथवापि चतुर्भुजम् ।। ८२
समस्थितोरूजंघं च सुस्थितांघ्रिवराम्बुजम् ।
चिन्तयेद्ब्रह्मभूतं तं पीतनिर्मलवाससम् ।। ८३
किरीटहारकेयूरकटकादिविभूषितम् । ८४
शार्ङ्गशंखगदाखड्गचक्राक्षवलयान्वितम् ।
वरदाभयहस्तं च मुद्रिकारत्नविभूषितम्[2] ।। ८५

ऐसी सर्वांगपूर्ण पूर्णाभिमंडित मनोरम मूर्ति, जो पूर्ण रूप से मूर्ति लक्षणों से भी जकड़ी है, शिल्पी की कला-दक्षता को पूर्ण रूप से कलासौष्ठव दिखाने का अवसर भी देती है। मुख, प्रसन्न हो जिसे देखते ही उपासक का हृदय प्रफुल्लित हो जाय; कमल के समान सुन्दर-सुन्दर आँखें, सुन्दर (भरे हुए) कपोल, चौड़ा माथा, कान कुण्डलों से विभूषित हो; शंख के समान सुग्रीव और श्रीवत्स—अंकित वक्षस्थल, तथा त्रिवलीयुक्त सुन्दर उदर, गहरी तोंदी, लम्बी आठ या चार भुजाएँ, स्वस्थ जंघाएँ, मनोहर चरणारविन्द, स्वच्छ और शुभ पीताम्बर, किरीट, हार, केयूर और कटक तथा रत्नमयी मुद्रिका से विभूषित हाथ, हाथों में धनुष, शंख, गदा, खड्ग, चक्र, अक्षमाला, तथा वरद और अभय-मुद्राओं से युक्त दिव्य रूप हो जिसका तन्मयता से ध्यान किया जाता है।

१. विष्णु पु०, ६।७।५४-५९
२. वही, ६।७।८०-८५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शंख चक्र गदाधर

ऊपर वर्णित आयुधों में पद्म का उल्लेख नहीं है। अष्टभुज रूप का ध्यान करते हुए ऊपर वर्णित आयुधों का वर्णन किया गया है। चतुर्भुज मूर्ति में तीन आयुध और चौथा वरद् या अभय मुद्रा में दिखाया जाता है। इसीलिए विष्णु के लिए सामान्यत: 'शंखचक्रगदाधर'[१] नाम का प्रयोग मिलता है :

तच्च रूपमुत्फुल्लपद्मदलाक्षमत्युज्ज्वल पीतवस्त्रधार्यमलकिरीट केयूरहार-कटकादिशोभितमुदारचतुर्बाहुशंखचक्रगदाधरम्[२]

चतुर्भुज रूप (चतुर्भुजवपुर्हरि:)[३] में गदा, शंख, असि (खड्ग) और चक्र[४] भी धारण करते हैं। असि, शंख और गदाधारी (असिशंख-गदाधर)[५] का भी उल्लेख मिलता है। यहाँ भी चौथा हाथ अभय या वरद मुद्रा में होना चाहिए। शार्ङ्गचक्रगदापाणि[६] का भी उल्लेख है। चारों भुजाओं में चक्र, शार्ङ्ग, गदा और शंख भी उनके स्थूल चिन्ह है :

नमस्ते चक्रहस्ताम्, शार्ङ्ग हस्ताय ते नम:।
गदाहस्ताय ते विष्णो शंखहस्ताय ते नम:॥[७]

बृहत्संहिता के अनुसार भी विष्णु के आठ, चार अथवा दो हाथ हों (कार्योऽष्ट भुजो भगवांश्चतुर्भुजो द्विर्भुज एव वा विष्णु:); श्रीवत्सांकित वक्ष, और कौस्तुभमणि विभूषित उर, पीताम्बर, कुण्डल, किरीट मुकुटधारी हों। आठ भूजाओं में दाहिनी तीन भुजाओं में खड्ग, गदा एवं वाण लिए हुए तथा चौथा अभयमुद्रा में हो। बाँए हाथों में कार्मुक (धनुष), खेटक और चक्र लिए हों। चारभुजी मूर्ति में भी दाहिनी ओर का एक हाथ शान्तिद (अभय) हो और शेष तीनों हाथों में गदा, शंख, और चक्र लिए हुए हों।[८] इसीलिए उनका नाम "शंखचक्रगदाधर" अत्यन्त प्रसिद्ध हो गया।

---

१. गरुड़, १।१६।१; १।३४।४१, ५३; १।९२।१;
विष्णु, १।४।१२; १।९।११२; ३।१७।३५; ५।३।१०; ज० यू० पी० हि० सो०, सं० २२, पृ० १११, नं० ५१२ पृ० १०६, नं० ९५६

२. विष्णु, ४।१५।१३

३. वही, १।१२।४१ (२); ५।३।८ :
चतुर्बाहुम्—श्रीवत्सवक्षसं

४. वही, १।४।३९

५. वही, ३।७।२७

६. वही, ५।५।२०

७. वही, ५।३०।२२

८ डे० हि० आ०, अपेन्डिक्स बी०, पृ० ५८१, ५८६ बृ० सं० ५७।३१।३४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यहीं (बृहत्संहिता) में उनके द्विभुज रूप का भी उल्लेख मिलता है जिसमें उनका दाहिना हाथ अभयमुद्रा (शान्तिकरो दक्षिणहस्तो) में और दूसरा (बाँया) हाथ शंखयुक्त हो (अपरश्च शंखधरः)[१]। विष्णु धर्मोत्तर में भी द्विभुजी मूर्ति के दोनों हाथ गदा और चक्र से युक्त बताये गये हैं।[२]

उपर्युक्त विवरणों में पद्म का उल्लेख नहीं मिलता है। परन्तु विष्णुधर्मोत्तर में ही चतुर्भुज मूर्ति के चारों हाथ कमल, शंख, गदा और चक्र युक्त भी बताए गये हैं :

उत्फुल्लकमलं पाणौ कुर्याद्देवस्य दक्षिणे।
वामपाणिगतं शंखं शंखाकारं तु कारयेत्॥

वि० ध०, ३।८५।१०

दक्षिणे तु गदादेवी तनुमध्या सुलोचना।
स्त्रीरूपधारिणी मुग्धा सर्वाभरण भूषण॥

वही, ३।८५।११

पश्यन्ती देवदेवेशं कार्या चामरधारिणी।
कार्यं तन्मूर्ध्नि विन्यस्तं देवहस्तं तु दक्षिणाम्॥

वही, ३।८५।१२

वामभागगतश्चक्रः कार्यो लम्बोदरस्तथा।
सर्वाभरण संयुक्तो वृत्तविस्फारितेक्षणः॥

वही, ३।८५।१३

कर्तव्यश्चामरकरो देववीक्षणतत्परः।
कार्यो देवकरो वामो विन्यस्तस्तस्य मूर्धनि॥

वही, ३।८५।१४

यहाँ पर ध्यान देने की बात है कि दाहिने (दो) और बाएँ (दो) हाथों का—कमल और शंख लिए हुए—सम्बन्ध उनके मूल हाथों से है। बाद के दो हाथ—गदा और चक्र लिए हुए—वे हाथ हैं जो बाद में जोड़ कर देवता को द्विभुज से चतुर्भुज किया गया। यह भी ध्यान देने की बात है कि बृहत्संहिता के अनुसार द्विभुजी मूर्ति में दाहिना हाथ अभय मुद्रा में था, वहीं अब द्विभुज रूप में दाहिने हाथ में कमल का स्थान मिला। कालान्तर में अभय और वरद

१. बृ०सं०, ५७।३५

२. विष्णु ध०, ३।६०।२ :

एक वक्रो द्विबाहुश्च गदाचक्रधरः प्रभुः।
देहविन्यासमपरं प्रागुक्तं कीर्तितं हरेः॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुद्राओं के स्थान पर ही कमल को रखकर शंखचक्रगदाधर शंखचक्रपद्मगदाधर हो गये ।

वैष्णव मूर्तियों का विवेचन करने के पूर्व विष्णु के स्थूल चिन्हों की व्याख्या करना भी आवश्यक है । अन्यथा विश्व—व्याप्त-देवता की मूर्तियों का अभिप्राय ही, जिस पर उपासक अपना ध्यान केन्द्रित करता है, नष्ट हो जायगा । मूर्ति साधन मात्र है न कि साध्य । अभिमत वस्तु तो स्थूल रूप (साकार मूर्ति) द्वारा सूक्ष्म रूप का दर्शन करना है । अतः स्थूल और सूक्ष्म-मूर्त और अमूर्त अथवा व्यक्त और अव्यक्त-रूप का एक ही आकार है और यह है सम्पूर्ण विश्व । यह जगत् और ब्रह्म एक ही हैं, परन्तु यह दुरूह वेदान्त का विषय बन जाता है । इसी प्रक्रिय ब्रह्म भावना से ही हम विष्णु के उस परम रूप का साक्षात्कार करते हैं जिसका कोई रूप ही नहीं है—अर्थात् रूप होते हुए भी निराकार है । यही उनका विश्वरूप है :

तच्च विष्णोः परं रूपमरूपाख्यमनुत्तमम् ।
विश्वस्वरूपैवरूप्यलक्षणं परमात्मनः ॥[1]

परन्तु इस रूप का चिन्तन सरलता से शक्य नहीं है इसीलिए उसके स्थूल रूप का चिन्तन करना चाहिए यह सम्पूर्ण विश्व और उसके सभी पदार्थ-प्राणी उसी का मूर्त रूप है । यह सम्पूर्ण विश्व उस पर ब्रह्म-स्वरूप विष्णु का उनकी शक्ति से सम्पन्न विश्व नामक रूप है :—

एतत्सर्वमिदं विश्वं जगदेतच्चराचरम् ।
परब्रह्मस्वरूपस्य विष्णोर्शक्तिसमन्वितम् ॥[2]

यह है उसका मूर्त रूप । उसका द्वितीय अमूर्त रूप योगियों के ध्यान का विषय है जिसे विद्वान् लोग 'सत्' कहते हैं :

---

१. विष्णु पु०, ६।७।५४ :

यह वैरूप्यलक्षण वाला (विलक्षण विश्वरूप का स्वरूप साधारण विद्यार्थियों की समझ के परे है । इसे यूँ समझिये । फारसी के एक कवि ने वन्दना करते हुए लिखा है :—

बनामें आँ कि ओ नामेनदारद । बहरनामे कि ख़ानी सरबरारत्

हे बिना नाम वाले में तेरी वन्दना करता हूँ । तेरा कोई रूप ही नहीं है (जब नाम ही नहीं तो रूप कैसा) । परन्तु (दुनिया के) हर नाम के साथ (यानी दुनिया के हर रूप के साथ) तुम्हारा ही रूप जुड़ा है ।

इसको फिर देखिए :—

यो मां पश्यति सर्वत्र च मयि पश्यति ।

२. विष्णु पु०, ६।७।६०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वितीयं विष्णुसंज्ञस्य योगिध्येयं महामते ।
अमूर्तं ब्रह्मणो रूपं यत्सदित्युच्यते बुधैः ।।[1]

इस प्रकार विष्णु के दो रूप हैं :

१—अमूर्त रूप

२—विश्वरूप

भगवान् का विश्वरूप ही अपनी लीला से देव तिर्यक् और मनुष्यादि की चेष्टाओं से युक्त सर्वशक्तिमय रूप धारण करता है ?

समस्तशक्ति रूपाणि तत्करोति जनेश्वर ।
देवतिर्यद्मानुष्यादि चेष्टावन्ति स्वलीलया ।।[2]

यह भी संसार के कल्याण के लिए ही होता है ।[3] विष्णु का मूर्त रूप मन की एकाग्रता का आलम्बन है ।[4] विश्वरूप विष्णु सम्पूर्ण जगत् को अपने आभूषणों और आयुध रूप से धारण करते हैं ।[5]

अस्त्रभूषण संस्थानस्वरूप

कौस्तुभ मणि स्वरूप

विष्णु आत्मा के अमल, निर्लेप और निर्गुण अर्थात् शुद्ध क्षेत्रज्ञ स्वरूप को कौस्तुभमणि रूप से धारण करते हैं ।

श्रीवत्स—

अनन्त प्रधान को श्रीवत्स रूप से धारण करते हैं ।

गदा—

बुद्धि का प्रतीक है ।

शंख और शार्ङ्ग—

दो प्रकार के तामस और राजस—अहंकार के प्रतीक हैं ।

चक्र—

पवन से भी अधिक वेग से चलने वाला चंचल मन का प्रतीक है ।

---

१. विष्णु पु०, ६।७।६९

२. वही, ६।७।७१

३, वही, पु० ६।७।७२

४. वही, १।२२।६१-६२

५. वही, १।२२।६५-६६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैजयन्तीमाला—

पंचरूपा वैजयन्ती माला (मुक्ता, माणिक्य, मरकत, इन्द्रनील और हीरक-मयी) पंचतन्मात्राओं और पंचभूतों का ही संघात है।

शर (बाण)—

ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ ही उनके बाण हैं।

असि (खड्ग)

खड्ग अपने कोश (म्यान) रूपी अविद्या से ढकी हुई निर्मल विद्या हैं।

इस प्रकार पुरुष, प्रधान, बुद्धि, अहंकार, पंचभूत, मन, इन्द्रियाँ तथा विद्या और अविद्या सभी हृषीकेश में आश्रित हैं।[1]

विष्णु का यह है मूर्त विश्वरूप जिसे शिल्पी ने साधारण बुद्धि वाले उपासक को अपनी कला-दक्षता से समझाया है। इस विश्वरूप को देखकर अर्जुन भी काँपने लगे और उन्होंने विश्वरूप (पुरुष रूप) के बजाय चतुर्भुजरूप देखने की इच्छा की :—

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां दृष्टुमहं तथैव।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भवविश्वमूर्ते॥[2]

यह विष्णु का देवरूप (गीता ११।४५) है। यह रूप अनन्य भक्ति से ही सम्भव है (गीता, ११।४५)। अनन्य भक्ति अभ्यास योग और ईश्वर सेवा से होती है। इसमें ध्यान भी श्रेष्ठ साधन है और ध्यान के लिए मूर्ति आलम्बन है। एक विश्वरूप ही अपने आपको विभिन्न रूपों—देव, मनुष्य और तिर्यक् (पशु-पक्षी)—में लोक कल्याण के लिए बदलता रहता है (विष्णु पु० ६।७।९१)।

आयुध-पुरुष

"विभिन्न देव-देवियों द्वारा धारण किये जाने वाले आयुधों को भी मूर्त किया गया था। शंख, चक्र, गदा, पद्म, मुशल, शार्ङ्ग, खड्ग, पाश, अंकुश, श्रीवत्स, कौस्तुभ, मुकुट, बनमाला, आदि की पूजा भी श्री-श्रीकृष्ण की पूजा के साथ होती थी।[3] मुख्य देवता की आराधना की भाँति ही इनके लिए भी

---

१. विष्णु पु०, १।२२।६८-७५

दृष्टव्य ध०, ३।८५।१६-२० में भी आयुधों की व्याख्या की गई है।

२. गीता, ११।४६

३. गरुड़ १।२८।९ (२)—१३; १।२९।६-७; १।३०।८; ११:१।२१; १।३२।२४; १।३४।३९ (२)—४१ (१), ४५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मूर्तियाँ, मन्त्र और स्तोत्र आदि का विकसित विधान गरुड़ पुराण के समय प्रचलित हो चुका था।[१]

गरुड़ का रंग अम्बुज के समान, गदा की आकृति असित (काली), शंख पूर्णचन्द्र के समान, कौस्तुभमणि की अरुण कान्ति, चक्र सूर्य के तेज के समान, श्रीवत्स कुन्द के फूल के समान और माला पंचवर्णीय होती है।[२] इनके नाम भी सुविदित थे :

चक्र—सुदर्शन
गदा—कौमोदकी
हल—सौनन्द
मुसल—शातन
महाशंख—पाँचजन्य
पंकज—अनुद्बोध
खड्ग—चान्द्रमस
माला—वैजयन्ती[३]

"विभिन्न शास्त्रों में इन आयुध पुरुषों के प्रतिमा-लक्षण मिलते हैं, जिनमें कुछ पुल्लिग, कुछ स्त्रीलिंग और कुछ नपुंसक लिंग में वर्णित हैं। उदाहरण के लिए शक्ति और गदा स्त्री-रूप में, चक्र और पद्म नपुंसक-रूप में, वज्र, दण्ड, खड्ग, पाश, अंकुश और त्रिशूल पुरुष-रूप में वर्णित हैं। संस्कृत में किसी आयुध-नाम के लिंग के आधार पर ही शास्त्रों द्वारा उसके आयुध-पुरुष-का भी लिंग निर्धारित किया गया है। उदाहरण के लिए शक्ति और गदा स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होते हैं अतएव उनके प्रदर्शन स्त्री-रूप में हुए हैं। चक्र और पद्म नपुंसक लिंग हैं, इसीलिए उनके आयुध-पुरुषों का वर्णन नपुंसक-रूप में हुआ है। इसी प्रकार वज्र, दण्ड आदि पुल्लिग हैं, फलतः उनके पुरुष-रूप में चित्रित करने का निर्देश है।"[४] प्रो० बनर्जी भी गोपीनाथ राव के इन शब्दों को दुहराते हुए जोड़ते हैं कि गुप्त युग के बाद और मध्ययुगीन कला में ये सभी पुरुष आकृति में मूर्त किये गये हैं।[५]

---

१. वही, १।११।२२-२५, ३७-३९, ४२; १।१२।४
२. वही, १।११।४०-४१
३. वही, १।१३।१-८,
   विष्णु धर्म०, ३।८।४, ६-७
४. ख० दे०, पृ० १४७
   ए० हि० आ०, १-१, पृ० २८७-२८८
५. डे० हि० आ०, पृ० ५३७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विष्णुधर्मोत्तर में गदा देवी का वर्णन स्त्री रूप में किया गया है।[१] चक्र का (चक्रः·········लम्बोदरस्तथा, सर्वाभरणसंयुक्तो············चामर करो)[२] को पुरुष रूप में वर्णन किया गया है। 'शंखो महाभुजः'[३] भी पुरुषाकार ही है। गरुड़ पुराण में चक्र-पूजा का विशेष रूप से वर्णन (पूर्वार्द्ध, अ० ३३) करते हुए उनकी प्रतिमा और इसके लक्षणों तथा पूजा—विधि, मन्त्र और स्तोत्र का वर्णन किया गया है।

सुदर्शनदेव की पूजा विधि भी प्रचलित उपासना पद्धति, गन्ध, पुष्पादि उपचारों पर आधारित है। पूजा के बाद मन्त्र—

ऊं इम सहस्रारं हुं फट् नमा—

का १०८ बार जप कर उनका स्तोत्र जपे (१।२३।५-१५)

प्रतिमा लक्षण

सुदर्शन देव का भी ध्यान सौम्य मूर्ति के रूप में जहाँ वह किरीट धारण किये हुए अपनी चार भुजाओं में शंख, चक्र, गदा, और पद्म को धारण किये हुए हैं :—

ध्यायेत् सुदर्शनं देव हृदि पद्ममले शुभे।
शंखचक्रगदापद्मधरं सौम्यं किरीटिनम्॥

गरुड़, १।३३।४

इस प्रकार सुदर्शन देव भी विष्णु रूप में ही पूज्य थे—

विष्णुरूपाय शान्ताय चायुधानां धराय च।
विष्णुशस्त्राय चक्राय नमो भुयो नमो नमः॥

गरुड़, १।३३।१४

स्कन्द पुराण में सुदर्शन चक्र को विष्णु का चौथा वपु (चक्रं सुदर्शनं विष्णोश्चतुर्थवपुरास्थितम्) कह कर स्तुति की गई है।[४] इसे विष्णु का ही रूप अर्वायवीर्य यद्रूपं विष्णोस्तत्प्रणामाम्यहम्—कहा गया है।[५]

विष्णु-मूर्तियाँ

विष्णु की मूर्तियाँ भिन्न-भिन्न हैं। इनके नाम और रूपों का विकास वैष्णव धर्म का ही विकास है। वैष्णव धर्म के उद्भव और विकास पर बहुत

---

१. विष्णु ध० ३।८५।११-१२
२. वही, ३।८५।१३-१४
३. वही, ३।८५।१७ (१)
४. स्कन्द पु०, २।२।१७।६३-६६
५. वही, २।२।२७।६६ (१)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिखा जा चुका है ।[१] धार्मिक पूजा के साथ-साथ उपास्य देव के प्रति ध्यान, प्रेम और श्रद्धा अर्थात् भक्ति का विकास दिखलाई पड़ता है । इसकी प्राचीनता साहित्य और पुरातत्व से सिद्ध होती है। वैष्णव मूर्ति पूजा और मूर्तिकला का भक्ति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है । यह पद्म पुराण के निम्नलिखित उद्धरण से स्पष्ट है :—

गोपाल नाम्नीं मूर्ति च येऽर्चयन्ति द्विजाः सदा ।
धातुजां मृण्मयीं चैव चतुर्हस्तां सुशोभिताम् ।। १०
पूजां कुर्वन्ति ये विप्रास्ते नराः पुण्यभागिनः ।
कृत्वा पाषाणजां मूर्ति कृष्णाख्यां रूपसुन्दराम् ।। ११
पूजां कुर्वन्ति ये विप्रास्ते नराः पुण्यमूर्तयः ।
शालग्रामशिला यत्र यत्र द्वारवती शिला ।। १२
उभयोः पूजनं यत्र मुक्तिस्तत्र न संशयः ।
मूर्ति मन्त्रेण संस्थाप्य पूजनं क्रियते यदि ।। १३
तदर्चनं कोटिगुणं धर्मकामार्थमोक्षदम् ।
नवधा तत्र वै भक्तिः कर्तव्या च जर्नादन ।। १४
अतः पाषाणजा मूर्तिस्तथा धातुमयी च या ।
तस्यां भक्तेः प्रकर्तव्यं ध्यानं पूजनमेव च ।। १५
राजोपचारिकां पूजां मूर्त्तौ तत्र प्रकल्पयेत् ।
सर्वात्मानं स्मरेन्नित्यं भगवन्तमचोक्षजम् ।। १६
आत्मसंतोषणार्थाय स्वरूपं कारयेद् बुधः ।
यतो भक्तिस्तु बहुला जायते नात्र संशयः ।। २०
शंखचक्रगदादीनि विष्णोश्चैवायुधानि च ।
तस्यां मूर्तो विशेषेण कर्तव्यानि प्रमाणतः ।। २१
चतुर्भुजां द्विनेत्रां च शंखचक्रगदाधराम् ।
पीतवासः परिधानां शोभमानां मरीयसीम् ।। २२
वनमालां दधानां तां लसद्वैदूर्यकुण्डलाम् ।
मुकुटेन समायुक्तां कौस्तुभोदभासितां सदा ।। २३

१. भण्डार्कर, कलेक्टेड वर्क्स, भाग ४, पृ० १-७१; बनर्जी, पौ० ता० रे०; डा० जे० गोन्डा, ऐस्पेक्ट्स ऑफ अर्ली विष्णुइज्म, (यूट्रेट, १९५४) डा० म० भागवत कुमार गोस्वामी, भक्ति कल्ट इन ऐन्शेन्ट इण्डिया (वाराणसी, १९६५)

डा० सुविरा जायसवाल, दि ओरिजिन ऐण्ड डेवलपमेंट ऑफ वैष्णविज्म ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सौवर्णीं चाथ रौप्यां वा ताम्रजां चाथ पैत्तलीम् ।
कारयेत्परया भक्त्या वैष्णवैर्द्विजसत्तमैः ।। २४
आगमोक्तैर्वेदमन्त्रैः प्रतिष्ठाप्य विशेषतः ।
पश्चाद्वा अर्चनं कार्यं यथाशास्त्रानुसारतः ।। २५
षोडशोपचार मन्त्राद्यैः पूजनं विधिपूर्वकं ।
पूजिते तु जगन्नाथे सर्वे देवाश्च पूजिताः ।। २६
अतोऽनेन प्रकारेण पूजनीयो महाप्रभुः ।
अनादिनिधनो देवः शंखचक्रगदाधरः ।। २७
सर्वं ददाति सर्वेशो वैष्णवान्पुण्यरूपिणः ।
यथा विष्णुस्तथा सर्वे नान्तरं वर्तते क्वचित् ।। २८[1]

पौराणिक मन्थन के इस नवनीत में हमें निम्नलिखित बातें ज्ञात होती हैं :—

१—वैष्णव या भागवत लोग (विप्र) विष्णु की चतुर्भुजी मूर्ति की पूजा करते थे ।

२—मूर्ति भिन्न-भिन्न पदार्थों—धातु, मृद् (मिट्टी) और पत्थर—की बनती थी। धातुमयी मूर्तियों में सोने, चाँदी ताँबे, और पीतल की (देखिये ऊपर श्लोक, २४) तथा पाषाणजा मूर्त्तियों में शालग्राम और द्वारवती-शिला भी पूज्य मूर्तियाँ थीं ।

३—मूर्ति को "सुशोभिताम्" (ऊपर, श्लोक १०), "रूप सुन्दराम्" (श्लोक ११), और शोभमानां गरीयसीम् (श्लोक २२) अर्थात् मूर्ति बहुत ही सुन्दर तथा मनोहर, शुभ और सुसज्जित होनी चाहिए । मूर्ति के स्वरूप को अपने आह्लाद के लिए ऐसा बनाना चाहिये (आत्मसंतोषणार्थाय स्वरूपं कारयेत्) कि जिससे भक्ति गाढ़ी हो जाय (यतो भक्तिस्तु बहुला जायते, श्लोक २०) ।

यहाँ पर हमें प्राचीन कला के स्वरूप का परिचय मिलता है कि यह सत्यं, शिवं और सुन्दरं की त्रिवेणी थी । "महाकवि कालिदास ने ठीक ही कहा है कि रूप की सच्ची उपासना मन को मलिन करने के ख्याल में और निखारती है :—

यदुच्यते पार्वति पापवृत्तये
न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वचः ।। (कुमार संभव)

अर्थात् हे पार्वति, सच बात तो यह है कि जो रूप सौन्दर्य है वह पाप वृत्ति को बढ़ने के लिए नहीं, बल्कि पापों के कल्मष को धोकर, पाप की ज्वालाओं को शांत करके मन की रस-ग्राहिणी सूक्ष्मवृत्तियों को और अधिक

१. पद्म पु०, ६।८३।१०-१६, २०-२८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चैतन्ययुक्त एवं आनन्दमय बनाने के लिए होता है। 'न रूपं पापवृत्तये' यही परिभाषा कला और जीवन के मेल की सच्ची स्थिति को बताती है।[१]" देव-प्रतिमा कला में भी कला सौष्ठव का यही उदात्त सिद्धान्त निहित था। इसका मूर्त्त रूप हम देवगढ़ के दशावतार मंदिर में आज भी देख सकते हैं। इस प्रकार पौराणिक आदर्श के अनुसार देव मूर्त्ति आध्यात्मिक भावना को जगाने तथा भक्ति को दृढ़ कराने का एक साधन था।

४—'तस्यां भक्तैः प्रकर्त्तव्यं ध्यानं पूजनमेव च' (श्लोक १५) अर्थात् उस मूर्त्ति में (जिसकी विधिवत् स्थापना-पूजा की जा चुकी है, श्लोक १३) भक्तों द्वारा उस देवता का ध्यान करना चाहिए।

इसीलिए प्रारम्भ में कहा गया है कि मूर्त्ति का ध्यान से विशेष सम्बन्ध है। मूर्त्ति ध्यान का आलम्बन है। अर्चनं (पूजा) नवधा भक्ति (श्लोक १४) और षोडशोपचारों से विधिपूर्वक (श्लोक) किया जाता था।

५—मूर्त्तिकल्पना

इस पौराणिक उद्धरण में मूर्त्तिकल्पनम् (पद्म पु०, ६।८५।२२०१) का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उस सशोभन मूर्त्ति में ही (तस्यां मूर्त्तौ) शंख, चक्र, गदा आदि विष्णु के आयुधों को (शंखचक्रगदादीनि विष्णोश्चैवायुधानि) विशेष ध्यान से उनके निर्दिष्ट प्रमाण के अनुसार ही बनाए (विशेषेण कर्तव्यानि प्रमाणतः); इस प्रकार दो नेत्रों और चारभुजाओं वाली (चतुर्भुजां द्विनेत्रां) तथा शंख, चक्र, गदा को धारण किए हुए (शंखचक्रगदाधरम्)—चौथा हाथ अभय या वरद होगा—पीतवस्त्र (पीताम्बर) धारण किये हुए अतिशय उत्कृष्ट (पीतवासः परीधानां शोभमानां गरीयसीम्, श्लोक २२), वनमाला, वैदूर्य के बने कुंडलों को पहने और मुकुटधारी कौस्तुभ मणि से उद्भासित स्वरूप का भक्ति पूर्वक निर्माण करना चाहिए।

ये सामान्य रूप से विष्णु प्रतिमा के लक्षण हैं। कालचक्र ज्यों-ज्यों आगे घूमते हुऐ बढ़ता गया, उसी प्रकार भावना, भक्ति, और मूर्त्ति-कल्पना का विकास भी उत्तरोत्तर होता गया। इस विकास के विभिन्न स्वरूपों की व्याख्या विभव और व्यूह सिद्धान्तों पर की गई है। विष्णु धर्मोत्तर में वासुदेव को बहुत रूप वाला कहा गया है :

वासुदेवस्य बहुरूपस्य भार्गव।
ब्रूहि में रूपनिर्माणं शाश्वतस्य महात्मनः।[२]

---

१. कु० सं०, पृ० २२०

२. वि० ध०, ३।८५।१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसी अध्याय में संकर्षण (३।८५।२१-२२), प्रद्युम्न (३।८५।२३-२४) और अनिरुद्ध (३।८५।२५-२६) का वर्णन करते हुए चतुर्मूर्ति (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध) का वर्णन किया गया है। इसके बाद नृसिंह, वराह, कपिल, विश्वरूप, हयग्रीव, पद्मनाभ, वामन त्रिविक्रम, कृष्ण, हंस, मत्स्य, कूर्म, स्त्रीरूप, पृथु, भार्गव राम, दाशरथि राम, वाल्मीकि, दत्तात्रेय, व्यास युधिष्ठिर और कृष्ण, साम्ब आदि देवदेव विष्णु के विभिन्न प्रादुर्भाव-रूप हैं।[१] पीछे धर्म के अध्याय में हरि के अवतारों का विवेचन किया जा चुका है। गरुड़ के अनुसार भी अवतार असंख्य हैं। परन्तु इनकी संख्या उत्तरोत्तर विकास का भी उल्लेख पुराणों में मिलता है।

ब्रह्मांड से ज्ञात होता है—

तत्र वैष्णव लोके तु विष्णुः साक्षात्सनातनः।
चतुर्धा दशधा चैव तथा द्वादशधा पुनः॥
विभिन्न मूर्तिः सततं वर्तते माधवः सदा॥

ब्रह्मांड, ४।३४।७२

अर्थात् विष्णु एक से चार, दस और बारह विभिन्न मूर्तियों में बढ़ते गये। इनकी संख्या आगे चलकर २४ मूर्तियों में बढ़ गयी।

विष्णु के चतुर्व्यूह, नवव्यूह, दशावतार और द्वादशात्मा के अतिरिक्त[२] चतुर्विंशति मूर्ति[३] का उल्लेख करता है। इनका विष्णुमूर्तियों में विशेष महत्व है। विष्णु पुराण कहता है कि भगवान् एक होकर भी अपने आपको पांच प्रकार से व्यक्त करते हैं (एकः पञ्चधा स्थितः)[४]। यहीं वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध की वन्दना भी की गई है।[५] वायु पुराण में इन चार रूपों में साम्ब को मिला कर "पंचवंशवीराः" का उल्लेख है।[६]

---

१. गरुड़, ३।८५।५२-७९
२. वही, १।४५।२८।३०,
 पद्म, ४।७८।१६-२७
३. गरुड़, १।४४।१३,
 पद्म, ४।७८।१६-२७
४. विष्णु, ५।१८।५० (२)
५. वही, ५।१८।५८
६. वायु, २।३५।१-२ (१)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पंचतत्वार्चन

गरुड़ पुराण के अनुसार इन पांच वीरों की उपासना पंचतत्वार्चन है जिसका वर्णन (पूवार्द्ध) अ० ३२ में किया गया है। यह स्पष्ट रूप से वासुदेव के पंच-प्रकारों का वर्णन करता है—

एक एवाव्ययः शान्तः परमात्मा सनातनः।
वासुदेवो ध्रुवः शुद्धः सर्वव्यापी निरन्जनः॥

गरुड़, १।३२।३

स एव मामया देव पंचधा संस्थितो हरिः।
लोकानुग्रहक्रुद्विष्णुः सर्वदुष्टविनाशनः॥

वही, १।३२।४

वासुदेवस्वरूपेण तथा संकर्षणेन च।
तथा प्रद्युम्नरूपेणानिरुद्धाख्येन च स्थितः॥
नारायणस्वरूपेण पंचधा च ह्यं स्थितिः॥

वही, १।३२।५

इस प्रकार गरुड़ के अनुसार विष्णु के पांच रूप हैं :—

वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और नारायण।

इनकी पूजा अर्चनागार[1] (मन्दिर) में होती थी। इनका ध्यान भी किया जाता था—

वासुदेवं जगन्नाथं पीतकौशेयवाससम्।
सहस्रादित्यसंकाशं स्फुरन्मकरकुंडलम्॥
आत्मनो हृदि पद्मे च ध्यायेत परमेश्वरम्।
ततः संकर्षणं देवमात्मानं चिन्तयेत्प्रभुम्॥
प्रद्युम्नानिरुद्धञ्च श्रीमन्नारायणं ततः॥[2]

स्तवन[3] करता हुआ विष्णु का ध्यान करें तत्पश्चात् उनका विसर्जन कर दें (विसर्जयेत्ततो देवम्)[4]। इस प्रकार स्पष्ट है कि पंचतत्वार्चन में देवमूर्तियां बनती थीं। वासुदेव की प्रतिमा का ऊपर लक्षण भी दिया गया है।

---

१. गरुड़, १।३२।९
२. वही, १।३२।१२-१३
३. वही, १।३२।२९-३८
४. वही, १।३२।३९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पीतवस्त्र (पीताम्बर) पहने हुए, मकर-कुंडलों से विभूषित कर्ण तथा सहस्रादित्य के समान तेजस्वी जगन्नाथ वासुदेव का हृदय में ध्यान करें।[१] इसी प्रकार संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध तथा नारायण (की मूर्तियों) का पूजन और ध्यान किया जाता था।[२] परन्तु गरुड़ पुराण में इनकी मू तयों के लक्षणों का वर्णन नहीं मिलता है। परन्तु ये पांचों देवता-वासुदेव संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और नारायण-विष्णु की चतुर्विंशति मूर्त्तियों में सम्मिलित हैं।

वासुदेवमूर्ति

विष्णु धर्मोत्तर के अनुसार आभरणों से सुसज्जित चतुर्बाहु वासुदेव अपने हाथों में

आयुध—(पहले) दाहिने हाथ में उत्फुल्ल कमल और (दूसरे) दाहिने हाथ में गदा तथा (पहले) बाएं हाथ में शंख और (दूसरे) बाएं हाथ में चक्र लिए हुए हों। वि०ध०, तृतीय खंड, पृ० १४२, डा० साह ने अनुवाद करते हुए दो दक्षिण तथा दो वाम हाथों का भेद नहीं स्पष्ट किया है। अवस्थी (ख०दे०, पृ०६४,) ने भी इन हाथों में विभेदन नहीं किया है। (ए०हि०आ० १-१, पृ०२४१-२४३), राव ने इन हाथों में भेद किया है।

आभूषण—कुण्डल, अंगद (बाजूबन्द), कयूर, वनमाला, कौस्तुभ, किरीट और शिर पर पद्म सुशोभायमान हो।

शरीर—यज्ञोपवीत नाभि तक हो।

वनमाला घुटनों तक लटकती हो और मुट्ठी बंधी हुई हों लंबी भुजाएं और लाल नाखूनों वाली अंगुलियां हों तथा सुन्दर शुभकण्ठ हों जिसका आकार शंख के समान हो।

स्त्रीरूपधारिणी पृथ्वी उनके पैरों के बीच प्रतिष्ठित हो। उसके (पृथ्वी) हाथों में देव जनार्दन के पैर हों (इसीलिए पद्मरूपी पृथ्वी पर स्थित देवता दिखाये गये हैं)।

पैरों के बीच एक ताल की जगह है और दाहिना पैर कुछ निकला हुआ हो तथा पृथ्वी देवता को विस्मित होकर देखती हो।[३]

विष्णु धर्मोत्तर में दूसरे स्थान पर (तृतीय खण्ड, अ० १०६।३-१२) चतुर्मूर्त्ति का वर्णन करते हुए वासुदेव के रूप का वर्णन ललित भाषा में किया गया है। अपराजित पृच्छा के अनुसार वासुदेवमूर्त्ति के दाहिने ऊपरी हाथ में

---

१. गरुड़, १।३२।१२-१३(१)
२. वही, १।३२।१३, २३-२४
३. वही, ३।१०६।१३-१६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शंख, दाहिने निचले हाथ में गदा, बांए ऊपरी हाथ में चक्र और निचले बाएं हाथ में पद्म होता है (२१७।४-५)।

सांकर्षणी मूर्ति

संकर्षण का रूप वासुदेव की ही तरह हो; उनके शरीर का रंग गोरा (शुक्लवपु:) और नीलाम्बर धारण किये हुए हों। गदा के स्थान पर उनके हाथों में मूसल, और चक्र के स्थान पर लांगल (हल) हो।[1] दक्षिणोर्ध्व हाथ में शंख, उसके नीचे (दक्षिणाध:) (अ०पृ०२१७।६७) में गदा, वामोर्ध्व में पद्म और उसके नीचे (बांए निचले हाथ में) सुदर्शन चक्र हो।

चिह्न—संकर्षण का चिह्न ताल (वृक्ष) है (ताल संकर्षणस्य तु)[२]। प्रारम्भिक शिल्प कला में भी (ई०पू० प्रथम अथवा दूसरी शताब्दी) वेसनगर से उपलब्ध तालध्वज का संकर्षण से सम्बन्ध सुविदित ही हैं।[३] विष्णु धर्मोत्तर भी इस तालध्वज का वर्णन करता है :—

तालमावाहयिष्यामि केतुं संकर्षणस्य तू।
एहि मे भगवंस्ताल समस्त भुवनेश्वर॥[४]

यहाँ ताल को 'भगवन्' उपाधि के साथ सम्बन्द्ध पाते हैं। तालवृक्ष संकर्षण का ही प्रतीक रूप में पूज्य था।

संकर्षण के दो प्रतिहारों—अषाढ़ और यज्ञतात-का भी उल्लेख मिलता है। पीताम्बरधारी, नीले बादलों के समान (वर्ण वाले) तथा मुद्गरधारी हों और उनका रूप सुन्दर एवं मनोहर हो।[५]

ये अपने गणों के साथ रूपांकित किये जांय।[६]

सर्वशक्ति[illegible]न्न संकर्षण लांगूल (लांगल) और मुसलधारी अयोनिज कहे गये हैं। [illegible] क्रोधाग्नि को शांत करने वाले, वाक्, मन और शरीर से उत्पन्न तीनों मलों, दैत्य तथा तम को नष्ट करने वाले हैं।[७]

१. वि०ध० ३।८५।२२
२. वही, ३।९४।३९ (२)
३. डे०हि०आ, पृ० १०४
४. वि०ध०, ३।१०६।३५
५. वही, ३।१०६।१३४-१३५
६. वही, ३।१०६।१३६-१३७
७. वही, ३।१०६।१३-१६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रद्युम्न-मूर्ति

प्रद्युम्न की मूर्ति का भी पूजन, ध्यान और स्तवन होता था।[१] गरुड़-पुराण में इनका प्रतिमा-लक्षण नहीं मिलता है। वासुदेव के रूप के समान ही प्रद्युम्न का भी रूप हो (वासुदेवस्य रूपेण प्रद्युम्नश्च तथा भवेत्) दूब के अंकुर के समान श्याम रंग वाले तथा श्वेताम्बर धारी हो; चक्र तथा गदा के स्थानों पर क्रमशः चाप और वाण हों तथा मुसल और लांगल उसी प्रकार (जिस प्रकार संकर्षण के हाथों में होते हैं) हों।[२]

तेजमूर्त्ति प्रद्युम्नदेव का शरीर दूर्वाङ्कुरदल के समान श्यामवर्ण वाला कमनीय और शान्त है। चाप और शर धारण किये हुये हों (यहां दो ही हाथों के आयुधों का उल्लेख है)।[३] चाप को वैष्णव परमास्त्र कहा गया है जिसके द्वारा उन्होंने शम्बासुर का बध किया था (हरिवंश, विष्णुपर्व १०७।२२—३१)। यह काम रतिवल्लभ और मकरच्छवि वाले तथा शम्बर नामक राक्षस को मारने वाले कहे गये हैं।[४] शंकर द्वारा कामदेव के भस्म हो जाने पर रति को शिव ने वरदान दिया था कि द्वारका में विष्णु के अवतार लेने पर कामदेव उनके पुत्र होंगे और शम्बर नामक दैत्य का बध करेंगे (हरिवंश, विष्णु पर्व, १०४।५५—६०)।

हरिवंश पुराण में अम्बुदश्याम (घनश्याम) कृष्णकुमार (प्रद्युम्न) के चिह्नों (लक्षणों) का उल्लेख मिलता है—वे बिना चक्र के जनार्दन (बिना चक्रं जनार्दनः), नारायण के समान मुख, केश और केशान्त वाले हैं; उनकी जाघें, वक्षस्थल, और भुजाएं हलधर (बलराम) के समान हैं; और नारायण के समान दिव्य शरीर है। (विष्णु पर्व, १०८।१६–२०)। अपराजित पृच्छा (२१३।८—९) के अनुसार प्रद्युम्न के दक्षिणोर्ध्व हाथ में शंख, दक्षिणाधः में चक्र, वामोर्ध्व हस्त में गदा और वामाधः में कमल हो।

अनिरुद्ध

अनिरुद्ध की भी प्रतिमा का पूजन, ध्यान और स्तवन होता था।[५] ऊषा-पति अनिरुद्ध खड्गपाणि[६] ने बाण का वध कर दिया था।[७]

---

१. गरुड़, १।३२।१३, २९—३०
२. वि० ध०, ३।८५
३. वही, ३।१०६।१७-२१ (१)
४. वही, ३।१०६।१२५ (२)—१२६
५. गरुड़, १।३२।१३, ३०
६. वि० ध० ३।१०६।१२७-१२८
७. गरुड़, १।१४४।८-९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पद्म पुत्र के समान आभा-युक्त शरीर वाले अनिरुद्ध रक्ताम्बरधारी हों और उनके हाथों में चक्र के स्थान पर चर्म (ढाल) और गदा के स्थान पर असि (तलवार) हो। चर्म (ढाल) चक्र के ही आकार वाली हो और तलवार लम्बी हो।[१] चक्रादि चिन्हों को उनके शिर पर (मूर्ति के शीर्ष भाग पर) दिखायें और इन आयुधों का स्वरूप रम्य हो।[२] अपराजित पृच्छा के अनुसार दाहिनी ओर के ऊपरी हाथ में गदा और निचले हाथ में चक्र तथा बाईं ओर ऊपर के हाथ में शंख और नीचे की ओर पद्म हो (अ० पृ०, २१७।१०—११)।

जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है कि इन प्रसिद्ध चतुर्व्यूहों में शाम्ब के स्थान **गरुड़-पुराण नारायण** का नाम मिलाकर पंचतत्वार्चन का वर्णन करता है। स्पष्ट है कि पंचवीरों की तालिका से, कालांतर में, शाम्ब अलग कर दिये गये और उनके स्थान पर नारायण का नाम जोड़ दिया गया जिससे उनकी संख्या पूर्ववत पांच ही बनी रही।[३] सत्यतः वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध उस 'पर' (शक्ति) नारायण के ही विभिन्न स्वरूप हैं।

नारायण की परा-शक्ति ही सम्पूर्ण सृष्टि और अलग का एक मात्र कारण है। पंचतत्व—**क्षिति जल पावक गगन समीरा, पंचरचित यह अधम शरीरा**—प्रलय के वशीभूत होकर नश्वर हैं और जीव ही नित्य है—

जीव नित्य केहि लगि तू रोवा। यह नित्य जीव अव्यक्त आत्मा-नारायण विष्णु में लीन हो जाती है :—

स्वर्गादिकृद्धि भगवान्साक्षान्नारायणोऽव्ययः।
नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवात्यन्तिको लयः ।।

---

१. वि० ध० ३।८५।२५-२६

२. वही, ३।८५।२६

३. ख० दे०, पृ० ५८, यह मानना कि शाम्ब को अलग कर देने से "वे अब मात्र चार रह गये" भूल है। डा० बनर्जी के ही शब्दों को ऊपर दुहराया गया है :—

डे० हि० आ०, पृ० ३८६

"But shortly afterwards, Samba was eliminated from this list of deified heroes by the theologians of the cult, and the remaining four......were regarded as typifying the different asdects of......Para Vasudeva.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

याति भूः प्रलयज्वाप्सु आपस्तेजसि पावकः ।
वायो वायुश्च वियति आकाशं यात्यहंकृतौ ।।
अहं बुद्धौ मतिर्जीवं जीवोऽव्यक्तं तदात्मनि ।
आत्मा परेश्वरो विष्णुरेको नारायणो नरः ।
अविनाश्यपरं सर्वं जगत्सर्गादि नाशि हि ।।[1]

ऊपर 'नारायण-नर' विशेषतः दृष्टव्य है। यही नारायण का मानव रूप है जो मत्स्यादि दशावतार—रूपों में अवतरित होता है (मत्स्यादिक स्वरूपेण अवतारं करोत्यजः) । इस प्रकार पंचतत्व युक्त (पंचतत्व समायुक्तं) विष्णु हृदय में ध्येय हैं (ध्यायेद्विष्णुं नरो हृदि)।[2]

मार्कण्डेय पुराण के अनुसार भी नारायण ही चार रूपों में अवस्थित हैं (नारायणो विभुः चतुर्द्धा संस्थितो)।[3] वासुदेव, शेष (संकर्षण), प्रद्युम्न और अनिरुद्ध नाम की ये चार मूर्तियां हैं।[4] सात्विकी और तृतीय मूर्ति (प्रद्युम्न) ही धर्मरक्षा के लिए वराह, नृसिंह, वामन आदि विभिन्न अवतारों को धारण करती हैं।[5]

नवव्यूह—ऐसा माना जाता है कि गुप्त युग में पाँचरात्रिकों द्वारा व्यूहों की संख्या चार से चौबीस कर दी गयी।[6] परन्तु पुराणों के अध्ययन से ऐसा ज्ञात होता है कि कालान्तर में चतुर्व्यूह और पंचतत्वार्चन के बाद नवव्यूहों की पूजा प्रचलित हुई। इनकी भी पूजा मूर्तियों (नवव्यूहस्य मूर्त्तीनामांगानां च)[7] द्वारा होती थी।

स्पष्ट रूप से इनके नामों की गणना नही की गई है। फिर भी इसी (नवव्यूहार्चन के) अध्याय में हमें निम्नांकित नाम मिलते हैं :—

(१) वासुदेव, (२) बल (राम), (३) काम (प्रद्युम्न), (४) अनिरुद्ध, (५) नारायण, (६) ब्रह्मा, (७) विष्णु, (८) सिंह (नृसिंह) और (९) वराह।[8] अग्नि पुराण में भी नवव्यूहार्चनम् के अध्याय में हमें वासुदेव,

---

१. गरुड़, १।१४१।१२ (२)-१५
२. वही, १।१४२।२ (१)
३. मार्कण्डेय ४।४४
४. वही, ४।४५-५२
५. वही, ४।५१-५९
दृष्टव्य, मा० अ०, पृ० ३०-३१
६. डे० हि० आ० पृ० ३८८; ख० दे०, पृ० ५९
७. अग्नि पु०, २०१।१६
८. गरुड़, १।११।३४ (२)-३५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, ब्रह्मा, विष्णु, नृसिंह और वराह (भूवराह)। [१] नाम मिलते हैं। इन नवव्यूह नामों में ब्रह्मा का भी नाम सम्मिलित है। कूर्म पुराण में भगवान् नारायण के चतुर्व्यूहों [२] में भी ब्रह्मा का नाम वासुदेव की चतुर्थ मूर्ति (अनिरुद्ध) के लिए उल्लिखित हुआ है :—

चतुर्थी वासुदेवस्य मूर्ति ब्रह्मेति संज्ञिता।
राजसी चानिरुद्धाख्या प्रद्युम्ने सृष्टिकारिका॥ कूर्म, १।५०।४२
यः स्वपित्यखिलं हत्वा प्रद्युम्नेन सह प्रभुः।
नारायणाख्यो ब्रह्मासी प्रजासर्गं करोति सः॥ वही, १।५०।४३

इस प्रकार ब्रह्मा भी विष्णु के स्वरूप में पूज्य मान लिए गये थे।

दशात्मकः (दशावतार)

कालान्तर में नारायण दशात्मक[३] रूपों (या दशावतार)[४] से मूर्त्त होने लगे। इनका विवेचन ऊपर धर्म के साथ हो चुका है।

द्वादशात्मक—विष्णु के नामों और रूपों की संख्या दस से बारह [५] हो गई और इनका सम्बन्ध प्रत्येक मास की विष्णु पूजा से जुड़ गया। अपराजित पृच्छा (२१७।१२-१३) में केशव, नारायण, माधव, वासुदेव, त्रिविक्रम, वामन श्रीधर, प्रद्युम्न, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर और अनिरुद्ध की मूर्तियों का वर्णन (२१७।१६-२३) किया गया है। यहाँ चतुर्मूर्तियों में प्रत्येक के तीन भेद कर द्वादश मूर्त्तियों की कल्पना की गई :—

तिस्रस्तिश्चतुर्भेदैरेवं द्वादशमूर्त्तयः

चतुर्विंशति नाम—आगे चलकर इनकी संख्या चौबीस तक पहुंची और इस चौबीस नामों की तालिका को 'केशवाद्यैश्च नामभिः[६] (केशवादिक नामों से) व्यक्त करते हैं। इन चौबीस नामों का महत्व इतना बढ़ा कि विष्णु की चौबीस मूर्त्तियाँ उनके मूर्त्त रूपों में सर्वप्रसिद्ध हो गई। इस प्रकार स्पष्ट है कि एकाएक, एकबारगी, ही चार व्यूहों की संख्या बढ़ा कर चौबीस नहीं[७]

---

१. अग्नि, २०१।१-३
२. कूर्म, १।५०।३८-४७
३. गरुड़, १।१२।१५
४. पद्म ४।७८।४२ (१)
५. गरुड़, १।१२।१५
६. अग्नि, १८८।११
७. डे० हि० आ०, पृ० ३८८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर दी गई जैसा प्रो० बनर्जी मानते हैं और अवस्थी भी उनका अनुकरण करते हैं।[१] गरुड़ की भांति पद्म पुराण भी चतुर्व्यूह, नवव्यूह, दशावतार और द्वादशात्मा विष्णु का उल्लेख करता है।[२] यहीं पद्म पुराण के इसी अध्याय में विष्णु की चौबीस मूर्तियों का भी वर्णन किया गया है जिसका गोपीनाथ राव और उनका अनुकरण मात्र करने वालों ने भी उल्लेख किया गया है।

चतुर्विंशति मूर्तियाँ

मूर्ति कला का विवेचन करते हुए गोपीनाथ राव, जितेन्द्रनाथ बनर्जी द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, उर्मिला अग्रवाल और रामाश्रय अवस्थी आदि लेखकों ने चतुर्विंशति मूर्त्तियों का वर्णन किया है। गोपीनाथ राव ने पद्म पुराण [३] को और अग्नि पुराण[४] को प्रो० बनर्जी ने देखा था। परवर्ती लेखकों ने इस विषय का विवेचन करते हुए पुराणों की उपेक्षा की है। डा० शुक्ल ने अग्नि पुराण पर कुछ कल्पना करते हुए गरुड़ पुराण की कल्पना भी नहीं की। उन्होंने बताया :

"The details on Salagrama are most elaborate and not to be found elsewhere. As many as two dozen varieties of Salagrama are described (cf The tabulation ahead vide-Brahmanical images)[५]."

परन्तु आगे चलकर उनके ग्रंथ में इसका कहीं भी उल्लेख नहीं हुआ है। पाषाण मूर्तियों का उल्लेख करते हुए भी शिला-रूपों पर उनका ध्यान ही नहीं गया।[६] शालग्राम सम्बन्धी ये दो दर्जन मूर्त्तियाँ विष्णु की चौबीस मूर्तियाँ हैं। प्रायः इन २४ मूर्तियों का वर्णन शालग्राम शिला के ही सम्बन्ध में उल्लिखित पाते हैं।[७] जिस पद्म पुराण की चौबीस मूर्तियों की तालिका

---

१. ख० दे०, पृ० ५९

२. पद्म, ४।७८।४०-४२

३. ए० हि० आ०, २-१, पृ० २३०-२३२, २-२, पृ० ६२-६३

४. डे० हि० आ०, पृ० ४१०

५. H C. I, P., (V. S. Vol. II), P, 53

६. वही, पृ० १०३-१०८

७. पद्म पु०, ६।७६।२-१२, गल्लिका (गंडिका ?) और शालग्राम के महात्म्य का वर्णन करते हुए वहाँ नारायण और उनकी बहुत सी मूर्तियाँ—"चतुर्विंशतिमूर्त्तीनां जातयः" तथा दशावतार—मत्स्य, कर्म, वराह, वामन, राम, परशुराम, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि और अन्य विविधाकार मूर्त्तियों का उल्लेख किया गया है (६।७६।८-११)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का उल्लेख इन विद्वानों ने किया है वह भी शालग्राम के ही साथ-साथ उसी अध्याय में उल्लिखित है। परन्तु इन लोगों ने तो गोपीनाथ राव का ही अनुकरण किया है। पद्म और गरुड़ का यह वर्णन प्रायः एक ही है।

अग्नि पुराण के अ० ४६ में शालग्राममूर्ति के लक्षणों का वर्णन करते हुए ही वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, कृष्ण, विष्णु, नृसिंह, कपिल, वराह, कूर्म, अनन्त, हयग्रीव, बैकुण्ठ, मत्स्य, श्रीधर, वामन, त्रिविक्रम, अनन्त, दामोदर, सुदर्शन, लक्ष्मीनारायण, अच्युत, जर्नादन और पुरुषोत्तम का वर्णन किया गया है। अ० ४७ में भी शालग्राम शिलार्चन का वर्णन हुआ है। इसके बाद ही अ० ४८ में चतुर्विंशति मूर्त्ति स्तोत्र का वर्णन किया गया है। इस स्तोत्र (स्तोत्रं चतुर्विंशतिमूर्तिमत्) के पठन और श्रवण का महत्त्व था।[1] ऊपर कहा गया है कि शालग्राम—लक्षणों के आधार पर विभिन्न नामों और रूपों की कल्पना की गयी थी (देवी भाग० ९।२४।५८-७४ : गरुड़ पुराण १।४५।१४-३०)।

देवी भागवत पुराण में ही केशवादिक नामों (आदि में है केशव नाम जिसके=केशवादिक नाममिः[2] और कृष्ण का नाम है अन्त में जिसके= कृष्णोऽतिमस्तथा[3]) का ओंकार सहित नमन (ओं नमः केशवाय···) करे :

आचांतः प्राणमायभ्य केशवादिक नामभिः।
केशवश्च तथा नारायणो माधव एव च ॥
गोविन्दो विष्णुरेवाथ मधुसूदन एव च।
त्रिविक्रमो वामनश्च श्रीधरोऽपि ततः परम् ॥
हृषीकेशः पद्मनाभो दामोदर अतः परम्।
संकर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नोऽप्यनिरुद्धकः ॥
पुरुषोत्तमाधोक्षजौ च नारसिंहोऽच्युतस्तथा।
जर्नादन उपेन्द्रश्च हरिः कृष्णोऽतिमस्तथा ॥[4]

स्पष्ट है कि इन नामों का धार्मिक महत्व था। प्रारम्भ में उनको शालग्राम शिला के रूप-लक्षणों पर आरोपित किया गया और कालान्तर में उनकी २४ मूर्तियाँ भी बनने लगीं। परन्तु उनका प्राचीन शिला-रूप भी भुलाया नहीं जा सका। गरुड़ पुराण स्पष्टतः कहता है :

१. अग्नि पु०, ४८।१४
२. देवी भा०, ११।१६।१८ (१)
३ वही, ११।१६।२१ (२)
४. वही, ११।१६।१८-२२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चतुर्विंशति मूर्त्तिः स शालग्राम शिलास्थितः ।[1]

द्वारका—शिला (गोमती में मिलने वाली शिला) में भी हरि रूप की कल्पना की गयी थी :

द्वारकादिशिलासंस्थो ध्येयः पूज्योऽपि वा हरिः ।।[2]

मोक्ष प्राप्ति के लिए ही मूर्त्ति का ध्यान और जप तथा स्तवन किया जाता था ।[3]

इस प्रकार मूर्त्ति पूजा में चतुर्विंशति मूर्त्ति स्तोत्र और पूजा का विशेष महत्व था ।

विष्णु की इन २४ मूर्तियों की विशिष्टता उनके आयुधों-शंख, चक्र, गदा और पद्म-की उनके हाथों में प्रदक्षिणा ही है । इस लांछन-क्रम के परिवर्तन के कारण ही एक मूर्ति के विभिन्न २४ नाम हो गये हैं जैसा कि इन मूर्त्तियों के अध्ययन से स्पष्ट होता है ।

मूर्त्ति कला के विद्वानों में इनके आयुधों के कर-क्रम के विषय में कुछ भ्रम फैल गया है ।

"इस प्रकार स्पष्ट है कि लाञ्छन-क्रम ही इन मूर्त्तियों के अभिज्ञान का एक मात्र आधार है । अब प्रश्न है कि शास्त्रों में वर्णित लाञ्छन-क्रम का प्रारम्भ किस हाथ से माना जाए । इस सम्बन्ध में रूप मण्डन और अग्निपुराण में महत्वपूर्ण संकेत उपलब्ध हैं । रूपमण्डन में मूर्त्तियों के विवरण के पश्चात् यह निर्देश है कि इनकी अभिज्ञा के लिये वर्णित लाञ्छनों का क्रम दक्षिणाधः कर से चलेगा । इसे हेमाद्रि ने भी स्वीकार किया है । अग्नि पुराण में विवरण के प्रथम श्लोक के अन्त में 'प्रदक्षिणाम्' शब्द आया है, जिसका अभिप्राय है चार हाथों के लाञ्छनों का प्रदक्षिणावत् वर्णन । इन संकेतों का स्पष्ट अर्थ है कि इन शास्त्रों में ये लान्छन हाथों के इस प्रदक्षिणा-क्रम से वर्णित हुए हैं : (१) दक्षिण अधः, (२) दक्षिण ऊर्ध्व, (३) वाम ऊर्ध्व तथा (४) वाम अधः[5]। मूलतः ये विचार प्रो० बनर्जी के हैं जिनका अवस्थी ने अंग्रेजी से हिन्दी में रूपान्तर किया है । राव सदृश मनीषी के विचारों की समीक्षा सम्यक् परीक्षा के बिना करना उचित नहीं है ।

१. गरुड़, १।४४।१३ (२)
२. वही, १।४४।१४ (१)
३. वही, १।४४।१४ (३)
४. वही, १।४४।३० (२) विष्णोर्मूर्त्तिमयं स्त्रोत्रं यः पठेत्स दिवं व्रजेत् ।
५. ख०दे०, पृ० ८७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गोपीनाथ राव ने रूप मण्डन और पद्म पुराण दोनों से पाठ उद्धृत किये हैं। परन्तु उन्होंने इन मूर्त्तियों के सामान्य लक्षणों का विवेचन करते हुए वृत्त में प्रदक्षिणा-क्रम ऊपरी दाहिना हाथ, ऊपरी बांया हाथ, निचला बाँया हाथ, और निचला दायाँ हाथ बताया है।[१] इसी क्रम में उन्होंने रूपमण्डन की मूर्त्तियों का वर्णन भी रूपमण्डन तालिका में किया है।[२] पद्म पुराण में क्रम ऊपरी दाहिने हाथ से क्रमानुसार (केशवादेश्चतुर्बाहोर्दक्षिणोर्ध्वकरक्रमात्)[३] मूर्त्तियों का वर्णन किया गया है। यह क्रम भी प्रदक्षिणा-क्रम ही है। प्रदक्षिणा किसी भी हाथ से प्रारम्भ हो सकती है। परन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि मूलतः विष्णु के दो ही हाथ थे-दक्षिण और वाम। उनके नीचे एक-एक हाथ और जोड़ दिया गया जो अधः (निचला) था। देखिये वासुदेव लक्षण :

दक्षिणे तु करे चक्रमधस्तात् पद्ममेव च।
वामे शंखं गदाऽधस्ताद् वासुदेवस्य लक्षणात्।[४]

वासुदेव की द्विभुजी या चतुर्भुजी (द्विभुजो वा चर्तुभुजः)[५] मूर्त्तियां होती थीं।

इतना सत्य है कि कुछ लोग दक्षिणाधः कर-क्रम की परम्परा को भी मानते थे :

दक्षहस्तस्याद्य आद्यं दक्षिणोर्ध्वं पुनस्तथा ॥
अ० पृ०२१७।१३

वामस्योर्ध्वमधश्चान्ते नाम्ना प्रदक्षिणक्रमः ॥
। वही, २१७।१४

---

१. ए०हि०आ०, १-१, पृ० २२८
२. वही, पृ० २२८-२२९
३. पद्म पु०, ४।७८।१६ (२); डा० अवस्थी, ख०दे०पृ० ८७, नोट ३ में पद्म पु०, ५।७८।१६ का उद्धरण देते हैं दृष्टव्य, अग्नि पुराण, ५१।३:... कराः क्रमात्
४. अग्नि पु० ४४।४७ : अवस्थी (ख०दे० ६४) ने ऊपर और नीचे के हाथों का भेद नहीं किया है उनके अनुसार 'दायें हाथों में चक्र और पद्म तथा बायें में शंख और गदा होनी चाहिए।' अवस्थी ने पद्म—पाठपीठं पर भी ध्यान नहीं दिया। यह उनका प्रमाद ही है। क्योंकि अन्यत्र (ख०दे० पृ० ८७) राव के मत को—ये मूर्तियाँ पद्मासन पर खड़ी हैं—नहीं मानते हैं।
५. वही, ४९।११ (२)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(ऊपर वामस्योर्ध्वमधश्च...होना चाहिए।)
अथासां सर्वमूर्त्तीनां शस्त्र भेदाः करक्रमात्।
वही, २१७।१५(१)

अग्नि पुराण इसी कर-क्रम को मानता है। परन्तु गरुड़ के विवरण से ही साम्य रखता है। पद्मपुराण की मूर्त्ति-सूची अशुद्ध और अधूरी भी है (केवल २१ मूर्त्तियों का वर्णन है, उपेन्द्र, जनार्दन और हरि की मूर्त्तियों का अभाव है) साथ ही पद्मनाभ और पुरुषोत्तम के वर्णन में साम्य अब्जशंख गदा चक्र है। यहाँ पद्मनाभ का लक्षण साब्जचक्रगदाशंख (पद्मनाभ स्वरूपिणे) होना चाहिए।[1] इसी प्रकार केशव और प्रद्युम्न के लक्षणों में भी तद्रूपता–शंखचक्र गदाब्ज–है। यहाँ प्रद्युम्न का रूप शख, गदा, पद्म, चक्र-मय (सुशंख सुगदाब्जारिधृते प्रद्युम्नमूर्त्तये)[2] होना चाहिए। गोपीनाथ राव ने जनार्दन (नं०२१) को पद्मचक्रशंखगदा, उपेन्द्र (नं०२२) को शंखगदाचक्र-पद्म और हरि (नं०२३) को शंखचक्रपद्मगदा धारण किये हुए पद्म पुराण की तालिका में बताया है।[3] जैसा कि ऊपर कहा गया है कि पद्म पुराण के पाठ में इन तीन मूर्त्तियों के लक्षणों को छोड़ दिया गया है। यहाँ राव ने इन छूटे हुए देवताओं के लक्षणों को रूपमण्डन के पाठ[4] से जोड़ा है। परन्तु वह इतना भूल गये कि पद्म पुराण दक्षिणोर्ध्व कर-क्रम से आयुधों का वर्णन करता है और रूपमण्डन दक्षिणाधः कर-क्रम से वर्णन करता है। इस प्रकार जनार्दन का वही रूप है जो अच्युत का तथा उपेन्द्र और दामोदर भी एक ही हैं।[5] गरुड़ पुराण की चौबीस मूर्त्तियों की तालिका (जो कि पद्म पुराण से बहुत कुछ साम्य रखती है) में भी कुछ दोष हैं यथा

१. केशव और दामोदर के आयुधों में समानता है, और

२. हृषीकेश और नृसिंह मूर्त्ति में भी साम्य है।

यहाँ दामोदर और हृषीकेश के लाञ्छनों को पद्म पुराण की सहायता से ठीक जान लेते हैं। अब हम गरुड़ और पद्म की दोनों तालिकाओं को नीचे देते हैं :

---

१. गरुड़, १।४५।७ (१)
२. वही, १।४५।९ (९)
३. ए०हि०आ०, १-१, पृ० २३२
४. वही, १–२, प्रतिभालक्षण पृ० ६३-६४
५. ए०हि०आ०, १-१, पृ० २३२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सं०	मूर्त्ति	पद्म पु०	गरुड़ पु०	आयुध				
१	केशव	शंखचक्रगदापद्मी	वही (जो पद्म पु० में है)	शंख	चक्र	गदा	पद्म	शचगप*
२	नारायण	पद्मगदाचक्रशंख	वही	पद्म	गदा	चक्र	शंख	पगचश
३	माधव	चक्रशंखाभ्यांपद्मेनगदया	वही	चक्र	शंख	पद्म	गदा	चशपग
४	गोविन्द	गदाब्जशंखी चक्री	वही	गदा	पद्म	शंख	चक्र	गपशच
५	विष्णु	पद्मशंखारिगदिने	वही	पद्म	शंख	चक्र	गदा	पशचग
६	मधुसूदन	सशंखाब्जगदाचक्र	वही	शंख	पद्म	गदा	चक्र	शपगच
७	त्रिविक्रम	गदारिशंखाब्जयुक्त	वही	गदा	चक्र	शंख	पद्म	गचशप
८	वामन	सारिकौमोदकीपद्मशंख	वही	चक्र	गदा	पद्म	शंख	चगपश
९	श्रीधर	चक्राब्जशंखगदिने	वही	चक्र	पद्म	शंख	गदा	चपशग
१०	हृषीकेश	सारिगदाशंखपद्मिन् (शुद्ध)	अशुद्ध (अब्जगदाशंखिने चक्रिणे)	चक्र	गदा	शंख	पद्म	चगशप
११	पद्मनाभ	साब्जशंखगदाचक्र (अशुद्ध)	शुद्ध (साब्जचक्रगदाशंख)	पद्म	चक्र	गदा	शंख	पचगश
१२	दामोदर	शंखगदाचक्रपद्मिन् (शुद्ध)	अशुद्ध (शंखचक्रगदापद्मिन्)	शंख	गदा	चक्र	पद्म	शगचप
१३	वासुदेव	सारिशंखगदाब्ज	वही	चक्र	शंख	गदा	पद्म	चशगप
१४	संकर्षण	शंखाब्जचक्रगदिने	वही	शंख	पद्म	चक्र	गदा	शपचग
१५	प्रद्युम्न	शंखचक्रगदाब्ज (अशुद्ध)	शुद्ध (शंखगदाब्जारिधृते)	शंख	गदा	पद्म	चक्र	शगपच
१६	अनिरुद्ध	गदाशंखाब्जारि	वही	गदा	शंख	पद्म	चक्र	गशपच
१७	पुरुषोत्तम	साब्जशंखगदाचक्र	वही	पद्म	शंख	गदा	चक्र	पशगच
१८	अधोक्षज	गदाशंखारिपद्मिने	वही	गदा	शंख	चक्र	पद्म	गशचप
१९	नृसिंह	पद्मगदाशंखारि	वही	पद्म	गदा	शंख	चक्र	पगशच
२०	अच्युत	पद्मारिशंखगदिने	वही	पद्म	चक्र	शंख	गदा	पचशग
२१	जनार्दन	×	सशंखचक्राब्जगदं	शंख	चक्र	पद्म	गदा	शचपग
२२	उपेन्द्र	×	सगदं सारिं पद्मशंखिन्	गदा	चक्र	पद्म	शंख	गचपश
२३	हरि	×	सुचक्राब्जगदाशंखयुक्ताय	चक्र	पद्म	गदा	शंख	चपगश
२४	श्रीकृष्ण	गदाब्जारिसशंखाय	वही	गदा	पद्म	चक्र	शंख	गपचश

*टिप्पणी :—श=शंख, च=चक्र, ग=गदा, प=पद्म।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पद्मासन

चतुर्विंशति मूर्त्तियों का वर्णन करते हुए अवस्थी कहते हैं—"राव के विचार से ये सभी पद्मासन पर समभंग खड़ी मूर्त्तियां हैं (ए० हि० आ०, २-१, पृ० २२७-२८)। उनके इस कथन का कोई शास्त्रीय आधार लेखक को उपलब्ध नहीं हुआ।[१] उपर्युक्त किसी शास्त्र में इन मूर्त्तियों की स्थिति के विषय में कोई निर्देश नहीं हें।" इन मूर्त्तियों के वर्णन केवल उनके शस्त्र भेदों के आधार पर ही किये गये हैं। आयुधों के अतिरिक्त इन मूर्त्तियों के आभरणों और आसन का वर्णन नहीं किया गया है। पद्मासनस्थ रूप विष्णु मूर्त्तियों का सामान्य लक्षण है जिसका उल्लेख साहित्य और कला में प्राप्त होता है—

चिन्तयेत्............पद्मस्थमानन्दं हरिं[२]
नारायण·····.........सरसिजासनसन्निविष्ट :[३]

अग्नि पुराण भी वासुदेव प्रतिमा के पद्माभं पादपीठं (अग्नि, ४४।४९) का उल्लेख करता है।

यह स्वाभाविक था और था आवश्वक भी कि भगवान विष्णु के चरण पृथिवी देवी के हाथों में रहे—

महीकराम्बुजन्यस्चरणद्वयराजित[४]

पद्म-स्वरूप की व्याख्या करते हुए विष्णु धर्मोत्तर में पद्म को वसुधा कहा गया है।[५] मथुरा संग्रहालय में भी चतुर्भुजी विष्णु मूर्तियां (डी० २१-२३) पद्म पर खड़ी हुई हैं।[६] गोरखपुर (उत्तर प्रदेश) में कई विशाल खड़ी हुई विष्णु मूर्त्तियां उपलब्ध हुई हैं। ये वहाँ ह्वी पार्क में प्रतिष्ठित की हुई हैं। इनमें अधिकांश मूर्तियों के विभिन्न अंग टूटे हुए हैं। इनमें एक मूर्त्ति जो सबसे छोटी (लगभग ३ फ़िट ऊँची) है, खंडित नही है। विष्णु मंदिर में प्रतिष्ठित मूर्ति भी टूटी हुई नहीं है। ये सभी विष्णु मूर्त्तियां पूर्वमध्य कालीन (७ वीं शती से ११ वीं ई० शती तक) हैं। अलंकरण और कला-सौष्ठव अत्यन्त उच्च कोटि का है। एक खड़ी हुई विष्णु मूर्त्ति जिसके पैर टूटे हुए हैं दृष्टव्य

---

१. ख० दे०, पृ० ८७
२. गरुड़, १।५०।२
३. वही, १।२२२।३४
४. वि० ध०, ३।१०६।११(१)
५. वही, ३।४५।८ (१)
६. यू० पी० हि० सो०, जिल्द २२, भाग-२ (१९४९), पृ० ११४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। यह पद्म पर ही स्थित थी और उत्फुल्ल पद्म की भव्यता आज भी दृष्टव्य है (चित्र नं० ७)। यहाँ विष्णु प्रत्यक्ष पद्मसंस्थित हैं।[1] इसीलिए प्रो० बनर्जी, राव के मत को ही मानते हुए कहते हैं कि प्रत्येक मूर्त्ति पद्मासन पर खड़ी है।[2] परन्तु इस पर संदेह करना अज्ञता ही है जैसा कि साहित्य और कला के साक्ष्यों से स्पष्ट है। गरुड़ पुराण इन चौबीस मूर्त्तियों में श्रीधर की पूजा को विशेष रूप से वर्णन करता है (पूर्व खंड, अ०२०)। इनके अतिरिक्त विष्णु (चतुर्भुज), पद्मनाभ, नारायण, वामन, और नृसिंह की मूर्त्तियों का भी विवरण मिलता है।

---

१. गरुड़, १।९२।७ (२)
२. डे० हि० आ०, पृ० ४१०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विष्णु मूर्त्तियां

विष्णु (द्विभुज रूप)

उपासक शंख और चक्र से युक्त कुन्देन्दुधवल वर्ण वाले विष्णु का अपने हृदय में ध्यान करें। परमेश्वर श्रीवत्स और कौस्तुभ से युक्त तथा वनमाला से विभूषित और रत्नहार व किरीट से अलंकृत हों।[1]

यहाँ केवल दो ही आयुधों का वर्णन है अतः यह विष्णु की द्विभुजी मूर्त्ति ही ज्ञात होती है। यहाँ उनके पार्श्वचरों का भी उल्लेख नहीं है। रूपवास (फतेपुर सीकरी के निकट, उत्तर प्रदेश) में कार्लायल को एक विशाल द्विभुजी मूर्त्ति उपलब्ध हुई थी। इस मूर्त्ति के दोनों हाथों में शंख और चक्र स्थित है।[2]

विष्णु (चतुर्भुज रूप)

विष्णु-ध्यान का वर्णन करते हुए विष्णु की सायुध सर्वांग और सर्वालंकार युक्त प्रतिमा का उल्लेख किया गया है। यहां उनको 'नारायण महादेव' (सनातनोऽव्ययो),[3] 'सर्वात्मा सर्वरूप सर्वग'[4], महेश्वर,[5] सर्वदेवसमायुक्त[6], सर्वेश[7] वासुदेव[8] कहा गया है। यह पर-वासुदेव का ही रूप है। संभवतः यही

---

१. गरुड़, १।३१।९-१० :

ततो ध्यायेत् परं विष्णुं हृत्कोटरसमाश्रितम्।
शंखचक्रसमायुक्तं कुन्देन्दुधवलं हरिम् ।।९
श्रीवत्सकौस्तुभयुतं वनमाला समन्वितम्।
रत्नहारकिरीटेन संयुक्तं परमेश्वरम् ।।१०

२. डे० हि० आ० पृ० ४००-४०१, पृ० ४०१, नोट १ (दृष्टव्य, आर्क्योलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, जिल्द ६, पृ० २०)।

३. गरुड़, १।९२।११

४. वही, १।९२।१२

५. वही, १।९२।१३

६. वही, १।९२।१४

७. वही, १।९२।१५

८. वही, १।९२।१६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विष्णु की आदिमूर्त्ति (आदिमूर्त्तिर्वासुदेवः) थी जिससे चतुर्व्यूह और द्वादश तथा चतुर्विंशति मूर्त्तियों का विकास हुआ।[1]

प्रतिमा लक्षण

शरीर—करोड़ों सूर्य के समान तेजस्वी, कुन्द-पुष्प और गोक्षीर (दूध) के समान श्वेत (धवल) रंग वाला पुष्प (समांसों) शरीर हो, शुद्ध देह और हिरण्मय शरीर सुन्दर कानों से सुशोभित (सुकर्णः) हो, सुन्दर अंगुरीय और सुदीप्त नखों से युक्त हो। शान्त और शुभानन हो।

आयुध—चतुर्भुज रूप है जिसमें चारों भुजाएँ शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किए हों, (यहाँ हाथों में कोई भेद नहीं किया गया है)। अग्नि पुराण के अनुसार दाहिने हाथ में चक्र और उसके नीचे (दक्षिणाधः) पद्म तथा बाएं हाथ में शंख और उसके नीचे (वामाधः) गदा हो।[2]

दूसरे स्थान पर चतुर्बाहु वासुदेव को 'शंखचक्रगदाधर' बताया गया है।[3] यहाँ पद्म के स्थान पर हाथ अभय या वरद मुद्रा में होगा।

चतुर्भुज वायुदेव को शंखचक्रगदापद्मयुक्त कहा गया है।[4] यहां वायुदेव (अशुद्ध पाठ है) के स्थान पर वासुदेव होना चाहिए।

इस प्रकार चतुर्भुज वासुदेव का 'शंखचक्रगदापद्मयुक्त' रूप अधिक प्रसिद्ध था।

आभरण

क—किरीट—बहुमूल्य रत्नों का बना हुआ किरीट;

ख—वनमाला—शुभ्र (वनमालाधरः शुभ्रः, वनमाला समन्वितः);

ग—हार—चारुहारी (सुन्दर हार को पहने हुए);

घ—अंगद—शुभाङ्गदः (बाजूबन्द)

ङ—केयूर—केयूरेण समायुक्तः

च—श्रीवत्स

छ—कौस्तुभ—श्रीवत्स कौस्तुभयुतो

---

१. अग्नि, ४८।१३-१४

२. वही, ४४।४७

३. गरुड़ १।१३१।१३ (२)

४. वही १।२२९।२६-२७

इसके ऊपर (१।२२९।२५) में हरि का उल्लेख है। अतः (१।२२९।२५) में 'वायुदेवश्चतुर्भुजः' के स्थान पर 'वासुदेवश्चतुर्भुजः' होना चाहिए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ज—कुण्डल—स्फुरन्मकरकुण्डलः सुकर्णः[१] (सुन्दर कानों में डोलते हुए मकराकृति वाले कुण्डल)।

झ—हेमभूषणः

अलंकार और चन्दन

शरीर सभी अलंकारों से सजा हुआ चन्दन से विभूषित हों (सर्वालंकार-संयुक्तश्चारुचन्दनर्चचितः)।

क—सुवस्त्रः—सुन्दर वस्त्रों को पहने हुए हों। अन्यत्र उन्हें पीतवस्त्रधारी (पीतवास-श्चतुर्भुज)[२] कहा गया है।

इस प्रकार आभरणों और अलंकारों से विभूषित 'अतिसुन्दर' देव का 'सुखकारी' 'सौम्यरूप' था।

आसन—देव मूर्त्ति पद्म पर स्थित थी (पद्मसंस्थितः)। सभी प्राणियों के हृदयों में स्थित प्रभु ध्येय है।

देव-मूर्त्ति लक्ष्मी-युक्त भी होती थी।[३]

दशावतार रूप

गरुड़ पुराण में अवतारों का कई स्थानों पर वर्णन मिलता है जिनका वर्णन पीछे धर्म के अध्याय में किया जा चुका है)। उनके प्रतिमा-लक्षणों का विशेष विवरण नही उपलब्ध होता है। इन अवतारों में उनका दशात्मक रूप अधिक प्रसिद्ध हैं। इनमें मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, राम (परशुराम), राम (राघव राम), बुद्ध और कल्कि[४] हैं। मत्स्य से प्रारम्भ होने के कारण ही इनको मत्स्यादिक[५] स्वरूप भी कहते हैं।

मत्स्य (रूपं मात्स्यं)—मत्स्य रूप धारण कर हयग्रीव नामक दैत्य का वध किया और वेदों का उद्धार किया।[६] यह हरि का मत्स्य (मछली) के रूप में अवतार हुआ (मत्स्यरूपी हरिः)।[७] इस प्रकार गरुड़ पुराण मत्स्यावतार मूर्ति का मत्स्य

---

१. गरुड़, १।३२।१२ (२)

२. वही, १।११।४, १।३२।१२ (१) : पीतकौशेयवाससम्

३. वही, १।९२।३-१६

४. वही, २।२०।३१-३२

५. वही, १।१४२।२ (१)

६. वही, १।१४२।२ (२)-३ (१)

७. वही, १।८७।१२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रूप (मत्स्यरूपं तथा मात्स्यं)[1] का उल्लेख करता है (देखिए चित्र ८)। विष्णु ने मात्स्य रूप से मही को नाव पर चढ़ाकर वैवस्वत मनु की रक्षा की।[2]

कूर्म (कमठरूप)—गरुड़ पुराण इस अवतार मूर्त्ति का भी कूर्म रूप में ही (हरिणा कूर्मरूपेण) उल्लेख करता है। यह मूर्त्ति भी कूर्म (कछुए) की शक्ल में (कूर्म कूर्माकृति)[3] उल्लिखित हुई है (देखिये चित्र ९)। इस रूप द्वारा हरि ने भीमरथ नाम असुर का वध किया था।[4] परन्तु इस रूप द्वारा समुद्र मन्थन के समय मन्दर पर्वत का धारण करना[5] अधिक प्रसिद्ध है।

वराह-रूप—यज्ञेश (विष्णु) ने शूकर शरीर (शौकरं वपुः)[6] से रसातलों में फँसी पृथिवी का उद्धार किया।[7] वराह ने हिरण्याक्ष का वध कर देवताओं की रक्षा की और पृथिवी को धारण किया।[8] यहाँ भी उनके पशु स्वरूप (वराह रूप)[9] का उल्लेख है। वाराही स्वरूप से अपने दाँतों द्वारा पृथिवी का उद्धार करते हैं, जब पृथिवी जल में निमग्न थी।[10] सबसे सुन्दर रूप हमें उदयगिरि में प्राप्त होता है (चित्र १०)। भिटरगाँव के मन्दिर में बाहरी दीवाल पर भी वराह का रूप-निर्माण किया गया था (चित्र ११)।

वराह की हाटक (स्वर्ण) मूर्त्ति (वराहपुरुषं कृत्वा देवन्तु हाटकम्)[11] की पूजा का उल्लेख मिलता है। चक्रधर देव के विभिन्न अंगों—चरण, कटि नाभि, उर, बाहु, ग्रीवा, मुख, ललाट, और केशों की मन्त्र सहित आराधना की गयी है :—

---

१. मत्स्य, २५९।३९ (१)
२. गरुड़, १।१।२३
३. वही, १।८७।१६
४. मत्स्य, २५६।३९ (१)
५. गरुड़, १।८७।१६
६. वही, १।१।२४, १।१४२।३ (२)
७. वही, १।१।२५
८. वही, १।१४२।६
९. वही, १।८७।३०
१०. वही, १।४।१२
११. वही, १।१२७।१३ (१)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वराहाय नमः पादौ,
क्रोड़ाकृतिनमः कटिम् ।
नाभिं गभीरघोषाय,
उरः श्रीवत्सधारिणे ॥

गरुड़, १।१२७।१५

बाहुं सहस्रशिरशे,
ग्रीवां सर्वेश्वराय च ।
मुखं सर्वात्मने पूज्यं,
ललाटं प्रभवाय च ॥

वही, १।१२७।१६

केशाः शतमयूखाय पूज्या देवस्य चक्रिणः ।
विधिना पूजयित्वा तु कृत्वा जागरणं निशि ॥

वही, १।१२७।१७

वराह मूर्त्ति की पूजा में वराहदेव के माहात्म्य का प्रतिपादक पुराण भी पढ़ा जाता था।[1] पूजा के बाद 'कनक क्रोड़'[2] (स्वर्ण निर्मित शूकर) का दान दे दिया जाता था। इस प्रकार यहाँ भी वराह की शूकर मूर्त्ति (क्रोड़ाकृति) का ही वर्णन है। यहाँ भगवान चक्र धारण किए हुए हैं और उनके उर पर श्रीवत्स लाञ्छन सुशोभित हैं।

विष्णु धर्मोत्तर के अनुसार वराह अनिरूद्ध रूपी ऐश्वर्य के मूर्त रूप हैं और उन्होंने ऐश्वर्यशक्ति से ही वसुन्धरा का उद्धार किया। नृवराह (नर और शूकर का मिश्रित स्वरूप) शेष के ऊपर प्रतिष्ठित हों, चतुर्भुज हों,········ शेष के पृष्ठ पर आलीढ-संस्थान में वराह हों, बांई कुहनी पर स्त्री रूप में पृथिवी स्थित हों, जिस भुजा पर धरा देवी हों, वहाँ शंख धारण किए हुए हों, और अन्य हाथों में पद्म, चक्र और गदा लिए हुए हों। अथवा (दूसरे प्रकार की मूर्त्ति में) हिरण्याक्ष के शिर को काटने के लिए हाथ में चक्र लिये हों।[3] खजुराहो संग्रहालय से प्राप्त वराह मूर्त्ति के शंखधारी बाई भुजा पर धरा देवी विराजमान है।[4]

नरसिंह

इस मनुष्य और पशु के मिश्रित नरसिंह के अवतार द्वारा हिरण्यकशिपु

---

१ गरुड़, १।१२७।१८ (१)
२. वही, १।१२७।१९ (१)
३. वि० ध०, ३।७९।१-७।
४. ख० दे०, पृ० ९८, चित्र ३०; ख० स्क०, पृ० ३७, चित्र ११।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को मारकर वेद-धर्म की रक्षा की।[1] उन्होंने अपने हाथों द्वारा बड़ी उग्रता से दैत्येन्द्र को मार डाला।[2] उनकी उपलब्ध मूर्त्तियों में भी नरसिंह को हिरण्य-कशिपु को विदारित करते हुए पाते हैं (चित्र सं० १२)।

विष्णुधर्मोत्तर के अनुसार नरसिंह मूर्त्ति का वर्णन तीन रूपों में किया गया है :—

१—वे पीन (मोटे, पुष्ट) स्कन्धों, कटि (नितम्ब करिहांव) और गर्दन वाले हैं, कमर (मध्यः) और उदर दुबले हैं (अच्छे और स्वस्थ शरीर के ये ही लक्षण हैं); यहाँ कटि (पीन) कमर का बोधक न होकर 'हिप' या नितम्ब (जिनका स्थूल होना शरीर का सुलक्षण है) का परिचायक है। 'मध्यम' शब्द, जिसका अनुवाद प्रियबाला शाह' middle part of his body' करती हैं, वह कमर का परिचायक है।[3] उनका शरीर नरसिंह (नर और सिंह) का है (नरसिंहवपुः)। वे नीलवस्त्र पहने हुए नृदेहधारी सिंहासन पर बैठे हुए हैं (सिंहासने नृदेहस्तु नीलवासाः) और प्रभा (मंडल) से युक्त हैं (प्रभान्वितः)।[4] सिंहासन पर सुखासीन (सुख से आराम से बैठे हुए) भगवान के दो हाथ गदा के मस्तक पर रखे हों और दो हाथों में शंख और पद्म लिए हों तथा मूर्त्तिमती पृथिवी के हाथों में भगवान के चरण रखें हों।[5]

२—दूसरे प्रकार की नरसिंह मूर्त्ति आलीढ़ मुद्रा में खड़ी हुई हो (आलीढ-स्थान संस्थानः), सभी आभूषणों से अलंकृत हों (सर्वाभरण भूषितः), उनका मुख लाल (आग की लपटों के समान—ज्वालामालाकुलमुखौ) हों, उनका केसर-मण्डल (गले पर के बाल) भी लपटों के समान ही हों (ज्वालाकेसर-मण्डलः); वे अपने तीक्ष्ण नाखूनों से हिरण्यकशिपु के वक्षस्थल को विदीर्ण करते हों; और देव-मूर्त्ति के घुटनों पर पड़ा हुआ नीलोत्पल की कान्ति वाला हिरण्यकशिपु हो। नरसिंह मूर्त्ति वाले भगवान को संकर्षण का अंश-स्वरूप बताया गया है जो अज्ञान रूपी हिरण्यकशिपु को नष्ट करने वाले कहे गये हैं। वे त्रिविधतम को भी नष्ट करने वाले (नरसिंह) हैं।[6]

३—तीसरे प्रकार की प्रतिमा में प्रभामण्डलयुक्त, दुर्दर्श तथा लपटों से सुशोभित शरीर सभी आभरणों से युक्त (आयुधों से युक्त जैसा डा० क्रैमरिश

---

१. गरुड़, १।१४२।७
२. वही, १।१।२६, भागवत, २।७।१४।
३. शाह, वि० ध०, तृतीय खंड, भाग २, पृ० १५७
४. वि० ध०, ३।७८।२
५. वही, ३।७८।२, ९-१०
६. वही, ३।७८।३-८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मानती हैं) और भूषणों से रहित हो तथा हाथ शंख, चक्र, गदा और पद्म के लाञ्छनों से सुशोभित हों। ज्ञानरूपी नृसिंह तेज के निवास हैं जिनका स्वरूप आकाश के समान है।[1]

'नृसिंहरूपनिर्माण' नामक विष्णुधर्मोत्तर के इस अध्याय (तृतीय खंड, ७८) में इन मूर्त्तियों का वर्णन करने के बाद कहा गया है :—

रूपं मयैतत्त्रिविधं प्रदिष्टं तस्याप्रमेयस्य जनार्दनस्य।[2]

इसका अनुवाद "There is the third way of representing Narasimha"[3] (नरसिंह को मूर्त्त करने का तीसरा प्रकार है) अशुद्ध है।

इन तीन प्रकार के रूपों का भेद डा० शाह ने नहीं किया है और इनके अनुवाद का अनुकरण करने के कारण अवस्थी ने भी इन नरसिंह रूपों का विभेदन नहीं किया है। अवस्थी लिखते हैं—

"विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार नरसिंह का मुख सिंह का और देह नर की हो। वे पीन स्कन्ध, कटि तथा ग्रीवा और क्षीण मध्य तथा उदर से युक्त हों। वे नीलवस्त्र धारण किए हों और सभी आभूषणों से अलंकृत हों। उनका मुख एवं केसर ज्वाला युक्त हो और उनके सिर के पीछे प्रभामण्डल हो। आलीढ़मुद्रा में खड़े हों, उनकी जानु पर नीलकमल की कान्ति वाला हिरण्यकशिपु पड़ा हो, जिसके वक्षःस्थल को वे अपने तीक्ष्ण नखों से विदारित करते प्रदर्शित हों। इस पुराण में यह कहा गया है कि हिरण्यकशिपु अज्ञान है, नरसिंह रूप विष्णु ज्ञान हैं और वे अज्ञान के विनाशक हैं।"[4] इसका "संदर्भ ७८,२, १-५" दिया गया है जबकि शेष अध्याय ७८।६-१३ भी नर-सिंह के सिंहासन पर सुखासीन आदि रूपों का वर्णन करता है जिसे न जाने क्यों छोड़ दिया गया है। इसी भ्रान्ति के कारण नरसिंह के तीन रूपों का दर्शन अवस्थी भी नहीं कर सके। इन रूपों में नरसिंह के दोनों रूपों—उग्र और शान्त—का दर्शन होता है। विष्णुधर्मोत्तर के अ० १०६ (तृतीय खंड) में भी नृसिंह का सुन्दर वर्णन मिलता है। यहाँ उनके उग्र स्वरूप का वर्णन है :—

देवमावाहयिष्यामि नृसिंहं ज्ञानरूपिणम्।
दंष्ट्राकरालवदनमलातमसितेक्षणम्॥
सहस्रयमसक्रोधं सहस्रेन्द्रपराक्रमम्।
सहस्रधनदनं स्फीतं मनसोप्यतिशीघ्रगम्॥

---

१. वि० ध० ३।७८।११-१३ (१)
२. वही, ३।७८।१३ (२)
३. शाह, वि० ध०, तृतीय खंड, जिल्द २, पृ० १५७।
४. ख० दे०, पृ० १०१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विद्युज्जिह्वं व्यादितास्यं भ्रकुटीकुटिलाननम् ।
वह्निज्वालावलीपुंजं दुर्निरीक्ष्यमुखश्रियम् ।।

आगच्छेह नृसिंहाथ महाबल पराक्रम ।
वज्रतीक्ष्णनखाक्रान्तमहादैत्येन्द्र जीवित ।।

अज्ञानध्वान्त मातंगभंगविस्पष्ट केसर ।
महामन्त्रकपाटोग्रदारुणाचिन्त्यविक्रम ।।[1]

गरुड़ पुराण भी 'दुर्निरीक्ष्य रूप' का वर्णन करता है जिस रूप में शिव ने उनका उस समय ध्यान किया था, जब कि मातृगण सारी प्रजा का भक्षण करने को तैयार थीं। शंकर ने देवियों को मना किया कि वे ऐसा न करें। परन्तु उन्होंने शिव की बात न मानी और त्रैलोक्य को खा जाने के लिये तैयार थीं। इस विषम परिस्थिति में शिव ने नृसिंह रूपी देवता का स्मरण किया। नृसिंह भगवान ने भी उसी रूप में अपने आपको उपस्थित किया जिस रूप का शिव ने ध्यान किया था। यह दुर्निरीक्ष्य था।[2] शिव ने उनकी स्तुति की और इस नृसिंह-स्तव में भी उनकी मूर्त्ति के लक्षणों का विवरण मिलता है। "बिजली के समान जीभ और बड़े-बड़े दाँत तथा केशर (गले पर के बाल) स्फुरित हो रहे थे", उनका शरीर नीलकमल के समान रत्न-नूपुरों से सुशोभित था; रत्नांगद, सुन्दर मुकुट, हेमकेशर (स्वर्ण रंग के गले के बालों वाले से भूषित; महान कांचन का बना हुआ कटि सूत्र (श्रोणिसूत्र) विराजित था; देह के रोंए घुंघराले थे; सभी फूलों की विचित्र महामाला पहने हुए थे; और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड रूपी मंडप उनके तेज से भरा हुआ था।"[3] उनके स्तवन में उपयुक्त विशेषणों और विष्णुधर्मोत्तर के उपर्युक्त आवाहन मंत्र में बहुत कुछ साम्य है। स्तव इस प्रकार है:—

नमस्तेस्तु जगन्नाथ नरसिंहवपुर्धर ।
दैत्येश्वरेन्द्र संहारनखशुक्ति विराजित ।।

नखकमलसंलग्न हेमपिंगल विग्रह ।
नमोऽस्तु पद्मनाभाय शोभनाय जगद्गुरो ।।
कल्पान्ते अम्भोदनिर्घोष सूर्यकोटिसमप्रभ ।।

सहस्रयमसंत्रास सहस्रेन्द्रपराक्रम ।
सहस्रधनदस्फीत सहस्रचरणात्मक ।।

---

१. वि० ध०, ३।१०६।३८-४२
२. गरुड़, १।२२३।१०-११
३. वही, १।२२३।५-९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सहस्रचन्द्रप्रतिम सहस्रांशुहरिक्रम ।
सहस्ररुद्रतेजस्क सहस्रब्रह्मसंस्तुत ॥
सहस्ररुद्रसंजप्त सहस्राक्ष निरीक्षण ॥
सहस्रजन्ममथन सहस्रबन्धमोचन ॥
सहस्रवायुवेग्राग सहस्राक्ष कृपाकर ।
स्तुत्वैवं देवेदेवेशं नृसिहं वपुषं हरिम् ॥
विज्ञापयामास पुर्नविनयावनतः शिवः ।।[१]

इस नरसिंह स्तोत्र में भी उन्हें नरसिंह (नर और सिंह) के शरीर को धारण करने वाला सहस्रों यम, इन्द्र, धनद, वरुण (चरण पाठ अशुद्ध लगता है यहाँ सहस्रवरुणात्मक होना चाहिए) । चन्द्र, सूर्य और रुद्र के समान कहा गया है; उनके संहारक नाखूनों में हिरण्यकशिपु की खोपड़ी विराजित है, उनके नख कमल-संलग्न हैं, उनका शरीर सुनहरा-भूरा है और उनका शब्द प्रलयकालीन समुद्र-गर्जन है; और उनकी प्रभा हजारों सूर्यों के समान है ।

स्तवन के अन्त में निम्नलिखित ध्यान मंत्र है :—

ध्यायेन्नृसिहं तरुणार्कनेत्रं सिताम्बुजातं ज्वलिताग्निवक्त्रम् ।
अनादिमध्यान्तमजं पुराणं परावरेशं जगतां निधानम् ॥[२]

इस ध्यान मंत्र में भी मध्याह्न सूर्य के समान नेत्रवाले श्वेत कमल के समान (रंगवाले) जलती हुई आग के समान मुखवाले और संसार के सर्वशक्तिमान् पुरातन पुरुष रूपी नृसिंह का वर्णन है ।

नृसिंह भगवान् ने शिव की प्रार्थना के अनुसार सभी रौद्रमातृगणों को आत्मसात् कर संसार में शान्ति स्थापित की ।[३] यहाँ यह भी बताया गया है कि त्रिपुरान्तकारी शिव ने देवेश्वर नृसिंह मूर्त्ति की पूजा की ।[४]

खजुराहो में एक चौंसठ भुजाओं से युक्त नरसिंह मूर्त्ति है ।[५] सम्भवतः ये चौंसठ भुजाएँ चौंसठ मातृगणों की प्रतीक हैं जो देव-मूर्त्ति में समा गई थीं । नरसिंह मूर्त्ति का मातृवर्ग से घनिष्ठ सम्बन्ध है :—

समातृवर्गस्य करोति मूर्त्तिर्यदा यदा तिष्ठति तत्समीपे ।[६]

---

१. गरुड़, १।२२३।१२-१७
२. वही, १।२२३।२३
३. वही, १।२२३।२१
४. वही, १।२२३।२५
५. ख० दे०, पृ० १०३, चित्र २८
६. गरुड़, १।२२३।२४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उन्होंने मातृगणों से संसार की रक्षा की (अव्याज्जगन्मातृगणेभ्य एव) ।[१] उन्होंने सभी रौद्र मातृगणों को अपने में विलीन कर लिया :—

तथा सुरगणान्सर्वान्रौद्रान्मातृगणान्विभुः ।
संहृत्य जगतः शर्म कृत्वा चान्तरधीयत् ।।[२]

गरुड़ वर्णित यह नृसिंह की लीला-कथा अद्भुत है। अन्यत्र बताया गया है कि शिव ने शरभ रूप से नृसिंह का दमन किया था। यहाँ शिव ही नृसिंह-भक्त के रूप में चित्रित किए गए हैं।

वामन

यह अवतार लघुता का परिचायक है (विष्णुर्वामनताङ्गतः) ।[३] इसीलिए उनकी मूर्त्ति संकुचित अवययों (वामनाकृति) और पीन (पुष्ट, स्थूल) शरीर वाली हो; वह कृष्ण-मृग-चर्म ओढ़े और दण्ड लिए हुए विद्यार्थी (ब्रह्मचारी) के रूप में हों तथा उनके शरीर का रंग दूर्वा (घास) के समान श्याम हो।[४] गरुड़ के अनुसार पूज्य वामन दो श्वेत वस्त्रों को धारण किए हुए छत्र और खड़ाऊँ से युक्त हों (सितवस्त्रयुगच्छन्नं छत्रोपानयुगान्वितम्) ।[५]

विष्णु वामनक होकर बलि की यज्ञशाला में गये और उनसे तीन पद भूमि की याचना की।[६] गरुड़ के अध्याय १४२ (पूर्व खंड) में अवतारों का वर्णन करते हुए नरसिंह के बाद परशुराम का उल्लेख है। यहाँ वामन का नाम छोड़ दिया गया है।[७]

कान्यकुब्ज (कन्नौज, उत्तर प्रदेश) में रामचन्द्र ने वामन देव को स्थापित किया था।[८] यह वैष्णवी मूर्त्ति कान्यकुब्ज में लंका से लाकर प्रतिष्ठित की गई थी। विभीषण ने इसे रत्नों से अलंकृत किया। यह वामन-मूर्त्ति राम के जय-लक्षण रूप में यहाँ लाई गयी थी।[९] इसकी प्रतिष्ठा गंगा-तट पर (दक्षिण तट पर) की गयी थी :—

---

१. गरुड़, १।२२३।२५
२. वही, १।२२३।२१
३. वही, १।११५।७९
४. वि० ध०, ३।८५।५३ (२)-५४
५. गरुड़, १।१३६।५
६. वही, १।१।२७
७. वही, १।१४२।८७-८
८. पद्म पु०, ५।३४।१६७; ५।३५।१
९. वही, ५।३५।१२४-१२७

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

महोदयं समासाद्य गंगा तीरे स वामनम् ।
प्रतिष्ठाप्य द्विजानाह भाविनः पार्थिवांस्तथा ।।
कृतोऽयं धर्मस्य मया सेतुर्भूतिविवर्धनः ।
प्राप्ते काले पालनीयो न च लोप्यः कथंचन ।।[1]

राजशेखर भी वामन स्वामी का उल्लेख करते हैं,[2] जो सम्भवतः राम के द्वारा स्थापित वामन मन्दिर था ।[3] लखनऊ संग्रहालय में वामन-प्रतिमा (चित्र १२) अपने कला-सौष्ठव और रूप-निर्माण के दृष्टिकोण से दृष्टव्य है ।

परशुराम

जमदग्नि पुत्र ही प्रभु परशुराम थे जिन्होंने पृथिवी को क्षत्रियहीन कर दिया । उन्होंने कार्तवीर्य को मारकर पृथिवी कश्यप को दान कर दी और स्वयं महेन्द्र पर्वत पर यज्ञ करने के बाद स्थित हुए ।[4] गरुड़ पुराण में उनकी प्रतिमा का वर्णन नहीं मिलता है । विष्णुधर्मोत्तर के अनुसार कृष्ण-मृग-चर्म को धारण किए हुए हाथ में परशु लिए हुए हों और जटामण्डल से युक्त दुर्दृंश रूप हो ।[5] यह उनके उग्र रूप का परिचायक है ।

दाशरथि राम

(विष्णुरेष महाभागश्चतुर्मूर्त्तिः सनातनः, पद्म पु०, ५।३५।९४)

विष्णु ने अपने आपको राम, भरत, लक्ष्मण, और शत्रुघ्न नामक चार

---

१. पद्म, ५।३५।१९३-१९४
२. काव्य मीमांसा, ९४।२६
३. वही, पृ० २४३
४. गरुड़, १।१।२८; १।१४२।८-९
५. वि० ध०, ३।८५।६१; ३।१०६।१०१ में भी इनको दुर्दर्श कहा गया है । डा० अवस्थी (ख० दे०, पृ० १०९) इस विवरण का उल्लेख करते हुए "कृष्णाजिनधरस्य" का अर्थ यहाँ पर 'कृष्णमृगचर्म से युक्त' लेते हैं और वामन के लिए प्रयुक्त 'कृष्णजिनधरस्तथा' (वि ध०, ३।८५ ५४) का अर्थ 'कृष्णाजिनोपवीत' (ख० दे०, पृ० १०५) करते हैं उन्होंने जो सन्दर्भ (ख० दे०, पृ० १०९, नोट ४) में वि० ध० ८५, ६१-६२ दिया है; वहाँ ८५.६१ परशुराम से सम्बन्धित है और ८५।६२ दाशरथि राम से है । अवस्थी ने दुर्दृंश रूप पर भी दृष्टिपात नहीं किया ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रूपों में अवतरित किया ।[१] राघव राम का यह अवतार नरदेवत्व से युक्त था और सुर-कार्य करने के लिए ही समुद्रादि का निग्रह किया ।[२]

विष्णुधर्मोत्तर के अनुसार दाशरथि राम राजलक्षणों से युक्त हों और भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न भी उसी प्रकार हों, किन्तु मौलि रहित हों ।[३] अग्नि पुराण के अनुसार चाप, शर, खड्ग और शंख लिए हुए (चतुर्भुज) हों अथवा द्विभुज रूप हों ।[४]

पद्म पुराण के अनुसार जानकी प्रियवल्लभ श्रीराम चतुर्भुज और पीताम्बर धारी हों तथा सभी आभरणों से विभूषित हो और उनके हाथों में शंख, चक्र, धनुष और बाण हों । उनका शरीर नीलकमल के समान श्याम और आँखें भी पद्मपात्र के समान हों[५]

राम-कृष्ण

वसुदेव-देवकी से वृष्णि कुल में उत्पन्न राम (बलराम) और कृष्ण के अवतार हुए जिन्होंने पृथिवी के भार को हर लिया ।[६] हरिवंश का वर्णन करते हुए गरुड़ पुराण में कृष्णमाहात्म्य सम्बन्धी उनकी लीलाओं का उल्लेख किया गया है :—

१—**पूतना-बध**—कृष्ण ने पूतना के दोनों स्तनों को बहुत ही जोरों से पी कर उसका क्षय कर दिया :—

कृष्णः पीत्वा स्तनौ गाढं पूतनामनयत्क्षयम् ।[७]

खजुराहो के लक्ष्मण मन्दिर में पूतना-वध का सुन्दर प्रदर्शन हुआ है ।[८]

२—**शकट-भंग** (शकटः परिवृत्तो),

---

१. गरुड़, १।१४२।११

२. वही, १।१।३०

३. वि० ध० ३।८५।६२-६३ (१)
वही, ३।१०६।१०३ (२)-१०७ (१) चारों देवों का वर्णन है ।

४. अग्नि, ४८०।६ (१)

५ पद्म पु०, ३।२६३।४४ (२)-४५

इन्दीवरदलश्यामं पद्मपत्रविलोचनम् ।
शंखारिशांगेषुधरं सर्वाभरणभूषितम् ।
पीतवस्त्रं चतुर्बाहुं जानकीप्रियवल्लभम् ॥

६. गरुड़, १।१।३१

७. वही, १।१४४।२ (२)

८ ख० दे०, पृ० ११६, (चित्र ४१) ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

३—यमलार्जुन को भग्न करना,

४—नाग कालिय-दमन

५—धेनुक वध

६—गोवर्द्धन-धारण

७—अरिष्ट-वध

८—केशी-वध

९—चाणूर-मुष्टिक और कंस-वध

उपर्युक्त अधिकांश लीलाएँ खजुराहो में मूर्त हुई हैं।[१] महाभारत का वर्णन करते हुए भी कृष्ण-बलराम की उपलब्धियों का वर्णन किया गया है (पूर्व खंड, अ० १४५)।

कृष्ण

कृष्णाष्टमी के समय हरि-पूजा का वर्णन करते हुए (गरुड़, १।१३१। ४-१२) कहा गया है कि जिन देवता को वसुदेव और देवकी ने जन्म दिया वह चतुर्बाहु नारायण स्वरूप (वासुदेव कृष्ण) शंख, चक्र, और गदाधारी हैं (नारायणं चतुर्बाहुं शखचक्रगदाधरम्); पीताम्बर धारण किए हुए दिव्य वन-माला से विभूषित हैं, और श्रीपति-श्रीधर हरि (कृष्ण) श्रीवत्सांक से सुशोभित हैं।[२] यह देवकीनन्दन श्रीश हरि (कृष्ण) ही हैं।[३]

गरुड़ के समान ही चतुर्बाहु कृष्ण को स्कन्द पुराण भी शंख, चक्र, और गदाधारी बताता है (कृष्णश्चतुर्बाहुः शंखचक्रगदाधरः)।[४]

कृष्ण की पूजा श्री सहित भी होती थी।[५] अतः कृष्ण और लक्ष्मी की भी मूर्तियाँ एक साथ बनती थीं।

विष्णुधर्मोत्तर में कृष्ण मूर्ति को नारायण के समान (कृष्णोऽपि नारायण-तुल्यमूर्तिः)[६] कहा गया है। कृष्ण को चक्रधर और नीलोत्पल के समान छवि वाला कहा गया है।[७] उन्हें सजल-मेघ के समान (श्याम) भी कहा गया है।[८]

---

१. ख० दे०, पृ० ११६-१२६ (चित्र ३९, ४१, ४२-५२)
२. गरुड़, १।१३१।१३-१५
३. वही, १।१३१।१७
४. स्कन्द, ७।४।२।७
दृष्टव्य, वही, ५।३।१०।१७८, कंसासुरनिहंतारं शंखचक्रगदाधरम्।
५ गरुड़, १।२८।१३
६. वि० ध०, ३।७६।५ (२)
७. वही, ३।८५।७३ (२)
८. वही, ३।१०६।९७, १२३ (२)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कृष्ण की मूर्ति द्विभुज या चतुर्भुज हो। द्विभुजी मूर्ति के दोनों हाथों में मुरली धारण करे अथवा इस (द्विभुजी) मूर्ति के दाहिने हाथ में चक्र और दूसरे (अर्थात्) बाएँ हाथ में शंख धारण करे। द्वितीय प्रकार की चतुर्भुज मूर्ति में दक्षिणाधः से कर-क्रमानुसार गदापद्म शंख और चक्र धारण किए हों। दोनों प्रकार की मूर्तियों के साथ बाईं ओर श्री को प्रतिष्ठित करे, किन्तु मुरलीधर के बाईं ओर राधा-रासेश्वरी को प्रतिष्ठित करे। दोनों प्रकार की मूर्तियाँ सभी अवयवों से पूर्ण हों।[1]

खजुराहो में कृष्ण की मुरलीधर-मूर्ति को राधा के साथ मूर्त किया गया है।[2] गोपीनाथ राव ने गान-गोपाल और वेणुगोपाल तथा मदन गोपाल की मूर्तियों का वर्णन किया है।[3] मुरलीधर की मूर्ति भी इसी प्रकार की होती है जिसमें वे दोनों हाथों से मुरली बजाते हुए दिखाये गये हैं।

बलराम

बलराम ज्येष्ठ होते हुए भी प्रसिद्धि और प्रभाव तथा पूजा-पद्धति में कृष्ण से पीछे रह गये। दशावतारों की कई सूचियों में कहीं-कहीं बलराम का नाम नहीं सम्मिलित किया गया है, जब कि कृष्ण का नाम दशावतार-तालिका का अभिन्न अंग बन गया।[4]

---

१. स्कन्द, २।९।२६।२४-२८

२. ख० स्क०, पृ० ४०; डा० उर्मिला अग्रवाल ने इसका उल्लेख किया है, परन्तु न जाने क्यों डा० अवस्थी के ग्रन्थ में इसका विवरण नहीं दिया गया है। अधिकांशतः इन लेखकों का ध्यान कृष्ण-लीलाओं और तत्सम्बन्धी रूप-चित्रों पर गया है। अवस्थी ने कृष्ण-प्रतिमा लक्षणों और उसके निदर्शनों की पूर्ण रूपेण उपेक्षा की है। ख० दे० (पृ० ११५-१२४) में उनकी लीला-कथाओं तथा चित्र ३९-५२ (प्लेट २८-३७) में उनके ही रूपों की तसवीरें दी हैं। डा० उर्मिला अग्रवाल ने भी (चित्र १६-१८) इन्हीं दृश्यों को दिखाकर राधा-कृष्ण की मूर्ति का चित्र नहीं दिया।

३. ए० हि० आ०, १-१, पृ० २०७-२१०, प्लेट्स ६१, ६२, ६३।

४ गरुड़, २।२०।३१ में दस नामों में दो ही नामों (जामदग्न्य और दाशरथि) का उल्लेख है। परन्तु अ० १४४ में बल (राम) का उल्लेख है। गरुड़ १।१।३१ में राम और कृष्ण को क्रमशः उन्नीसवाँ और बीसवाँ अवतार बताया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संकर्षण

इनको ही संकर्षण भी कहा गया है। भगवान (विष्णु के) शेष नामक अंश से देवकी में वसुदेव द्वारा सातवाँ गर्भ स्थित हुआ। योगनिद्रा (वैष्णवी) ने उसे (सातवें गर्भ को) वसुदेव की दूसरी पत्नी रोहिणी में स्थापित किया। संसार में यही प्रसिद्ध हो गया कि भय से देवकी का सातवाँ गर्भ गिर गया।[१] वह श्वेत वीर पुरुष श्वेत शैल शिखर के समान गर्भ से संकर्षण (आकर्षण) किए जाने के कारण संकर्षण के नाम से प्रसिद्ध हुआ :—

गर्भसंकर्षणात्सोऽथ लोके संकर्षणेति वै।
संज्ञामवाप्स्यते वीरश्श्वेताद्रि शिखरोपमः ॥[२]

संकर्षण मूर्ति का वर्णन चतुर्व्यूहों के साथ किया जा चुका है।

अनन्त

विष्णु भगवान का शेष नामक जो तमो-विग्रह है वह पातालों के नीचे स्थित है; और उसी को अनन्त के नाम-रूप में सिद्ध पुरुष, देवता और देवर्षि पूजते हैं। यह अनन्त रूप अतिनिर्मल, स्पष्ट स्वस्तिक चिन्ह से सुशोभित तथा सहस्र शिर वाले हैं; वह अपने फणों की मणियों से सभी दिशाओं को प्रकाशित करते हैं (पीछे कहा जा चुका है कि वे तम और अज्ञान के नाशक हैं, और समस्त असुरों को वीर्यहीन करते हैं; मद के कारण उनके नेत्र लाल-लाल हैं; सदैव एक ही कुण्डल पहने हुए, किरीट और माला से सुशोभित हैं; तेजस्वी (अग्नि युक्त)वह मानो श्वेत पर्वत ही हों; मदोन्मत्त, नीलाम्बर धारण किए हुए, श्वेतहारों से सुशोभित मेघमाला और गंगा प्रवाह से युक्त मानों दूसरा कैलास ही हों; अपने हाथों में हल (लांगलासक्तहस्ताग्रो) और मुसल (विभ्रन्मुसल-मुत्तमम्) तथा जिनकी उपासना स्वयं कान्ती और वारूणी देवी मूर्तिमती होकर करती हैं। उनके मुख से संकर्षण नाम रुद्र निकल कर तीनों लोकों का भक्षण करते हैं; देवताओं से वन्दित वह अपने शीर्ष पर सम्पूर्ण क्षितिमण्डल को मुकुट के समान धारण किए पाताल तल में विराजमान हैं।[३]

यह सम्पूर्ण पृथिवी फणों की मणियों से अरुण (पृथ्वीफणामणिशिखारुणा) फूलों की माला के समान रखी हुई है। जिस समय मदमत्त नयन वाले शेष जी जमुहाई लेते हैं यह सम्पूर्ण पृथिवी चलायमान हो जाती है।[४] इनके गुणों

---

१ विष्णु पु०, ५।१।७१-७४।
२. वही, ५।१।७५।
३. वही, २।५।१३-२०
४. वही, २।५।२२-२३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का अन्त गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध, नाग, किन्नर और चारण कोई भी नहीं पा सकता, इसीलिए वे अनन्त कहलाते हैं ।[1]

नाग

अनन्त-शेष को ही नागवर्य (नागश्रेष्ठ) भी कहा गया है जिन्होंने पृथिवी को अपने मस्तक पर धारण किया है ।[2] गरुड़ पुराण भी इन नागाधिपति अनन्त को उनके वाहन और परिवार के सहित वन्दना करता है (ॐ अनन्ताय नागाधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः) ।[3] शेष[4] और नाग[5] की विष्णु के अवतारो के रूपों में गणना की गई है ।

उपर्युक्त शेष, संकर्षण, अनन्त और नाग के नाम-रूपों और गुणों का प्रत्यक्षीकरण बलराम की प्रतिमा में हुआ है। इसका विशद वर्णन विष्णु पुराण में मिलता है, जैसा कि ऊपर उल्लिखित किया जा चुका है। ये विशिष्टताएँ निम्नांकित हैं :—

१—श्वेत वर्ण (ज्ञान का प्रतीक है) अति निर्मल स्वस्तिक चिन्ह भी इसी तत्व का परिचायक है ।

२—सहस्रशिर, विशेषत: फण-मणि, नाग-उपासना के प्रतीक हैं ।

३—हल—उनके संकर्षण नाम और कार्य का प्रतीक है । डा० अग्रवाल इसे क्षेत्रपाल देवता से सम्बन्धित बताते हैं ।[6]

४—मुसल—डा० अग्रवाल इसे यक्ष-मूर्ति (तुलना कीजिए मोग्गरपाणि यक्ष) से सम्बन्धित बताते हैं ।[7]

इस प्रकार बलराम की मूर्ति में विभिन्न तत्वों का समन्वय हुआ है ।

---

१. विष्णु पु०, २।५।२४

२. वही, २।५।२७ (१)

३. गरुड़, १।३१।२१

४. वही, १।१९६।६ (१)
आत्मानं परमं ध्यायेच्छक्तिभिर्युतम् ।

५. वही, १।१९६।१०
नागः क्रोधवशात् किल············रक्षतु ।

६. स्टोरी आफ इण्डियन आर्ट, पृ० ३३० ।

७. वही :—

"Thus the mingling of these several strands became concrete in the form of a new image in the Hindu pantheon."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विष्णु पुराण में वर्णित बलराम-अनन्त के प्रतिमा-लक्षणों को बृहत्संहिता में भी पाते हैं—

"बलदेव की प्रतिमा एक हाथ में हल लिए हो, मद से चलायमान नेत्र हों, एक कान में कुण्डल धारण किए हो तथा शंख, चन्द्र या मृणाल के समान उनके शरीर का रंग श्वेत हो।[1] विष्णुधर्मोत्तर के अनुसार भी मदविभ्रान्त नेत्र, एक कुण्डल और वनमाला पहने हुए रेवती प्रिय राम शान्त कहे गए हैं। प्रलम्बासुर को मारने वाले (भागवत, १०, १८; हरिवंश, विष्णु पर्व, अ० १४) और हल से यमुना का कर्षण करने वाले थे[2] (हरिवंश, विष्णु पर्व, ४६।३२-४२)। बलराम मूर्ति की एक विशिष्टता 'श्रवणैकावलम्बेन कुण्डलेन विराजता'[3] (एक कान में एक कुण्डल लटकता था) की ओर लेखकों का ध्यान कम गया है। विष्णु पुराण, विष्णुधर्मोत्तर और हरिवंश में इस विशिष्टता का उल्लेख मिलता है।

लखनऊ संग्रहालय में एक बलराम मूर्ति मथुरा के निकट प्राप्त हुई थी जो प्रारम्भिक युग की प्रतिमा है। सर्प के फणों से आवृत-शीर्ष बलराम खड़े हुए हैं; और वे दाहिने हाथ में मूसल और बाएँ हाथ में हल लिए हुए हैं। इससे सिद्ध होता है कि उनकी मूर्ति का प्रकार और स्वरूप शुंग युग में निश्चित हो चुका था। उनके वस्त्र-वेश बड़ी पगड़ी, बड़े-बड़े कुण्डल, धोती और डुपट्टा यक्षों की वस्त्र-सज्जा के समान ही है।[4]

बुद्ध

वासुदेव ने बुद्ध का भी अवतार देवताओं की रक्षा, अधर्म का नाश और दैत्यों को मोहित करने के लिए धारण किया।[5] यह अवतार कीकट में हुआ बताया जाता है।[6]

बृहत्संहिता के अनुसार बुद्ध की प्रतिमा के हाथों और पैरों में पद्म के चिन्ह हों, मूर्ति प्रसन्न-मुद्रा में हो; पद्मासन में बैठी हुई संसार के पिता के

---

१. बृ० स०, ५८।३७ :

बलदेवो हलपाणिर्मदविभ्रमलोचनश्च कर्त्तव्यः।
विभ्रत्कुण्डलमेकं शंखेन्दुमृणालगौरतनुः॥

२. वि० ध०, ३।१०६।१२१-१२३ (१)

३. हरिवंश, विष्णुपर्व, ४६।२५।

४. स्टो० इ० आ०, पृ० २५६

५. गरुड़, १।१४५।४०

६. वही, १।१।३२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समान बुद्ध की प्रतिमा हो।[१] अग्नि पुराण के अनुसार वह पद्म के ऊपर स्थित, शान्तात्मा, लम्बे कानों वाले, गौर वर्णीय और वस्त्रों को धारण किए हुए वरद तथा अभय मुद्रा में प्रदर्शित हों[२] (चित्र १४)।

कल्कि

अन्तिम अवतार विष्णुयश नाम कल्कि का है।[३] धनुष और तूण से युक्त म्लेच्छान्तक कल्कि हों अथवा घोड़े पर सवार खड्ग, शंख, चक्र और शर (बाण) लिए हुए हों।[४]

लखनऊ संग्रहालय में विष्णु की मूर्ति के चारों ओर दशावतारों का रूप-निर्माण हुआ है (चित्र १५)।

विष्णु की उपर्युक्त मूर्तियों के अतिरिक्त निम्नांकित अन्य अवतारों और विष्णु के रूपों का उल्लेख गरुड़ पुराण में पाते हैं :—

धन्वन्तरि

धन्वन्तरि का विष्णु के अवतार-रूप[५] का उल्लेख गरुड़ पुराण में विशेष रूप से दृष्टव्य है। समुद्र-मन्थन से वैद्य-देव धन्वन्तरि का आविर्भाव हुआ। वे अमृत से भरा हुआ कमण्डलु लिए हुए थे।[६] अग्नि पुराण के अनुसार भी धन्वन्तरि विष्णु का यही रूप है।[७] अग्नि पुराण में धन्वन्तरि देव[८] आयुर्वेद-प्रवर्तक रूप में आते हैं।

विष्णुधर्मोत्तर के अनुसार प्रियदर्शन, सुरूपी और दोनों हाथों में अमृत-कलश लिए हुए धन्वन्तरि की प्रतिमा हो।[९]

---

१. बृ० सं० ५८।४४
२. अग्नि ४९।८
३. गरुड़ १।१।३३
४. अग्नि, ४९।९
५. गरुड़, १।१४५।४१-४२; १।१९६।१० (१)
६. वही, १।१४२।४ :

क्षीरोदमथने वैद्यो देवो धन्वन्तरिर्ह्यभूत्।
विभ्रत्कमंडलं पूर्णममृतेन समुत्थितः॥

७. अग्नि, ३।११
८. वही, २७९।१
९. वि० ध०, ३।७३।४१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हयग्रीव

मन्त्र और मूर्ति के साथ हयग्रीव देव का पूजन प्रचलित था।[१] उनके ध्यान[२] का वर्णन करते हुए उनकी मूर्ति का वर्णन किया गया है। वे शंख, कुन्द (पुष्प) और चन्द्रमा के समान श्वेत तथा मृणाल (कमल की जड़) और चाँदी के समान प्रभावाले चतुर्भुज हयग्रीव हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म को धारण किए हुए हों; किरीट, कुण्डल और वनमाला से विभूषित हों और सुन्दर रक्त कपोलों से युक्त पीताम्बर धारण किए हों।[३]

हृत्कमल में शंखचक्रगदाधर हयग्रीव का भी ध्यान किया जाता था। उनका शरीर करोड़ों सूर्यों के समान तेजस्वी और सर्वांग सुन्दर हो।[४] यहाँ, इस मूर्ति में उनका चौथा हाथ अभय या वरद मुद्रा में होना चाहिए। इनका मुख घोड़े का होता है (हयाननो ततो हरिः)।[५] हयग्रीव भगवान् को विद्याध्यक्ष, विद्यास्वरूप और विद्यादाता कहा गया है :—

ॐ नमो हयशिरसे विद्याध्यक्षाय वै नमः।
नमो विद्यास्वरूपाय विद्यादात्रे नमोनमः॥

गरुड़, १।३४।४९

श्रीधर

श्रीधर पूजा उनकी मूर्ति बनाकर की जाती थी। मूर्ति ध्यान का आलम्बन है। श्रीधर मूर्ति शंख-चक्र-गदाधारी (श्रीधराख्यं शंखचक्रगदाधरम्) हो।[६] शुद्ध स्फटिक के समान वर्ण और सूर्यकोटि सम प्रभावाले श्रीधर प्रसन्नवदन, और सौम्य स्वरूप में हों। मकराकृति कुण्डल, किरीट और वनमाला से सुशोभित सुन्दर अंगवाले परम ब्रह्म स्वरूप श्रीधर का ध्यान करे।[७]

इन्हें श्री-निवास और श्रीपर्वत-निवासी[८] भी कहा गया है जिससे दक्षिणापथ के श्रीपर्वत से इनका सम्बन्ध सिद्ध होता है।

---

१. गरुड़, १।३४।२-९
२. वही, १।३४।१०
३. वही, १।३४।११-१२
४. वही, १।३४।५३-५६
५. स्कन्द, ३।२।१५।२८; ख० दे०, चित्र ६८।
६. गरुड़, १।३०।३; चतुर्विंशति मूर्तियों में श्रीधर को "चक्राब्जशंखगदिने" कहा गया है (१।४५।६)।
७. वही, १।३०।११-१२
८. वही, १।३०।१५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

त्रैलोक्य मोहन

यह भी विष्णु का एक प्रथित रूप था। विष्णु के स्वरूपों में श्रीधर के साथ त्रैलोक्यमोहन का भी उल्लेख मिलता है (ॐ ह्रीं श्रीधराय त्रैलोक्य-मोहनाय विष्णवे नमः)।[१] सम्भवतः श्रीधर और त्रैलोक्य मोहन एक ही रूप के परिचायक थे :

> श्रीं श्रीधराय त्रैलोक्यमोहनाय नमः।
> क्लीं पुरुषोत्तमाय त्रैलोक्यमोहनाय नमः॥
> हूं विष्णवे त्रैलोक्यमोहनाय नमः।
> ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं त्रैलोक्यमोहनाय विष्णवे नमः॥[२]

ये त्रैलोक्यमोहन मन्त्र थे। उन्हें सकलजगत्क्षोभन, सर्वस्त्रीहृदयविदारण, त्रिभुवनमदोन्मादनकर और सुरासुरसुन्दिरयों के मन को संताप देने वाला भी कहा गया है। चक्र, गदा, खड्ग, बाण, पाश व अंकुश उनके आयुध बताये गए हैं।[३] यहाँ छः ही आयुधों का उल्लेख है। सम्भवतः शेष दो हाथ योगमुद्रा में हैं। इसी अध्याय के अन्त में उनकी मूर्ति को लक्ष्मी तथा गरुड़ से युक्त तथा चक्र, गदा, खड्ग, मूसल, शंख, शार्ङ्ग, शर, पाश और अंकुश से विभूषित बताया गया है।[४] यहाँ पर उनके नौ आयुधों का वर्णन किया गया है।

अग्नि पुराण के अनुसार त्रैलोक्यमोहन की मूर्ति गरुड़ासन रूप में आठ भुजाओं वाली हो जिनमें दाहिनी ओर के हाथों में चक्र, खड्ग मूसल, और अंकुश हो तथा बायीं ओर के हाथों में शंख, शार्ङ्ग, गदा और पाश हों। पद्म तथा वीणा के सहित क्रमशः लक्ष्मी और सरस्वती हों।[५] गोपीनाथ राव

---

१. गरुड़, १।३०।७
२. वही, १।२९।३-४
३. वही, १।२९।२; अग्नि पु० ३०७।१
४. वही, १।२९।६-७
५. अग्नि, ४९।१९ (२)-२१ (१): डा० बनर्जी ने यहाँ पर त्रैलोक्यमोहन और तार्क्ष्य की दो प्रतिमाओं का स्वरूप माना है :—Agnipurāṇa... describes the images of Trailokymohana and Tārkshya as eight-armed ....." (डे० हि० आ०, पृ० ५३२)।

> त्रैलोक्यमोहनस्तार्क्ष्ये अष्टबाहुस्तु दक्षिणे।
> चक्रं खड्गञ्च मुषलमंकुश वामके करे॥
> शंखशार्ङ्गगदापाशान् पद्मवीणा समन्विते।
> लक्ष्मीः सरस्वती कार्ये.......................॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के अनुसार विष्णु रूपी त्रैलोक्यमोहन की मूर्ति लगभग वैकुण्ठ-मूर्ति के समान ही है। यह चार मुखों वाली गरुड़ारूढ़ हो, परन्तु इसके हाथ सोलह होना चाहिए; इनमें दाहिनी ओर के छः हाथों में क्रमशः गदा, चक्र, अंकुश, बाण, शक्ति और चक्र हो; दाहिनी ओर का सातवाँ हाथ वरद मुद्रा में हों; बाईं ओर के सात हाथों में क्रमशः मुग्दर, पाश, धनु, शंख, पद्म, कमण्डलु, और श्रृंग हों; शेष दाहिना और बायाँ हाथ योगमुद्रा में हों और क्रमशः उनके मुख मनुष्य, नरसिंह, वराह और कपिल के हों।[1]

अपराजितपृच्छा में भी उनकी मूर्ति को सोलह हाथ वाली कहा गया है। दाहिने हाथों में राव द्वारा (रूपमंडन के आधार पर) वर्णित आयुधों में चक्र के स्थान पर वज्र का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त यहाँ यह भी बताया गया है कि त्रैलोक्यमोहन की मूर्ति 'द्विरष्ट शक्ति संयुक्तः" (सोलह शक्तियों के साथ) बनायी जाय।[2]

डा० अवस्थी ने वैकुंठ पर विचार करते हुए बताया है कि "त्रैलोक्य-मोहन के लिये भुजाओं की यह संख्या (सोलह) आवश्यक है।"[3] परन्तु अग्नि पुराण में इनकी मूर्ति को अष्टभुजी कहा गया है जैसा डा० बनर्जी ने भी लिखा था।[4] परन्तु अवस्थी ने उसे भी न देखा और भ्रान्त मत का प्रतिपादन किया। अष्टभुजी मूर्ति का उल्लेख अग्निपुराण में (४९।१९-२१ के अतिरिक्त) दूसरे स्थान पर भी हुआ है जिसे इन लेखकों ने बिल्कुल नहीं देखा था। वह इस प्रकार है—

---

१. ए० हि० आ०, १-१, पृ० २५७; दृष्टव्य, वही १-२, प्रतिमालक्षणानि, पृ० ५९।

२. अ० पृ०, २१९।३८-४१ :

त्रैलोक्यमोहनं वक्ष्ये संसारे मोहकारकः।
स षोडश भुजैर्युक्तस्तार्क्ष्यस्थश्च महाबलः॥
गदावज्रांकुशौ बाणः शक्तिश्चक्रं तथा क्रमात्।
वरदश्चेति हस्तेषु ह्यस्त्राणि दक्षिणे॥
मुद्गरः पाशशार्ङ्गं च शंखः पद्मं कमण्डलु।
श्रृंगी वामेषु हस्तेषु योगमुद्रा करद्वये॥
नरास्यो नारसिंहास्यः सूकरः कपिलाननः।
द्विरष्टशक्तिसंयुक्त कार्यस्त्रैलोक्यमोहनः॥

द्विरष्टशक्ति संयुक्तः पर लेखकों ने ध्यान नहीं दिया है।

३. ख० दे०, पृ० १३३, नोट ५

४. डे० हि० आ०, पृ० ५३२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

त्रैलोक्यमोहन पीठ में पद्म पर स्थित गरुड़ारूढ़ सर्वांगसुन्दर हों, उनका सौन्दर्य वय (तरुणावस्था) और इसीलिए यौवन तथा तदनुरूप लावण्य से से युक्त हों; उनकी लाल-लाल मदमत्त आँखें और कामदेव को विक्षुब्ध करने वाला उदार (सुन्दर) शरीर हो; दिव्य माला, वस्त्रों और लेप से विभूषित शरीर में मुस्कान भरी हुई मुखाकृति हो; नाना प्रकार के परिवार-देवताओं से घिरे हुए हों; सहस्रों सूर्यों के समान कान्ति वाले उनका सौम्य तथा लोकानुग्रह रूप हो; कामदेव के समान पूर्णकाम नेत्र वाले और आठ भुजाओं से युक्त देव-स्त्रियों से घिरे हुए त्रैलोक्यमोहन का देवी के मुख को देखते हुए स्वरूप हो; उनके हाथों में चक्र, शंख, धनु, खड्ग, गदा, मुशल, अंकुश और पाश को लिए हुए हों; और उनकी बाँयी जंघा पर बैठी हुई श्री देवी हाथ से पति का आलिंगन करती हो तथा श्री देवी भी स्वस्थ स्वरूप में कमल और चामर हाथों में लिए हों तथा श्रीवत्स और कौस्तुभ से सयुक्त हों।[१] यह रूप-विष्णु और कामदेव (बलराम) का संयुक्त स्वरूप था जो स्त्रियों के हृदय को विक्षुब्ध करने वाला था।

विष्णु की तिर्यङ (पशु-पक्षी) मूर्तियाँ

ऊपर विष्णु की मूर्तियों का उनके नर रूप और नृ-मृगत्व रूप में वर्णन किया गया है। मत्स्य, कूर्म और वराह पशु रूपों अथवा मिश्रित रूपों में भी मूर्त मिलते हैं। इनके अतिरिक्त गरुड़ पुराण से हंस, अश्व, हस्ति और मयूर रूपों में भी विष्णु का उल्लेख मिलता है।

हंस-रूप

विष्णु ने हंस रूप धारण कर शान्त नामक दैत्य का बध किया था (शान्तशत्रुर्हतो दैत्यो हंस रूपेण विष्णुना)[२] अन्यत्र भी अवतारों की तालिका में हंस का उल्लेख करता है।[३]

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में हंसावतार का विशेष रूप से वर्णन किया है। पहले कृतयुग में लोग ज्ञानी थे। परन्तु कृतयुग के अन्त में परिग्रह बढ़ा और उसी से लोभ और द्वेष भी बढ़े। राग-द्वेष के प्राबल्य से ज्ञान नष्ट हो गया। इसी से धर्म भी नष्ट हो गया। धर्म को नष्ट हुआ देखकर ही विष्णु ने हंस के अवतार को धारण किया[४] :—

---

१. अग्नि पु०, ३०७।१३-१८

२. गरुड़, १।८७।२०

३. शान्ति पर्व ३३९।१०३; वि०ध०, ३।८५।५८ (२); ३।१०६।९२ (१)।

४. वही, ३।२२५।१-५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भूत्वा हंससमो वर्णे विजहार महीमिमाम् ।
सुपक्षो देवचरणः सुचञ्चुः स्वायतेक्षणः ॥[१]

हंस के समान ही सुन्दर पक्षों (पखनों) से युक्त, दिव्यचरण, सुन्दर चोंच और बड़ी-बड़ी आँखों वाले हंस भगवान थे। उन्होंने पृथिवी का उद्धार कर पुनः ज्ञान का प्रकाश फैलाया।[२] विप्रों ने विष्णुरूपी पक्षिराट् हंस की पूजा की।[३] अष्टदल कमल के बीच में हंस रूपी जनार्दन की पूजा पुरुष सूक्त और अन्य उपचारों के साथ की जाती है।[४]

लौरियानन्दनगढ़ के अशोकीय स्तम्भ की चौकी (अबेकस) के चारों ओर हंसों को दिखाया गया है।

अश्व रूप

लोक रक्षक विष्णु ने अश्व रूप धारण कर महाभुजाओं वाले महाकाल को, जो इन्द्र का शत्रु था, मार डाला।[५]

हस्ति स्वरूप

मधुसूदन (हरि) ने हस्तिस्वरूप द्वारा भी देव-शत्रु (दैत्य) का वध किया।[६]

मायूर रूप

माधव (विष्णु) ने मयूर रूप धारण कर इन्द्र-शत्रु दानव का वध किया।[७] मत्स्य[८], कूर्म[९], और वराह[१०] तो भगवान विष्णु के प्रसिद्ध अवतार रूप हैं।

लक्ष्मी

परमादेवी लक्ष्मी की पूजा होती थी। उनकी मूर्ति में उनके हाथ शंख, पद्म, चक्र और गदा से सुशोभित हों।[११]

---

१. वि० ध०, ३।२२५।६
२. वही, ३।२२५।७-१५
३. वही, ३।२२५।१३
४. वही, ३।२२४।३-५
५. गरुड़, १।८७।२४
६. वही, १।८७।८
७. वही, १।८७।५४-५५
८. वही, १।८७।१२
९. वही, १।८७।१६
१०. वही, १।८७।३०
११. वही, १।३४।३९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३—शिव—स्वरूप

यद्यपि गरुड़ पुराण मुख्यतः वैष्णव पुराण है, परन्तु फिर भी इसमें शिव के विभिन्न स्वरूपों—महेश्वर, भैरव, रुद्र, सदाशिव, अमृतेश्वर, का दर्शन होता है।

सदाशिव (ईश्वर)

ईश् (शासन) शक्ति से युक्त देवता को ईश्वर कहते हैं। ऐसे सदाशिव ईश्वर का ध्यान करे जो षोडश वर्षीय (किशोरावस्था) रूप में श्वेत रंग के भगवान् पद्मासन की मुद्रा में बैठे हों, उनके पाँच मुख और दश भुजाएँ हों जिनमें दाहिनी ओर के (पांच) हाथों में अभय (मुद्रा), प्रसाद (मुद्रा, वरद), शक्ति, शूल और खट्वांग लिए हों तथा दाहिनी ओर के (पाँच) हाथों में सर्प, अक्षसूत्र, डमरू, नीलोत्पल तथा बीजपूरक हो। इच्छा, क्रिया और ज्ञान शक्तियों के प्रतीक तीन नेत्रों वाले हों।[१] लगभग यह वर्णन उत्तरकामिकागम[२] में मिलता है जिसे श्री गोपीनाथ राव[३] ने उल्लिखित किया है।

सदाशिव ही परम ब्रह्म हैं जिनसे अन्य रूपों और तत्वों का प्रार्दुभाव होता है।[४]

महेश्वर

गरुड़ और पद्म पुराणों में महेश्वर (वृषध्वज) को भी पांच मुखों और दश भुजाओं वाला कहा गया है (महेश्वरः पञ्चवक्त्रो दशबाहुर्वृषध्वजः)।[६] महेश-मूर्ति के पाँच सिर हों, जिनके चार मुख दिखाई पड़ते हों; प्रत्येक मुख में तीन नेत्र आदि हों; उनके दो पाद और दश भुजाएँ हों; दो हाथ वरद और अभय मुद्रा में प्रदर्शित हों और शेष दहिने चार हाथों में शूल, परशु, वज्र और खड्ग तथा शेष बांये हाथों में खेटक, अंकुश, पाश और घन्टा हों। वे शुद्ध श्वेत वर्ण वाले हों तथा सूर्य के समान उनका तेज हो। यज्ञोपवीत तथा

---

१. गरुड़, १।२३।५०-५२

२. ए० हि० आ०, २-२, प्रतिमा लक्षणानि, पृ० १८७

३. वही, पृ० ३७१-३७२; दृष्टव्य, प्लेट्स १०५
डे० हि० आ० पृ० ४७८-४७९, प्लेट ४०, चित्र ३।

४. ए० हि० आ०, २-२, पृ० ३७१।

६. गरुड़, १।४५।३१ (२); पद्म पु०, ४।७८।४३ (२)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सभी आभूषणों से विभूषित हों और उनके पास ही शक्ति की चतुर्भुजी और त्रिनेत्री मूर्ति भी हो।[1]

अमृतेश्वर

श्वेत पद्म पर स्थित अमृतेश्वर (शिव) का ध्यान किया जाय। उनके दो हाथ वरद और अभय मुद्रा में हों तथा दो हाथों से अमृत घट को धारण किए हों। उनके ही अंग पर अमृतभाषिणी अमृता देवी प्रतिष्ठित हों, जिनके दाहिने हाथ में कलश और बाँयें हाथ में कमल हो।[2]

भैरव

शिव स्वरूप सकल संसार के संहारक भैरव के उग्र रूप का ध्यान करें। उनके दश हाथ और चार मुख तथा तीन नेत्र हों; चन्द्र शिखर तथा पिंगाक्ष (भूरी आँख वाले; यह शिव का भी एक नाम है) भैरव शूल हाथ में लिए हों तथा उनके कराल दाँत ह।[3]

विष्णुधर्मोत्तर में भैरव के रूप-निर्माण का वर्णन मिलता है। लम्बोदर और पिंगलाक्ष भैरव का कराल दाँतों वाला मुख हो; वह कपाल-माला पहने हों; सभी ओर से सर्पों से विभूषित हों; व्यालों से पार्वती को त्रस्त करते हों: सजल जलद के समान गजचर्म को ओढ़े हों; बहुत-सी लम्बी भुजाओं वाले सभी आयुधों से सुशोभित हों; तथा हाथों में तीक्ष्ण नख हों।[4]

रति-अनंग

अनंग त्रयोदशी के दिन शिव-पूजा का वर्णन करते हुए रति-युक्त अनंग की पूजा का भी उल्लेख मिलता है।[5] खजुराहो में काम-रति की मूर्तियाँ मिलती हैं।[6]

४—गणेश-मूर्तियाँ

गणपति (गणाधिपति) की पूजा होती थी।[7] गरुड़ और पद्म पुराणों में

१. ए० हि० आ०, २-२, पृ ३७९; प्रतिमालक्षणानि पृ० १९१
वही प्लेट्स, १४४, चित्र १; ११६; ११७, ११८।
२. गरुड़, १।१८।५-६
३. वही, १।१९७।४७-४८
४. वि० ध० ३।५९।१-४
५. गरुड़, १।११७।१३-१४
६. ख० दे०, प्लेट ५, चित्र ६-७
७. गरुड़, १।१।२; १।२४।१; १।१८५।१-४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देव मूर्तियों के साथ ही गणेश की गजमुख प्रतिमा (गजास्यश्च गण:) का उल्लेख मिलता है जिसको प्रसाद में स्थापित कर पूजा जाता था।[१]

विनायक की आद्यमूर्ति की पूजा कर बारह नामों—गणपूज्य, एकदन्ती, वक्रतुण्ड, त्र्यम्बक, नीलग्रीव, लम्बोदर, विकट, विघ्नराज, धूम्रवर्ण, बालचन्द्र (दसवाँ विनायक), गणपति और हस्तिमुख—से उनका चिन्तन किया जाता था।[२] ये विभिन्न नाम उनकी मूर्ति के लक्षणों के भी परिचायक हैं।

उनकी गायत्री में भी हमें उनकी प्रतिमा के लक्षणों का ज्ञान होता है। ये निम्नांकित हैं :—

महाकर्ण, वक्रतुण्ड, दन्ती और एक दन्त।[३]

इन उपर्युक्त लक्षणों में उनकी भुजाओं तथा उनमें रखे हुए आयुधों का उल्लेख नहीं मिलता है, परन्तु उनकी मूर्ति की अन्य विशेषताएँ—लम्बोदर, गजास्य (हस्तिमुख), एकदन्ती, त्र्यम्बक, महाकर्ण (मत्स्य पु० में शूर्पकर्ण) और वक्रतुण्ड—प्राप्त होती हैं।[४] ये उनकी सामान्य विशेषताएँ हैं।[५]

विष्णुधर्मोत्तर में देवालय के निर्माण के प्रारम्भ में "देवदेव विनायक" की पूजा करने का आदेश मिलता है।[६] इनकी प्रतिमा चतुर्भुजी और हाथी के मुखवाली (गजवक्त्रश्चतुर्भुज:) हो तथा दाहिने हाथों में शूल (शूलकं) और अक्षमाला और बाँये हाथों में मोदकपूर्ण पात्र तथा परशु लिए हों। उनका बाँया दाँत न हो। उनका एक पैर पादपीठ (फुट-स्टूल) पर हो और दूसरा आसन पर हो। वे लम्बोदर (बड़े पेट वाले) और स्तब्ध कर्ण (अचल या बड़े कानों) वाले हों। व्याघ्र (बाघ) की खाल ओढ़े हों तथा सर्पों का यज्ञोपवीत पहने हों।[७]

"देवदेव विनायक" इस समय पूजा-पद्धति में महत्व पा चुके थे। विष्णु, शिव, ब्रह्मा, और सरस्वती देवी के साथ ग्रन्थारम्भ में इनका स्तवन किया गया है।[८] ऊपर कहा जा चुका है कि मन्दिर निर्माण करने के पूर्व देवदेव

---

१. वही, १।४५।३३; पद्म पु०, ४।७८।४५
२. गरुड़, १।१२९।२०-२२
३. वही, १।१२९।१३-१४
४. दृष्टव्य, मत्स्य पु०, २५९।५२-५५ (१)
५. ख० दे०, पृ० ४९-५०
६. वि० ध०, ३।९४।२
७. वि० ध०, ३।७१।१३-१६
८. गरुड़, १।१।२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विनायक की पूजा करना आवश्यक था। ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी प्रकृति (शक्ति), शिव, ब्रह्मा और सूर्य की उपासना के साथ-साथ देव-देव गणेश्वर की भक्ति का उल्लेख मिलता है :—

गणेश्वरं यो भजते देवदेवं सनातनम्।
सर्वाग्रपूज्यं सर्वेशं भक्त्या जन्मनि जन्मनि ।।[१]

गणेश्वर भगवान कृष्ण का ही अंशावतार हैं।[२] लेखकों ने इस पर अधिक विचार नहीं किया। श्री गोपीनाथ राव ने बताया था कि विघ्नेश्वर कृष्ण का ही दूसरा रूप है।[३] परन्तु उन्होंने ब्रह्मवैवर्त पुराण का सन्दर्भ नहीं दिया। डा० बनर्जी और उनका अनुकरण करने वाले डा० शुक्ल[५] ने भी ब्रह्मवैवर्त को न देखा। डा० अवस्थी ने "गणपति उपासना का उद्‌भव और विकास"[६] का इतिहास देते हुए भी गणेश के विष्णु रूप पर विचार ही नहीं किया है।

पद्म पुराण में गणेश पूजा का माहात्म्य वर्णन करते हुए बताया गया है कि भारतवर्ष में लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) नदी के दक्षिण तट पर लिंगरूपी विनायक स्थित थे :

देशे च भारतेवर्षे वनितापूर्व संन्निधौ।
लौहित्यदक्षिणे तीरे लिंगरूपो विनायकः ।।[७]

यहाँ ये विनायक शम्भु स्वरूप (शम्भुर्विनायक:) थे जिनका पूजन लौहित्य में स्नान करने के बाद पुण्यप्रद था।[८] इस प्रकार विनायक न केवल कृष्ण-स्वरूप ही थे, प्रत्युत शिव स्वरूप भी हो गए। इससे सिद्ध होता है कि भारत-वर्ष में ही गाणपत्य सम्प्रदाय वही महत्व को पा गया जो अन्य सम्प्रदायों को प्राप्त था। इसीलिए पंचायतन पूजा में (शिवा, शिव, गणपति, सूर्य और विष्णु) की गणपति पूजा भी प्रचलित हो गई (देवी भा०, ११।१७।३५)

---

१. ब्र० वै०, १।१४।३३-३९
२. वही, १।१४।४०
३. वही, २।६७।२२
४. ए० हि० आ०, १-१, पृ० ४५-४६
५. डे० हि० आ०, पृ० ३५५
६. वास्तुशास्त्र, भाग २, पृ० २८९
७. ख० दे०, पृ० ३१-३५
८. पद्म पु० ५।६ ।१४
९. वही, ५।६३।१८-२०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और पूर्व मध्य युग में वैष्णव, शैव और और शाक्त सम्प्रदायों के समान ही गाणपत्य भी प्रथित बन गया।

पद्म पुराण में ही बताया गया है कि गणेश की पूजा लिंग, प्रतिमा अथवा चित्र में (लिंग वा प्रतिमाचित्रे देवः पूज्यो भवेत्)[१] पूज्य थे। मिट्टी, पत्थर और लकड़ी तथा चित्र में हेरम्ब (गणेश) की मूर्तियाँ बनायी जाती थीं।[२]

अन्य देवों की भाँति उनके लिए भी स्तोत्रों (गणपति स्तोत्र)[३] से उनका स्तवन-पूजन किया जाने लगा। इन स्तोत्रों में उनके विभिन्न नामों का उल्लेख हुआ जिनसे उनकी प्रतिकृति का आभास मिलता है। गणपति स्तोत्र (पद्म पु० सृष्टि खड, अ० ६२) से उनकी प्रतिमा के लक्षणों और लांछनों का भी ज्ञान होता है :—

एकदन्त वाले लम्बोदर गणनायक विशालाक्ष, महाकाय (मुंजकृष्णाजिन-धरं) तथा नागयज्ञोपवीत (नाग यज्ञोपवीतिनम्) मुंज (मेखला) और कृष्ण-मृगचर्म धारण किए हुए हों, उनका शीर्ष बालचन्द्र की रेखा से सुशोभित हो (बालेन्दुकालिकामौलिं) (इसीलिए उनका एक नाम बालचन्द्र विनायक भी है); वे मातृकाओं से भी घिरे हों (मातृकापरिवेष्टितम्); उनका सुन्दर शरीर हाथी के मुँह (गजवक्रं) और सुन्दर कानों से विभूषित हों (चारुकर्ण-विभूषितं); पाश और अंकुश लिए हुए (पाशांकुशधरं देवं) और मूषक पर सवार (मूषकोत्तममारुह्य) होकर देवासुर युद्ध में लड़ने की इच्छा वाले महा-बाहु गणनायक की वन्दना करता हूँ।[४] यहाँ उनको विशालाक्ष कहा गया है जो शिव की भी उपाधि है इस प्रकार पद्म पुराण भी हेरम्ब-विनायक की महिमा का वर्णन करता है :

एकदन्तं महाप्राज्ञं वक्रतुण्डं विनायकम्।
मूषिकावाहनं देवं विघ्ननाशं नता वयम्॥[५]

५—कार्तिकेय

कार्तिकेय-पूजा प्रचलित थी।[६] इनके भी विभिन्न नाम थे—अग्निपुत्र,

---

१. पद्म पु०, ५।६१।२५
२ वही, ५।६३।३
३. वही, ५, अ० ६१-६२।
४. वही, ५।६२।२-८
५. वही, ५।६३।३६
६. गरुड़, १।१३०।१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुमार, शाख, विशाख, नैगमेय, और कार्तिकेय। कृत्तिकाओं की सन्तान होने के कारण इनको कार्तिकेय कहा जाता है (अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्तिकेय इति स्मृतः)।[१] इनको स्कन्द भी कहते हैं। स्कन्द को कुमार रूप में हाथो में शक्ति और मयूर ध्वज लिए हुए बनावे।[२]

विष्णुधर्मोत्तर में चतुर्मूर्ति कुमार—कुमार, स्कन्द, विशाख और गुह—की मूर्तियों का वर्णन किया गया है। छः मुख वाले कुमार काकपक्ष मयूर-पुच्छ शिखन्डक) से विभूषित हों; और उनके दाहिने हाथों में कुक्कुट और घन्टा तथा बाँये हाथों में वैजयन्ती पताका और शक्ति हो। स्वन्द, विशाख और गुह की मूर्तियाँ भी कुमार के समान हों; परन्तु उनके न तो छः मुख हों और न वे मयूरारूढ़ हों।[3] परंतु गरुड़ और पद्म पुराण स्कन्द की मूर्ति को छः मुख वाली बताते हैं (स्कन्दः षण्मुखो)।[४]

षण्मुख कार्तिकेय के १२ आँखें और १२ हाथ होना चाहिए; वे मयूरारूढ़ हों और अपने दायें हाथों में शक्ति, बाण, खड्ग, ध्वज, गदा, और अभय मुद्रा में हों तथा बायें हाथों में धनु, वज्र, पद्म, कटक-हस्त (खेटक) ओर वरद मुद्रा में हों।[५]

---

१. गरुड़, १।६।३३
२. वृ० सं०, ५८।४१ (२)
३. वि० ध०, ३।७१।३-६
४. गरुड़, १।४५।३३; पद्म पु०, ४।७८।४५
५. ए० हि० आ०, २-२, पृ० ४३७; दृष्टव्य प्लेट १२७, १२८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सूर्य मूर्ति

(सूर्यमूर्त्तयेनमः)[1]

नमस्ते पद्महस्ताय (पद्म, ५।७६।३१)

विष्णु-रूप सूर्य की (सूर्यस्य विष्णुरूपस्य)।[2] मन्दिर में प्रतिष्ठापित मूर्ति की पूजा होती थी। यहाँ पर उपास्य सूर्य (मूर्ति) को हाथ में पद्म लिए हुए कहा गया है (पद्महस्तो दिवाकरः)।[3]

द्विभुज आदित्य

पद्म पुराण में द्विभुजी सूर्य मूर्ति का वर्णन किया गया है :

पद्मासन पर स्थित आदित्य देव का चिन्तन करना चाहिए। वह दो भुजाओं वाले हों और रक्तपंकज (लाल कमल) को एक हाथ में लिए हों; उनका लाल रंगवाला शरीर सभी लक्षणों से युक्त और सभी आभरणों से भूषित हो। सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित तेज-बिम्ब तथा सुगन्धित रक्त (लाल लेप) से युक्त देव-शरीर हो।[4] इस ध्यान मंत्र में आदित्य के दो हाथों में से एक में कमल लिए हुए है। परन्तु दूसरे हाथ का वर्णन नहीं दिया गया है। अन्यत्र उल्लिखित "पद्महस्तो दिवाकरः" से भी यही ज्ञात होता है कि उनका दूसरा हाथ अभय या वरद मुद्रा में होना चाहिए। आदित्य-गायत्री में भी रवि-मूर्ति का दर्शन होता है : द्विभुजं रक्तपद्मस्थं सुगलं रक्तवाससं सर्वरक्ताभरणं ध्यात्वा हस्ताभ्यां पुष्पं विधृत्य संध्रायैशान्यां समाक्षिपेत् आदित्याय विद्महे भास्कराय धीमहि। तन्नो भानुः प्रचोदयात्।[5]

---

१. गरुड़, १।३९।५

२. वही, १।३९।१

३. वही, १।४५।३२ (२); पद्म पु०, ४।७८।४४ (२)

४. पद्म पु० ५।७५।९५-९६ :

सर्वलक्षणसम्पूर्णं सर्वाभरणभूषितम्।
द्विभुजं रक्तवर्णं च रक्तपंकजधृक्करम्॥
तेजोबिम्बं बहुजलमध्यस्थं सुपरिच्छदम्।
पद्मासनगतं देवं रक्तगन्धानुलेपनम्॥
आदित्यं चिन्तयेद्देवं पूजाकाले विशेषतः॥

५. वही, ५।७६।१०-११

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गरुड़ पुराण के अनुसार श्वेत पद्म पर स्थित तेजस्वरूप तथा रक्तवर्ण वाले सूर्य एक पहिए के रथ पर सवार अपने दोनों हाथों में कमल लिए हुए हों :

तेजोरूपं रक्तवर्णं सितपद्मोपरि स्थितम् ।
एकचक्ररथारूढं द्विबाहुं धृतपंकजम् ॥

गरुड़, १।३९।६

इस प्रकार की सूर्य मूर्ति का ध्यान करे। यहाँ उनके रथ के अश्व (या अश्वों) सारथी, और पार्श्वचरों का उल्लेख नहीं है। परन्तु सूर्य पूजा के साथ ही साथ उच्चैःश्रवा (अश्व), अरुण (सारथी) और दण्डी तथा पिंगल (पार्श्वचरों) का भी सूर्य (मन्दिर) के द्वार पर पूजन होता था :—

ॐ उच्चैःश्रवसे नमः ॐ अरुणाय नमः ॐ दण्डिने नमः ।
ॐ पिंगलाय नमः (एते द्वारे प्रपूज्या वै·............... ॥[1]

गरुड़, १।३९।२

दूसरे स्थान पर सौर मण्डल का वर्णन करते हुए सूर्य के रथ का वर्णन विशेष रूप से किया गया है। यहाँ भी रथ के एक ही चक्र का उल्लेख हुआ है। यह सम्पूर्ण कालचक्र संवत्सर मय है। इस रथ के गायत्री, संवृहति, उष्णिक्, जगती, त्रिष्टुप, अनुष्ठुप और पंक्ति नामक छन्दों के प्रतीक स्वरूप सात अश्व हैं।[2] इन छन्दों के साथ ही पिंगल (छन्दशास्त्र के आचार्य) का मूर्त होना सोद्देश्य ही है।

सूर्य के विभिन्न नामों में पद्महस्त[3] भी एक नाम था और यही उनकी मूर्ति का परिचायक बन गया। यहाँ न रथ का ही उल्लेख है और न वाहन अश्व का ही। उनके पार्श्वचरों का भी उल्लेख नहीं है। मत्स्य पुराण में "पद्मकरः द्विभुजः" सूर्य का उल्लेख सप्ताश्वों के साथ हुआ है।

पद्मासनः पद्मकरः पद्मगर्भसमद्युतिः ।

सप्ताश्वः सप्तरज्जुश्च द्विभुजः स्यात् सदा रविः ॥[4]

आगे चलकर मत्स्य पुराण में प्रभाकर प्रतिमा का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। यहाँ उनके रथ, सारथी, और पार्श्वचरों का भी वर्णन मिलता है—

---

१. गरुड़, १।३९।२
२. वही, १।५८।१-६
३. पद्म पुराण, ५।७६।४१
४. मत्स्य, ९३।१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुन्दर नेत्रों वाले पद्महस्त (प्रभाकर) देव की प्रतिमा को रथ पर बैठा हुआ बनाये; उनका एक पहिये वाला रथ सात घोड़ों से युक्त हो; उनका पद्म पराग के समान प्रभासित विचित्र मुकुट हो; वे नाना आभरणों से युक्त हों; दोनों भुजाओं में कमल (पुष्कर) लिए हुए हों, जो उनके कन्धों तक उठा हुआ हो; उनका शरीर दो वस्त्रों (कहीं-कहीं चित्र-प्रतिमा में चोलक से आच्छन्न) शरीर हो तथा उनके दोनों पैर तेज से आवृत हो। उनके दोनों ओर पार्श्व में दो पुरुषों को खड्ग लिए हुए बनावें; पार्श्व में ही हाथ में लेखनी लिए हुए धाता को स्थित करें; और इस प्रकार विभिन्न देवताओं से से युक्त पद्मस्थ (कमल पर स्थित) अथवा वाहनस्थ (रथ पर स्थित) पद्महस्त (दिवाकर) की प्रतिमा बनावे।

पद्मिनी के पत्ते के समान वर्ण वाले सारथि अरुण और सुवलय ग्रीवा वाले सुन्दर दो घोड़े को उनके पार्श्वों के बीच में प्रदर्शित करे और सातों घोड़े लगामों से युक्त भुजंग-रज्जु से बँधे हों।[१] यहाँ इस विवरण के प्रारम्भ और अन्त में पद्महस्त (मत्स्य २६०।१८) का उल्लेख हुआ है (कारयेद्देवं पद्महस्तं, पद्महस्तं प्रकल्पयेत्)। परन्तु लेखकों ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया।

पद्महस्त के अतिरिक्त कालप्रिय और मूलस्थान भी सूर्य के नाम हो गए और ये क्रमश: आधुनिक कालपी (उत्तर प्रदेश) और मुलतान (पश्चिमी पंजाब, पाकिस्तान) सूर्य मन्दिरों से युक्त प्राचीन काल में प्रथित सूर्य-क्षेत्र थे। इसी प्रकार पुंडरीक भी सूर्य का एक नाम पड़ गया। सूर्य के निम्न-लिखित नाम मिलते हैं :—

तपन, तपिन, कर्ता हर्ता, महेश्वर, लोकसाक्षी, त्रिलोकेश, व्योमाधिप, दिवाकर, अग्निगर्भ, महाविप्र, खग, सप्ताश्ववाहन, पद्महस्त, तमोभेदी, ऋग्वेद, यजु, सामग, कालप्रिय, पुण्डरीक, मूलस्थान और भावित। यहाँ सूर्य को पुण्डरीक (कमल) भी कहा गया है। कालपी (कालप्रिय) में कालप देव की इस समय पूजा होती है और एक कमल के रूप को आज भी वहाँ श्रद्धा से पूजा जाता है (चित्र १६)। गरुड़ भी कहता है—ॐ पद्माय नमः।[3]

भिटरी (प्रान्त गाज़ीपुर, उत्तर प्रदेश) के निकट मुड़ियार नामक गाँव से उपलब्ध सूर्य की प्रतिमा दृष्टव्य है। यहाँ सूर्य भगवान कन्धे तक उठे हुए दोनों हाथों में कमल लिए हुए हैं (चित्र १७)।

---

१. मत्स्य, २६०।१-८

२. पद्म, ५।७६।३६-४१

३. गरुड़, १।३९।४; पुंडरीक की पूजा होती थी (गरुड़ १।१२६।१०)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सप्ताश्ववाहन और चतुर्भुज भगवान आदित्य का भी उल्लेख मिलता है ।[१]

रेवन्त

सूर्य (द्वादशादित्य) पूजन[२] के साथ रेवन्त (सूर्य पुत्र) की भी पूजा प्रचलित थी (रेवन्तं पूर्जयित्वाय अश्वानाप्नोत्यनुत्तमान्)[३] । इससे रेवन्त का अश्वों से सम्बन्ध स्पष्टतः परिलक्षित होता है । बृहत्संहिता के अनुसार घोड़े पर चढ़ी हुई और मृगया आदि क्रीड़ा में संलग्न परिवार वाली रेवन्त की प्रतिमा बनावे ।[४]

नवग्रह

धन और शान्ति चाहने वाले ग्रहों को पूजते रहे हैं । ग्रहयाग का वर्णन करते हुए ग्रहों का उल्लेख किया गया है—

सूर्यः सोमो मंगलश्च बुधश्चैव बृहस्पतिः ।
शुक्रः शनैश्चरो राहुः केतुर्ग्रहगणाः स्मृता ।।[५]

इनको स्नान कराकर इनके लिए होम किया जाता था ।[६] इस प्रकार इनकी पूजा के लिए इनकी मूर्तियाँ भी बनती थी । इनके वर्ण भी पृथक थे और विभिन्न दिशाओं में इनकी पूजा होती थी । इनके रथों और अश्वों की भी विशिष्टताएँ दी गई हैं । यह विवरण निम्नलिखित है :—

ग्रह	वर्ण	दिशायें	रथ	अश्व	अश्व संख्या
सोम	श्वेत	पूर्व	चित्रक रथ	कुन्दामा (श्वेत घोड़े)	१०
अंगारक (भौम)	रक्त	आग्नेय	तप्तकांचनसन्निभःरथः	अष्टाश्वः कांचनः रथो	८
बुध	स्वर्ण (चामीकरप्रभ)	दक्षिण	वायु-अग्नि-द्रव्य संभूतो रथः	पिशंगतुरग	८
गुरू (बृहस्पति)	पीतवर्ण	पश्चिम	कांचनरथ	पांडर घोड़े	८

१. गरुड़, १।१६।१८
२. गरुड़, १।८६।२१ (१)
३. वही, १।८६।२२ (१)
४. बृ०सं०, ५८।५६।(२)
५. गरुड़, १।१०१।२
६. वही, १।१०१।३-१२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्रह	वर्ण	दिशायें	रथ	अश्व	अश्व संख्या
शुक्र(भार्गव)	सित (सफेद)	उत्तर	वरूथ और अनुकर्ष संयुक्त महानरथ,सोपा संगपताक	भूमिभवहय	×
शनि (मन्दगामी)	कृष्ण-वर्ण	नैर्ऋत	स्यन्दनं	शबल	×
राहु	नन्द्यावर्तनिभ	वायव्य	घूसरं-रथं	मृंगामा	८
केतु	धूर्म वर्ण	ऐशानी[1]		वातरंहसः पलालधूम-वर्णाभा लाक्षरस-निभारुणः[2]	८

इन अष्ट ग्रहों में सूर्य को मिलाकर नवग्रह होते हैं। गरुड़ में इनकी सोपचार पूजा[3] का तो वर्णन मिलता है परन्तु उनके प्रतिमा-लक्षणों का वर्णन नहीं मिलता है। अष्टपत्र पद्म को कर्णिका सहित बनावे और उसमें सूर्य को मध्य में स्थापित करें,........ईशान दिशा में सोम को, पौरन्दरी दिशा में लोहित (मंगल) को, आग्नेय में बुध, याम्य दिशा में बृहस्पति, नैर्ऋत्य में शुक्र और पश्चिम में शनैश्चर, वायव्य में केतु तथा कौबेरी दिशा में राहु को प्रतिष्ठित कर पूजा करे।[4] ऊपर इनकी दिशाओं में कहीं-कहीं अन्तर है।

"भारत के अनेक मन्दिरों में नवग्रह-प्रतिमाएँ मिलती हैं। उत्तर भारतीय मन्दिरों में इनकी पृथक-पृथक मूर्तियां नहीं उपलब्ध हैं, वरन सभी ग्रह सामूहिक रूप से शिलापट्टों पर उत्तरंग के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। इसके विपरीत दक्षिण भारतीय मन्दिरों में प्रत्येक ग्रह की पृथक-पृथक मूर्तियाँ प्राप्त हैं और उनकी स्थापना भी प्रत्येक ग्रह के लिए अलग-अलग बने मन्डपों में हुई है"।[5]

मुझे नैनीताल से एक नवग्रह पट्ट प्राप्त हुआ था जिसमें आठ ग्रहों को मूर्त्त पाते हैं (चित्र १८) यहां केतु का अभाव है।

१. गरुड़, १।३९।१०-१३-वर्ण और दिशायें
२. वही, १।५८।२२-२९-रथ और अश्व
३. वही, १।७।१-५
४. वही, १।१७।२-६
५. ए०हि०आ०, १-२, पृ० ३००

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लोकपाल (अष्टदिक्पाल)

विष्णुधर्मोत्तर आठ दिक्पालों (अष्टौ दिशां पाला)[1] को प्रासादों (मन्दिरों) का वर्णन करते हुए उल्लेख करता है कि वे वहाँ मूर्त किए जायं गरुड़ पुराण के अनुसार भी मन्दिरों में दिशाओं और विदिशाओं में देवताओं की मूर्तियाँ बनाने का उल्लेख है (प्रासादे देवतानाञ्च कार्यादिक्षु विदिक्ष्वपि)।[2] दिक्पालों की भी पूजा शास्त्र-विधि के अनुसार की जाती थी।[3] लिंग पुराण के अनुसार भी अन्य देवताओं के साथ मन्दिरों में लोक-पालों को मूर्त्त किया जाता था।[4] लिंग पुराण में उनके स्तवन के साथ-साथ उनके आयुधों का भी उल्लेख मिलता है :—

दिक्पाल	प्रमुख आयुध
शक्र	वज्रहस्त
वह्निः	शक्तिहस्त
यम	दंडहस्त
निर्ऋति (निशाचर)	खड्गहस्त
वरुण	पाशहस्त
वायु	यष्टिहस्त
कुबेर (यक्षेश्वर)	गदाहस्त
रुद्र (ईशान्)	शूलहस्त[5]

दिक्पालों की पूजा उनके वाहन और परिवार के सहित की जाती थी :—

इन्द्रं सवाहनं वाथ परिवारयुतं तथा।
अग्निं यम निर्ऋतिम्ववरुणं वायुमेव च ॥
सोममीशानञ्च ब्रह्माणं परिपूजयेत्।
पूर्वादि चौर्ध्वपयर्न्त पूजयेद् वृषभध्वजं ॥[6]

---

१. वि०ध०, ३।८६।४६
२. गरुड़, १।४७।४१ (१)
३ वही, १।४८।१८,२०
४. लिंग, २।४८।४६
५. वही, २।४८।१८-२५
६. गरुड़, १।३४।४३-४४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इनके आयुधों की भी पूजा होती थी :—

वज्रं शक्तिं तथा दण्डं खड्गं पाशं ध्वजं गदाम् ।
त्रिशूलञ्चक्रपद्मे च आयुधान्यथ पूजयेत् ।।[1]

यहां दिक्पालों की संख्या दस है । नाग और ब्रह्मा दो बढ़े हुए नाम हैं जिनके आयुध भी क्रमशः चक्र और पद्म हैं । अन्ततोगत्वा गरुड़ पुराण इन्हीं दस दिग्पालों की मूर्त्ति का पूजन करता है :—

ॐ इन्द्राय सुराधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः ।
ॐ अग्नये तेजोऽधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः ।
ॐ यमाय प्रेताधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः ।
ॐ निर्ऋत्ये रक्षोऽधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः ।।
ॐ वरुणाय जलाधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः ।।
ॐ वायवे प्राणाधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः ।
ॐ सोमाय नक्षत्राधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः ।
ॐ ईशनाय विद्याधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः ।।
ॐ अनन्ताय नागाधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः ।।
ॐ ब्रह्मणे लोकाधिपतये सवाहनपरिवराय नमः ।।

इसी के साथ उनके आयुधों के पूजा-मन्त्रों में वज्र, शक्ति, दण्ड, खंड्ग, पाश, ध्वज, गदा, त्रिशूल, चक्र और पद्म की वन्दना की गई है ।[2]

यहाँ पर भी वायु को ध्वज (लिंग में यष्टि) और ईशान् को त्रिशूलधारी कहा गया है ।[2] ये लोकपाल, इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम, ईशान, अनन्त और ब्रह्मा क्रमशः देवताओं, प्रेतों, राक्षसों, जल, प्राण, नक्षत्रों, विद्या, नागों और लोक के स्वामी थे ।

अन्यत्र भी इनके नामों और संस्थाओं के विषय में भिन्नता है ।[3] गरुड़ इनकी संख्या दस बताती है । नाग-अनन्त विष्णु के स्वरूप का परिचायक है । इसीलिए चक्र उनका आयुध है । इस तालिका में त्रिमूर्ति (ईशाननागब्रह्मा) और उनके आयुध त्रिशूलचक्रपदम विशेषतः दृष्टव्य हैं ।

अग्नि पुराण में शक्रादिकों की पूजा का उल्लेख करते हुए इन दिक्पालों का वर्णन मिलता है:—

---

१. गरुड़, १।३४।४५
२. वही, १।३१।२१
३. डे० हि० आ०, ५१९-५२९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिक्पाल	दिशा	आयुध	वाहन	स्वरूप[1]
इन्द्र	पूर्व-रक्षक	वज्रहस्त	गजस्थित	इन्द्रो वज्री गजारूढ़:
अग्नि	आग्नेय(दक्षिण-पूर्व) रक्षक	शक्तियुक्त	छागस्थ	छागगोऽग्निश्च शक्तिमान्
यम	दक्षिण रक्षक	दंडहस्त	महिषस्थ	यमोदण्डी च महिषे।
निर्ऋति	नैर्ऋती दिशा	खड्गाढ्य	बलवाहन नरवाहन	नैर्ऋत: खड्गवान् करे।
वरुण	पश्चिम-रक्षक	पाशहस्त	मकरारूढ़	मकरे वरुण: पाशी
वायु	वायव्य (उत्तर-पश्चिम	ध्वजहस्त	सवाहन (मृग)	वायुर्ध्वजधरो मृगे
सोम	उत्तर (सकुबेर)	गदाहस्त	सवाहन	गदी कुबेरो मेषस्थ:
ईशान	ईशानी (उत्तर पूर्व)	शूलहस्त	वृषस्थित	ईशानश्च जटी वृषे।
ब्रह्मा	ऊर्ध्व दिशा रक्षक	स्रुक्स्रुवव्यग्रहस्त	हंसस्थ	
अनन्त अहिगणेश्वर	अधोदिशा रक्षक	चक्राढ्य	कूर्मस्थ[2]	

ऊपर अग्नि पुराण से लोकपालों की दो तालिकाएं दी गई हैं। पहली तालिका (५६।१७-३१) में दस और दूसरी (५१।१४-१५) में केवल आठ ही के लक्षण दिए गए हैं (देखिये स्वरूप ऊपर)।

यहाँ (अग्नि पुराण में) केवल द्विभुज लोकपालों (द्विबाहवो लोकपाला)[3] का वर्णन किया गया है।

मत्स्य पुराण में भी इनका वर्णन मिलता है और यहाँ भी ये दिक्पाल द्विभुज ही थे। अधिकांशत: इनका एक हाथ वरद और एक हाथ अपने प्रमुख आयुध को लिए हुए था। इसीलिए इनके आयुधयुक्त नाम-वज्रहस्त, शक्ति-हस्त, दंडहस्त आदि मिलते हैं।

१. अग्नि पु०, ५१।१४-१५
२. वही, ५६।१७-३१
३. वही, ५१।१६ (१)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिक्पाल		शरीर	आभरण	परिवार और पार्श्वचर	आसन
इन्द्र	(१)	पृथुवदन सहस्र नेत्र, चौड़ा वक्ष, मोटी जांघें, पीवर उर, भुजाएं और बड़ी-बड़ी आँखें।	नानाभरण, किरीट, कुंडल	देव, गंधर्व और अप्सराओं से पूजित। छत्र, चामर लिए हुए स्त्रियों से घिरे।	
	(२)			गंधर्वों से युक्त तथा बाईं ओर कमल लिए हुए इन्द्राणी के साथ	
अग्नि	(१)	सुवर्ण के समान दीप्त शरीर तथा बालादित्य के समान मुख; उज्जवल रूप।	यज्ञोपवीत लम्ब-कूर्च तथा ज्वाला-वितान से विभूषित		अर्द्ध चन्द्रासन पर स्थित
	(२)		सिर सात लपटों से युक्त है।		
यम (विभुम्)	(१)	काला-काला अंजन का ढेर (कराल)		चित्रगुप्त	
	(२)	आग के समान लाल-लाल आंखें।		कराल सेवकों से युक्त तथा चारों ओर से सौम्य और असौम्य देवताओं से घिरे हुए।	सिंहासनगतं
निर्ऋति (राक्षसेन्द्र) (महामाय)	(१)	काला पहाड़ (महानील कज्जलाचल सन्निभम्)			

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाहन	आयुध (१)	आयुध (२)	टिप्पणी
मत्तवारण	वज्र (हाथों में दायें बायें का भेद नहीं मिलता है)	उत्पल	दो प्रकार की इन्द्र मूर्त्तियों का वर्णन किया गया है । पहले रूप में मत्त हाथी पर सवार हैं और दूसरे स्वरूप में इन्द्राणी के साथ सिंहासन पर बैठे हैं । डा० अवस्थी (ख० दे०, पृ० २०६) ने इन दो मूर्त्तिरूपों का विभेदन नहीं किया ।
सिंहासनगतं			इन्द्र की मूर्त्ति के वर्णन के बाद अगले अध्याय (२६०) में सूर्य के वर्णन के बाद अन्य सात लोकपालों का वर्णन किया गया है ।
अजवाहन	बायें हाथ में कमंडलु, दाहिने में अक्षसूत्र		यहां भी दो प्रकार की मूर्त्तियों अजवाहनारूढ़ और कुंडस्थ का वर्णन मिलता हैं । परन्तु अवस्थी ने (ख०दे०, पृ० २११) इनका भेद नहीं किया ।
कुंडस्थ			
महामहिष	दंड और पाश		अवस्थी ने यहाँ भी मूर्त्ति के दो भेदों पर ध्यान नहीं दिया है । सम्पूर्ण विवरण एक ही साथ समेट लिया है—"मत्स्य पुराण के अनुसार...... ......महिषारूढ़, कृष्णवर्ण सिंहासनासीन...... ....का उल्लेख है (ख०दे०, पृ० २१७) ।
(नरारूढ़ं नरवाहन)	खड्गहस्तं		खड्गधारी एक ही हाथ का उल्लेख है । दूसरा हाथ वरद मुद्रा में होना चाहिए ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिक्पाल	शरीर	आभरण	परिवार और पार्श्वचर	आसन
(२)		पीताभरण से भूषित		
वरुण (शान्तं)	शंख-स्फटिक के समान रंग वाला (शरीर)			झषासन
वायु	धूम्रं, शान्तं युवा-वस्था, कुंचित भौहें	चित्रवस्त्र पहने		
कुबेर	बड़े पेट और विशाल शरीर वाले	सितांबर, हार, केयूर, कुंडल और मुकुट	आठ निधियों और बहुत से गुह्यकों से युक्त	
ईश (ईशान्)	धवलं (श्वेत) धवलेक्षण और त्रिलोचन			

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाहन	आयुध (१)	(२)	टिप्पणी
नरयुक्त विमानस्थ			
	पाशहस्तं		द्वितीय हस्त वरद में होमा। डा० अवस्थी (ख०दे०, पृ० २२४) कहते हैं कि मत्स्य पुराण में भी पाश एवं शंखयुक्त वर्णित किया गया है। पाठ में (ख०दे०, पृ० २२४ नोट ९) 'पाशहस्तं.........शंखस्फटिकवर्णाभं' में भी कहीं यह उल्लिखित नहीं है कि वे पाश एवं शंख युक्त हैं। शंखस्फटिकवर्णाभ से उनके शरीर की कान्ति का बोध होता है। डा० बनर्जी (डे०हि०आ० पृ० ५२७) ने पाश और वरद रूपी द्विभुजी वरुण प्रतिमा (भुवनेश्वर के राजारानी मंदिर से उपलब्ध) का उल्लेख किया है (वही, प्लेट ४६, चित्र १)।
मृगावाहन मृगधिरूढ़	वरद मुद्रा और दूसरे हाथ में पताकायुक्त ध्वज लिए हुए		
नरयुक्त विमान	एक हाथ गदाधारी और दूसरा वरद मुद्रा में हो।		अवस्थी (ख०दे०, पृ० २३१) ने कुबेर को केवल गदाधारी कहा है। 'वरद' (गदाधरञ्च कर्तव्यं वरदं मुकुटान्वितम्) पर ध्यान नहीं दिया।
वृषवाहन	त्रिशूलपाणि		दूसरा हाथ वरद होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिग्पाल	चिह्न	वपु-वर्ण-आभरण	वाहन	परिवार व पार्श्वचर
इन्द्र (वासुदेव रूपी) (वि०ध०, ३, अ० ५०)	वज्र	श्वेत, नीले वस्त्र और सभी आभरण पहने तथा सोने के समान कान्ति वाले चतुर्भुज शक्र हो । ललाट में तिर्छी आँख हो।	चतुर्दन्तगज	शची इन्द्र के बायीं ओर अंक में आलिंगन करते हुए स्थित हो । द्विभुजा शची अपने बायें हाथ में रम्य सन्तानमंजरी लिए हुए हो और दाहिना हाथ देवराज के पृष्ठ पर रखा हो ।
अग्नि (वि०ध०, ३,अ० ५६)	ज्वाला	चार दांत, चार भुजाओं, तीन नेत्रों, दाढ़ी तथा जटाओं वाले और ज्वाला के समूह से युक्त लाल रंग वाले हों। धुएं के कपड़ों को पहने हुए हों । उनको रक्तवर्ण का इसलिए कहा गया है कि लाल रंग तेज का रूप है।	धूमचिह्नित चार शुकों से युक्त रथ वात द्वारा संचालित हो।	बायीं ओर शची की भांति ही गोद में बैठी स्वाहा अपने एक हाथ में रत्नपात्र लिए हुए हो। (दूसरा हाथ अग्नि के पृष्ठ पर हो ।
यम(संकर्षण स्वरूप) वि०ध०, ३, अ० ५१	दंड	सजल-जलद के समान रंग वाले शरीर पर तप्त-स्वर्ण रंग वाले कपड़े पहने हुए सभी आभरण से अलंकृत हों । चतुर्भुज।	महिषस्थः	द्विभुजा धूमोर्णा, चित्रगुप्त और काल के सहित । बायीं गोद में द्विभुजा धूमोर्णा स्थित हो । उसका दाहिना हाथ यम की पीठ पर हो तथा बायें हाथ में मातुलुंग लिए हों । यम के दक्षिण पार्श्व में द्विभुजा चित्रगुप्त दाहिने में कलम और बायें में पत्र लिए हों ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भुजाभरण				
दक्षिण हाथ १	२	वाम हाथ १	२	टीका टिप्पणी
पद्म	अंकुश	शची को आलिगन करते हुए	वज्र	डा० अवस्थी (ख०दे०, पृ० २०५) लिखते हैं कि.........उनके वाहन चार दांत वाले श्वेत गज का उल्लेख है। श्वेत शक्र का रंग है न कि गज का (द्रष्टव्य चतुर्दन्ते गजे शक्रः श्वेतः कार्यः सुरेश्वरः। वि०ध०, ३।५१।२) अंग्रेजी के अनुवाद में भी लिखा है :— Śakra the white one... on an elephant having four tusks; (PVD, II p. 159. वृहत्संहिता में) अवश्य ही शुक्लश्चतुर्विषाणो द्विपो (शुक्ल चतुर्दन्त हाथी) का उल्लेख है।
ज्वाला	त्रिशूल	(देवी को आलिगन करते हुए तीसरा हाथ हो।) इसका उल्लेख नहीं है। परन्तु इतना कहा गया है कि शची की भांति ही स्वाहा भी अग्नि की गोद में बैठी हो।	अक्ष माला	डा० अवस्थी (ख०दे०, पृ० २११) ने रक्त (रक्तवर्ण) और धूम्रवाससम् पर ध्यान नहीं दिया। प्रो० बनर्जी (डे०हि०आ०, पृ० ५२४) ने भी इनको छोड़ ही दिया है।
दंड दंड के ऊपर ज्वाला समूह से युक्त मुह हो	खड्ग	देवी के पृष्ठ पर रखा हाथ	चर्म	

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिग्पाल	चिह्न	वपु-वर्ण-आभरण	वाहन	परिवार व पार्श्वचर
वरुण क—यादसां-पतिः ५२।१ (जलचरनाथ) या तोयपति ५१।२१ जलेश ५२।२१(१) ख—राजा तथा देवः ५२।२ ग-प्रद्युनरूप (वासुदेव) (वि०ध०, ३,अ० ५२)	पाश	चतुर्भुज, कुछ लटकता हुआ पेट हो। चमकदार और चिकना वैडूर्य के समान शरीर का रंग जो कि पानी के रंग के समान है श्वेत वस्त्र पहने हुए सभी राजोचित दिव्य आभरणों (सर्वा-भरणान् राजा तथा देवः) से युक्त हो। मुक्ताहार और श्वेत छत्र से सुशो-भित शीश हो (श्वेतछत्र राजत्व का प्रतीक है। यही राजत्वयश है (यशश्चसितं छत्रं) तथा बायीं ओर मकरकेतु हो।	सप्तहंस युक्त रथ सात हंस सात समुद्रों के प्रतीक हैं। यह उपयुक्त ही है कि जलेश जलाणर्वो के द्वारा वाहित हों। उदयगिरि में वराह लीला मूर्त्ति के नीचे जलपति वरुण हाथ जोड़े हुए विराजमान है।	बायें पार्श्व में पाश लिए हुए विकटरूप काल हो। **भार्या** सर्वांग सुन्दरी भार्या गौरी उनकी बायीं गोद में द्विभुजा हो जिसका बायाँ हाथ कमल से सुशोभित हो और दाहिना हाथ देवता की पीठ पर हो। **गंगा-यमुना** वरुण के दाहिनी ओर मकरवाहिनी गंगा हाथ में चंवर और पद्म लिए हो तथा उनका रंग चन्द्र के समान गोरा हो। बायीं ओर कच्छपवाहिनी यमुना चंवर और नीलोत्पल लिए हो। उनका रंग नीले कमल के समान हो।
कुबेर क—यक्षाधिप ख—अनिरुद्धः (वि०ध०,३ अ० ५३)	गदा	चतुर्भुज कुबेर लम्बोदर हो। दाढ़ीयुक्त बायीं भूरी आँखें और दो बड़े-बड़े दांतों वाला उनका मुख हो। उनका सिर बायीं ओर झुका हुआ हो। पद्म पत्र के समान (श्वेत) और स्वर्ण के समान (पीत) शरीर सभी आभरणों से सुशोभित हो। कनक वर्ण के समान वस्त्रों से सुसज्जित अपीच्य वेश हो। वि०ध० की टीका में इसे अति सुन्दर कहा गया है। डा० शाह के मत से यह	नरवाहन	बायीं गोद में स्थित द्विभुजा ऋद्धिदेवी हो। उनका दाहिना हाथ कुबेर की पीठ पर हो और वाम कर में रत्नपात्र हो। जनके पैरों में सिंहांककेतु और शिबिका तथा शंख और पद्म नामक दो निधियाँ हों। शंख और पद्म निधियों से निसृति मुख हो।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भुजाभरण दक्षिण हाथ १	२	वाम हाथ १	२	टीका टिप्पणी
पद्म	पाश	शंख	रत्नपात्र	वरुण मूर्त्ति का वर्णन करते हुए डा० शाह (PVD, II, पृ० १४६) गंगा के 'सचामरा' (चामर लिए हुए) को छोड़ गई हैं। डा० अवस्थी ने दोनों गंगा-यमुना के 'समाचरा' रूप को छोड़ दिया है (ख०दे०, पृ० -२४) अवस्थी ने गंगा-यमुना के रंगों में भी भेद नहीं किया है। लेख्य मूर्त्ति में चित्रकर(रूपकार) के लिए इन रंगों का विशेष महत्व था। राजा वरुण देव के आयुधों लांछनों (भुजाभरणों) और वाहन, पार्श्वचर, परिवार समूह की प्रतीक-व्याख्या की गई है। वरुण प्रद्युम्न और उनकी भार्या गौरी रति हैं।
गदा	शक्ति			चतुर्भुज कुबेर के दाहिने हाथों के आयुधों का वर्णन किया गया है। बायीं ओर के हाथों के आयुधों का वर्णन पाठ में छूट गया है। डा० शाह (PVD, II, पृ० १४७) ने भी बायें हाथों के आयुधों को छोड़ दिया है। डा० अवस्थी (ख०दे०, पृ० २३१) ने बताया है कि चार हाथ (दाएं गदा तथा शक्ति और बायें में रत्न तथा पात्र से युक्त)। यहां अवस्थी ने प्रमाद-वश ऋद्धि के बाएं हाथ में स्थित रत्न पात्र को कुबेर के बायें हाथों में 'रत्न तथा पात्र' को बताकर दो बहुत बड़ी भूलें की :— १—रत्नपात्र एक है न कि दो वस्तुएं रत्न तथा पात्र।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिक्पाल	चिह्न	वपु-वर्ण-आभरण	वाहन	परिवार व पार्श्वचर
		उदीच्य वेश है। कवच और हार पहने हों। हार पेट तक लटकते हों।		
ईशान (गौरीशर्व) (वि०ध०,३ अ० ५५		चतुर्भुज; एक मुख और द्विनेत्र; व सभी आभरणों से विभूषित हों।		गौरी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भुजाभरण				
दक्षिण हाथ		वाम हाथ		टीका टिप्पणी
१	२	१	२	
				२—रत्न पात्र ऋद्धि के बायें हाथ में है न कि कुबेर के हाथ में :— वामोत्संगगता कार्या ऋद्धिदेवी बरप्रदा। देवपृष्ठगतं पाणिं द्विभुजायास्तु दक्षिणम्।। वि०ध०, ३।५३।४ रत्नपात्रकरं कार्यं वामं रिपुनिषूदन ।। वही, ३।५३।५ (१) आगे फिर इसी तथ्य को बताया गया है :— लोकयात्रा च कथितऋद्धिर्ज्ञेया स्वभावतः। वही, ३।५३।९ तत्करे रत्नपात्रं तु गुणाधारं प्रचक्षते ।। वही, ३।५३।१० (वेंकटेश्वर संस्करण में श्लोक संख्या भी गड़बड़ हैं। यहाँ ५३।८ (श्लोक ८) के स्थान पर संख्या ९ होना चाहिए। वि०ध० अंग्रेजी अनुवाद में भी यही बताया गया है कि ऋद्धि के दो हाथ हैं। दायां देवता के पीठ पर है और बायें में एक रत्न-पात्र है (PVD II, पृ० १४७)। परन्तु न मूल देखा और न अनुवाद ही। प्रो० बनर्जी का अनुकरण मात्र कर वही गलती की जो प्रो० बनर्जी ने भी की his four hands (the right ones carrying a mace and a spear, the left a jewel and a pot, DHI, p. 339) बायें हाथ में दपर्ण देवी का भुजाभरण है। अपराजित पृच्छा (२१३।२४) में भी अर्धनारीश्वर के वार्माध (देवी) के बायें हाथ में दर्पण रखा गया है। इसी प्रकार उमामहेश्वर स्वरूप में भी उमाहस्त में दर्पण है (२१३।२६)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिक्पाल	चिह्न	वपु-वर्ण-आभरण	वाहन	परिवार व पार्श्वचर
विरूपाक्ष-निऋति (विरूपाक्ष की पत्नी) (वि० ध०, ३, अ० ५७)	उष्ट्र	कृष्णांगी और कृष्णवदना निऋति देवी भी विरुपाक्ष के समान काले कपड़े और सभी आभरणों से युक्त हों।	उष्ट्र	निऋति नाथ (विरूपाक्ष—चौड़ी आँखें, द्विबाहु और ऊर्ध्व केश से युक्त भीषण मुख और भूरी (श्मश्रु) वाले हों।
		तामसरूप		रक्तकृष्ण वर्ण वाले हों। वे काले कपड़ों और सभी भूषणों से सुसज्जित हों। हाथ में दंड लिए हुए हों (दंड रश्मिकार:)हो। उनके वाम भाग में पाश लिए निऋति हो।
वायु (वि० ध०, अ० ५८)	अंबरभंग	**द्विभुज** अम्बर वर्ण, इसलिये अंजन के रंग वाले, अम्बराकार, रूपवान्, खुले मुख वाले, विकीर्ण केश, हवा से भरे हुए अपने वस्त्रों के सिरों को पकड़े हुए।		गतिमान् परमसुन्दरी शिवा देवी, साक्षात् गति ही हो, और वायु के समान ही (वस्त्र, वर्ण तथा रूप में) प्रदर्शित हो।

इन दिक्पालों और उनसे रक्षित दिशाओं के विषय में कुछ कहना आवश्यक है। विष्णुधर्मोत्तर (३।९४।४१-४३) में इन्द्र और अग्नि को पूर्व, यम और ऋृति को दक्षिण, वरुण और वायु को पश्चिम तथा कुबेर और ईशान को उत्तर का दिक्पाल कहा गया है। इस प्रकार प्रत्येक दिशा में दो दो दिक्पाल प्रतिष्ठित होना उचित ही है (देखिये ख० दे०, पृ० २०२)। आगे चलकर किसी समय चार दिक्पाल दिशाओं में और चार विदिशाओं में स्थित मान लिये गये। विष्णुधर्मोत्तर में ही **अग्नि** (पूर्व-दक्षिण), **नैऋत** दक्षिण-पश्चिम, **वरुण** पश्चिम, **वायु**, पश्चिमोत्तर, **कुबेर** दक्षिण और **ईशान** (शिव) पूर्वोत्तर से सम्बद्ध बताये गये हैं (वि० ध०, ३।१०४।१०१—१०८)। यहीं दिशाओं का भी वर्णन करते हुए उनके रूपों का वर्णन किया गया है (वि० ध०, ३।७३।३२-२—३८):

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भुजाभरण				
दक्षिण १	हाथ २	वाम १	हाथ २	टीका टिप्पणी
विरूपाक्ष के हाथों में मारदंड और उष्ट्ररश्मि का बन्धन हो।				विरूपाक्ष को काल और उनकी पत्नी निऋति को मृत्यु कहा गया है। विरूपाक्ष को राक्षसों का राजा कहा गया है।
दोनों भुजाओं में अपने कपड़ो के सिरों को पकड़े हों।				

पूर्वा गजारूढ़ रक्तवर्णीय बाला (देवी) हां; पूर्व दक्षिण। बृहत्कन्या रूप में हथिनी पर सवार हो, और उनकी कान्ति पद्म के समान हो; पीतवर्णवाली दक्षिण युवती हो और रथस्था हो; याम्यपश्चिमा (अर्थात नैर्ऋत दिशा) कृष्ण पीत वाली उष्ट्रगामिनी हो; पश्चिमा यौवन-हीन हो और घोड़े पर सवार हो, बड़वा (अग्नि-दिशा, उत्तर-पश्चिम) आसन्न पलिता (जिसके बाल सफेद होने लगे हों) और नीले रंग की हो, (यहाँ वाहन का उल्लेख नहीं हुआ है); उत्तरा वृद्धा रूप में नरारूढ़ हो; पीले रंग की पूर्वोत्तरा बहुत ही वृद्ध और वृष पर सवार हो, अधः (नीचे) की दिशा पृथिवी के समान हो और ऊर्ध्व (ऊपर) आकाश के समान हो (PVD, II, पृ० १६७)। यहाँ दस दिशाएँ हैं और उनसे सम्बद्ध दस दिक्पाल भी हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्यत्र विष्णुधर्मोत्तर लोकपालों को चारों दिशाओं में स्थापित करने क उल्लेख करता है—

लोकपालाश्च कर्तव्याः शूलहस्ताश्चतुर्दिशम् ।
विरूढो धृतराष्ट्रश्च विरूपाक्षश्च यादवः ।।
कुबेरश्च महातेजाः सूर्यवेशधराः शुभाः ।
सर्वे कवचिनः कार्याः शुभाभरणभूषिताः ।।
विरूपाक्षं विजानीहि शक्रदेव गणेश्वरम् ।
धृतराष्ट्रं विजानीहि यमं भुवननायकम् ।।
विरूपाक्षं विजानीहि वरुणं यादसाम्पतिम् ।
राजराजं विजानीहि कुबेरं धनदं प्रभुम् ।।[१]

यहाँ पर भी उनके स्वरूपों और प्रतिमा-लक्षणों पर प्रकाश पड़ता है। सभी लोकपाल शूल लिए हुए, कवच पहने तथा शुभाभरणों से विभूषित हों।

देवी-मूर्तियाँ

देवी या शक्ति की उपासना भी मन्दिर में उनकी मूर्तियाँ स्थापित कर की जाती थी। गौरी, चण्डिका, सरस्वती, महालक्ष्मी आदि मातृगणों की भी मूर्तियाँ देवताओं के समान ही आयुधों से विभूषित की जाती थीं[२]। विष्णु धर्मोत्तर के अनुसार माताओं की मूर्तियाँ देवतुल्य रूपों और चिन्हों से अलंकृत होती थीं (देवतुल्येन चिह्नेन यथारूपेण मातरः[३])। देवी की सोने या चांदी की भी मूर्तियाँ बनती थीं।[४]

अमृता देवी

अमृतेश्वर (शिव) की अर्द्धांगी देवी अमृता हैं जो दाहिने हाथ में (अमृत) कलश और बायें हाथ में सरोरुह (कमल) लिये हुए हों[५]।

गायत्री देवी

वेदमाता गायत्री की पूजा प्रचलित थी (देवी भा०, ११।२१।६)। गायत्री की मूर्ति चन्दन या सोने की बनती थी।[६] श्वेत वर्ण वाली देवी गायत्री रेशमी वस्त्र पहने हुए (कौशेयवसना) पद्मासनस्थ हों और उनके हाथ में अक्षसूत्र सुशोभित हो।[७]

---

१. वि० ध०, ३।८४।११-१४
२. गरुड़, १।४५।३२; पद्म पु०, ४।७८।४४
३. वि० ध०, ३।७३।३२ (२)
४. गरुड़, १।१३३।८ (२)
५. वही, १।१८।६
६. वही, १।३७।७
७. वही, १।२०५।७०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माहेश्वरी

सन्ध्याविधि का वर्णन करते हुए पूर्वान्ह में श्वेतरूपिणी शुक्लवस्त्र से अभिमण्डित गायत्री देवी का आह्वान किया गया है जो वृषारूढ़ हों और हाथ में त्रिशूल धारण किये हों।[१]

यह माहेश्वरी गायत्री हैं।

वैष्णवी

मध्यान्ह में कृष्णस्वरूपी वरदा वैष्णवी देवी गरुड़ारूढ़ हों, जिनकी कान्ति अतसीपुष्प के समान हों। पीतवस्त्र धारण किये हुए हों। उनके हाथ शंख, चक्र, गदा और पद्म से सुशोभित हों।[२]

यह वैष्णवी गायत्री है।

सरस्वती

अपरान्ह मे श्वेतवर्ण वाली देवी श्वेत पद्म पर बैठी हुई हो और वह वरदा देवी श्वेत पद्म से सुशोभित हो।[३] पद्मस्था सरस्वती[४] ब्रह्माणी ही का रूप है। यह ब्राह्मी गायत्री देवी हैं।

चामुण्डा

यह देवी का उग्र स्वरूप है। भगवती चामुण्डा श्मशानवासिनी हैं और कपाल हाथ में लिए हुए महाप्रेतारूढ़ हैं। महाविमानमाला से घिरी हुई कालरात्रि बहुत गणों से परिवृता, महामुखी और बहुभुजा देवी है। वह घंटा, डमरू और किंकिणी से सुशोभित अट्टहास करने वाली हैं। गजचर्म को शरीर पर ओढ़े हुए हैं। रुधिर और मांस से सनी जिह्वा लपलपाती है। रौद्र दंष्ट्रों से कराल रूपधारी, कराल नेत्र वाली, कपालमाला से विभूषित तथा जटा मुकुट और शशांक को धारण किये हुए हैं। लम्बे ओंठ और, भ्रूभग्ननासिका, विकट मुखी कालमुखी ही हैं। त्रिशूल, वज्र, दण्ड, चक्र, शक्ति, कर्त्तृका (कटार), अंकुश आदि आयुधों को धारण किये हुए है।[५]

त्रिपुरा

हृदय में त्रिपुरा देवी का ध्यान करने से सिद्धि प्राप्त होती है। वे शुक्ल वर्ण वाली हों। उनके हाथ वरद मुद्रा, अक्षसूत्र, पुस्तक और अभय मुद्रा से समन्वित हों।[६] श्री गोपीनाथ राव ने त्रिपुरा को दो हाथों में अंकुश और

---

१. गरुड़, १।२०९।४

२. वही, १।२०९।५

३. वही, १।२०९।६

४. वही, १।७।११ (१)

५. वही, १।३८।५

६. वही, १।२४।९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाश तथा दो हाथों को वरद और अभय में बताया है ।[१] डा० उर्मिला अग्रवाल ने खजुराहों संग्रहालय की देवी मूर्ति को त्रिपुरा माना है जिसके हाथ वरद, अंकुश, पाश और कमंडलु से सुशोभित हैं ।[२]

दुर्गा

सभी माताओं में श्रेष्ठा दुर्गा देवी की पूजा प्रसिद्ध है ।[३] उनको अठारह भुजाओं वाली कहा गया है । इन हाथों में खेटक, घंटा, दर्पण, तर्जनी, धनुष, ध्वज, डमरू, परशु, पाश, शक्ति, मुशल, शूल, कपाल, वज्रक, अंकुश, शर, चक्र और शलाका लिये हुए हैं ।[४] दूसरे स्थान पर भी उनकी सोने या चांदी की बनी मूर्ति का उल्लेख है । यहाँ दुर्गा बायें हाथों में कपाल, खेटक, घंटा, दर्पण, तर्जनी, धनुष, ध्वज, डमरुक, और पाश को लिए हों तथा दाहिने हाथों में शक्ति, मुद्गर, शूल, वज्र, खड्ग, अंकुश, शर, चक्र और शलाक नाम के आयुधों से संयुक्त हो ।[५] अन्य देवियाँ (नव दुर्गा देवी हैं । शेष आठ देवियाँ) सोलह हाथ की हों जो अञ्जन और डमरू से रहित हों (शेषाः षोडशहस्ताः स्युरञ्जनं डमरूं विना)[६] । देवी के शेष रूप उग्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती, चण्डरूपा और अतिचण्डिका है । ये विभिन्न वर्णों वाली अग्निप्रभाकृति, रोचना, अरुण, कृष्ण, नीला, धूम्रा, शुक्ला, पीता और पाण्डरा हैं । सभी सिंह पर आलीढ़ मुद्रा में स्थित हों (आलीढ़ेन हरिस्थिताः) ।[७] सामने खड्ग से आक्रमण करता हुआ माहिष (महिषासुर) हो । उसके ऊपर खड़े हुए बाल एक हाथ में हों और दूसरे हाथ में खड्ग लिये हो ।[८]

महिषघ्नी

ऊपर दुर्गा के महिषासुर मर्दनी रूप का उल्लेख किया गया है । महिषघ्नी सिंहवाहिनी २८, १८, १२, ८ अथवा चार भुजाओं के रूप में होती है । उनके हाथों में असि, खेटक, गदा, दंड, शर, चाप, खड्ग, मुदगर, शंख, घंटा, ध्वज, दंड, परशु, चक्र, डमरू, दर्पण, शक्ति, मूषल, पाश, तोमर, ढक्का, पणव, तर्जनी, अभय और स्वस्तिक तथा कलकल ध्वनि करती हुई हों ।[९]

इस प्रकार गरुड़ पुराण ब्राह्मण मूर्तिकला पर महत्व-पूर्ण प्रकाश डालता है ।

---

१. ए० हि० आ० १-२, पृ० ३६१
२. ख० स्क०, पृ० ६४
३. गरुड़, १।३८।१
४. वही, १।३८।३-४
५. वही, १।१३३।८-११ (१)
६ वही, १।१३३।११ (२)
७ वही, १।१३३।१२-१३
८. वही, १।१३३।१४ (१)
९. वही, १।३८।७-११

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१२—प्रासाद-स्थापत्य

१—शिल्प और स्थापत्य

प्रतिमा पूजन के लिए ही देवतायतनों का निर्माण होता रहा है। ऊपर कहा गया है कि प्रासाद में विभिन्न देवी देवताओं की स्थापना और पूजा प्रचलित थी (एतेऽर्चिताः स्थापिताश्च प्रासादे वास्तुपूजिते)।[1] यहां प्रासाद प्रतिष्ठा के साथ ही वास्तु पूजा भी आवश्यक थी (वास्तुपूजिते प्रासादे)। परन्तु पद्म पुराण गरुड़ पुराण से ही मूर्तिकला सम्बन्धी अ० ४५ को अपने कलेवर में समेट लेता है और यहाँ वास्तुपूजिते के स्थान पर 'वाऽथपूजिते'[2] पाठ है। गरुड़ का अगला अध्याय (४६, पूर्व०) वास्तु पूजा का वर्णन करता हैं और इसके बाद के अध्याय (४७, पूर्व) में प्रासाद लक्षण का विवरण मिलता है। इस अध्याय के अन्त में भी कहा गया है कि प्रासादों में देवताओं को स्थापित कर उनकी पूजा करे (प्रासादेषु सुरान स्थाप्यान् पूजाभिः पूजयेन्नरः) और (सभी देवमय) सर्वदेव वासुदेव का भी गृह बनाना अभीष्ट था (वासुदेवः सर्वदेवः सर्वभाक् तद्गृहादिकृत)।[3] मूर्तियों के अतिरिक्त प्रासादों के निकट ही पुजारियों के मठों[4] को भी बनाया जाता था। इसके अतिरिक्त मण्डप, लघुमण्डप, नाट्यशाला आदि भी प्रासाद से सम्बद्ध बनाये जाते थे। प्रासादों के भी गठन, आकार और मान के आधार पर भेद थे। इस के अतिरिक्त द्वार, भित्ति, गवाक्ष, भूमिका और शृंग आदि प्रासाद के विभिन्न अलंकृत अंग थे। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रासाद मूर्ति सम्पदा और शिल्पयोजना के अनुपम आगार थे, जो धर्म, शिक्षा और दर्शन के भी केन्द्र थे। यहीं संगीत की रम्य और मधुर-मन-मोहिनी ध्वनि तथा नाट्य के संगम में निमग्न होकर मनुष्य अपने उपास्य देवता के साथ सायुज्य प्राप्त करता था।[5] अतः आवश्यक था

---

१. गरुड़, १।४५।३३

२. पद्म पु०, ४।७८।४५ : एतेस्थिताः स्थापिताः स्युः प्रासादे वाऽथपूजिताः ॥

३. गरुड़, १।४७।४३

४. वही, १।४७।४२ (१)

५. भा० स्था०, पृ० २२०, शिल्परत्न से उद्धत—

देवादीनां नराणां च येषु रम्यतया चिरम्।
मनांसि च प्रसीदन्ति प्रासादास्तेन कीर्तिताः ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि पुराणों[1] में भी प्रासाद-लक्षणों का विवेचन किया जाय।

प्रासादों के अतिरिक्त अन्य विविध भवनों **प्रासादारामदुर्गेषु देवालयमठेषु च**[2] तथा **आवास, वास, वेश्म, पुर, ग्राम** और **वणिक्पथ**[3] भी विभिन्न प्रकार के भवनों से सुशोभित थे। **महानस, सत्रमण्डप, गंधपुष्पगृह** (house of scents and flowers), **भाण्डागार** (स्टोर-रूम), **गोष्ठागार** (cow-shed), वातायन (खिड़की) युक्त **उदगाश्रय** (room for keeping water), समिधा, कुश, इन्धन और आयुधों के रखने के स्थान, रम्य **अभ्यागतालय** (गेस्ट-हाउस), जिसमें शय्या, आसन, पादुकाओं, जल, अग्नि, दीप, और सद्‌भृत्यों (शिष्ट अटेन्डेन्ट्स) की समुचित व्यवस्था हो, अन्य गृह **गृहांतराणि**) जो जल, केला और पंचरंगी फूलों से सुशोभित हों पाँच हाथ ऊँचा **प्राकार** बाहर की ओर तथा वनोपवनों से युक्त **विष्णवाश्रम** (वासुदेव-गृह) का निर्माण करे।[4] इससे वास्तुकला की कई विशिष्टताएँ और इसकी विकसित अवस्था का परिचय मिलता है जो गुप्त युग से लेकर उत्तर मध्य युग की समुन्नत स्थापत्य कला का परिचायक है। यह विविध प्रकार की वास्तु-रचना तत्कालीन भौतिक और आध्यात्मिक जीवन का संगम है जिसे हम विष्णु-मन्दिर के चारों ओर केन्द्रीभूत पाते हैं। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि मुख्य आराध्यदेव के अतिरिक्त अन्य देवी-देवताओं की भी मूर्तियाँ प्रासाद को विभूषित करती थी। डा० द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल ने गरुड़ पुराण के सम्बन्ध में कुछ लिखा है। पुर-निवेश तथा उद्यान-भवन (गार्डेन सिटीज)' की 'अपनी विशेषता' का दर्शन यहाँ नहीं होता है। यहाँ केवल तत्कालीन वास्तुरचना, शिल्प और स्थापत्य अथवा देवप्रतिमाओं और देवप्रासादों का वर्णन किया गया है (पूर्व०, अ० ४५-४८)। डा० शुक्ल ने संभवतः डा० आचार्य का ही अनुकरण कर कुछ लिखा है।[5] विष्णु धर्मोत्तर के आधार पर प्रासाद-निर्माण का वर्णन करते हुए डॉ० शाह का वाक्य है :—

After images of gods, it is natural to think of temples of gods; after प्रतिमा लक्षण, प्रासाद लक्षण[6]. विष्णुधर्मोत्तर में भी (तृतीय

---

१ अग्नि पु०. अ० ४२, १०४
 मत्स्य, अ० २६७-२६८
२. गरुड़, १।४६।३(१)
३. वही, १।४६।७ (२)-३(१)
४. वही, १।४६।१३-१८
५. भा० स्था०, पृ० २८; भा० वा० शा०, पृ०२७
६. PVD, II, पृ० १९३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खंड, अ० ४६-८५) प्रतिमा-लक्षणों का वर्णन करने के बाद ही अ० ८६-८८ (वि० ध०, ३) प्रासाद-लक्षणों का वर्णन किया गया है।

२—वास्तु पूजा

(वास्तुं संक्षेपतो वक्ष्ये गृहादौ विघ्ननाशनम्)[१]

प्रासाद-वास्तु अथवा गृह-वास्तु के पूर्व वास्तु-पुरुष की अवतारणा और अर्चना अनिवार्य कार्य है। अस्तु गरुड़ पुराण प्रासाद लक्षणों का वर्णन करने के पूर्व वास्तु-देवताओं की पूजा का उल्लेख करता है (पूर्व० अ० ४६)। वास्तु-पुरुष का सम्बन्ध पद-विन्यास (site-plan) से है। यह पुरुष ही वास्तु-कर्म का अधिष्ठातृ-देव था। इसके स्वरूप का ज्ञान ही प्रासाद-लक्षणों का प्राथमिक परिचय है।

एकाशीतिपद-वास्तु

अन्धक-वध के लिए शंकर ने घोर रूप धारण किया। उनके मस्तक से पसीनें की बूंदें भूमि पर गिर पड़ीं और उससे एक करालवदन भूत उत्पन्न हुआ। अन्धकों के रक्त को पीकर भी वह तृप्त न हुआ। सदाशिव के समक्ष उसने घोर तपस्या की और शिव ने संतुष्ट होकर उसे वरदान दिया। वह अपने शरीर से सम्पूर्ण भूमण्डल और अन्तरिक्ष को व्याप्त कर पृथिवी पर गिर पड़ा। तभी ब्रह्मा, शिव और देवताओं ने उसको चारों ओर से घेर लिया। जिसने जहाँ पर उस भूत के शरीर को आक्रान्त किया, वह देवता वहीं पर जमकर बैठ गया।[२] उस (भूत) को सर्व देवताओं का निवास होने के कारण वास्तु का नाम दिया गया (निवासात् सर्वदेवानां वास्तुरित्यभिधीयते)।[३] वह अधोमुख होकर पड़ा रहा और वैश्वदेवान्त में उसे बलि उपहार दिया जाने लगा। इस प्रकार वास्तु (भूत) की पूजा प्रचलित हुई। इस वास्तुपूजा को ही वास्तुयज्ञ भी कहते हैं।[४] यद्यपि गरुड़ पुराण वास्तु-वृत्त का उल्लेख नहीं करता है, तथापि वह वास्तु-यजन का उल्लेख करता है। इससे सभी विघ्नों का नाश होता है। उपासक इक्यासी, पद-वास्तु में उत्तर-पूर्व (ईशान कोण) से आरम्भ कर उसकी पूजा करे।[५] समरांगण सूत्रधार भी

---

१. गरुड़, १।४६।१ (१)
२. मत्स्य, २५१।५-१४ (१
३. वही, २५१।१४ (२)
४. वही, २५१।१६-१९
५. गरुड़, १।४६।१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एकाशीतिपदिक वास्तु पद का उल्लेख करता है।[1] "उसकी वास्तु-आकृति वक्र बतायी गयी है और पृष्ठ उठा हुआ··· ।"[2] यह वास्तु आकृति ही प्रासाद स्वरूप है, जिसके अंगो पर देवताओं का आवास है।[3]

वास्तु पुरुष के शिर को ईशान (उत्तर-पूर्व) कोण में, पैरों को दक्षिण-पश्चिम, और दोनों हाथों को दक्षिण-पूर्व तथा उत्तर-पश्चिम कोणों में पूजे। आवास, वास, वेश्म, पुर, ग्राम, वणिक्पथ, प्रासाद, आराम, दुर्ग, देवालय, और मठों में बाहर की ओर ३२ और अन्दर की ओर १३ देवताओं की पूजा करे।

बत्तीस बाह्य देवता

ईश, पर्जन्य, जयन्त, कुलिशायुध (इन्द्र), सूर्य, सत्य, भृगु, आकाश, वायु, पूषा, वितथ (असत्य का देवता) ग्रह-क्षेत्र, दो यम, गन्धर्व, भृगुराज, मृग, पितृगण, दौवारिक, सुग्रीव, पुष्पदन्त, गणाधिप, असुर, शेष, पाद, रोग, अहि-मुख्य, भल्लाट, सोम, सर्प, अदिति, और दिति।

तेरह अन्तर्देवता

ईशानादि चतुष्कोण (चारों कोनों) में आप (जल, जलदेवता = वरुण), सावित्र, जय और रुद्र स्थित हों। मध्य नवपद में ब्रह्मा और आठ उनके पार्श्वचर देवताओं को पूर्व से प्रारम्भ कर स्थापित करे और पूजे। इनके निम्नलिखित नाम हैं जो ब्रह्मा के चारों ओर स्थित थे:—

अर्यमा, सविता, विवस्वान्, विबुधाधिप (इन्द्र); मित्र, राजयक्ष्मा, पृथ्वी-धर और अपवत्स।

इनका उत्तर-पूर्व से प्रारम्भ होने वाला क्रम दुर्ग और दक्षिण-पूर्व से प्रारम्भ होने वाला दुर्द्धर कहलाता है। इन वास्तु देवताओं की पूजा करने के बाद ही उपासक गृह-प्रासाद का निर्माण करे।[4]

---

१. भा० वा०, पृ० १५५; स० सू०, १३।३-५

२. भा० वा०, पृ० १५५

३. बृ० सं०, ५३।२-३

४. गरुड़, १।४६।२-१२; समरांगण सूत्रधार के अनुसार ये देवता वास्तु पुरुष के विभिन्न अंगों पर स्थित माने गये हैं (भा० वा०, पृ० १५५-१५६)। डॉ० शुक्ल का विचार है कि "समरांगण सूत्रधार वास्तुशास्त्र का ही एकमात्र ग्रन्थ है जिसमें इन पददेवों का निघण्टु भी दिया गया है।" दृष्टव्य, बृ० सं०, ५३।४२-५४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रथमतः देवगुरु बृहस्पति की मूर्ति सामने स्थापित कर महानस (आग्नेयी दिशा में), पूर्व में सत्रमण्डप, ईशान में गन्धपुष्प-गृह, उत्तर में भाण्डागार, पश्चिम में वातायन युक्त उदगाश्रय, दक्षिण पश्चिम में समिधा, कुश, इन्धन और आयुधों को रखने का कमरा, सुन्दर शय्या, आसन और पादुकाओं से युक्त अभ्यागतालय हो जिसमें जल, आग और अच्छे नौकरों की भी व्यवस्था हो। कुछ अन्य गृह भी जल, फलों और फूलों से युक्त बनवाये। उसके बाहर पांच हाथ ऊँचाप्राकार बनवाये। इस प्रकार वनोपवन युक्त विष्णु-मन्दिर बनाये।[1] विष्णु-प्रासाद से सम्बद्ध इन विविधि शिल्प-कृतियों से कला की प्रौढ़ता और महत्ता ही परिलक्षित होती है जिसने पूर्वमध्य कालीन कला में एक ऐसे अमृत नवोन्मेष का सृजन किया जो विध्वंसक की कोपाग्नि में झुलस कर भी अपने रूप को आज तक अक्षुण्ण बनाये रख सकी। एलिफैन्टा और एलोरा, खजुराहो और भुवनेश्वर, मालवा और ओसिया तथा हलबीड और और वेरूल में रम्य मनभावनी कलाकृतियों से हम इस साहित्यिक शिल्प-योजना का मीलान कर सकते हैं। कला आघातों से विकृत होकर साहित्य की दुहाई माँगती है कि इसका जीर्णोद्धार हो। खजुराहों के मन्दिरों में जंघाओं (बाह्य दीवारों) पर मूर्तियों की समानान्तर पंक्तियाँ हैं। क्या हम इन मूर्तियों में बाह्य वास्तु देवताओं की कल्पना कर उनकी समीक्षा कर सकते हैं ?

ऐसा विष्णु-प्रासाद, जो चारों ओर पाँच हाथ ऊँचे प्राकार से घिरा हुआ था, हमें दक्षिण के द्राविड-शैली से बने हुए मन्दिरों की झाँकी देता है।

चतुःषष्टिपद प्रासाद

गरुड़ पुराण इक्यासी पद वास्तु के बाद ६४ पद-वास्तु का भी उल्लेख करता है जिसकी पूजा प्रासाद आदि के निर्माण करने के पूर्व करनी चाहिये। इसके मध्य-चतुष्पद में ब्रह्मा और दो पदों में अर्यमा इत्यादि देवताओं को तथा कोनों में शिखी आदि देवताओं[2] को प्रतिष्ठित करे। अन्य डेढ़ पदीय और द्विपदीय देवताओं को भी उनके दोनों ओर स्थापित करे। ये सभी

---

१. गरुड़, १।४६।१३-१८

२. बृ० सं०, ५३।४३ :

शिखिपर्जन्य जयन्तेन्द्र सूर्यसत्या भृशोऽन्तरिक्षश्च।
ऐशान्यादि क्रमशो दक्षिणपूर्वेऽनिलः कोणे ॥

ईशान कोण से लेकर क्रम से शिखी, पर्जन्य, जयन्त, इन्द्र, सूर्य, सत्य, भृश और अन्तरिक्ष देवता हैं।)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चौंसठ पद के वास्तु देवता हैं ।[१] ईशान आदि चारों कोनों में क्रम से चरकी, विदारिका, पूतना और पापराक्षसी निवास करती हैं । बाहर की ओर हेतुकादि देवताओं—हेतुक, त्रिपुरान्त, अग्नि, वेतालक, यम, अग्निजिह्व, कालक, कराल, एकपाद, भीमरूप (उत्तर-पूर्व में), प्रेतनायक (पाताल में), गन्धमाली (आकाश में) और क्षेत्रपालों की पूजा करे ।[२]

इसके बाद वास्तु का विस्तार करे । विभिन्न राशियों की गणना के आधार पर आठ द्वारों को बनाये । द्वार की चौड़ाई इसकी लम्बाई की आधी हो । गृह या प्रासाद के पूर्वादि दिशाओं में अश्वत्थ, प्लक्ष, न्यग्रोध और उदुम्बर तथा ईशान में शाल्मलि वृक्षों को पूजे ।[३]

चौसठ-पद वास्तु अधिक प्रशस्त माना गया है ।[४]

३—प्रासाद-लक्षण

क—चतुःषष्टिपदं देवतायतन—प्रासाद-लक्षणों का वर्णन करते हुए गरुड़ का मत है कि सभी दिशाओं और विदिशाओं से सम्बद्ध चौंसठ-पद वास्तु बनाकर (प्रासाद के मध्य भाग में) चतुष्कोण (चार पदों का केन्द्रीय क्षेत्र बनाये, इसमें बारह पदों पर द्वारों और (शेष) ४८ पदों पर भित्तियों की कल्पना करे:

> चतुष्कोणं चतुर्भिश्च द्वाराणि सूर्यसंख्यया ।
> चत्वारिंशाष्टाभिश्चैव भित्तीनां कल्पनाभवेत् ।।[५]

वृहत्संहिता के अनुसार देवालय में सदा पूर्वोक्त चौंसठ पद का वास्तु बनाना चाहिए तथा मध्यम द्वार दिशाओं (के मध्य) में स्थित हो तो श्रेष्ठ हो ।[६] विष्णुधर्मोत्तर भी यही कहता है ।[६] ऊर्ध्वक्षेत्र के समान ही जंघा हो

---

१. गरुड़, १।४६।१९-२०
बृ० सं० ५३।५५-५६
२. गरुड़, १।४६।२१-२३
३. वही, १।४६।२४-३६
दृष्टव्य, भा० स्था०, पृ० ३२७: अश्वत्थोदुम्बर प्लक्षचूतन्यग्रोधपल्लवाः
पंचपल्लव इत्युक्ताः सर्वकर्मसु शोभनाः।।
हेमाद्रि-व्रतखंड
४. भा० स्था०, पृ० ३०९
५. गरुड़, १।४७।२
६. बृ० सं०, ५३।१०
७. वि० ध०, ३।८८।१-२ (१)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो और ऊपर की ओर वह उससे दुगुनी ऊँचाई की हो। इसी प्रकार गर्भ-विस्तार के समान ही शुकांघ्रि भी विस्तार में हो; निर्गम (indents) भी दोनों ओर उसके (गर्भ-विस्तार) के तिहाई या पांचवें भाग के बराबर हों; शुकांघ्रि की ऊँचाई शिखर की आधी ऊँचाई हो; शिखर को चार भाग में बांट कर उसके तीसरे भाग में वेदि-बन्धन बनाये; और इसके चौथे भाग में कण्ठ को बनाये।[1]

बृहत्संहिता और विष्णुधर्मोत्तर भी ६४ पद-वास्तु पर देवालय-निर्माण का वर्णन करता है।[2] इनको प्रासाद का सामान्य लक्षण कहा गया है।

ख—षोडशभागिक वास्तु—चौंसठ-पद वास्तु के अतिरिक्त गरुड़ षोडश-भागिक वास्तु के प्रासाद-लक्षण का वर्णन करता है। सोलह बराबर भागों के वास्तु को बनाकर उसके मध्य में पहले चार भागों पर गर्भ (गृह) को बनाये और फिर बारह भागों पर भित्ति को बनाये। प्रमाण के अनुरूप भित्तियों की ऊँचाई चार भागों (की लम्बाई) के बराबर हो। शिखर की ऊँचाई भित्तियों की ऊँचाई से दुगुनी हो। चारों ओर प्रदक्षिणा शिखर की ऊँचाई का चौथियायी हो। गर्भमान को पांच भागों में विभक्त कर एक भाग निर्गम बनाये। गर्भसूत्र के समान ही आगे की ओर मुखमंडप बनाये।[3]

ग—लिंगमान-प्रासाद—इस प्रकार के प्रासाद का विस्तार लिंग[4] अथवा प्रतिमा के मान के अनुरूप होता है (मानेन प्रतिमाया वा प्रासादमपरं श्रृणु। लिंग अथवा प्रतिमा के बराबर पीठ होता है; गर्भ (गृह) उसका दुगुना होता है; भित्तियां उसके (गर्भगृह) के बराबर होती हैं; जंघा उसकी आधी होती है; शिखर जंघा का दुगुना (ऊँचा) होता है और शुकांघ्रिका पीठ और गर्भ के बराबर हो। निर्गम पहले की भांति ही हो।[5]

च—द्वारमान-प्रासाद—इस प्रकार के प्रासाद का मान-विस्तार और ऊँचाई इत्यादि द्वार की उँचाई के अनुरूप होता है। बृहत्संहिता और विष्णुधर्मोत्तर भी द्वारमान के आधार पर प्रासाद-लक्षण का वर्णन करता है।[6]

---

१. गरुड़, १।४७।३-५
२. बृ० सं०, ५३।११-१६
   वि० ध०, ३, अ० ८८
३. गरुड़, १।४७।६-१०
   अग्नि पु०, ४२।१-७ (१)
४. गरुड़, १।४७।११
५. वही, १।४७।१२-१३ (१)
६. वि० ध०, ३।८७।५-६ (१)
   बृ० सं०, ५३।१२-१६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चार हाथ (कराग्रं वेदवत्कृत्वा) चौड़ा द्वार बनाये जो आठ भागों में विभक्त हो (भागाष्टमं भवेत्); इसकी ऊँचाई चौड़ाई से दुगुनी हों; द्वार के समान ही पीठ का मध्य भाग जालीदार हो (द्वारवत्पीठमध्ये तु शेषं शुषिरकं भवेत्); भित्ति का शेष चौथाई भाग आधे द्वार में होता है; उसी (द्वार) के समान जंघा होती है और शिखर उसका दुगुना ऊँचा होता है। शुकांघ्रि और निर्गम पूर्वोक्त प्रकार के ही समान होते हैं।[1]

संभवतः द्वारमान को ही मण्डपमान भी कहते थे। यहाँ शुषिरकं (द्वारं) जालीदार द्वार पर विशेषतः ध्यान देने को आवश्यकता है। अग्नि पुराण, बृहत्संहिता और विष्णुधर्मोत्तर में इसका उल्लेख नहीं मिलता है।

छ—त्रैवेदं क्षेत्र (प्रासाद)—गरुड़ इसके बाद एक अन्य प्रकार के प्रासाद (स्वरूपं चापरं)[2] का वर्णन करता है। इस स्वरूप में त्रैवेद (तीन वेदी वाला) क्षेत्र होता है, जहाँ देवता स्थित रहते हैं, इसी के आधार पर ही बाह्य मान भी होगा; नेमि (प्रासाद के अन्दर स्थान का व्यास) प्रासाद के मान से चौथाई कम हो; गर्भ (गृह) नेमि का दुगुना हो; वही भित्ति की ऊँचाई भी हो और शिखर उसका दुगुना हो।[3]

इस प्रकार गरुड़ पुराण पांच प्रकार के प्रासादों—चौंसठ पद, सोलह पद, लिंगमान, द्वारमान, और त्रैवेद क्षेत्र का वर्णन करता है। इनसे विभिन्न विस्तार और ऊँचाई के प्रासादों का परिचय मिलता है।

४. प्रासाद-वर्ग और उनकी विशिष्टताएँ

मूल (योनि) और मान के आधार पर विभिन्न प्रासादों को पाँच वर्गों में विभक्त किया गया है :—

(१) वैराज,	चतुरस्र—स्वरूप	(चौकोर)
(२) पुष्पक,	आयत—स्वरूप	
(३) कैलास,	वृत्ताकार,	(गोलाकार)
(४) मालिक (माणिक),	वृत्तायत—स्वरूप	
(५) त्रिपिष्टप,	अष्टास्र—स्वरूप	

ये प्रासाद सभी देवताओं के निवास थे। इन्हीं से सुमनोहर चालिस प्रासादों का जन्म हुआ। इस प्रकार कुल मिलाकर ४५ प्रासादों का विकास

---

१. गरुड़, १।४८।१३ (२)—१६

२. वही, १।४७।१६

३. वही, १।४७।१७-१८

'नेमिः पादेन विस्तीर्ण' के स्थान पर शुद्ध पाठ ''नेमिः पादोन विस्तीर्ण (अग्नि, १०४।७-१) होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुआ।[1] अग्नि पुराण भी वैराज (चतुरस्र), पुष्पक (आयत), कैलास (वृत्त), मणिक (वृत्तायत) और त्रिविष्टप (अष्टास्र) नामक पांचों वर्गों को और प्रत्येक वर्ग को नव भेदों में विभक्त कर (एकैको नवधा भेदैः) पैंतालिस प्रासादों का वर्णन करता है।[2]

(१) **चतुरस्राकार-वैराज प्रासाद**—ये आकृत्यनुरूप (चतुरस्र) प्रासाद निम्नलिखित हैं—मेरु, मन्दर, विमान, भद्र, सर्वतोभद्र, रुचक, नन्दन (नन्दिक), नन्दिवर्द्धन (नन्दिवर्द्धमान) और श्रीवत्स इनका जन्म वैराज से हुआ था।[3] इसीलिए इन नौ प्रासादों वैराज वंशीय कहा गया है।[4]

(२) **पुष्पकोद्भव-आयत प्रासाद**—इस जाति के प्रासाद निम्नलिखित हैं:—

वलभी, गृहराज, शालागृह, मन्दिर, विमान, ब्रह्ममन्दिर, भवन, उत्तम्भ और शिविकावेश्म।[5] अग्नि पुराण में विमान, भवन, और उत्तम्भ के स्थानों पर क्रम से विशाल, भुवन और प्रभव नाम मिलते हैं।[6] गरुड़ के अनुसार विमान दोनों वैराज और पुष्पक ही जातियों में उल्लिखित हुआ है।

यहाँ इस जाति के प्रासादों में वलभी नाम से हमें पश्चिमी भारत के, सौराष्ट्र में स्थित वलभी का स्मरण होता है जो कला और संस्कृति का प्रथित केन्द्र था। गुप्त युग में और कालान्तर में यह नगर मैत्रकों के शासन काल में सुन्दर कलाकृतियों से अभिमंडित किया गया था। अग्नि पुराण (१०४।२२) इन सभी ४५ प्रासादों को लाट (दक्षिण गुजरात) से सम्बद्ध करता है। गुप्त युग में ही (देखिये-कुमारगुप्त प्रथम कालीन बन्धुवर्मन के मंडसोर लेख) लाट विषय के निवासी अपने शिल्प में विश्व विश्रुत थे—जगति प्रथितशिल्पः)। अतः वलभी प्रासाद, संभवतः वलभी कलाकेन्द्र से सम्बंधित था।

(३) **कैलास जाति के वृत्त प्रासाद**—इसके अन्तर्गत निम्नलिखित नौ प्रसाद थे :—

वलय, दुन्दुभि, पद्म, महापद्म, मुकुली, उष्णीषी, शंख, कलश, और गुवावृक्ष।[7] अग्नि पुराण में मुकुली और गुवावृक्ष के स्थान पर क्रम से वर्द्धनी और खवृक्ष नाम मिलते हैं।[8]

---

१. गरुड़, १।४७।१९-२१

२. अग्नि, १०४।११-१३

३. गरुड़, १।४७।२२-२३

४. अग्नि, १०४।१४-१५

५. गरुड़, १।४७।२४

६. अग्नि, १०४।१६-१७ (१)

७. गरुड़, १।४७।२५

८. अग्नि, १०४।१७ (२)-१८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(४) मालक-वृतायत—इस जाति के निम्नलिखित प्रासाद हैं—गज, वृषभ, हँस, गरुड़, सिंह, भूमुख, भूधर, श्रीजय, और पृथिवीधर[1]। अग्नि पुराण में इस मणिक कहा गया है और यहां सिंह तथा भूमुख के स्थान पर ऋक्षनायक और भूषण के नाम मिलते हैं।[2] इन प्रासादों में पशु-पक्षियों और पर्वतों की तद्रूपता दृष्टव्य है।

(५) त्रिपिष्टिप जाति के अष्टास्र प्रासाद—नौ के स्थान पर इसमें वज्र, चक्र, मुष्टिक, बभ्रु, वक्र, स्वस्तिक, भंग, गदा, श्रीवृक्ष और विजय नामक १० प्रासाद सम्मिलित हैं।[3] अग्नि पुराण में वज्र, चक्र, स्वस्तिक, वज्रस्वस्तिक, चित्र, स्वस्तिकखड्ग, गदा, श्रीकठ और विजय नामक नौ प्रासादों का उल्लेख है।[4] इससे ऐसा ज्ञात होता है कि वक्रस्वस्तिक एक ही नाम है जिससे गरुड़ में भी ९ प्रासादों की संख्या मिलती है। श्री यम० एन० दत्त ने (अंग्रेज़ी अनुवाद, पृ० ११६) भंग को हटाकर शेष नौ नाम दिये हैं।

इन प्रासादों के अतिरिक्त त्रिकोण, पद्म, अर्द्धचन्द्राकार, चतुष्कोण और सोलह कोण वाले (द्विरष्टक) मंडप-संस्थानों का भी उल्लेख करता है।[5] प्रासादों को ध्वजादिक से सुशोभित करें और गर्भगृह के द्वार मंडप के चौथाई भाग में भद्र भी बनाये। इनमें गवाक्ष हो या न हों। भित्ति के प्रमाण से, भित्तिमान के अनुरूप, अथवा भित्ति का दुगुना मंडप हो। प्रासाद में मंजरी बनाना चाहिये। विचित्र और विषम भूमिका हो। रेखा भी वैषम्य युक्त हो। एक सौ श्रृंगों से युक्त सर्वश्रेष्ठ प्रासाद मेरु है। यह चार द्वारों और चार मंडपों से सुशोभित होता है। मंडपों को तीन भद्रों से अलंकृत करे। गठन, आकार और मान के आधार पर ये भिन्न-भिन्न होते हैं। गठन आदि के आधार पर बहुत प्रकार के देव-प्रासाद हैं। स्वायंभुव-देवताओं के प्रासादों के विषय में कोई नियम नहीं है। चतुरस्र और आयत प्रासाद चतुष्कोण, चन्द्रशाला और भेरी शिखर से अलकृत हों। इनके सामने वाहनों के भी लघुमंडप हों; द्वार सम्बद्ध ही नाट्यशाला भी हो; प्रासाद में विभिन्न दिशाओं और उपदिशाओं में देवों और प्रमुख द्वारपालों को मूर्त्त करना चाहिए। प्रासाद के कुछ ही दूर पर पुरोहितों के मठों को भी बनाये और जगती को फल, फूल और जल से अलंकृत करना चाहिये।[6]

इस प्रकार गरुड़ पुराण प्रासाद कला और इसके वैभव की अमूल्य निधि है।

---

१. गरुड़, १।४७।२६
२. अग्नि, १०४।१९
३. गरुड़, १।४७।२७
४. अग्नि, १०४।२० (२)—२१
५. गरुड़, १।४७।२८
६. वही, १।४७।२८-४२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्रन्थ-सूची

१—मूल-ग्रन्थ

ग्रन्थ	संपादक/अनुवादक/लेखक	प्रकाशन व सन्/संवत्
क—वैदिक साहित्य		
ऋग्वेद, ४ भाग	सं० श्रीराम शर्मा	बरेली
अथर्ववेद	,,	,,
कठोपनिषद	गीताप्रेस	गोरखपुर
बृहदारण्यक उपनिषद्	,,	,,
ख—बौद्ध साहित्य		
दिव्यावदान	पी०एल० वैद्य (सं०)	मिथिला, १९५९
महावस्तु, ३ भाग	ई० सेनार्ट (सं०)	पेरिस १८८२-९७
ग—महाकाव्य		
रामायण, २ भाग	गीताप्रेस	गोरखपुर
महाभारत, ६ ,,	,,	,,
हरिवंश	,,	,,
श्री भगवद्गीता	,,	,,
घ—पुराण		
अग्नि पुराण		गुरु मडल कलकत्ता, १९५७ ई०
,,		चौखम्बा, वाराणसी
कूर्म पुराणम्		इन्डोलाजिकल बुकहाउस वाराणसी, १९६८
गरुड़ पुराण		पंडित पुस्तकालय, काशी १९६३
,,	सं०, पं०जीबानन्द विद्यासागर	कलकत्ता
	डा० रामशंकर भट्टाचार्य	चौखम्बा, वाराणसी १९६४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गरुड़ पु०	मन्मथ नाथ दत्त शास्त्री	कलकत्ता, १९०८
अंग्रेज़ी अनुवाद		पंडित पुस्तकालय, काशी
देवी भागवत पुराण		सं०२०१९
नारदीय पुराण		श्री वेंकटेश्वर प्रेस,
(बृहन्नारदीय पुराण)		बम्बई, संवत् १९८०
नीलमत पुराण		मोतीलाल बनारसी दास लाहोर, १९२४
पद्म पुराण, ४ खंड		आनन्दाश्रम, पूना
प्रथम भाग		१८९३ ई०
द्वितीय भाग-चतुर्थ भाग		१८९४ ई०
ब्रह्म पुराण		गुरुमंडल, कलकत्ता
ब्रह्मवैवर्त पु०, २ भाग		आनन्दाश्रम, पूना, १९३५
ब्रह्मांड पुराण		श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, सं० १९९२
भविष्य पुराण		श्री वेंकटेश्वर प्रेस, सन् १९५९ ई०
भागवत पु०, दो भाग		गीता प्रेस, गोरखपुर, सं० २०१३
मत्स्य पु०	सं०, श्रीजीवानन्द विद्यासागर	कलकत्ता, १८७६ ई०
मार्कण्डेय पु०	,,	,, १८७९ ई०
,,		श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बंबई,
लिंग पुराण		लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, सं० १८४६
वामन पु०		काशिराजन्यास, १९६८ ई०
,,		श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
वायु पु०		श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बंबई १९३३ ई०
विष्णु पु०		गीताप्रेस, गोरखपुर संवत् २००९
,, अंग्रेजी अनुवाद	यच०यच०विलसन	पुन्थी पुस्तक, कलकत्ता १९६१ ई०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विष्णुधर्मोत्तर		श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई सं० १९६९
शिवपुराण		
स्कन्द पुराण		श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बंबई १९१०

च—अन्य संस्कृत ग्रन्थ

अपराजित पृच्छा		बड़ोदा, १९५०
अमरकोश		पूना, १९४१
अर्थशास्त्र (कौटिलीय)		पंडित पुस्तकाल, काशी
(अंग्रेजी अनुवाद)	आर० शाम शास्त्री	मैसूर, १९५१
भाग—२(,,)	आर०पी० कांगले	बम्बई
—३(अध्ययन)	,,	,,
अर्थशास्त्र (बृहस्पति,)	टामस	लाहोर
उदय सुन्दरी कथा	सोड्ढल	
कथा सरित सागर	सोमदेवसूरी	निर्णय सागर प्रेस बम्बई,
काव्यमीमांसा(राजशेखर)		बड़ोदा
पातंजल योगसूत्र		
प्रबोधचन्द्रोय (कृष्ण मिश्र)		
प्रबन्ध चिन्तामणि		
पृथ्वीराजविजय(जयानक)		अजमेर
बृहत्संहिता(वराह मिहिर)		चौखम्बा, वाराणसी १९५९ ई०
मनुस्मृति	सं०, पं० तुलसीराम स्वामी	देहली
यशस्तिलक(सोमदेवसूरी)		निर्णयसागर प्रेस बम्बई
याज्ञवल्क्य स्मृति	सं०, नारायणस्वामी खिस्ते	बनारस, १९२४
,,	नारायण राम आचार्य	निर्णय सागर प्रेम, बंबई १९४९
योगवसिष्ठ		बम्बई
राजतरंगिणी, २ भाग,		होशियारपुर १९६३, १९६५
शुक्रनीति		श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
हर्षचरित (बाण)	सं०, ए०ए० फ़ूरर	बम्बई, १९०९ ई०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

छ—हिन्दी ग्रन्थ

भक्तमाल(नाभादास कृत) नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ

(२) अभिलेख

अशोक के धर्म लेख सं०, डा० राजबली पांडे, वाराणसी

हिस्टारिल ऐन्ड लिटरेरी इन्सक्रिप्शन ,, ,,

कार्पस इन्सक्रिप्शनम इंडिकेरम-भाग ४ सं०, डा० वी०वी० मीराशी ऊटकमंड

(३) आधुनिक ग्रन्थ

क—हिन्दी

अरब और भारत के सम्बन्ध अनुवादक रामचन्द्र वर्मा लें० नदवी हिंदुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग १९३०

अग्निपुराण विषयानुक्रमणी डा० रामशंकर भट्टाचार्य वाराणसी, १९६३

कला और संस्कृति डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

खजुराहो की देव प्रतिमाएँ डा० रामाश्रय अवस्थी आगरा, १९६७ ई०

पाणिनिकालीन भारत डा० वासुदेवशरण अग्रवाल वाराणसी

पुराण-विमर्श पं० बलदेव उपाध्याय चौखम्बा, वाराणसी १९६५

प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप अवधविहारी लाल अवस्थी लखनऊ १९६४

भारतीय स्थापत्य डा० द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल लखनऊ १९६८

मार्कण्डेय पुराण (एक सांस्कृतिक अध्ययन) डा० वासुदेवशरण अग्रवाल इलाहाबाद १९६१

मेघदूत और रामगिरि डा० वी०वी० मीराशी

यौधेयों का इतिहास अवधविहारी लाल अवस्थी लखनऊ, १९६१

वेदधरातल पं० गिरीश चन्द्र अवस्थी लखनऊ

हिन्दू संस्कार डा० राजबली पाँडे बनारस

ख—अंग्रेजी ग्रन्थ

आचार्य, डा० पी०के०, एलीमेन्ट्स ऑफ़ हिन्दू कल्चर ऐन्ड सिविलाइजेशन इलाहाबाद १९३९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अग्रवाल, ड० वासुदेव	मत्स्य पुराण अ स्टडी	वाराणसी
	स्टोरी ऑफ़ इन्डियन आर्ट	,, १९६५
	वामन पुराण, अ स्टडी	,, १९६४
अग्रवाल, डा० उर्मिला,	खजुराहो स्कल्पचर्स ऐन्ड दियर सिगनीफिकेन्स,	देलही, १९६४
अवस्थी डा० अवध विहारी लाल :		
	इण्डियन नेशनलिज़्म, वाल्यूम १	लखनऊ १९६५
	राजपूत पॉलिटी	लखनऊ १९६८
	स्टडीज़ इन स्कन्द पुराण, पार्ट वन	लखनऊ १९६६
	स्टडीज़ इन वराहपुराण	
बनर्जी डा० जितेन्द्रनाथ :		
	दि डेवलपमेंट ऑफ़ हिन्दू आइकनोग्राफ़ी,	कलकत्ता, १९५६
	पौराणिक ऐण्ड तान्त्रिक रेलिजन	,, १९६६
	रेलिजन इन आर्ट ऐण्ड आर्कयोलॉजी	लखनऊ, १९६८
बसाक, डा० राधागोविंद,	हिस्ट्री आफ़ नार्थ ईस्टर्न इण्डिया	ढाका
भट्टाचार्य, बी०सी०	इण्डियन इमेजेज़, भाग १	कलकत्ता, १९२१
भण्डारकर, सर आर०जी०	कलक्टेड वर्कस ऑफ़ सर आर०जी० भण्डारकर,	पूना
,,	४ भाग, भाग ४(पूना १९२९ वैष्णविज़्म-शैविज़्म आदि युक्त)	
भार्गव, डा० पुरुषोत्तम लाल	इण्डिया इन दि वेदिक एज,	लखनऊ १९५६
कुमारस्वामी डा०ए०के०	हिस्ट्री ऑफ़ इण्डियन ऐण्ड इण्डोनीशियन आर्ट	न्यूयार्क, १९६५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

डे, नन्द लाल	दि ज्योग्रफ़िकल डिक्शनरी ऑफ़ ऐन्शेन्ट ऐन्ड मेडिवल इण्डिया	लन्दन, १९२७
दासगुप्त, डा०एस०एन०	हिस्ट्री ऑफ इण्यिन फ़िलासफ़ी, ५भाग	कैम्ब्रिज
इलियट, चार्ल्स	हिन्दुइज्म ऐण्ड बुद्धिज्म	लन्दन, १९२१
फ़र्कुहर, डा०जे०यन०	ऐन आउटलाइन ऑफ़ दि रेलिजस लिटरेचर ऑफ इण्डिया	ऑक्सफ़ोर्ड, १९२०
घोषाल, डा० यू०यन०	स्टडीज़ इन इण्डियन हिस्ट्री ऐन्ड कल्चर	कलकत्ता, १९५७
गोन्डा, डा० जे०	एस्पेक्ट्स ऑफ़ अर्ली विष्णुइज्म	यूट्रेट, १९५४
गोपीनाथ राव, टी०ए०,	एलिमेन्ट्स ऑफ़ हिन्दू आइकनोग्राफी, दो खंड दो-दो भाग,	१९१४-१९१६
गोस्वामी, म०म०, डा० भगवत कुमार	दि भक्ति कल्ट इन एन्शेन्ट इण्डिया,	वाराणसी, १९६५
हज़रा, डा० आर०सी०	पुराणिक रिकर्ड्स ऑन हिंदू राइट्स ऐण्ड कस्टम्स	ढाका, १९४०
,,	स्टडीज इन दि उपपुराणज़ भाग १	कलकत्ता, १९५८
,,	,, १ ,,	,, १९६३
जायसवाल ड० सुविरा	दि ओरिजिन ऐण्ड डेवलपमेंट आफ़ वैष्णविज्म	देलही, १९६७
कंटवाला, डा०एस०जी०	कलचरल हिस्ट्री फ्रॉम दि मत्स्य पुराण	बड़ोड़ा, १९६४
काणे, म०म०, डा०पी०वी०,	हिस्ट्री ऑफ हिन्दू धर्म शास्त्र	पूना
कीथ, ए०बी०	बुद्धिस्ट फिलासफ़ी	वाराणसी १९६३
मोनियर विलियम्स	रेलिजस थॉट ऐन्ड लाइफ़ इन इण्डिया	लन्दन १८८३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मोतीचन्द्र (डा०)	उपायन पर्व (ज्याग्रफ़िकल ऐन्ड एकोनामिक स्टडीज़ इन महाभारत)	लखनऊ
पार्जिटर, यफ़० ई०,	दि पुराण टेक्स्ट आफ़ दि डाइनेस्टीज़ आफ़ दि कलि एज	चौखम्बा वाराणसी १९६२
पाटिल, डा० डी०आर०	कल्चरल हिस्ट्री फ्राम दि वायु पुराण	पूना, १९४६
	एन्शेंट इंडियन हिस्टा-रिकल ट्रैडिशन	देलही, १९६२
पुरी, डा० बी०यन०	इंडिया इन दि डाइम आफ़ पतंजलि	बम्बई, १९५७
	दि हिस्ट्री आफ़ दि गुर्जर प्रतिहाराज़	,, १९५७
पुसल्कर, डा० ए०डी०	स्टडीज़ इन एपिक्स ऐन्ड पुराणाज़ ऑफ़ इंडिया	भारतीय विद्याभवन बम्बई, १९६३
,, और डा०आर०सी० मजूमदार	स्ट्राल फ़ॉर इम्पायर	,, १९५७
रायचौधरी डा० हेमचन्द्र	पोलिटिकल हिस्ट्री आफ़ ऐन्शेंट इंडिया	कलकत्ता, १९५०
,,	स्टडीज़ इन इंडियन ऐन्टीकिटीज़	,, १९५८
शाह, डा० प्रियबाला	विष्णु धर्मोत्तर, तृतीय खंड, भाग दो	बड़ौदा, १९६१
शुक्ल, डा०जितेन्द्रनाथ	वास्तुशास्त्र, भाग १ (हिन्दू साइन्स ऑफ़ आर्किटेक्चर)	लखनऊ, १९६०
	वास्तुशास्त्र, भाग २ (हिन्दू कैनन्स ऑफ़ आइक्नोग्राफ़ी ऐन्ड पेंटिंग)	,, १९५८
सरकार,डा०डी०सी० (संपादक)	दि शक्ति कल्ट ऐन्ड तारा	कलकत्ता, १९६७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्टर्नवक, डा० लुडविग	चाणक्य-नीति-शाखा-सम्प्रदाय : वाल्यूम १, भाग २	होशियारपुर, १९६४
वुड्रफ़, सर जॉन	शक्ति ऐन्ड शाक्त	मद्रास, १९६५

पत्र-पत्रिकाएं

पुराणाम्	काशी
जर्नल नुमिस्मेटिक सोसाइटी ऑफ़ इण्डिया	,,
जर्नल यू०पी० हिस्टीरिकल सोसाइटी	लखनऊ
हिन्दुस्तान टाइम्स	दिल्ली

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुक्रमणिका

अ

अंकुश ६२,३२०,३९१,३९२
अंग १६,१९,२१,६५,१८१
अंगन्यास १८१,२२३,२६५
अंगारक ३७३
अंगारेश २७२
अंगिरस २९३
अंगिरा ११६
अंधक ६३,६४,२३३,३९५
अंध्र १९,२२,२४,६५
अंबरीश ५७,२०८
अंशावतार ३६७
अंशुमान ५७
अक्रूर ६४
अक्षमाला ३१३,३१५,३६६
अक्षयवट २७१
अक्षसूत्र ३६४,३७९,३९०,३९१
अगस्त्य ३००,३०१
अग्नि(वैदिक देवता) १८५,२२३,२५६
अग्नि (दिक्पाल) ३७३,३७५,३७६,
३७७,३८२,३८३
अग्नि कार्य १२२,१२३,२९०
अग्नि-गर्भ (सूर्य) ३७२
अग्नि-चिह्न ३७८
अग्नि-पुराण १५९,२६२,२६३,२९३
३१०,३३२,३३३,३३५
३३६,३३८,३३९,३४२
३६०,३६१,३७६,४००
४०१,४०२
अग्नि-संस्कार १२८
अग्नि-हवन १४४
अग्नि-होत्र १२३,१२४,२६६
अग्रवाल, डा० उर्मिला ३०७,३५४
३९२
अग्रवाल, डा० वासुदेव शरण १,३१४
अघोर २१५,२२५
अघोरा २१८,२२३
अघोरास्त्र २२६
अच्युत २१३,२१५,३३५,३३८
अज ५६,२२५
अजमीढ़ ६७,६९,७०
अजमेर ५०,१०९
अजवाहन ३७९
अजामिल २१३
अतल ७
अति-चण्डिका ३९२
अतिथि ५८,७२,१२१,१२२
अत्रि ५८,११७,२९३
अत्रि-आश्रम २७२
अथर्वण ३१३
अथर्व वेद २१,२९७
अदिति ५६,३२०,३९६
अधिनेमिक ५८
अधिरथ ६५
अधिराज्य १४
अधिष्ठान ३७,४०,३०९
अधिसीमकृष्ण ७३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधोक्षज २०१,२१३
अनगंडी २७२
अनघ २१३
अनपाल १९,६५
अनमित्र ६३,६४
अनरण्य ५७,६१
अनशन २५९
अनसूया २३२
अनागुडी ३८,४४
अनाज १४५
अनादि निधन २१३
अनायक (राज्य) ८३
अनार्य ११५
अनावृष्टि १६०
अनिरुद्ध १५,६५,७३,१९२,३०९
३२६,३२८,३३०-३३१
३३२,३३५,३४५,३८४
अनु ६३,६५
अनुपदेव ६४
अनुलेप २२३
अनुलोम ११३
अनुवंश ६५
अनुविन्द ६४
अनुष्टुप ३७१
अनेन ५७
अनेना ५८,५९
अन्तक ६४
अन्त्यज १५,११३,२६६
अन्त्य जाति ११३,११५
अन्नदान १४३,१४५,१४६
अन्न-प्राशन १२७
अपच ३०५
अपजापक ५९.
अपराजित पृच्छा २२६,२२८,३६१
३८७
अपराजिता २४,२३१,२४५
अपरिग्रह २८१
अपर्णा २३१
अप्रजनी १४०
अपवत्स ३९६
अप्सरा १९१,२४२,३५६,३५८,३७८
अंपाक यज्ञ ११९
अपीच्य वेश्य ३८४
अफगानिस्तान ३३
अफ्रीका ८
अभयमुद्रा ३१५,३१६,३१७,३२५
३५८,३६९,३९१,३९२
अभिमन्यु ७३
अभिसार ३३,३४
अभीषाह ३३
अभ्यागतालय ३९४,३९७
अमरीका २
अभावसु ५९
अमृतादेवी २२२,२४०,३९०
अमृतेश पूजन २२२
अमृतेश्वर ३६४,३६५,३९०
अमोघवर्ष २५७
अमोघा २३१
अम्बष्ठ २८
अम्बाला १३
अम्बालिका ७२
अम्बिका ७२,२४०
अयाति ६१
अयुताजित ६३
अयुतायु ७२
अयोध्या ३७,२७२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अयोध्या राज्य १९
अरब ३१,१८१
अरब सत्ता १
अरविन्द गिरि ४८,४४,२७२
अरविन्द वन ५०,२७२
अराजक राज्य ८२,८३
अरिष्टवध ३५३
अरुण ३९२
अर्चा ३०६
अर्जुन २३,२९,६१,६४,७३,८७,९४
१७९,२१४,२८४
अर्थ मार्ग १५४,१७४,१७९
अर्थ विद्या १५९
अर्थ शास्त्र ८२,८५,९०,११६,१४५
१५३,१५४,१५९,२९२
२९४
अर्ध चन्द्रासन ३७८
अर्ध-नारीश्वर २३१,३८७
अर्बुद (गिरि) ४४,२२९
अर्यमा २४५,३९६
अर्हिबुध्न्य २२५,२२६
अलर्क ५९
अलवर १३,१४
अवतार १८८,१८९,१९०,१९६-२०१
अवन्ति २३,३१,३८
अवन्तिका ३१,३७,३८
अविक्षित ५६
अंशांशकल्पना ३०४
अशोक २२,१६१,२२४
अश्मक २२,२३,२४
अश्वक ५७
अश्वत्थामा ७०
अश्वमेध १७५,१८६
अश्वमेधदत्त ७३
अश्व-रूप (विष्णु) ३६३
अश्व-शिक्षा २९१
अश्वह ६८
अश्विनीकुमार ३००,३०१
अष्ट दिक्पाल ३७५
अष्ट पत्र पद्म ३७४
अष्ट भैरव २२८
अष्टांग योग २८१
अष्टाक्षर (मंत्र) २०७
अष्टाध्यायी २९६,२९९
असुर १८३,१९७,२०७,२०८,२३२
२३३,२९६
अहिगणेश्वर ३७७
अह्निनर ७३
अहीनक ५८

आ

आकूति २३२
आगम २६८
आग्नेय २७२,३७३
आचार १४१,१७५
आचार मार्ग १७१
आचार्य १२५,२९१,२९६
आच्छादन १५०
आठ रुद्र २२७
आढ़क १६६
आत्मतीर्थ १४१
आत्मविद्या २८१
आत्रेय ३००,३०१,३०३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आदित्य ३७०,३७३
आदित्य गायत्री ३७०
आदि देवी २५४
आदि मूर्ति ३४२
आदिराज पृथु ९७
आध्यात्मिकी विद्या १२४
आनन्द गिरि ३०७
आनर्त २८
आन्ध्र ९
आन्वीक्षकी विद्या २७८
आपद्धर्म ११९,१२०
आपस्तम्ब ११६,२९३
आबू ४४,२७२
आयुध १८८,२०१,२५४,३०८,३३३
३४२,३६५,३६६,३७६,३९०
आयुध-जीवी १३,३६
आयुध-पुरुष ३२०,३२२
आयुर्वेद ९०,१०४,२९२,२९४,२९९
३००,३०१,३०२,३५८
आयुर्वेद तंत्र ३००
आयुर्वेद संहिता ३००
आर०एन० मेहता २३०
आर्यावर्त १४०,१७८,१९३
आर्ष विवाह १३१
आर्हत २६२
आवन्ताः ३२
आश्वमेधिक पर्व १९०
आश्रमाचार २६६
आश्रम धर्म १२०,१२१,१२६
आश्रम व्यवस्था १२०
आसुर १३१,२५५
आहुक ६४
आहुकी ६४

इ

इक्षु ८,१४५,१४६
इक्ष्वाकु ५७
इक्ष्वाकुवंश ५५,७३
इटावा १३,३८
इतिहास ९०,१०६,१२४,२९४
इतिहास पुराण १४५,२९४
इन्द्र ३४,८५,१७२,१८५,२२३
२३०,२४५,३००,२५६
३४९,३६३,३७६,३७७
३७८,३८८
इन्द्र (वासुदेवरूपी) ३८२
इन्द्र द्वीप ९,१०
इन्द्र नील परीक्षा २९५,३२०
इन्द्रप्रस्थ १३,३८
इन्द्राणी ३७८,३७९
इरावती ४५,४८,२७२
इलविला ५६
इलबिल ५७
इला ५६
इलावृत ९

ई

ईरान ३८८
ईश ३६४,३८०,३९६
ईशान वर्मन १७१
ईशान २२३,२२५,२२६,२२७,३७६
३७७,३८०,३८५,३८८
३९७,३९८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उ

उक्थ ५८
उग्रसेन १५,६४,७२
उग्रायुध ६८
उज्जयन्त २७२
उज्जयिनी ३१,३८,२७२,२७५
उत्कल ३४,५६
उत्तर कालीन गुप्त १७८
उत्तर गुप्त काल १८३
उत्तर पश्चिमी पार्वत्य ९४
उत्तर प्रदेश ३८,३९
उत्तर मानस २७२
उत्तराधिकारी १०६
उत्तरापथ ३७
उत्तरी बंगाल २७४
उत्तानपाद २३२
उड़ीसा ४१,४९,२७२,२७३,२७४
उदयगिरि २५०,३०४,३८४
उदान ७३
उदार्य ६४
उदावसु ५८
उदासीन १२१
उदीची १०
उदीची कनका ४९
उदीच्य २८,३१
उदीच्यवेश ३८६
उदुम्बर ३९८
उद्धव २०८
उद्यन्त २७२
उद्यान भवन ३९४
उद्योग ९६,१५३
उद्योग धन्धे १६८
उपगुप्त ५८
उप गुरु ५८
उपजीविका १०६
उपदेव ६४
उपदेवा ६४
उपनयन १२६,२९०
उपपुराण २९२,२९३
उपमद्गुरुथ ६४
उपरिचरिवसु ७०
उपवेद २९९
उपशय ३०३
उपाध्याय १२८,२९१
उपायन ९४,९७,९८
उपेन्द्र ३३८
उमा २३१,२३४,२३९,२४०
उमाभद्र २२५
उमा-महेश्वर २१८,२५०,३८७
उर्मिला अग्रवाल ३०७,३३४
उल्मुक ६३
उशना ६२
उशीनर ६५
उषा २३०
उषिताश्व ५८
उष्ट्र १६३
उष्णिक ३७१

ऊ

ऊर्ज ५८
ऊर्जा २३२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऋ

ऋक् संहिता २३०
ऋक्ष ४२,६०,७०,७२
ऋग्वेद ३६,१७६,२१७,२८७,२९९, ३१३,३७२
ऋजदास ६४
ऋण (तीन) १२२
ऋणबन्ध १२२
ऋत ५८
ऋति ३८८
ऋतुकाल १३२
ऋतुध्वज ५९,२२८
ऋतु पर्ण ५७
ऋतेयु ६६
ऋत्विक १२८
ऋद्धि देवी ३८४
ऋषभ ९,७१
ऋषि १२३,१२४
ऋषि ऋण १२२,१२४
ऋषि कुल्गा ४९
ऋषिचर्या १५३
ऋषि-धर्म १४०
ऋषि-भूमि ११४
ऋष्यमूक ४४,२७७

ए

एक चक्रा १३
एक दण्डी १२६
एक दन्त २४९
एक दन्ती ३६६
एक नायक १०७
एक पर्णा २३१
एक पाद २२४
एक राट् ९४
एकादशेरुद्र २२५,२२७,२३१
एकानंशा २३५
एकाम्र २७२
एकेद्दिष्ट १३७
एनिल ६६
एरण्डतेल १६९
एलीफैण्टा २५१
एलौरा २०२,२५०,३९७
एस०एन० मजूमदार १०

ऐ

ऐन्द्र २७२
ऐरावत २५६
ऐशानी १०
ऐषिकास्त्र १००

ओ

ओसिया ३९७
ओषधी १४९

औ

औदुम्बर ३००
औरंगाबाद २१,२३
औषधदेश ३१
औषधि २९९,३०५
औषधि विज्ञान २९९
औषधि स्तुति २९९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क

कंस ६४
कंस-वध ३५३
ककुस्थ ५७
कक्षेयु ६६
कज्जलाचल ३७८
कटक ३१५
कटकहस्त ३६९
कटा २२
कटाह (केडा) ६,१०
कटि भाग ७
कटि सूत्र ३४८
कथासरित्सागर ८५,१०१,१०७,१०८
कनकक्रोड़ ३४५
कनका ४९
कनका नदी २७२
कनरवल ३८,२७२
कनारा २६
कनिंघम १०
कन्नौज १२,३९
कन्या कुमारी २०२
कन्यादान १४३,१४५,१४७
कपर्दी २२८
कपाल ३९२
कपालक २६७,३०६
कपालिक २२६
कपालिनी २३८
कपाली २२८,२३४
कपालमाला ३६५,३९१
कपाल-मोचन २७२
कपिलंग २९३
कपिल २००,२८२,३१०,३२५,३६०,३६१
कपिलाश्व ५७
कपूर २२४,३१५
कमण्डलु १२६,३१३,३१४,३५२,३६१,३७९,३९२
कमल ३१७
कमलवासिनी २३१
कम्पिल १२,६९
कम्बन २८
कम्बोज २८
कम्भ २८
कम्म २८
कर ९७,९८
करथ ३००
कर दोहन ९८
करनीति ९७,९९
करन्धम ५६,६२
करम्भि ६३
करव्यवस्था ९७,९८
करुष ३४,५६
कर्केतन २९५
कर्कोटक २५६
कर्णभूषण १५१
कर्णाट (क) २२,२३
कर्तृका (कटार) ३९१
कर्नल टाह २८४
कर्नाल १३
कर्नूल ४५
कर्म दर्शन १३८
कर्मधारय २७८
कर्म नाशा ३५
कर्म भूमि ९
कर्म मार्ग १८४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर्ष १६६
कर्षक १६०
कलसपुर ६
कला (देवी) २३१
कलात ३६
कलिस्वभाव १७१
कलिंग १४,१९,२०,३२,६५
कलिंगेन्द्र २९९
कलि युग २,५२,१७६,२०६
२१२,२१३
कलि ८१,१७१,१८०
कल्की (कल्कि) १९८,२००,२०७
३१०,३४३,३५८
कल्प वृक्ष ९
कल्माषपाद ५७
कल्याणी २३१
कवच १९७,१९८,३८६
कविराज ९०,२०४
कशेरुमान १०
कश्यप ३०२,३५१
कांगड़ा ३४
कांची २१,२८,३८,२०२,२७२
कांचीपुरी ३७,३८
कांजीवरम् ३७,३८,२७२
कांति २३९
कांसा १७०,३११
काकपक्ष ३६९
काक्षी (काच्छी) ३००
काणे (डा०) १८१
कात्यायन ११६,२९३,२९६
२९७,२९८
कात्यायन व्याकरण २९७
कात्यायनी २३१,२३४,२९७
कात्यायनीसूत्र २९८
कान्ता १३०
कान्यकुब्ज १२,३९,३५०
कापालिक २६६,२६७ २६८,३०७
कापुरुष ८८
कापोत रोमंक ६४
काबुल ३३
काम ९१,१५३,१७४,१७९,२०४
२१९,३३२
कामख्या देवी ३४,२७२
कामतीर्थ २७२
कामदेव २२५,३३०,३६२
कामदेव (बलराम) ३६२
काम मार्ग १५४,१७४
कामरूप ३४,२७२
कामशास्त्र २९४
कामाचारी २६५
काम्पिल्ल २९९
काम्पिल्लक १३
काम्बोज २२
काम्य १४४
काम्य कर्म १७७
काम्य विमल १४४
कायिक ३०२
कायिक भजन २०३
कारु १६७
कारु कर्म १६७,१७०
कारूष ३४,३५,५६
कार्तिकेय २५२,२५३,२५४,२७२
३६८,३६९
कार्तिकेय पूजा ३६८
कार्तिकेय मन्दिर २७४
कार्पास १५०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कार्मुक ३१६
कार्षापण १६५
कालंजय ६५
कालंजर २२,४४
काल २२८
फाल १०८
कालपदेव ३७२
कालप्रिय २४५,३७२
कालपी २४५,३७२
कालयुक्ति १०८
कालरात्रि २३१
काल विज्ञान २९६
कालसर्प २७२
कालिका २४०
कालिन्दी २९९
कालिन्दी (यमुना) २७२
कालिय दमन ३५३
काली २३१,२३२
कालीय २५६
कालेश्वर २२९,२७२
कावेर २५
कावेरी २५,४१,४६
काव्य मीमांसा १६,१९,२१,२५
काश १८,५९
काशयोनृपाः १८
काशिराज १७,१८
काशी १६,१८,३५,३७,५५,६०
७३,२०१,२७२
काशीराज ३००,३०१
काशीराजट्रस्ट १
काशी राज्य २४०
काशीश १८,३००
काश्मीर ६,३२,३३,३४,२८५,२९९
काश्मीरी २९९
काश्य १८,५९
किंकिणी ३९१
किंपुरुष ९
किरणाक्ष २२६
किरात ९
किन्नर ३५६
किरीट ३५५,३५९,३७८
किष्किन्ध्या ३८
कीकट ३५७
कीकट देश १७,३८,५०,३५७
कीट ३१६
कीर्ति ८९,२३२
कीर्तिमान ६४
कुंजर १६२
कुकुर ६४
कुक्कुट ३६९
कुक्षि १४६
कुटिल ११५
कुटुम्ब १३५
कुटुम्ब भरण १२१
कुडव १६६
कुण्डल २३५,३१६,३२५,३२८,३४३
३५५,३५७,३७८
कुतर्क १८०
कुन्तल २१
कुन्ति ६१,६२,६४
कुन्तिराष्ट्र २३
कुन्द ३२१
कुन्दामा ३७३
कुपुत्र २९०
कुबलाश्व ५७
कुबेर ३०७,३८७,३९०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुबेर (यक्षेश्वर) ३७५,३८१,३८४
कुब्जक २७२
कुब्जाम्र २७२
कुमंत्री ९६,१०१
कुमकुम १२९,१५१
कुमायूँ २९
कुमार (कार्तिकेय) १९८,२०१,२५२
२५३,३६३
कुमार मकरध्वज २००,२०१
कुमारिल १७५,१८४,१८७
कुमारी अन्तरीप २८,४१
कुमारी २३१,२३४
कुम्भ स्थल ८१
कुराज्य १०१
कुरु ९,१३,५६,७०
कुरुक्षेत १३,२७३,२८४
कुरुवंश ६३,७१
कुल १३५
कुल पर्वत ४१,४२
कुलमार्ग १३६
कुलि ५८,६४
कुलिजित ५८
कुलिशायुध ३९६
कुलीन ११५
कुलू ३४
कुलूत ३४
कुश ७,८,५७,५८,५९,१४६
२९०,३९४
कुशध्वज ५८
कुशनाभ ५९
कुश सूत्र १६८
कुशाग्र ७१
कुशावर्त २७३
कुशाश्व ५९
कुशास्त्र २६५
कुशियन कल्चर ८
कुषाण २२१
कुषीद १४४,१५९,१६७
कूप्य १६५
कूर्म १९८,२००,२२७,२५४,३२६
३३५,३४३,३४४,३६२
३६३,३७७
कूर्मपुराण २९३,३३२
कूर्माकृति ३४४
कूर्म रूप ३१०
कृतक ७०
कृतकर्मा ६१
कृत माला ४७
कृत युग ३६२
कृतवर्मा ६४
कृतवीर्य ६१
कृत शौच २७३
कृताग्नि ६१
कृति ५८,६०
कृतिका २५३
कृति रथ ५८
कृतिरात ५८
कृत्रिका ३९६
कृतेयु ६६
कृतोग ६१
कृप ७०
कृपी (कन्या) ७०
कृषि १४४,१६७
कृषि उपद्रव १६०
कृषि कर्ता १६०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कृष्ण १४,६५,९४,११७,१७९
१९१,१९८,१९९,२१४
२२५,२३४,२६१,२८४
२९१,३२२,३३५
कृष्ण कुमार ३३०
कृष्ण पिंगला २३१
कृष्ण भक्ति १९१
कृष्णल १६५,१६६,२९६
कृष्ण माहात्म्य ३५२
कृष्ण मिश्र ५५,३०७
कृष्ण मृग ११
कृष्ण मृगचर्म ३४९,३५१
कृष्ण रूप ३१०
कृष्ण लीलास्थल २७३
कृष्ण वर्ण ३७९
कृष्ण वर्णा ४७
कृष्णवेणा ४७
कृष्णवेणी ४७
कृष्णांगी ३८८
कृष्णा २३२,२३४
कृष्णाजिन ३५१
कृष्णाजिनोपवीत ३५१
कृष्णात्रेय ३००
केकय ३५,६४
केतु ७,२४२,२४४,३७४
केतुमान ५९
केतुमाल ९
केतुमाला ४७
केदार २७३
केयूर ३५,३२८,३४२
केरल ६,२१,२६
केशर मण्डल ३४६
केशव स्मरण २०६

केशव १९१,१९३,२१३,३३३
३३७,३३८
केशान्त १२८
केशिनी ५७
केशी वध ३५३
कैलास ६,७,४१,४३,२३६,२७३
३५५
कैवल्य २८३
कैशी-काशी ७३
कोंटवार खण्ड १४
कोटितीर्थ २७३
कोटीश्वर २७३
कोणगिरि ४४,२७३
कोणार्क २७३
कोयम्बटूर २८,४१
कोलाभ ३३,३४
कोशल १६,१९,२४,५५,२४०
कोष ८२,९७,१०३,३२०
कोषाध्यक्ष ९७,१०३
क्रोष्टु ६२
क्रोष्टुमन ६१
कौटिल्य १५५,१५९,२६४
कौन्ती २९९
कौबेर ९५
कौमारी २३८,२४०
क्रौञ्च ७,८,१४६
क्रौञ्चपद ४३
क्रौञ्चपाद २७३
कौलक २६७,३०६
कौलूत ३३,३४
कौशिक ६२
कौशिकी (कोसी) १८
कौशिकी २३१,२३४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कौषेय १५०,१५१,३९०
कौस्तुभ ३१६,३१९,३२०,३२१,३२२,३२८,३४१,३४२
क्रथ ६२
क्रय-विक्रय १७०

ख

खंग व्रत २८७
खग (सूर्य) ३७२
खजुराहो ३०८,३४५,३४९,३५२,३५३,३५४,३६५,३९२,३९७
खट्वांग ५७,३६४
खड्ग ३१६,३५८,३७६,३८३,३९४
खेटक ३१६,३९२
खड्ग हस्त ३७५,३७९
खनित्र ५६
खनीनेत्र ५६
खरान ३६
खरोष्ठी २२१
ख वृक्ष ४०१
खस ३१,३२

ग

गंगा १६,१८,३४,४८,१४६,२११,२५४,२७३,३०६,३८५
गंगा तट ३४९
गंगा-द्वार २७३
गंगा-यमुना ३०८,३८४,३८५
गंगा सागर ४१
गंगा सागर संगम ४५,२७३
गंजाम ४९
गंडक २५७,२७३
गंडकी ४५,४८,२७३,३०८,३१०
गंध पुष्प ३९७
गंधमादन ७,४१,४३,१४६
गंधव वेद ९०
गंधर्व १९१,२४१,३४६,३७८,३९६
गंधार ३६
गज ३६,१६३,२७३,४०२
गज चर्म ३९१
गजनी ३३,३५,३६
गजनवी २८५
गज पर्वत ३६
गज बन्ध ५५
गज-मुख ३६६
गज सिंह ३
गजायुर्वेद ९०,१६१
गण ५८,२४९,२५४,३२९
गणक १०४
गणनायक ३६८
गणनायिका २३१
गण पति २४८,२४९,३६६,३६८
गण-पूज्य २४८,३६६
गणपति उपासना ३६७
गणमूर्ति २४६
गणाधिप २४८,२४९,३९५
गणाधिपति ३६५
गणासन २४६
गणिका ९०
गणिका गण १४७
गणित २९१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गणेश १८९,२२८,२४६,२५२,३६६,३६८

गणेश गायत्री २४७

गणेश पूजा २४९,३६७

गणेश्वर ३९०

गदा २०१,३०३,३२०,३२२,३४५,३४७,३६३,३६९,३८४,३८५,३९१,३९२,४०२

गदा-कौमोदकी ३२१

गदादेवी २४०,३२२

गदाधर १७,२७३,३०९

गदाधारी ३१६,३५४,३८१

गदा लोल २७३

गदाहस्त ३७५,३७७

गभस्तिमान १०

गय ५६

गया १७,३८,४३,२२९,२५४,२७१,२७२,२७४,२७५

गया क्षेत्र ४९,२७६

गया तीर्थ २७५,२७६

गयादित्य २७३

गयापुरी ३८,२७३

गया प्रान्त ५,१७

गयामाहात्म्य ५,१८८,२७१

गयाशिर ४९,२७३

गयाशीर्ष २७३

गयाश्राद्ध २७३

गयासुर १७,२२९,२७३

गरुड़ १५१,१८७,१९८,२०१,३९९,४०१

गरुड़ दर्शन २७७

गरुड़ध्वज २१३

गरुड़युग ९४,१०५,१७७

गरुड़ पुराण १,२,३,४,५,६,७,८,१०,११,१६,१७,२२,२४,२६,२८,२९,३० ३१,४७,५१,५५,७१,७२,७३,७५,७६,७७,७९,८१,८२,८३,१०६,१३९,१४२,१४४,१६५ १७२,१७५,१७७,१८५,१८८,१८९,१९६,१९७,२०२,२०६.२०७,२१६,२१९,२२८,२३०,२३२,२३८,२४०,२५१,२५३,२५८,२६८,२७१,२८३,२८५,२८९,२९०,२९१,२९३,२९४,२९५,२९७,२९९,३०१,३०३,३०५,३०६,३१०,३११,३१२,३२१,३२२,३२८,३३०,३३१,३३४,३३५,३३८,३४०,३४३,३४४,३४८,३५१,३५२,३५७,३६०,३६४,३६५,३६९,३७५,३७६,३९२,३९३,३९४,३९५,३९७,४००,४०१,४०२

गरुड़ारूढ़ ३६१,३६२

गर्जन देश ३६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गर्भगृह ४०२
गर्भसूत्र ३९९
गवाक्ष ४०२
गांगेरुकी ३००
गिरधर शर्मा २९४
गिरिशन्त २१८
गीत वादन २२३
गीत वादित्य २३८
गीता २८३,२९४
गीता–दर्शन ८७,१३९,२८४,२८५
गीता–सार २८३
गुँजा १६५
गुंड़ा रोचना १३
गुजरात ३५
गुड़ १६८
गुण-कर्म ११६
गुण-धर्म २९९
गुणाढ्य १३६
गुप्त अभिलेखों १९०
गुप्तयुग १७१,२१८,२२१,३३२ ३९४
गुरु ८९,१४२,२९२
गुरु-कुल १२२,२९१
गुरु-धर्म १४१
गुरु-पूजा २६८
गुरु-शुश्रूषा २८९
गुव वृंक्ष ४०१
गुह ३६९
गुह्य २५३
गुह्यक १९१
गुह्य देश ७
गृत्समद ५९
गो ८६
गोकर्ण २७३
गोकामुश्व २७३
गोकुल १४
गोक्षीर ३४२
गोग्रह २७३
गोंडवाना ४१
गोंडा ४५
गोत्रज १३६
गोदान १४४,१४५,१९३
गोदावरी २१,२३,४६,२७४
गोधूभ १६१
गोप १६३
गोपाल ३२३
गोपालक १६३
गोपियों २०८
गोपीनाथ राव २२५,३१०,३२१ ३३४.३३७,३६७,३९१
गोमक २७३
गोमती ४६,४८,३३६
गोमेद ७
गोरक्षा १६७
गोरखपुर ४५,३३९
गोलकुंडा ४१
गोवर्धन १४,४४,२७३,२७४
गोवर्धन-धारण ३५३
गोविन्द १९३,२१३
गोष्ठागार ३४४
गौ १६१
गौड़-बंगाल १६
गौड़-शासक १७८
गौतम ११७,१५५
गौतम बुद्ध १८०
गौतमी (देवी) २३१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गौतमी बलश्री २१
गौरी २२८,२३१,२३६,२३९,२४०
३८६,३९०
गौरी(मंगला) २७४
गौरी-रति ३८५
गौरी-शर्व ३८४
ग्रहों २४१

घ

घंटा ३६९,३९१,३९२
घट २३५
घटोत्कच ७३
घाट २२,२४
घृत १४९
घृतसागर ७
घोड़ा ५५,९९

च

चंचु ५७
चक्र १८१,२०१,३०९,३१५,३१६
३१७,३१९,३२०,३२२,३४५
३४७,३५२,३६३,३७६,३७७
३९१,३९२,४०१
चक्रधर ३५३
चक्रनगर १३,१८
चक्र-पूजा ३२२
चक्रवर्ति-पद ९४
चक्रवर्ती १७२
चक्राढ्य ३७७
चण्ड २२८
चण्डनायिका २३९,३९२
चण्डरूपा २३९,३९२
चण्डवती २३९,३९२
चण्डा २३९,३९२
चण्डिका २३८,२३९,३९०
चण्डी २३४,३०६
चण्डोग्रा २३९
चतुरंग ६५
चतुरस्र ४०१,४०२
चतुर्दन्त गज ३८२
चतुर्बाहु (वासुदेव) ३२८,३४२,३५३
चतुर्भुज ३१४,३१६,३५९,३८२
३८५,३८६,
चतुर्भुजी विष्णु ३३९
चतुर्भुज कुबेर ३८४
चतुर्मुख ब्रह्मा २५१,३१३
चतुर्मूर्ति कुमार ३६९
चतुर्मूर्ति १९२
चतुर्वर्ग २०४,२१९
चतुर्विंशति (नाम) ३३३,३३६
चतुर्व्यूह १९२,२२५,२३१,३३६,३४२
चतुष्कोण ४०२
चतुस्समुद्र १०६
चनाब २८,४८
चन्दन ४१,२२४,३११
चन्देल २०८,२३९
चन्द्र ७,८७,१३६,३०६,३४९
चन्द्रक ५६
चन्द्रकेतु ५८
चन्द्र गुप्त द्वितीय ९०
चन्द्रदेव ५८
चन्द्रवंश ५८
चन्द्र-पुत्र ३०१
चन्द्रभागा ४५,४८,२७४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चन्द्रशाला ४०२
चन्द्राश्व ५७
चमू २८४
चम्प ६५
चम्पक (चम्पा) २२४
चम्पा २१
चम्पापुर २१
चम्पारन १८
चरकी ३९८
चरागाहों १६३
चर्म ३३१
चर्मकार १६७,१६८
चांडाल ११३,१२५,१४२,१८७
चांदी १६५,१७०,३१२
चाचनामा २९
चातुर्मास्य १८६
चातुर्वर्ण्य व्यवस्था ११३
चान्द्रायण २६९
चाणूर ३५३
चाप ३९२
चाबुक ५५
चामर ३२२,३६२,३७८
चामुण्डा २३८,२३९,३०६,३२७
चारण ३५६
चारु ६५
चारुदेष्ण ६५
चार्वाक २६०,२६३,२६४
च्यवन ५७,६१,७०,३००,३०१
चिंतक ९१,१०९
चिकित्सक २९९
चिकित्सा ३०२
चिकित्सा-कौमुदी ३०१
चिकित्सा-दर्पण ३०१
चिकित्सा शास्त्र २९९,३००
चिकित्सासार तन्त्रम् ३०१
चित्र ६४,४०२
चित्र-प्रतिमा ३७२
चित्रक ६३,६४,३७३
चित्रकार ३८५
चित्रकूट ४८,२७४
चित्रगुप्त ३८२
चित्ररथ ६२,७३,१३३
चित्रांगद ५८,७२
चूड़ा (चूड़ाकरण) १२७
चेदि १६,१८,२३,३५
चैद्य नृप ६२
चोल ३८
चोलक ३७२
चौंसठ-पद ४००
चौंसठ-पद वास्तु ४००

छ

छत्र १४५,१५१,३०९,३७८
छल ५८
छाग १५०,३७७

ज

जंघा ३९९,४००
जगदम्बिका २५६
जगन्नाथ ३२४,३२८,३४८
जगन्नाथ पुरी २७४
जटा मंडल ३५१
जनक १५५,३००

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जनकपुर	४०	जागुड़	३३,३६
जननी-भक्ति	२८७	जाजलिमुनि	३००,३०१
जनपद	११,१००	जातकर्म	१२६
जनमेजय	५६,६५,७२	जातीफल	२२४
जनलोक	७	जानकी	३५२
जनार्दन	२००,२६५,३२३,३२८	जाप	१४२
	३३०,३३५,३३८,३६३	जावुल	३३
जन्हु	५९,७०,७१,७२	जाम्बवन्ती	६५
जप	१२४,१४०,१४१,१७५	जावाल	३००,३०१
जप होम	१०४	जाहुत	३३
जबलपुर	२४	जितेन्द्रनाथ बनर्जी(डा०)	३१०,३३४
जमदग्नि	५९,३५१	जिनपुत्र	२६२
जम्बू (द्वीप)	७,८,९,४१,१४६	जीमूत (देश)	२२,२३
जम्बुक	१६२	जीमूत (राजा)	६३
जम्मूसर	२७४	जीवदान	३०१
जय	५८	जृम्भिणी	२४०
जयद्रथ	६५,६७	जैन	२६०,२६२,२६३
जयन्त	६०,२२६	जैनधर्म	२०८
जयन्ती	२३८,२४५	जैन सम्प्रदाय	३०९
जयध्वज	६१	जैमिनि	२९२
जयपुर	१३,४०	जोधपुर	३२
जयसेन	७२	जोशी मठ	३४
जया	२३४,२४५	ज्यामघ	६२
जरायुज	११४	ज्येष्ठ भाई	१०६
जरासंध	१४,२४,७१	ज्योतिष	१६०,२९६
जलचर	१५४,१६२	ज्योतिषाचार्यों	८
जलपति	३८४	ज्वर	३०३
जलेयु	६६		

झ

झषासन	३८०	झेलम	३५

ट

टंकण	३४	टिनेवली	४७
टीन	१७०		

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ड

डमरू ३६४,३८७,३९२
डमरुक ३९२
डा० अवस्थी (रामाश्रय) ३६७
डा० अग्रवाल ३६
डा० उर्मिला अग्रवाल ३९२
डा० क्रैमरिश ३४६
डा० द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल ३९४
डा० पांडे (यम०यस०) ४९
डा० बनर्जी ३६१,३६७
डा० मीराशी ४४
डा० मोती चन्द्र ३६
डा० शाह (प्रियबाला) ३४७,३८४
३८५,३९४
डे (एन०एल०) २०,२३,२९
डूंगरपुर २७

ढ

ढाल-तलवार १००
ढक्का ३९८

त

तंगण ३४
तंत्रवाय १६७
तंत्रसारकम् ३०१
तक्षक २५६,३०२
तक्षण कला १६९
तक्षण कार्य १६९
तड़ाग १६३
तत्पुरुष (शिव) २१६,२२३,२२५
२२६
तत्पुरुष (समास) २९८
तननाग ३३
तप १४०
तपश्चर्या १७६
तपन (सूर्य) ३७२
तपिन ,, ३७२
तपोलोक ७
तपोवन १३९
तप्रवेन १०
तमसा ४८
तम ५६,६२
तमोभेदी (सूर्य) ३७२
तर्पण १२४,१२५,१४२,२०६
तर्जनी ३९२
तल ७
तांत्रिक धर्म २६५-२६८,३०६
तांत्रिक प्रभाव १८१,२१९
तांत्रिक पूजक २६५,२६६
तांत्रिक शैव २६६
तांबा १७०,३१२
ताजिक ३३,५३
ताड़का ३४,२५६
तापी ४६,२७४
ताप्ती २८,४६
ताप्यं ३००
ताप्युत्थसंभव ३००
तामलिप्त १७
तामस ११
तामसी ३०६
ताम्बखरी ४७
ताम्बूल २२३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ताम्र ३००
ताम्रपर्ण २६
ताम्रपर्णी ६,२५,४१,४७,२९९
ताम्रवर्ण ९,१०
ताम्रा १६२
तार्क्ष ५७
तालकान ३३
तालजंघ ६१
तालध्वज ३२९
तालनागा ३३
तिङ २९८
तिङन्तं २९८
तिग्म ७३
तितिक्ष (राजा) ६५
तिर्यक ३२०
तिर्यङ-मूर्तियाँ ३६२
तीक्ष्ण ३०५
तीर्थानुगमन २७१
तीर्थ सेवन २७१
त्रिनेत्र २२२
त्रिमूर्ति २१६,२१९
त्रिविक्रम २१३
तुंगभद्रा ४४,४६,४७,२७२,२७४
तुखार ३२
तुखारिस्तान ३२
तुमायन २७
तुम्बवन २७
तुम्बुरु २७,६४
तुरुष्क ४,९,३३,३५,५१,५३,१००
१७०
तुर्किस्तान ६,१००,१६२
तुर्वसु ६१,६५
तुलसी १२९,१९८,२०८
तुला १६६
तुषार ३१,३२
तुष्टि २३२
तूण ३५८
तृणविन्दु ५६
तृष्णामुक्त २७२
तैल-उद्योग १६९
तोमर ३९२
तोयपति ३८४
त्याग १३५
त्वरिता २४०

द

दंड ५७,८४,९७,१२७,२९१
३१३,३१४,३७६,३७९
३९२
दंडनायक २४४
दंड-प्रचण्ड २५४
दंडकारण्य २७२
दंडहस्त ३७५,३७७
दंडनीति ८२,२९४
दंडपाणि ७३
दक्ष ५६,११६,२९३
दक्षिण २१
दक्षिण पश्चिम खंड २८
दक्षिण बिहार १७
दक्षिण भारत २४,४२
दक्षिण मानस २७४
दक्षिण समुद्र ५६
दक्षिणापथ २१,२२,२४,२६,४७
३५९
दतून २२४
दत्त १९८,२००,२७८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दत्तात्रेय २७८,२८१,३२६
दधि ८,१४६
दधीचि १४३
दन्तकूर २०
दन्तधावन १४२
दन्तपुर २०
दन्तवक्र ६४
दन्ती २४६,२४९,३६६
दम १४१
दम-त्याग १९४
दमघोष ६४
दमनी २३१
दमयन्ती ३१,५७
दया १४१
दरभंगा १८,४०
दर्पण ३८७,३९२
दर्शन २८७
दर्शन-शास्त्र २९४
दल ५८
दशबाहु वृषध्वज ३६४
दशरथ ५७
दशविधा पुत्राः १३७
दशार्ण २३,२६,२७,३४
दशार्ह ६३
दशावतार १९८,२०७,३२६
३३३,३३४,३४३
३५४,३५८
दशावतार मन्दिर ३२५
दशाश्वमेध २७४
दस्यु ७७
दहेज-दान १५९
दान-धर्म १४३,१४४
दान १२१,१२२,१४०,१४१
दानी १३६
दानवों २३७
दान्त १२५
दामलिप्त १७
दामोदर १९३,२०१,२१३
३०८,३३३,३३५,३३८
दाम्पत्य प्रेम १३३
दाम्भिक १०५
दार परिग्रह १२२
दार संग्रह १२२,१२८
दारा ३६
दार्विक १६५
दाशरथि (दाशरथी)राम १,३२६
३५१,३५२
दासकुल १३६,१५२
दास-गोपाल कुल १३६
दासता १५२
दासी-दास १५१,१६७
दासीत्व १५२
दासीपुत्र १३७,१५२
दास्य १५२,२०९
दास्य-मोक्ष १५१
दाह ३०५
दिग्देवता २४३
दिगम्बर १८०,२०८,२६३
दिग्पाल ३७६,३८८
दिग्बंध २६८
दिग्विजय ९८
दिति ३९६
दिल्ली १३
दिवाकर ३११,३७२
दिविरथ ६५
दिवोदास ५९,६९,३००,३०१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिव्यावन्य ६३
दिष्ट ५६,११५
दिलीप ५७,७२
दीप १४५,२२३
दीपक २१४
दीर्घतमस ५९
दीर्घबाहु ५७
दुग्ध ८,१४९
दुन्दभि ६४,४०१
दुर्ग ८२,९५,९९,३९६
दुर्गा ४३,१८९,२३४,२३१
२३८,२३९,२५४
दुहिता १३६
दुर्गा-पूजा २३८
दुर्दम ६१
दुर्भिक्ष १६०
दुर्योधन ७३
दुष्यन्त ६६
दूत १०४
दूर्वा २२८
दूर्वा-स्तुति २२८
दृढ़नेमि ६८
दृढ़ाश्व ५७
देव(शूर-पुत्र) ६४
देव(दैव विवाह) १३०
देव ५,६४,९३,१२४,२१३
३२०,३७८
देव-ऋण १२२,१२४
देवक १४,५७,६४,७३
देवकी ६४,३५२,३५३,३५५
देवकीनन्दन ३५३
देवकोटक २७४
देवक्षत्र ६३
देवगढ़ २०२,३२५,
देवगुरु ३९९
देवता ११४,१२३,१२५,१४१,१४२
१६३,१७२,२३३,२८९,३१०
देव-देव १९६,२२६
देव-देव गणेश्वर ३६७
देवदेव वासुदेव १९४
देवविनायक ३६६
देव-देवियों ३२०
देवदेवेश ४२
देव-पूजा १२४,१४१,१७५,१८१
१८८,२६५,२९१
देवतार्चन १४०,१४२,१८८,१८९
देवतायतनों ३९३
देवद्योत ६४
देव-प्रतिमाएं ३०६,३९४
देव प्रासादों ३९४
देव-भक्ति २५८
देवमत ६३
देवमीढ ५८
देवमीढुष ६४
देवयज्ञ १२४,१४२
देवयानी ६१
देवार्चन २३१,३०६
देवार्चा ३०६
देवर्षि १९१,१९८
देवालय २१६,२४९,३६६
३९६,३९९
देवासुर संग्राम १८३,१९१,१९८
देवी २३०,२३३,२३४,३११
देवी-भक्ति २३३
देवी भागवत पुराण २३६,२३८,२५६
२६५,३०८,३३५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देवी-माहात्म्य २३०,२३४,२३६
देवी सूक्त २३०
देवोपासना १७५,१८८
देवराज ३८२
देवरूद्रपद २७४
देववान ६४
देवापि ७२
देश (स देशो यत्र जीव्यते) ८४
देश (भारतवर्ष) ९
देश (राजा विहीन)) ८२
देश (खतरे में) १००
देश (में कुराज्य) १०१
देश-काल १०८, २९५
देश-भंग २,८८,१०१
देश-रक्षक ८३
देश विप्लव ९४,१०६
देश विभाग १०,११
देश-वेदी २८६
देहरादून १३
दैत्य-धर्म ८५,९३,१७६,१८३,२६१
दैत्येश्वरेन्द्र (हिरण्यकशिपु) ३४८
दैत्यों १,२,५,८५,१७६,१८३,
१८९,२६२,२६३,३३०
दैत्यहनी २३१
दैव (विवाह) १३०,१३१
दौवारिक ३९६
द्यूत क्रीड़ा १४७,१५६
द्रविड़ देश २८,३८,२०७
द्रविड़ शैली ३९७
द्रव्य २९९,३७२
द्रुह्यु ६१
द्रुह्यु वंश ६५
द्रोण १६६,२८४
द्रौपदी १३
द्रौपदी स्वयंवर १३३
द्वन्द्व (समास) २९८
द्वादशात्मा ३२६,३३४
द्वादशादित्य २४५
द्वादशी व्रत १९३
द्वापर १७६
द्वारका १४,२४,२८,३९,२७४,३३०
द्वारदेवता २५४
द्वारपाल २५५,४०२
द्वारमान ३९९,४००
द्वारवती २४,३७,२७४
द्वारवनी शिला ३२३,३२४
द्विगु (समास) २९८
द्विज ११७,११९,२९१
द्विजत्व १२७
द्विज धर्म १७१
द्विजाति १२७,१२८,१३०,१५६
१७५,२६६
द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल २२६,३१०,३३४
द्विभुज आदित्य ३७०
द्विभुजा शची ३८२
द्विभुजी मूर्ति ३१७
द्विमीढ ६७
द्विविध निदान ३०४
द्वीप ६७
द्वीपान्तर १०,२६

ध

धन
धनक ६१
धनद ३४९
धनदान १४४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धन संचय ९७
धनंजय २५६
धन्वन्तरि १९८,१९९,२००,२६१
३००,३०१,३५८
धनु ३६१,३६९
धनुर्वेद ९०,१००,२९१,२९२,२९४
धनुष २०१,३५२,३५८
धरण १६५,१६६
धरा देवी ३४५
धरा-दान १४६
धरित्री ८
धर्म ३०,६१,६५,८९,१५४,१५६
१७९,२०४,२१९,२५४
धर्मक २७४
धर्म-चक्र ११७
धर्म-देश ११,११७,१७१
धर्म-नेत्र ६१
धर्म मार्ग १५४,१७४
धर्म रक्षण ९२,९३
धर्मरथ ६५
धर्मशास्त्र ११६,११७,१४५,२९२
२९३
धर्म-सार १९३
धर्माधिकारी १०४
धर्मानुशासन १४०
धर्मारण्य ५,५०,२७४,२७५
धर्माध्यक्ष १०४,२९३
धर्म-महामात्र १०४
धर्मोपदेशक ११६,११७
धातकी २६
धाता २४५,२५४
धातु १६४
धात्री २३८
धान्य १४५
धारणा २८१
धार्ष्टक ५७
धीमान ५९
धुन्धुमान ५६
धुन्धुमार ५७
धूप २१४,२२३
धूम्रा ३९२
धूम्राश्व ५६
धूलि-चण्डेश्वर २२३
धृत (धर्म पुत्र) ६५
धृत-राष्ट्र ७३
धृतराष्ट्र (नाग) २५६
धृतराष्ट्र (लोकपाल) ३९०
धृतव्रत ६५,२२८
धृति ५८,६२
धृति (दक्ष-कन्या) २३२
धृतिमान ६७
धृष्ट ५६,५७,६४
धृष्ट केतु ७०,५८,६०,७०
धृष्टद्युम्न ७०
धेनु पृष्ठ २७४
धेनु वन १४,२७४
धेनुक १५,३५३,३९२
धेनुकारण्य १४,१५,२७४
ध्यान १४१,१७१,२८१
ध्यान-समाधि १८८
ध्वज ३६९,३७३,३९२
ध्वज हस्त ३७७

न

नंदी २२१
नकुल ६४,७३,१६२,३००,३०१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नगस्थ-ईश्वर (गया तीर्थ) २७४
नट १६८,२२५
नटेश्वर २१७,२२५
नदीपथ १६४
नन्दिवर्धन ५८
नन्दिनी २२
नन्दितीर्थ २७४
नभस ५८
नयराष्ट्र २२,२३
नर ५६,६६
नरक १०५,१३६
नरतीर्थ २७४
नरदेवत्व ३५२
नर-नारायण १९८,३३२
नरपुर ३१
नरयुक्त विमान ३८०,३८१
नरराष्ट्र २२,२३
नरवर ३१
नर-वाहन ३७७,३८४
नरसिंह १८३,१९८,२०१,२०७
२३३,२९८,३४५,३४६
३४७,३४८,३४९,३६१
नरारूढ़ ३७९
नरिष्यन्त ५६
नर्तक २५५
नर्मदा २१,२७,४६,५७,२७४,३०८
नर्मदा-भेद २७४
नल ३१,५८
नलपुर ३१
नलिकावन ५०
नवग्रह ३७२,३७३
नवग्रह पट्ट ३७३
नवग्रह-प्रतिमा ३७३
नव दुर्गा ३९२
नवधा भक्ति २०८
नव-पाषाण युग २३२
नवराष्ट्र २३
नवव्यूह ३२६,३३२,३३४
नव-व्यूहार्चन ३३०
नवसारी २३,२८
नहुष ५९,६०,६१
नाग ३,४,२८,३२,५५,१०७,१५१
१९१,२००,३०६,३१०,२५५
२५६,३०६,३१०,
नाग (बलराम) ३५६
नागद्वीप १०
नागपुर ४४
नागभट प्रथम ९३
नागभट द्वितीय १८१,२५८
नाग-यक्ष २५६,३०६
नाग-यज्ञोपवीत ३६८
नागवर्य ३५६
नागाधिपति ३५६
नागार्जुन ३०५
नाट्यशाला ३९३,४०२
नादचक्र ७
नापित १६७
नाभादास ४
नाभि ९
नाभि तीर्थ २७४
नाभि मंडल ७
नाभि स्थान ७
नाभाग ५६,५७,११५
नामकरण १२७
नारद १६५,२००,२०८
नारदीय (पुराण) २०३,२४४,२९२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नारदोक्त पुराण २९३
नारद (भक्ति आचार्य) १९१
नारदीय धर्माः १९०
नारायण ५८,१९२,१९३,१९४
१९६,१९७,२००,२०७
२१०,२१३,२३५,३१०
३३०,३३१,३३२,३३३
३४०,३५३
नारायण आश्रम २७५
नारावण-बलि १३६
नारायण-भक्ति १९०
नारायण सर ४७
नारायण स्मरण १४२
नारायणी २३४
नाराशंसी २९४
नारसिंही (मूर्ति) ३१०
नाव ८,१६४,१६९
नासिक २१,३९,४४,२७३,२७४
नासिक्य ३९,२७४
नास्तिक १,२९,९४,१००,१७७
१७८,१८०,१८३
१९२,२०८,२६०
२८०,३०६
नास्तिक सम्प्रदाय २६४
निंदक १०५
निकुम्भ ५७
निकोबार १०
निघ्न ६४
नित्य-दर्शन ८८
निदान ३०१,३०२,३०३,३०४
निमि ५७,६३
निमित्त ३०३
निमित्तक (दान) १८४
निमित्तक (राजा) ७३
नियता देवी २३१
नियोग १३१,१३२
निरजन ३०६
निरमित्र ७३
निराकार ३०६,३१८
निर्गम ३९९,४००
निर्गुण ३१९
निर्लेप ३१९
निवृति ६२,६३
निवृत्ति १४१
निवृत्ति-मार्ग २६२
निशठ (रेवती पुत्र) ६४
निषध ४१,५८
निषाद २२९
निषाद देश २७,१७५
निषाद-भूमि १४
निषाद राज २२९
निषध ७,९,३१,४३
निष्क्रम (ण) १२७
निर्ऋति ३७५,३७६,३७८,३८८
निर्ऋति-नाथ ३८८
नीति ८२,९५,२८७
नीतिकार ९७
नीतिरत्न ८५
नीतिशास्त्र ९०,९४,१०२
नीतिसार ८२,८५,२८५
नीतिसार खंड २९४
नीदरलैंड ५
नीमसार ५०,२७४
नीलकंठ (नीलग्रीव) ४४,२१७,२४८
२४९,३६६
नील पर्वत ९,३४,४१,४३,२७४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नील (देश) ३३,३४
नील (अजमीढ पुत्र) ६९
नील (रंग) १६८
नीलाम्बर ३२९,३५४
नीलवस्त्र ३४६
नील कमल ३४७
नीलोत्पल ३४६,३५३,३६४,३८४
नीललोहित २२५
नृग ५६
नृचक्षु ७३
नृत्य १४७
नृपचक्षु ७३
नृपञ्जय ७३
नृसिंह ३०९,३२६,३३२,३३३
३३५,३४०,३४३,३४७
३४८,३४९
नृवराह ३४५
नेदिष्ट ५७
नैऋ‍र्ति १०,२२३,३८८,३८९
नैगमेय २५३,३६९
नैनीताल ३७३
नैपाल १८,१९,२७३,२७४
नैपाली (औषधि) ३००
नैमिष ५०,२७४
नैमिषारण्य ५०,२७४
नैमिषेया मुनि ५०
नैषध देश २९,३१
नैष्ठिक (ब्रह्मचारी) १२१,१२२
न्यग्रोध ३९७
न्याय ११६,२८०,२९२
न्यास १८१,२२३

प

पंकज अनुद्बोध ३२१
पंचकालवित १९५
पंचम जाति ११३,११५
पंचतत्व ३३१
पंचतत्वाचन ३२६,३३१,३३२
पंचतन्त्र ८५
पंचतन्मात्राओं ३२०
पंचदेवोपासना १८९
पंचनद ४५
पंचभूतों ३२०
पंचमार्क सिक्का २९६
पंचमहायज्ञों १८६
पंचयज्ञ १२३,१२५,१७५
पंचरात्र २०७
पंचरूपा वैजयन्ती ३२०
पंचमवर्ण १२०
पंचवंश वीरा ३२६
पंचवीरा ३३१
पंचस्थल विभाग १०
पंचाग्नि १२३,१२५
पंचायतन पूजा २१६,२३८,३०६
पंचेन्द्रिय २७९
पंजाब ४५,२७२
पंडित ८५
पांच उपासना १९१
पांचरात्र २६५
पाँचरात्र संहिता १९०
पांचरात्रिक १९२,१९३
पांचरात्रिका १९३
पांडु ६४,७३
पांडुआ १६
पांडुसुत २८८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पांडव १३,२३,३८,९४,९८,२९८
पिंगल ३७१
पिंगलाक्ष ३६५
पुंड्रवर्धन २७४
पुंसवन १२६
पद्सूत्र १५०
पटच्चर १४,२३
पटना १७,३९
पटियाला १३
पटौंदी १४
पतंजलि २१८,२५२,२९६,२९७
पतिव्रता स्त्री १८७
पणव ३९२
पथ्यापथ्य ३०२
पद विन्यास ३९५
पदाधिकारी १०३
पदार्थप्राणी ३१८
पद्म २०१,२५६,३२०,३४५,३५१
३६१,३६१,३७६,३८४
३८५,३९१
पद्मतंत्र १९०,१९१
पद्मनाभ १९३,२००,२१३,३२६
३३३,३३८,३४०
पद्मपुराण २२७,२३१,२९२,३१०
३११,३२३,३३४,३३६
३५०,३५२,३६४,३६५
३६७,३६८,३६९,३९३
पद्मराग २४,२९५,२९६
पद्मा २३४,४०२
पद्माकार(पृथिवी) ८
पन्ना १६
पयोष्णी ४६,२७४
पयस्विनी ४८
परमदेवरुद्र २१८
परमब्रह्म १८१,१९६,२४१
परम ब्रह्म (विष्णु) २०७
परमब्रह्मपरमात्मा(नारायण) १८९
परमब्रह्मचारिणी २३१
परमभागवत १९०
परमहंसी १२६
परमात्मा २८२
परमार्थमंगल १४२
परमेश्वर १८९,१९६,२३६
परमेश्वरी २३६
परराष्ट्र ९९
परशुराम ४१,१९८,२०१,२०८
३०९,३१०
पराक्रम ९६
परधीनता ५२
पराभव २८८
पराशक्ति २३६,३३१
पराशर ८२,११६,११७,१५९,२९३
पराशर स्मृति २९३
परिवार १३५
परिव्राड् १२०
परीक्षित ७०,३०२
परीक्षा १०२
पर्वत ७
पर्शा ३६
पर्शावा ३६
पर्शिया ३६
पल २९६
पलांडु १४९
पल्लव ३८
पशुता ११५
पशुपति मुद्रा १७९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पशुपति २१७,२१८,२२७ २६५,३०६
पशुपति (शिव) २३३
पशुपालन ११९,१५१,२७४
पशु-प्रत्यवन १८६
पश्चिमी देश २९
पश्चिमी बंगाल १७
पाखंड पंडित(बृहस्पति) २६३
पाखंडी २६६
पाञ्चाल १२,२३,३८,३९,१३३
पाटला २३१
पाटलिपुत्र १७,३९
पाठक १०४
पाणिग्रहण १३१
पाणिग्राह १२२
पाणिनि २१८,२९६,२९७,२९८
पाणिनीय(शास्त्र) ३६,२५२,२९८
पाणिनीय सूत्र २९७
पाण्ड्य देश २५,४१
पातंजल योगसूत्र २०४
पाताल ५,७,२६
पाताललोकान्तर्सिंहलेषु ५
पादपीठ ३३८
पादसेवन २१४
पाद्मा १६
पाद्य २१४
पाद्म ३०३
पामीर ४३
पार ६७
पारतन्त्र २८८
पारद ३००
पारमेश्वरी भावना १७९
पारशव ३५,३६
पारसीक ६,३५,३६,१७०
पारिप्लव ७३
पारिभद्र ४२
पारिपात्र ४२
पारियात्र ४२,४९,५८
पार्जिटर ३५
पार्थ २८४,२८६
पार्वण श्राद्ध १३७
पार्वती २३४
पार्षत १५०
पार्स ३६
पालित ६२
पाश ३२०,३६१,३६३,३७६,३७९ ३८१,३८४,३८५,३९२
पाश मुक्ति १३८
पाषंड (पाषंडों) १८०,१८३,२६० २६२,२६७
पाषंड विधि २६८
पाषाण पूजा ३०८
पाषाण-युग २३०
पाषाण रूप ३१०
पिण्ड ७
पिता १३२,१३७
पिता-पुत्र १०६
पितामह १०४,१३५,२५०,२५१
पितामही १३५
पित्त ३०४,३०५
पितर १२३,१२४,१३७,१७२
पितृ १०४,१२५
पितृ ऋण १२२
पितृयज्ञ १२४,१४२
पीठ ३९९,४००
पीताभरण ३८०,३८१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पीतांबर ३१५,३१६,३२५,३२८
३३९,३५२,३५३
पीत वस्त्रधारी ३४३
पुण्डरीक ५८,३७२
पुण्ड्र १९,२०
पुण्ड्रनगर २०
पुण्ड्रवर्धन २०,३९,२५४
पुण्यभूमि १५७
पुत्र (पुत्रों) १०६,१२९,१३७
पुनपुना २७४
पुन:पुन: १७,४९,२७४
पुनर्वसु ६४
पुर ९९,३९४
पुर-निवेश ३९४
पुरञ्जय ६८
पुराण १,३,४,५,१०७,११६,१२४
१५९,१६४,२०२,२१२
२९२,२९५,३०१,३३४
पुराणधर्म १३९,१७१
पुराणविद्या १३८
पुराणवेत्ता १८३
पुराण श्रवण २११
पुरातत्व २३०
पुरातनपुरुष ९३,३४९
पुरी २०
पुरु ६१,६५,६९,३९६
पुरुकुत्स ५७
पुरुमीढ ६७
पुरुरवा ५८
पुरुवंश ६५
पुरुष २०१
पुरुषार्थ १५४
पुरुषार्थ चतुष्टय १५३,१७४,१७९
पुरुषोत्तम २०२,२१३,३३५,३३८
३४०
पुरुषोत्तम(तीर्थ) २७४
पुरोहित ९९,१०६,४०२
पुरुहोत्र ६३
पुलक २९५
पुलिन्द २२,२३
पुष्कर ७,८,५०,५३,५८
१४६,२७४
पुष्टि २३२
पुष्प २१४,२२४
पुष्पक ५८,४००
पुष्प-गन्ध १५१
पुष्पकोद्भव ४०१
पुष्पदन्त ३९६
पुष्पमाला १२९
पुष्पराग २९५
पुष्यमित्र शुंग ४७
पूजा-पद्धति ३५४,३६६
पूजाश्व ५७
पूजोपचार २६८
पूतना ३५२,३९८
पूर्वज १०४
पूर्वादिषु १५
पूषा २४५,३९६
पृथ्वी(पृथिवी) ८,५२,८३,८६,८९
९७,१००,१४६,१५७
३५१,३९६,४०२
पृथिवी दान १४६
पृथिवी दोहन १५६
पृथिवीपाल ५२
पृथिवीराज ३५,८७,९३,९५,९६
१०९,११०,१११,२८७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृथ्वीराज विजय ११०
पृथिवी सूक्त १५६
पृथ्वीधर ३९६
पृथु ५७, ४,८४,१९८,३२६
पृथुकीर्ति ६२
पृथुजय ६२
पृथुदान ६२
पृथुरुक्म ६२
पृथुलाक्ष ६५
पृथुश्रवा ६२
पृथुसेन ६७
पृषत ७०
पृषदश्व ५७
पृष्ठत २५३
पेनगंगा ४६
पेशावर ३३
पैठान २३
पैतृक संपत्ति १५९
पैथान २१
पैल ३००,३०१
पैशाच १३१
पैष्टी १६९
पौण्ड्र १९,६५
पौण्ड्र वज्र २०
पौड़ी (गढ़वाल) २७३
पौत्रों १३०
पौरन्दरी दिशा २४४,३७३
पौरव ६४
पौरववंशीय ६९
पौराणिक आख्यान (कथा) ६,८५
पौराणिक-दर्शन-शास्त्र २८०
पौराणिक धर्म १७५,२६५
पौराणिक मन्थन ३२४
पौराणिक सूत्र २९२
प्रकृति २३१
प्रगल्भा २३१
प्रचंड्या २३९
प्रचेता पुत्र ६५
प्रजा ९७,१५८,१५९
प्रजापति १२३,१३३,२३२, ३००,३१५
प्रजानुरंजन ९२
प्रजापालन ९२,१५६,१९७
प्रजावर्ग ९९
प्रणव २०३
प्रणहिता ४७
प्रणीता ४७,२७४
प्रतर्दन ५९
प्रतिक्षत्र ६०,६४
प्रतिग्रह १२५
प्रतिबाहु ६५
प्रतिबोधक १०४,१०५
प्रतिमा ३९९
प्रतिमा लक्षण २२८,३२१,३२२, ३३०,३६५
प्रतिमा विज्ञान ३०६
प्रतिमाएं ३०६
प्रतिलोमानुलोम १३०
प्रतिलोम ११३
प्रतिविन्ध्य ७३
प्रतिष्ठान २३
प्रतिहार सम्राट २५८
प्रतीक ३०८
प्रतीकोपासना ३१०
प्रतीची १०,२९
प्रतीन्धक ५८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रतीप	७२	प्रसेनजित	७१
प्रतीहार	१०३	प्रसूति	२३२
प्रत्यग्र	७०	प्रह्लाद	१९५,२०८
प्रत्यय	३०३	प्राकृत	१८०
प्रत्याहार	२८१	प्राची	१०
प्रदक्षिण-क्रम	३३८	प्राची सरस्वती	२७५
प्रदक्षिण	३९९	प्राजापत्य	१३१
प्रद्युम्न	६५,१९२,१९३,२२५,३२६	प्राणाग्नि होम	१२५
	३२७,३२८,३३०,३३१	प्राणत्याग	२५८
	३३२,३३३,३३५	प्राण रक्षण	१४०
प्रपितामही	१३५	प्राणायाम	२०३,२८१,२९०
प्रबंधचिन्तामणि	८२	प्राणायाम-सन्ध्या	१४२
प्रबोधचन्द्रोय	३६,५५,१८८	प्राणि-भोजन	१४२
	२०८,३०७	प्रादक्षिण	२१४
प्रभास	२७४	प्राधान्य	३०४
प्रभासेश	२७४	प्रासाद (प्रासादों)	२१६,२४९,२५५
प्रमाथिनी	२३१		३९९,४००,४०२
प्रयाग	१५,३९,१९३,२७५	प्रासाद-कला	४०२
प्रवृत्ति	१४१	प्रासाद लक्षण	३९९
प्रशस्त-पुलक	२७	प्रियव्रत	२३२
प्रषत	७०	प्रियादास	४
प्रषध	५६,११५	प्रीति	२३२
प्रषध्रक	५६	प्रेतत्व	१०६
प्रसाधक	२८१	प्रेतशिला	२७३,२७५
प्रसेन	६४	प्लक्ष	८,१४६

फ

फण-मणि	३५६	फलगु-चण्डी	२७५
फतेपुर सीकरी	३४१	फल्गवीश	२७५
फल	१४९	फारस	६,३६
फल्गु	४९	फैजावाद	३७

ब

बंगाल की खाड़ी	४९	बंधुविरोध	१०६
बंधन-मुक्ति	१७४	बक	१३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बक्सर ३५
बघेलखंड १७
बज्र १५१
बदरिकाश्रम २७५
बद्रीनारायण ४३,२०२
बनमाला ३०९,३२०
बनर्जी (डा० जितेन्द्रनाथ) २३०,३२१
३३४
बन्सवार २६
बप्पा रावल २८७
बभ्रु ६२,६३
बभ्रुवाहन ३९
बर्हिष ६४
बलभद्र ६४
बल (राम) १९८,१९९,२०१
बल (सेना) ८२,९९
बलख ३३
बलाध्यक्ष १७३
बलाबल १०३
बलदेव ३५७
बलदेव प्रतिमा लक्षण ३५७
बलप्रमथिनी २३१
बलराम (अनन्त) ३५७
बलराम मूर्ति ३५७
बलवाहन ३७७
बलविकरिणी २३१
बलाकाश्व ५९
बलि ५,२०,६५,२०८,३९५
बलि पुत्र १९
बलिपुत्र (देश) १९,२०
बहुगति ६६
बहुनायक ८३,१०७
बहुभुजा २३१
बहुरूप २२६,२२८
बहुलाश्व ५८
बहुव्रीहि २९८
बांदा ४४,२७२,२७४
बाजूबन्द ३२८
बाण २०१,३५२,३५८,३६९
बाया (नदी) ४९
बार्हद्रथ वंश ५६,७३
बार्हस्पत्य ८५,२९४
बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र ७९,२९४
बार्हस्पत्य नीति ७६,७७,७८
बार्हस्पत्य नीति शास्त्र ७६
बालखिल्य गण १९१
बालचन्द्र २४७,३६६
बालनायक ८३
बालादित्य ३७९
बालि ३८
बालेय १९
बाल्मीकि ९८,२६९
बाहु ५७
बाहुदन्तक नीतिशास्त्र ७६
बाहुल ७१,२६१
बिघ्नेश २४९
बिजनौर ३२
बिजई ४९
बिन्दुचक्र ७
बिन्दुमह्य ५७
बिन्दुसर २७५
बिबुध ५८
बिम्बिसार ७१
बिलाव ५५
बिलासपुर २४
बिहार १८,३१,३८,४०,४९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बीजगर्भ १२६
बीजग्रन्थ ३०१
बीजवपन १६०
बीना-सागर (म० प्र०) २५
बुधकन्या ५६
बुध गुप्त १७७
बुध (ग्रह) ७,५६,५८,२४२,२४४
३२३,३७३
बुध (आचार्य) ३००
बुद्ध १७,१९८,२००,२०७,३०७
३१०,३४३,३५७
बुद्ध युग १५
बुद्धि जीवी ११५
बुन्देलखंड २३
बृक ५७
बृहत्कर्मा ६५,६७
बृहत्संहिता २६३,३१६,३१७,३५७
३९९,४००
बृहत्कथा ८५
बृहदुक्थ ५८
बृहदिषु ६७
बृहद्धनु ६७
बृहद्बल ७३
बृहद्भानु १२,६५,६९
बृहन्मन ६५
बृहदश्व ५७,७३
बृहस्पति ७६,८२,१०८,१५९,२४१
२४४,२६३,२९३,२९४
२९८,३७३
बृहस्पतिनीति १०८
बृहस्पति संहिता ७६,२९४
बेलपत्र २२४
बेसनगर १६४,१९४,२०१,३२९
बेसुला ४९
बैकुण्ठ २३६,३३५
बैराट १३,४०
बैरी गोल्डवाटर २
बोगरा २०,३९
बोर्नियो ६,१०
बौद्ध २६०,२६२
बौद्ध धर्म १७८,२०८
बौद्ध मार्ग २६३
बौद्धवाङ्मय २९४
बौद्ध साहित्य २१८
ब्रजमंडल २७३
ब्रहद्रथ ७०,७३
ब्रह्म १२२,१२५,१९६,२१६,२८१
२८२,३११,३१३,३१५,३१६
ब्रह्मघातक ३०२
ब्रह्मचर्य १४०,१४१,१९३,२८१
२९१
ब्रह्मचारी ११७,१२०,२९०,१२१
१२२,२९०
ब्राह्मण १७८
ब्रह्मता २९८
ब्रह्मतीर्थ २७५,२८१
ब्रह्मदत्त ६८
ब्रह्मदान १४५
ब्रह्मदेवता ३९६
ब्रह्म द्रोह ९१
ब्रह्मद्रोही ८४
ब्रह्मपुत्र ६,१३७
ब्रह्मपुत्रा ३४
ब्रह्मपुर २९
ब्रह्मपुराण २९२
ब्रह्ममंदिर ४०१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रह्मयज्ञ १२४,१४२
ब्रह्म-रस २८१
ब्रह्मराक्षस ११४,१४०
ब्रह्मर्षि १४०,१९१
ब्रह्मर्षि-देश १९३
ब्रह्मलोक ११३,१४४,१४५
ब्रह्मवादी ११५,२८९
ब्रह्मविद्या २३४
ब्रह्मवेत्ता १४५
ब्रह्मवैवर्त पुराण ४१,२१०,२३४
२३७,२९३
३००,३६७
ब्रह्मशापान्ता (राज्यश्री) ९१
ब्रह्मसर ५०,२७५
ब्रह्मस्व ११४
ब्रह्म-हत्या ९१
ब्रह्मज्ञान २७९
ब्रह्मांड ७,२२६
ब्रह्मांड पुराण २०८,२९३,३२६,३४८
ब्रह्मा ५६,१६१,१८८,१९६,२२३
३१४,३३२,३३४,३६६
३६७,३७६,३९५,३९६
३९७
ब्रह्माणी २३८,३२९
ब्रह्मात्मसंभूत ८४
ब्रह्मानन्द २९९
ब्रह्मावर्त ३०,१४०,२८१,१९३
ब्रह्मा १३०,१३१
ब्राह्ममुहूर्त १४१,१८२
ब्राह्मण १४३,२३३,२९०,३०२,३७७
३९२
ब्राह्मण वृत्ति १४४
ब्राह्मण और बौद्ध धर्म १७८
ब्राह्मणी २३८,२४०
ब्राह्मी २८०
ब्रीहि १६१

भ

भक्त २०२,२०६,२१०,२११
२१४,२१५
भक्तमाल १,४
भक्ति २०२,२०३,२०४,२०५,२०६
२०७,२०८,२०९,२१०,२१५
भक्ति केन्द्र १
भक्ति क्रान्ति १,४,१७५
भक्ति योग २०४
भग २४५,४०२
भगवद्गीता १७९
भगवद्भक्ति १९५,२०३
भग्ग १५
भगवती शक्ति २३५
भगिनी १३६
भगीरथ ५७
भजमान ६३,६४
भड़ौंच २८
भद्र ४०१
भद्रकाली २३४,२३८
भद्रदेव ६४
भद्ररथ ६५
भद्रश्रेण्य ६१
भद्रा ६४,२३१,२३९
भद्राश्व ९
भनन्दन ५६
भरत ९,५७,६१,६६,३५१
भरतपुर १३,१४
भरतेश्वर ८७,९५,१०९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भर्ग ६०
भर्गभूमि १५,६०
भल्लाट ३९६
भव २१७,२२७
२२८
भवदुख २०३
भवन ४०१
भवानी २४०
भविष्य पुराण २९२
भवोद्भव (रुद्र) २२६
भस्म त्रिपुंड २६६
भागलपुर २१
भागवत १९०,१९५,२०९,२६३
३२४
भागवत पुराण १९८,२२८,२९२
भाटक ९७
भानु ६५
भानुमान ५८
भानुरथ ७३
भारत ११४,२३६,२७१,२७३
३७३
भारत भूमि २३७,२३८
भारतवंश ५५
भारत संहिता
भारतवर्ष ६,३६७
भारतीय भूगोल ५
भारद्वाज ३००
भार्ग ६५
भार्गवं (उपपुराण) २९३
भार्गव राम २०८,३२६
भार्या १२२,१३४,१३६,३८४
भावित ३७२
भासी १६२

भास्कर ३००,३१५
भास्कर गायत्री २४३,२४४
भास्कर संहिता ३०१
भिक्षान्न २९०
भिक्षाचर्या १२१
भिक्षु १२१
भिक्षुक १२०
भिक्षुक धर्म १२५
भिटरगांव २०२,३४४
भिटरी ३७२
भित्ति ४००
भिषग्विद्या ३०२
भीम २३,३८,७३,२२६,२२७,२३४
भीमा ४६
भीमरथ (असुर) ३४४
भीमरथा २७५
भीमरथी ४६
भीमसेन ७२
भीष्म ७२
भीष्मतर्पण २७५
भीष्म पर्व ६,१५
भुक्ति-मुक्ति १७३
भुजंग-रज्जू ३७२
भुवन ७,११४
भुवनंकोष ५,८
भुवनेश्वर २७२,३९७
भुव-लोक ७
भूगोल ५,६,२९६,३००
भूगोलक ६
भूत १२४,१७०,१९१
भूतनायका २३१
भूत प्रेतों २३१
भूत यज्ञ १२४,१४२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भूतवाद २६४
भूतेश्वर २७५
भूधर ४०२
भूपति ९०
भूमंडल ३९५
भूमि १४५,१५४,१५६,२५४
भूमिदान १४४,१४५,१९३,२६९
भूमिपालक ९२
भूमि प्रेम १०६
भूमिपति ९२
भूमीश्वर १०५
भूमुख ४०१
भूरि ७२
भूरिश्रव ७२
भूलोक ७,११
भृगु ३९६
भृगुक्षेत्र २७५
भृगुतुंग २५८,२७५
भृगुपत्तन ३९,२७५
भृगुराज ३९६
भृति १६७
भृत्य १०४,१०५,१२५,१५१
भेंट ९९
भेंटोपहार १५९
भैक्ष्य १६७
भैरव २१६,२२८,३६४,३६५
भैरवागम ३५५
भोग ९९,१०६
भोग-स्वाद ९१
भोज (जाति) २२,२४,३४
भोज (राजा) ६३
भोज (मिहिरभोज) ९०,१८३
भोज (परमार) ९०
भोजकट २४
भोजकटा २४
भोज्यान्न १४९
भौम २४४,३७३
भ्रातृ-युद्ध १०६
भ्रातृजा १३२

म

मंगल ७
मंगला २३८
मंजरी ८५,४०२
मंजुश्रीमूल कल्प १६६
मंत्र १८१,१९८,२३३,२९०,२९९,३०२
मंत्र-जय २६५
मंत्र-बल ९६
मंत्र मंडल २६५
मंत्री ८२,९६,१०१,१३४
मकराकृति ३४३
मकराकृति कुंडल
मकरारूढ ३७७
मकर कुंडल ३२८
मकर केतु
मकरच्छवि ३३०
मकरध्वज २००
मकरवाहिनी (गंगा) ३८४
मगध १६,१७,३५,४८,७१
मछली १६७
मज्जा ७
मठ २१६,३९६,४०२
मणि १७०
मणिक ४०१,४०२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मणिपुर २०
मणिप्रबोध ६
मणिभूषित १०४
मणि-मुक्ता १०३,१५१
मणि-रत्न २६
मणि--शास्त्र १७०,२९५
मण्डप ३९३,४०२
मण्डप-मान ४००
मण्डल १८१,२१४,२२३
मण्डल-पूजा २१९,२६५
मण्डसोर लेख ४०१
मण्डावर ३२
मण्डोर ३२
मतंग विषय ३६
मति जीवी १६७
मत्तेभ ५४,८१
मत्स्यावतार १६९,३४३
मत्स्य (देश) १२,१३,१४,२३,४०
मत्स्य पुराण ३२,१४६,२९३,३१२
३१३,३७१,३७७,३७९
३८१
मत्स्य (अवतार) १९८,१९९,२००
३२६,३३५,३४३
३६२,३६३
मत्स्य रूप ३१०,३४४
मथुरा २४,३७,३९,४४,३५७
मथुरा मंडल १४,३१
मथुरा संग्रहालय ३१४
मदन गोपाल ३५४
मदिरा ६४
मदुरा ४९
मद्य १६८
मद्रास २८
मधु ६१,६३
मधुकर २२४
मधु छन्द ५९
मधुमांस १४९,२९१
मधुरथ ६३
मधुसूदन १९३,२००,२०१,३०९,३६३
मधुहा ९८,२००
मध्यान्ह स्नान १४२
मध्य कालीन ८२,८५
मध्यदेश ११,१२,३८,११७,१७०
१७७,१९३
मध्य प्रदेश २०१
मध्य युग २०२
मनसिल १९
मनस्यु ६५
मनीषी (मनीषियों) ११४
मनु ८२,८४,११६,११७,१४०,१६६
१६९,२०८,२२८,२६७,२९३
मनु-पुत्र ५७,११५
मनु संहिता ३०
मनुस्मृति १४०,१६६,१९३
मनुष्य १२५
मनुष्य-यज्ञ १२४,१४२
मनोन्मनी २,३१
मन्दर ७,४१४३
मन्दराचल ४३
मन्दिर १८८,३७०,४००
मन्मथ नाथ दत्त शास्त्री २०१
मन्यु ६६,२२८
ममत्व १२३
मयूर ३६३
मयूर पिच्छ धारी २६३
मयूर पुच्छ ३६९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मयूर-रूप (विष्णु) ३६३
मयूरारूढ ३६९
मरकत ३२०
मरकत परीक्षा २९५
मरीच ३५
मरु ५८
मरुत ५६,६५,१८५, ३१५
मरुभूमि ३०
मरुवक २२४
मर्यादा पर्वत ४१
मर्वं ३३
मलद ३४
मलय ४१,१४६
मलयजं २९९
मलावार २६
मल्ल २३
मसा ३१,३८
महाकाल ३१,३२
महाकील २३४
महाकेशा ३१,३२
महाजन ११९
महातल ७
महादेव २२२,२२५,२२६, २२७
महादेव रूप २२५
महाधृति ५८
महान् २२८
महानादा ३१,३२
महानदी ४६
महानिद्रा २३४
महापाप ९१
महाप्रेतारूढ ३९१
महाभागवत १७७,१९५
महाभारत १४,२४,३५,५५, ८३,९८,१०८,१५९, १८४,१८७,१८९, १९३,१९९,२०२, २३३,२९१,२९४, ३५३
महाभाष्य
महाभोज ६३
महामख १८६
महामनोज ६५
महामहिष ३७९
महामाया २३१
महामुनि १२१
महामूर्ति ३६४
महायज्ञ १२५
महाराष्ट्र २१
महारूप २२५
महा रोमा ५८
महालक्ष्मी ४७,३८९
महालोक ७
महावर्ष ४१
महावस्तु २०
महाविद्या २३१
महाविप्र ३७२
महावीर्य ६७
महाशंख ३२१
महाशाल ६४
महास्थान ३९
महिनस २२८
महिष २३८
महिषन्घी ३९२
महिषारूढ ३७९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महिषासुर ३९२
महिषासुरमर्दिनी ३९२
महिषमर्दिनी २९१
महिषस्थ (यम) ३९२
महिष्मान ६१
मही २८
महीपाल ९३,१५६
महेन्द्र (पर्वत) २०,४१,४२,३५१
महेश्वर २२१,२२३,३११,३४१
३१४,३७२
महेश्वर पूजा २१६
महोदयपुर १२,३९,३४४
महोबा २३९
मांडव्य ३१,३२
मांस २३८
मागध ऋषि १७
मागधी १७
माणिक (माणिक) ४००,४०१,४०२
माणिक्य ३२०
माणिक्य गिरि ४४
माता भूमि १५७
माता पिता ८४
मातीपुर ३२
मातृका ३६८
मातृ-गण २३३,३४८,३५०
मातृ देवी २३०,२३३,२३८
मातृ वर्ग २३३
मातंग २,३,८१,१०७
मातंग देश ३५,३६
मात्स्य रूप ३४४
माथुर देश २९,३१
माद्र ३३
माद्री ६४
माधव ११७,१९३,३३३,३६३
माधुर्य १४१
माध्वी १६९
मान (तौल) १७०
मानव-कल्याण ११९
मानव द्वीप १८६,४११
मानव मैत्री ११९
मानस (मानसरोवर) ४३,५०
मानसोत्तर ४३
मानिक ४००
मानिकपुर ४४
मानुषत्व ४४,११४,१७३
मानुष्य फल ११४
मान्धाता (नगर) ४०
मान्धाता (नृप) ५७
माया ३७,१२३,२३१,२३४
माया-मोह २६३
मायापुर ४०
मायापुरी ४०
मारदंड ३८९
मारिषा ६४
मारुत लोक ११३
मारुति (हनुमान) २०८
मर्कण्डेय पुराण २९,३१,१९७,२२७
२३१,२९३,२३४
३३१
मार्कण्डेय स्तोत्र १९९,२०१
मार्गशीर्ष २२३
मार्जार १६२
मार्जाराख्यान १०७
मार्टिन ३५
मालक (वृत्तायत) ४०२
मालवा २७,३४,३९७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माला १४५,३५५
मालिक (मंदिर) ४००
माष २९६
माषक १६६,२९६
माहिषक २१
माहिष्मती २१,४०
माहेन्द्री २३१,२३८,२४०
माहेशी २३८,२४०
माहेशी पूजा २१६
माहेश्वर २१
माहेश्वरी ३९१
माहेश्वरी पूजा २१९,२२३
माहिष्मती पुरी ४०
मित्र ६४,८२,९५,१०१,१०२
१८५,२४५,३९६
मित्रयु ६९
मित्रसह ५७
मिथिला १८,४०,११७
मिर्जापुर १५
मिहिरभोज ९०
मीन ३४
मीमांसा ११६,२८०,२९२
मुंगेर २१
मुंडप्रष्ठ ५०,१८८,२७५
मुंडप्रस्थ ४४
मुंडमाला २२१
मुंडित केश २६३
मुंज ९०
मुंजमेखला ३६८
मुकुट १५१,३२०,३४८,३५५
मुकुटधारी ३१६
मुकुल १२,६९
मुकुली ४०१
मुक्ता ३२०
मुक्ताफल परीक्षा २९५
मुक्ति १७३,१७४,२४१
मुख बाण ७३
मुखा ३२
मुखर वश ३२
मुख शुद्धि १४२
मुग्दरधारी ३२९
मुचुकुन्द ५७
मुजफ्फरपुर ४०,२३०
मुड़ियार २५०,३७२
मुद्गर ३९२
मुद्रा २९६
मुद्रादर्शन २२३
मुद्रा न्यास २६५
मुद्रिका १५१
मुनिगण २४१
मुरलीधर ३५४
मुरलीधर मूर्ति ३५४
मुलतान ३७२
मुशल ३२०,३९२
मुशल (शातन) ३२१
मुष्टिक ४०२
मुसल ३५५,३५६
मुस्लिम ८१
मुस्लिम इतिहासकार १०९
मुहर-चित्र १७६
मूका ३२
मूर्ति १८८,२१६,२४९,२५१
मूर्ति-कला ३०६,३०७,३१२,३२३
मूर्ति कल्पना ३२५
मूर्ति-भेद ३०५
मूर्ति विधान ३०९,३१०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मूर्ति-सूची ३३८
मूलक १९,२१,५७
मूलिका ३१,३२
मूलगायत्री २४४
मूलस्थान ३७२
मूल्य निर्धारण १७०
मूषिक १६२
मूषिकावाहन ३६८
मूसलधारी ३२९
मृग ५६,१६२,३७७,३९६
मृगाधिरूढ ३८१
मृगचर्म १२७,२९१,३६८
मृग वन ११७
मृगवाहन ३८१
मृग-व्याध २२८
मृगेन्द्रता ३,८१
मृणाल ३५९
मृत्युंजय २२२,२२५,२२६,२२८
मेकल देश २७,३४
मेकल पर्वत २७
मेखला १२७,२९१
मेघदूत ४४
मेधा २३१,२३२
मेधातिथि ३०,६६
मेधावी ७३
मेरठ १३
मेरु ७,८,४१,४३,१४६,४०२
मैत्री १०१
मैलिनोस्की १३९
मोक्ष १४३,१५३,१७२,१७४, १७५,१७९,२०४
मोक्षपुरी ३१,४०,२७२,२७४
मोक्ष मार्ग १५४,१७४
मोतीचंद्र (डा०) ३३
मोतीहारी १८
मोदक २२४
मोह १२३
मोहंजोदारो १७६,२३०
मोहदंड २७५
मोहिनी १९८,१९९
मौक्तिक ५,२६,३७,१६६,१७०
मौक्तिक माला १५१
मौक्तिक मूल्यों १६५
मौखरि १७८
मौंजिबंधन १२८
मौन १४१
मौनादित्य २७५
म्लेच्छ १,२,३,४,११,२२,२९,३१, ३६,३७,५१,५३,८१,८५, १०७,१७७,१८३,१८९, २९४
म्लेच्छान्तक ३५८
म्लेच्छाचार ११५
म्लेच्छ देश ३०
म्लेच्छवाद ८५
म्लेच्छ-शास्त्र २९४

य

यक्ष २५६,३०६,३१०
यक्षाधिप ३८४
यक्षमा ३०३
यजु ३७२
यजुर्वेद २१७,३१३
यज्ञ ११९,१२१,१२२,१२४, १४०,१८६,१९८,२००, २५६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यज्ञ-धर्म १४०
यज्ञमार्ग ८४
यज्ञविधान १७६
यज्ञ-शाला ३५०
यज्ञशास्त्र १४५,१७७,१८६
यज्ञोपवीत १६८,३६४,३६६,३७८
यति ६१,११८,१२०
यदु ६१,६२
यदुकुल २४
यन्त्र १८१
यम (प्रेताधिप) ३७६
यम ११६,१४१,२२३,३०७,
३४९,३७५,३७६,३७७
३७८,३८२,३८८
३९८
यम नियम १४१
यमराज ३०१
यमलार्जुन ३५३
यमुना १३,१४,४८,२५४
ययाति ६१
यव १६१
यवन ९,३०
यवनदूत १९४
यवनाः १,२९,५७
यवीनर १२,६८,६९
यश ८९
यशस्तिलक ५३
यष्टिहस्त ३७५

याज्ञवल्क्य ८२,११६,११७,१५३
१५५,१६५,२९३,२९७
याज्ञवल्क्य-स्मृति २९३
यादवीदेवी २३१
यामी १०
यावकाहार १६१
युगन्तर ६४
युगन्धर २३
युद्ध १०१
युद्ध विमुख क्षत्रिय १२०
युधिष्ठिर १४,६४,७३,९४,१९०
१९१,१९२,१९३
योग २३६,२८०,२८२,२८३,३२०
युवनच्वांग ३२,३३
युवनाश्व ५७
योग निद्रा ३५५
योग मुद्रा ३६०,३६१
योगाग्नि २५८
योगाभ्यास १२१,१२५
योगवशिष्ठ ३६,२८७
योगी १२१,२३६,३१५
योगी जनक ३०१
योगी राजा ८६
योगेश्वर २१७,२१८,२१९,२२५
योरप ५
यौगन्धरायण १०८
यौधेय १३,२८,२५२
यौधेयी १४,७३,३२६

र

रक्त ७
रक्तपद्मस्थं २७०
रक्तांबर २६२
रक्तांबरधारी ३३१

रक्ताभरण ३७०
रक्त वाससम् ३७०
रघुनाथ ३०८
रघुराम १९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रघुवंश ५५
रज ११
रजक १६७,१६८
रजोर १४
रजोरगढ़ १४
रणभूमि ८८
रण-राम ३०८
रति अनंग ३६५
रतिनार ६६
रति वल्लभ ३३०
रत्न ९७,९९,१७०,२९५,३१२
रत्नाकरा ८
रत्नांगद ३४८
रत्न परीक्षा १७०
रत्न पात्र ३८४,३८५,३८७
रत्नमयी मुद्रिका ३१५
रत्न शास्त्र २९३,२९५,२९६
रत्न ज्ञान २९५,२९६
रथ ९९,१६९,३१३
रथमार्ग २७५
रथसारथी ३७१
रमठ ३५,३६
रमण पर्वत ७,४१,४३
रम्यक ९
रवि मूर्ति ३७०
रस ७,३००
रसातल ७
रसोदधि ७
राक्षस ९२,१३१,१८३,१८९
२३२,२५६
राक्षसी-पैशाच १३१
राक्षसी माया ९२
राक्षसेन्द्र ३७८
राजकुल १३६,१५२
राजकोष ९७
राजगुण ९१
राजगृह १७
राजगृह वन ५०,२७५
राजच्युत ९६,१०१
राजतरंगिणी ५२
राजत्व ८२,९२
राजधन ९८
राजधर्म ८२
राजनय १,८२,९५
राजनीति ९४,९५,१०१
राजनैतिक जीवन ११३,२९५
राजपुत्र ९०,१०६
राजपुर १४
राजपुरूष १०२
राजपूत ८७,९५,१०६,२८७,२८८
राजपूत फ़िलासफ़ी २८७
राजपूत युग १८१
राजभय १६०
राजभृत्य १०२,१०६,१६७
राजमहेन्द्री २०
राजयक्ष्मा ३९६
राजराजेश्वर ३०८
राजरोग १०६
राजवंश ५५,९३
राजवर्धन ५६
राजवृक्ष ३००
राजवृत्त ८२,८५,९१,९२
राजवैद्य १००
राजशक्ति ९९
राजशेखर १५,४३,३५१
राजसभा १८१,१९०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजसिद्धान्त १,९४,९६
राजसिंहासन १०६
राजसी ३०६
राजसेवक १०२
राजसूय ९४,१७५
राजस्थान २७,२७४
राज ८२,८४,८७,९०,९४,९६
९७,१२५,१५६,१५९
३८४,३८५
राज्य ८२,८३,८५,९६,९८
राज्यांग ९९,१००
राज्य (सप्तांग) ९६
राज्यवृक्ष १०८
राज्यश्री ९१,९७
राणा प्रताप सिंह २८७
राणा राज सिंह २८७
राणा हम्मीर २८७
राधा २३४
राधारासेश्वरी ३५४
राप्ती ४५,२७२
राम २८०,२०१,२०७,२६१,२७२
३१०
राम (जामदग्न्य) १९८
राम (परशुराम) २०१,३४२
राम (दाशरथि) १९८,२२७,२२८
२२९,२३०,२३३
२५६,३१०,३५१
राम (राघव) ३४३,३५२
राम (बल, यादव नंदन) ३५२
राम कृष्ण २०८,३५२
रामगिरि ४४
रामचन्द्र ३५,३५०
रामचरित २७५
रामटेक ४४
रामठ २९९
रामतीर्थ २७५
रामनाथ २३
रामभद्र १८३
राम राज्य ९३,२७२
रामह्रद २७५
रामायण ३४,८३,१५९,१६४,२०२
२५६,२७१,२७२,२९३
२९४
रामानुजाचार्य १७५
रामाश्रय अवस्थी (डा०) ३१०
रामेश्वर २७५
रायपुर २४
रावणगंगा २६,४७
रावलपिंडी ३३
रावी ३३,४५,२७२
राष्ट्र ३०,५२,८२,८३,८४,१००,२८६
राष्ट्रकूट २५८
राष्ट्रचिंतक १०७
राष्ट्र चेतना ८८
राष्ट्र पराभव २
राष्ट्र रक्षण १०६,१५६
राष्ट्र वैद्य ५२
राष्ट्र शासन ९२
राष्ट्र संपात ८८,१६०
राष्ट्रीय एकता ९४,१०७,१०८
राष्ट्रीय युद्ध ३
रासभ १६२
राहु ७,८७,२४१,२४४,३७४
राहुल ७१,२६१
रिपब्लिकन सिनेटर २
रिपुञ्जय ७१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रीवां १४,२४
रुचि १२३
रुचिराश्व ६७
रुद्र (शिव) १८५,१८८,१९६,२१६
२१७,२१८,२२५,२२६
२४९,२७५,३४९,३६४
३७५,३९६
रुद्रपाद २७५
रुद्र-पूजा २२३
रुद्र भक्ति २१८
रुद्रेश्वर २७५
रुरु १५९ २२८
रुषद्रथ ६५
रूप ९०,२९६
रूपक १६५,२९६
रूपकृतियाँ २०२
रूपांकन १४६
रूपमंडन २२५,२२६,३३६,३३७
रूपवास ३४१
रेणुमती ७३
रेवती (रुद्र) २२५
रेवती २३१,३५७
रेवन्त ३७३
रेशम १५१
रेशमी १६८
रैवत (रुद्र) २२८
रैवत (औषधि) ३००
रोग ३०३,३९६
रोगनिदान २९९
रोग विज्ञान ३०३
रोचना ३९२
रोमपाद ६५
रोहतक १३
रौद्र २५९
रौद्राश्व ६६
रौद्र मातृगण २३३,३४९
रौद्री २३१,२३२
रौप्यमाषक १६५

ल

लंका ३५०
लक्षणवती १३०
लक्ष्मण ५७,५८,३५१
लक्ष्मणा ६५
लक्ष्मण मंदिर ३५२
लक्ष्मी ५२,२३१,२३२,२३४,२३६
३६३
लक्ष्मी जनार्दन ३०८
लक्ष्मी-नारायण ३०८,३३५
लक्ष्मी-नृसिंह ३०९
लखनऊ संग्रहालय ३०१,३५७,३५८
लघुमंडप ३९३
लमगन ६,३३
लम्पग ३३
लम्बक ६,३२,३३
लम्बोदर ३२२,३६५,३६६,३६८
लव ५७
लवण ८,१२०,१४६
लशुन १४९
लांगल ३२९,३५५
लांगूल ३२९
लाक्षा रस १५१
लांछन क्रम ३३६
लाट २८
लिंग २१६,३९९
लिंग उपासना २२९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिंग (पुराण) १९५,२०२,२०३
२०४,२२२,२२८
२५६,२९२
लिंगमान प्रसाद ३९९
लुडविग ३६
लुडविग स्टर्नबैक (डा०) ७७
लुधियाना १३
लुनिया (मही) ३१
लेख ९०
लेखक १०३,१०४
लेख्य २९१
लेख्य मूर्ति ३८५
लेप १४५
लेबर ऐन्ड सर्विस १६७
लोंग २२४
लोक ७
लोकानुरंजन ९२
लोक पाल ३७६,३७७,३९०
लोक पितामह ३१३
लोकालोक ४३
लोकायत १८०,२५९,२९४
लोकायत शास्त्र २६४
लोकायत संप्रदाय २६४
लोकेश्वर १९६
लौरियानंदन गढ़ २३०,३६३
लोहा १७०
लौहचूर्ण १७०
लौहित्य ३६७

व

वंग १९,२०,६५
वक्रतुंड २४७,२४८,२४९,३६६
वक्रदेवा ६४
वखान ३५
वज्र ५,१५,२०,२४,२५,६५,३२१
३६९,३७६,३७९,३८२
३९१,४०१,४०२
वज्र परीक्षा २९५
वज्रक ३९२
वज्रनाभ ५८
वज्रपाणि २४४
वज्रहस्त ३७५,३७७
वट ६४
वटमूल २७५
वणिक १६३
वणिक्पथ ३९४
वत्स ३५
वत्स भूमि १५
वत्सजाति ६६
वत्स प्रीति ५६
वत्स व्यूह ७३
वन ५०
वनगज ८१
वनमाला ३२५,३२८,३५७,३५९
वनस्पति १५३
वनी ११७
वन्दन २०६,२०९
वन्ध्याफल ८
वह्नि ६५,३७५
वरद ३१५,३१७,३२५,३४२,३६९
३९०
वरदा देवी २३१
वरदा (नदी) ४७,२७५
वराह २००,२०१,२०७,३२६
३३२,३३३,३४२,३४४
३४५,३८४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वराहदिक १९७
वराह पुराण १९५,२७३,२९२,३३५
३६२,३६३
वराह मिहिर १९०
वराह मूर्ति २११,३४५,३८५
वराह लीला ३८४
वरुण ६,१८५,२२३,२४५,३४९
३७५,३७६,३७७,३८०
३८१,३८४,३८५,३९०
३०७
वर्णाश्रम ११७,१७९
वर्ण धर्म ११९
वर्ण वाह्य ११३,११५
वर्ण-विभाग ११६
वर्ण-व्यवस्था ११६
वर्ण संकर ११३
वर्धमानक २९९
वर्ष पर्वत ४१
वलभी ४०१
वशिष्ठ २२,११६,१९०,२०८
२९३
वसु ५९,३१५
वसुदेव ६४,३५२,३५३,३५५
वसुन्धरा १५७
वसुमना ५७
वस्त्र १४५,१५०,१६८
वस्त्रालकार २२३
वस्त्रदान २१४
वस्त्रोद्योग १६८
वहिस्तुन ३६
वाक २३०
वाकट २७
वाकाटक २७
वागद २७
वागदव २७
वाङ्मय २९२
वाचिक भजन २०३
वाजपेय १८६
वाटर्स ३३
वाण ३१६
वाणलिंग ३०८
वाणप्रस्थ १२०
वाणप्रस्थाश्रम १२५
वाणप्रस्थी १२५,१२६
वाणिज्य ११९,१४४,१५३,१५९
१६३
वातायन ३९४
वातादिकम् ३०३
वात्सल्य १०६
वात्सायन १५५
वाद्यं १४७
वानप्रस्थाश्रम १२१
वानप्रस्थी १२६
वाम २६७,३०६
वामाचार २६७
वामदेव २१६,२२५,२२६,२२८
वामन १९३,१९८,२०१,२१३
वामन देव ३३३,३३५,३४०,३४३
३५०
वामन पुराण २२,२९३,३०८,३२६
३३२
वामनं (उपपुराण) २९३
वामन मूर्ति ३५०,३५१
वामन स्वामी ३५१
वामनी (मूर्ति) ३१०
वामा २३१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वायु २२३,२५६,३७३,३९,३९६
वायु (पित्त, कफ) ३०४
वायु (दिक्पाल) ३४२,३७५,३७६,३८०,३९६
वायु पुराण ३४,४९,२३१,२९३,३२६
वायु (रुद्र) २२७
वायव्य १०
वाराणसी १५,१८,४०,२७२,२७५
वाराही (मूर्ति) ३१०
वाराह पुराण १९५
वाराह २७५
वाराही (देवी) २४०
वाराही (स्वरूप) ३४४
वारिबहा ४८
वारुण (द्वीप) १०
वारुणम् (उपपुराण) २९३
वार्ता १५९
वार्तिक ग्रन्थ २९६
वार्धा ४७
वाल्मीकि ३२६
वाल्हिकं (औषधि) २९९
वासव २७५
वासुकि २५६
वासुदेव ५७,१९२,१९३,१९५,१९६,१९८,१९९,२०५,२०७,२१३,२१४,२१५,२५३,२५७.२६५,३०९,३१५,३२५,३२६,३२७,३२८,३२९,३३०,३३१,३३२,३३३,३३५,३४१,३४२,३५३,३५७,३९३
वासुदेव गृह ३९४
वासुदेव प्रतिमा ३३९
वासुदेव लक्षण ३३७
वास्तु ३९३,३९५
वास्तु कला ३९४
वास्तु-पुरुष २५४,३९६
वास्तु-पूजा ३९३
वास्तु यज्ञ ३९५
वास्तु-यजन ३९५
वास्तु वृत्त ३९५
बाह्लीक ६,३२,३३,७२
विंश ५६
विकट २४८,३६६
विकल्प ३०३
विकार ३०३
विकुक्षि ५७
विकृति ६३
विक्राँता २३१
विघ्ननाशक २४८,३६८
विघ्नराट २४८
विघ्नराज ३६६
विघ्नेश २४६
विघ्नेश्वर ३६७
विचित्र रथ ७३
विचित्रवीर्य १८,७२,७३
विजय ५७,५८,६०,६५,२०५,२२६,४०२
विजया २३४,२४०,२४५
विजयी ७३
विजितेन्द्रिय ८६
विट ७
वितथ ६६,३९६
वितल ७,२३०
विर्दभ १९,२१,२४,४७,६२
विर्दभा (नदी) ४७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विदिशा २७,४०,२०१,२४९
विदुर ७२
विदुर गिरि ४५
विदूरथ ६४,६८,७२
विदेह १६,१८,३५,४०
विदेहराज १५९
विद्या १४१,१६७
विद्याओं ९०
विद्यादान १४७
विद्यार्थी ३५०
विद्यावृत्ति १६७
विद्रुम २९५
विनता १५१
विधाता २५४
विनयशीलता ९०
विनशन १९३
विनायक ३६६,३६७,३६८
विनीत ५६
विनोबा १४५
विन्द ६४
विन्ध्य २६,३१,३४,४२,१४६,१९३
२७५
विन्ध्याचल २७
विन्ध्यान्तनिलया १९
विन्ध्यनिलया २३१
विन्ध्यमूल २२
विन्ध्यमूलिका २२
विन्ध्य प्रदेश १४
विपणि १६७
विपाशा २७५
विपृश्नं ६४
विप्र २९२
विप्र ११९,१४८
विबुधाधिप ३९६
विभु ३७६
विभूति ५२
विभूषण ३५०
विभ्राज ६८
विमकर्डाफसस २२१
विरज २७५
विरजा २७५
विराट १३,४०
विराटनगर ४०
विरूढ ३९०
विरूप ५७
विरूपाक्ष २२५,२२६,३८८
३८९,३९०
विलास ९१
विलोम ६४
विवस्वान ५६,२४५,३९६
विवाह १२२,१२३
विविधाकार मूर्तियाँ ३३४
विविंशक ५६
विश ११७
विशाख २५२,२५३,३६९
विशाल ५६
विशाला २७५
विशालाक्ष ३६८
विश्वकर्मा ३१०
विश्वकसेन ६८
विश्वजननी २३७
विश्वजित ६७
विश्वनेता २२१
विश्वरात ५७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विश्वरूप ३२६
विश्वसह ५७,५८
विश्वामित्र ३५,५९,१००,२५६,३०१
विश्वावसु ५९
विश्वेश केशव ४०
विश्वेश्वर तीर्थ २७५
विष २५५
विष्कंभ १४७
विष्णु ५,११६,१४०,१५२,१६९, १७७,१८१,१८८,१८९,१९३, १९६,१९८,१९९,२००,२०१, २०२,२०६,२०७,२०८,२२७, २४१,२४५,२५१,२५२,२९२, ३००,३०१,३०७,३०८,३०९, ३१०,३११,३१३,३१६,३१८, ३२०,३२३,३२६,३२८,३३२, ३३३,३३४,३३५,३३६,३४४, ३५०,३५१,३५५,३५८,३६०, ३६२,३६३,३६६,३६७,३७६
विष्णुकथाश्रयम् २१०
विष्णु कीर्तन २११
विष्णु (द्विभुज) ३४१
विष्णु (चतुर्भुज) ३४१
विष्णुधर्म विद्या १८१,१९९
विष्णु धर्मोत्तर २४,१९७,३१३, ३१७,३२२,३२५, ३२८,३२९,३३९, ३४५,३४६,३४७, ३४८,३५२,३५३, ३५७,३५८,३६२, ३६५,३६६,३६९, ३७५,३८८,३९०, ३९४,३९९
विष्णुध्यान ३४१
विष्णु पत्नी १५७
विष्णुपर्व ३३०
विष्णु पीताम्बर १५०
विष्णुपुराण २६२,२६३
विष्णु-पूजा २०७,२५५
विष्णु माहात्म्य २१६
विष्णु-प्रसाद १८७
विष्णु-भक्ति १८१,१८५,१८८,१८९, १९५,२०२,२०४,२०५, २०६,३०७
विष्णुमंदिर ३९४,३९७
विष्णुमूर्ति ३१८,३२२,३५९
विष्णुरूप ३२२,३७०
विष्णु शिला २७५
विष्णु सहस्रनाम २०१,२१२
विष्णु-स्थल २७३
विष्णु-स्मरण २०७
वीडर ५८
वीतहव्य ५८
वीतिहोत्र १५,६०
वीरेश्वर २१०,२२५
वीर्थ ७
वृक १६२
वृक्ष १४५
वृद्ध प्रपितामह १३५
वृषध्वज १६
वृन्दावन २०२
वृष कन्या २३७
वृषण ६१
वृषदर्भ ६५
वृषधन ६०
वृषभ ४०२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वृषस्थित ३७७
वृषारूढ़ ३९१
वृषाकपि २२८
वृष्णि ६१,६२,६३
वृष्णि कुल ३५२
वृष्णमान ७३
वृहत्संहिता १९,२५
वृहन्नारदीय पुराण २११
वेंकटाचल २०२
वेगवती ४९
वेगवान् ५६
वेण ८४
वेणा तट २५
वेणावत्तक २५
वेणी ४७,२७५
वेण्वातट देश २५
वेणु गोपाल ३५४
वेतनभोगी अध्यापक १४४
वेतालक ३९८
वेद ३०,११६,१२४,१२७,१४५
२२२,२६३,२९१,२९२
३००
वेदों १८३,२६०
वेदवेत्ता १४५
वेद वेदांग १०४,१४२,२९४
वेदाध्ययन १२१,१२४
वेदान्त १८७,२८०,२८३,३१८
वेदान्ती १५५
वेदाभ्यास २९१,२९२
वेदांग २९२
वेदांग सारतन्त्र ३०१
वेद धर्म १,९३,१७५,१७६,१८३
२६०,३४६
वेदना-निग्रह ३०२
वेदमाता गायत्री ३९०
वेद-व्रत १२८
वेद शास्त्र १२४
वेदसम्मत २६७
वेदि बन्धन ३९९
वेद सिद्धान्त १७५
वेदस्मृति (नदी) ४९
वेदोचिताचार २६६
वेययी ४९
वेवर ३६
वेरूल ३९७
वेश्म ३९४,३९६
वेश्या १३४,१४७
वैंकुठ २१३
वैंकुंठ मूर्ति ३६१
वैखानस २६५
वैंगाई ४७
वैजयन्ती पताका ३६९
वैजयन्तीमाला ३२०
वैतरनी २७५
वैदर्भ २१,४४
वैदिक कर्म मार्ग १२३
वैदिक धर्म १४१,१७५
वैदिक शिक्षा ३००
वैदिक शैव २६६
वैदिक साहित्य १,१६४,२३०
वैदिकी ज्ञान २९१
वैदिकी पूजा २६७
वैदिश नगर २७,४०,१६४
वैदूर्य २९५
वैद्य ८३,१०४,१६७,३००,३०२
वैद्यकी ३०२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैद्यत्व ३०२
वैद्य-धन्वन्तरि ५९,३०१,३०२
वैद्यक २९१,२९९
वैद्यक शास्त्र ४,२९९,३०५
वैद्यक संदेह भंजनम् ३०१
वैद्यकी संहिता ३००
बैद्यक सर्वस्व ३०१
वैनायक २७५
वैन्य पृथु ८४
वैवस्वत १६९
वैवस्वत मनु ३४४
वैराज ४०१
वैशम्पायन २९२
वैशाख २२४
वैशालक ४०
वैशाली ४०,५६
वैश्य ११३,११५,११७,११८,११९
१२८,१४२,१४७,१६४,१६६
वैश्य कर्म १२०
वैश्य नगर १६४
वैश्य वृत्ति १२०
वैश्या १०१
वैष्णव अवतार १
वैष्णव १८९,१९५,२१४,२३८
२६८,३०६,३०७,३०८
३२४,३२६
वैष्णव दर्शन २८०
वैष्णव धर्म १८९,१९१,१९४,३२३
वैष्णव पद १९०
वैष्णव माहात्म्य २०८
वैष्णव पुराण ३६४
वैष्णव यश १९०
वैष्णव शास्त्र २०८
वैष्णवी २४०,३९१
वैष्णवी कवच १९९
वैष्णवी गायत्री ३९७
वैष्णवी भक्ति ११६,२३१
वैष्णवी मूर्ति ३५०
वैष्णवीवाक् सुधा १७८
व्यसन ८७,९१,१३३
व्याकरण ४,२९७
व्याकरण शास्त्र २९६,२९७,२९८
व्याधि ३०३
व्याधितत्व परिज्ञान ३०२
व्याधिसिंधु विमर्दनम् ३०१
व्याध्य सात्म्य ३०३
व्यापार १६६
व्यास ३३,११६,११७,१९८,२००
२११,२१२,२९३,२९६,३२६
व्यूह २१४
व्यूहक्षत्र ६७
व्योमा ६३
व्रज १६३
व्रजराज १६३
व्रत १७५
व्रत्ति १६७
व्रात्य १२८
व्रीहि २२८

श

शंकर २१९,२२३,२२४,२३३
२३७,२४१,३०७,३४८
शंकराचार्य १५९,१८४,१८७,३०७
शंकर तीर्थ २७६
शंख ११,२०१,२५६,२९३,३१०
३१५,३१६,३१७,३१९,३२०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शंख ३२१,३२२,३४५,३४७,३५२ ३५७ ३५८,३६१,३८०,३८४ ३९२
शंख-लिखित ११७
शंखचक्रगदाधर ३१६,३२४,३४१
शक २८
शकर १६८
शकस्थान २८
शकुनि ६३
शकुन्तला ६६
शक्ति ९६,२३३,३०६,३६४,३६९ ३७६,३७७,३८५ ३९२
शक्ति उपासना (पूजा) २३०,२३४
शक्ति-हस्त ३७५,३७७
शक्र ३७५,३८२,३९०
शची ३८२
शठ ६४,२६०
शतायु ५९
शतजित ६१,६३
शतद्रु ४५,४८
शतद्युम्न ५८
शतधनु ६४
शतानन्द ६९
शतानीक ७३
शत्राजित ५९,६४
शत्रुघ्न ५७,५८,३५१
शत्रु ९१,९४,९५,१०१,१०२
शत्रु विजय ९१
शनि ७.२४४,३७४
शनैश्चर २४२,३७४
शबल ३७४
शब्द शास्त्र २९३
शम्बासुर ३३०
शम्बर ३३०
शम्भल ग्राम २७५
शम्भु २१७,२२८,३६७
शय्या १४५,३९४
शर ३२०,३५८,३९२
शरतूण ३०९
शरद्वान ६९
शरीरशुद्धि १४२
शर्कर १६१
शर्करा १६९
शर्मिष्ठा ६१
शर्याति ५६,५७
शर्व २१७,२२७,२२८
शरभ १६२
शलाका ३९२
शशक ५६
शशाद ५७
शशबिंदु ६२
शशांक १७८,२१८
शष्कुनी २२४
शस्त्रास्त्र ९५,९९,१००,१०६
शहद ९८
शांति ६९,२३२
शांति पर्व ५५
शांति देवी ६४
शाक ७,८,१४६,१४९,२२४
शाक मण्ड २२४
शाकम्भरी २३४
शाकमूल १६१
शाक्य ५६,२६१
शाक्य मुनि ११७
शाक्त २३८,२६८,३०६,३०७

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शाक्त तन्त्र २३४
शाक्त धर्म २३०,२३४
शाक्तों २३४
शाक्त सम्प्रदाय २३८,३६८
शाख ३६९
शाण १६५,१६६,२९६
शातातप ११६,२९३
शान्तनु ७२
शान्तात्मा २६३
शाम्ब ३२१,३२६,३३१
शार्ङ्ग ३१६,३१९,३२०
शालग्राममूर्ति ३३५
शालग्राम १२९,२७६,३०८,३१०
३२४,३३४
शालग्राम शिला २५७,३०८,३०९
३१०,३२२,३३४
शालग्रामशिलार्चन ३३५
शालिहोत्र १५९
शाल्मल ७,८,१४६,३९८
शाल्व २३
शासन तंत्र १०४
शास्त्र ३०६
शास्त्रज्ञ २९५
शास्त्रजीवी १६६
शास्त्र ज्ञान ८९,९०
शास्त्र प्रणयन १५४
शास्त्र बुद्धि २८६
शास्त्रहीन २८६
शास्त्रों ९०,१०३
शाहपुर ३५
शाहाबाद १७
शिखंडक ३६९
शितगु ६२
शितिकण्ठ २१७
शिनी ६३
शिनि ६७
शिल्प शास्त्र २९६
शिल्पी २९५,३१५
शिलार्चन २५७
शिव ४३,१८९,२१६,२१८
२२५,२२८,२३६
२४०,२६६,२९२
२९३,३०७,३११
३५०,३६७,३९५
शिवपद २८०
शिव परिवार २२३
शिव पार्वती २५०
शिव पुराण ४८,२२५,२९३
शिव पूजन २१९,२२३
शिवरात्रि व्रत २२९
शिवलिंग ३०८
शिवशक्ति २२०,२२१
शिवशिवा २५०
शिव सहस्रनाम २२२,२२५
शिवा ४६,२४९
शिवार्चन २२९
शिवालय २२५
शिवि ६४,६५
शिवोपासना २१७,२१८,२२१
२२२,२६५
शिविका ३८४
शिशुपाल २१३
शिष्ट १४०
शिष्य २९१
शीघ्रमरु ५८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शील ९०
शीशक १७०
शुंगयुग ३५७
शुकांघ्रि ३९९
शुकी
शुक्तिमान ४१
शुक्र ७,२४२,२४४,३७४
शुक्रतीर्थ २७६
शुक्र नीति ८२
शुक्रस्थान ७
शुक्ला (गौरी) २३२
शुक्ला ३९२
शुचि ५८,६४
शुचिद्रथ ७३
शुद्धोदन ५६,७१,२६१
२६२
शुल्क ९७
शूकर ३९५
शूकर मूर्ति ३४५
शूद्र ११३,११५,११७,११८
११९,१६०,१८६,२६६
शूद्रा १३०
शूर ६४
शूर दर्शन २८७
शूरसेन १४,२९,५८,६१
शूर्पकर्ण ३६६
शूल ३६४,३९२
शूल क्षेत्र ३७२
शूल धरा २३१
शूलपाणि २१७,२२५
शूल हस्त ३७७,३९०
शेष २४५,३०७,३३२
३९६
शैव २३८,२६८,२९७,३०६
३०७,३०८
शैवधर्म २१७
शैवेय ६४
शैनेय ६४
शोण ३५,४८,२७६
शौकर १९८
शौच १४१
शौचाचार २३९,२९१
शौनक ५०,५९,२८१
शौर्य २१३
श्रृंग ३६१
श्रृंगवान ९
श्रृंगी ४१
श्रावस्त ५७
श्री ९६,९८
श्रीकण्ठ २२६
श्री देवी ६४,३६२
श्रीपुर २५
श्रीरंग २३,२७६
श्रीरंगपट्टम २८
श्रीपर्णी २९९
श्रीरुक्मकवच ६२
श्रीवत्स ३४२
श्रीशैल ४४,२७६
श्रुत ५७
श्रुतकर्मा ७३
श्रुतात्मक ५९
श्रुतायु ५८
श्रुतकीर्ति ६४,७३
श्रुतदेवी ६४
श्रुतवान ७१
श्रुतश्रवा ६४,७१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रुतसेन ७२
श्रुतसोम ७३
श्रुति ११७
श्रोत्रिय ८३
श्मशान १२६
श्लेष १०७
श्लेष्म ७
श्वेत ९,४१
श्वेतद्वीप २७६
श्वेतपद्म ३७१
श्वेताश्वतर उपनिषद २१७
श्वेतांबरधारी ३३०
श्वफल्क ६४

ष

षटकर्ण
षट्खण्ड १०
षडंग वेद २९१
षष्ठी २३१
षोडशभागिक वास्तु ३९९
षण्मुख ३६९

स

संकर जाति १७
संकर्षण ६४,१९२,१९३,३०९, ३२६,३२७,३२८ ३२९,३३१,३३३ ३३५,३४६,३५५
संकृति ६०,६६
संख्या ३०४
संग्रहीतपुत्र १३७
संघ १०७
संघ शक्ति ५५,१०८
संजात १३१
संजाति ६६
संजीवनी विद्या ३०१
संजीवनी शक्ति ८८
संत ४
संतान १३२
संतोष १४१
संधि ९५,१०१
संध्या १४०
संध्याभिवन्दन २६५
संध्योपासन १४२
संनति ५९,२३२
संयाति ६१
संवत्सर श्राद्ध १३७
संवरण ७०
संवर्त ११६
संसार ८,९५,३१९
संसार चक्र ६,१७६
संस्कार ८९,१२६
संस्कृति १२६
संहार (भैरव) २२८
सक्तु यावक १६१
सखी १३४
सख्य २०९,२१४
सगर ५७
सगोत्र १३२,१३५
सञ्जय ६०,६४
सच्छूद्र १२०
सतना २४
सत्पथ १७१

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

सतपुड़ा	४२	सप्तांग	८२,९७,९९
सतयुग	७,१७६	सप्त खंड	१०
सतलज	३३	सप्तगोदावर	२७६
सतसंग	४,८५	सप्ताश्ववाहन	३७२,३७३
सती	२३१	सप्त व्याध	२७
सत्य	१४०,१४१,१९३,३९६	सप्त सारस्वत	२७६
सत्यधृति	६८,६९,७०	सप्त सैंधव	१६१
सत्यक	६४	समर	६७
सत्यकेतु	५९,६०	समंगा	२९९
सत्य धर्मा	६५	समरांगणसूत्रधार	३९४
सत्यधर्म	१०२	समाजधर्म	१४१
सत्यभामा	६५	समाजशास्त्र	१५९
सत्यरत	५७	समाधि	२८०
सत्यरथ	५८	समाधि योग	२८०
सत्यलोक	७	समिधा	३९४
सत्यवती	५९,७२	समी	६४
सत्यश्रुत	६३	समुद्र	२०
सत्यहित	७१	समुद्रतट	१५८
सत्रमंडप	३९४,३९७	समुद्रगुप्त	९०,९९
सत्व	११	समुद्रद्वीप	१०
सदश्व	६८	समुद्रमंथन	३४४,३५८
सदानीरा	१८	सम्प्राप्तिभेद	३०४
सदाशिव	२१९,२२२,३९४	सम्बलपुर	२५
सद्योजात	२२३,२२५,२२६,२२८	सम्बस्तई	२८
सनतकुमार	१९४	सम्बु	६६
सनत्कुमारोक्त (उपपुराण)	२९३	सम्भूति	२३२
सनद्वाज	५८	सम्राट	८४,९०,९८,१८१,२२१
सनातनधर्म	१४१,१४२,१८५	सरयू	१९,३४,४८
सन्ततेयु	६६	सर वूल्ज़े हेग	१०९
सन्नति	५९,६८	सरस्वती	४५,५२,१०९,१८९
सन्मित्र	१०१		२३०,२३१,२४०
सन्यासी	१२०,१२१		२५४,२७६,३६६
सपिण्ड	१३२,१३५		३९०,३९१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सर्प १०४,३९६
सर्पि ८,१४५,१४६
सर्वंग ७३
सर्वकाम ५७
सर्वजीवदया १४०
सर्वतोभद्र ४०१
सर्वद्वीप १०
सर्वधर तंत्र ३०१
सर्वधर्म समन्वय १४१
सर्वरत्नाकरा भूमि १५४
सर्वसार ३०१
सर्वास्तिवादी २६०
सवर्णीय १३०
सविता २४१,३९६
सहदेव १४,२३,२५,५६,६०,६४
७०,७१,७३,३००,३०१
सहदेवा ६४
सहधर्मचारिणी १२२
सहस्राक्ष २१७
सहस्रादित्य ३२८
सहस्रजित ६१
सहायसम्पत्ति १०२
सहारनपुर १३,३८
सह्य ४२,१४६
सांकर्षणी मूर्ति ३२९
सांकर्य १४२
सांख्य २८०,२८२,२८३
सांग महायोग २८१
सांगा २८७
सागर प्रान्त २३
सात्यकि ६४
सात्वत ६३
सात्विक १४४

साधक १२०
साधन ९५
सान्दीपनि २९१
सामग ३७२
सामवेद २९२,३९३
सामाजिक क्रान्ति ९४
सामाजिक संपत्ति १५९
सामान्य धर्म १४१
साम्ब ६५
सारण ६४
सारस्वत २७६
सार्वभौम ७२
सार्षप तैल १६९
सावित्र २७६,३९६
सावित्री ११८,२३४
सावित्री गायत्री १४२
साहञ्जि ६१
साहस ९६
सिंघल १७०
सिंदूर १५१
सिंह ५४,५५,१६२,१०९
४०२
सिंह नृसिंह ३३२
सिंहल ६,१०,२१,२२,२६
सिंहली स्त्रियाँ २६
सिंहवाहिनी २३१,३९२
सिंहव्रत ३,८१
सिंहांककेतु ३८४
सिंहासन ३७९
सिक्कों १७०,२९६
सिद्ध ३५५,३५६
सिद्धार्थ २६१
सिद्धाश्रम ३५,२५६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिद्धि २३२
सिन्ध २९,३०,४५,९४,२७८
सिन्धु देश १,११,२६०
सिन्धु द्वीप ५७
सिन्धुसागर संगम ४५,२७६
सिन्धूत्थ मणि ३००
सीतापुर ५०,२७४
सीथिया २८
सीरध्वज ५८
सीलोन १०,२६
सुकन्या ५७
सुकुमार २३
सुकुमारक ६०
सुकेतु ५८
सुकृति ६८
सुग्रीव ३८,२७२,३१५,३९६
सुग्रीवी १६२
सुघृति ५६
सुत १७८
सुतप ६५
सुतल ७
सुदर्शन ५८,३२१,३२२
सुदास ५७,७०
सुद्युम्न ५६
सुधनु ७०
सुधीर ६८
सुधृति ५८
सुनय ५८
सुनाम ६४
सुनीत ५९
सुप् २९८
सुपार ६८
सुपार्श्वं ५८,६८
सुबन्त २९८
सुबाहु ५८
सुभद्रा ३९,६५,२४०
सुभद्रिका ७३
सुमंतु ५९,२९२
सुमति ५७
सुमन्त्रि ५६
सुमित्र २३
सुमित्रक ६३
सुराधिप २२५
सुरार्चन १२१,१२२
सुरक्षिता ६४
सुरगण ३५०
सुरथ ७२
सुरपति १७२
सुरसा ४६
सुरा ८,१४६,१६८,१६९
सुरापान १४९
सुरापा ब्राह्मणी १४९
सुराष्ट्र २३
सुरूप २२५
सुरेश्वर २२६
सुरोदधि ७
सुवर्च ५८
सुवर्ण १६५,१६६,२९६
सुवर्ण माषक १६५
सुविभु ६०
सुशान्ति ६९
सुषेण ६४
सुश्रुत ५८,३०१,३०३
सुश्रुत संहिता ३००,३०५
सुहोत्र १८,५९,६७,७०,७३
सुह्म १६,१७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सूतु १६,१७,२९२
सूती १६९
सूत्र शैली २९७
सूपकार १०४
सूर्पारक २१
सूरयः २९६
सूर्य ७,१३६,१८९,२४१,२४५
३०७,३११,३२१,३४९
३६७,३७३
सूर्यार्चन २४१,२४३
सूर्य मूर्ति ३७०,३७१
सूर्य वंश ५५
सूर्योपासना २४२
सृञ्जय १२,५६,५८,६५,६९
सेंधा नमक ३५
सेनजित ५६,६७,७१
सेना ९९,१००
सेनाध्यक्ष १००
सेनापति १००
सेवा १६७,१६८
सेवाधर्म ११३
सैंहलक ५
सैन्धव १,२९,३५,५१,१८३
सैन्धवा म्लेच्छा १
सैन्य २
सोन ४८,२४२,३७३,३७७,३९६
सोना १७०,२१२,२३५
सोम ५८,१८५,१८६,२२३
सोमक ७०
सोम तीर्थ २७६
सोम (नक्षत्राधिप) ३७६
सोमदत्त ५६
सोमदेव सूरी ५३
सोमनाथ ३९,२७४,२७६
सोमवंश ५५
सोमापि ७१
सोलह पद ४००
सौदास ५७,७०
सौनन्द (हल) ३२१
सौम्य २२८,२३२
सौर २६८,३०६,३०७
सौर-धर्म २४१,२७४
सौर पुराण २९२
सौराष्ट्र ३१
सौराष्ट्री मृत्तिकाक्षार ३००
सौवीर ३१
सौवीरक ३००
स्कन्द २५२,२५३,३११,३६९
स्कन्दक २५२
स्कन्दगुप्त १७७
स्कन्द-माता २३४
स्कन्द पुराण ३०,५५,१४६,१८८
२०३,२०५,२३४
३०२,३२२,३५३
स्कन्दं (उपपुराण) २९३
स्तंभिनी २४०
स्तुति १७५,२३०
स्तोत्र २१०,३२१,३२२
स्त्री ९१
स्त्री नायक ८३
स्त्रीमुख (प्रदेश) २८
स्त्री रत्न १३३
स्त्री राज्य २९
स्थापत्य ३९४
स्त्रीरूप ३२६,३२८
स्थण्डिल ६६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्नान ७०,१२८,१४०,१४१,१९३,३९६
स्फटिक २९५
स्नुषा १३६
स्मशान १७३
स्मार्त कर्म १२३
स्मिथ ४
स्मृति ११७,१४१,१६४,२३२,२६७
स्मृतिकार ११७
स्मृतिधर्म १३८,१८५
स्मृति शास्त्र १३८,२९३
स्यालकोट ३३
स्रुक ३१३,३७७
स्रुव ३१४,३७७
स्वकर्म ११८,१७३
स्वागत ५८
स्वगोत्र १३७
स्वजाति ११८,१३७
स्वदेश राग २७१
स्वतंत्रता ५२
स्वधर्म ८८,८९,११६,११८,१४१,१६६,१७२,१७७
स्वधा १२३,२३१,२३२,२३४
स्वधाजित ६३
स्वनर ५८
स्वभानर ६५
स्वयम्भोज ६४
स्वयंवर १३,१३२,१३३
स्वर्ग १४३,१४४,१७२
स्वर्गद्वारेश्वर २७६
स्वर्ण १४५,१५७,३११
स्वर्णकार २३५
स्वर्णयुग १७८
स्वर्णरोमा ५८
स्वर्णाक्ष २७६
स्वर्लोक ७
स्ववृत्ति १४४,४०२
स्वस्तिक ४०२
स्वादूदक सागर ७
स्वाधीनता ९५
स्वाध्याय १२१,१२५,१४१,१४२
स्वापद १६२
स्वामितीर्थ २७६
स्वायंभुव ८४,२३२
स्वाहा १२३,२३१,२३२,२३४
स्वेच्छाचार ११५
स्वेदज ११४

ह

हंस ३२६
हंसतीर्थ २७६
हंसारूढ ३१३
हंसरूप ३६२
हंसस्थ ३७७
हड़हा अभिलेख १७१,१८३
हज़रा (डा०) १९८,२००,२०१
हनुमान २०८
हय ६१
हयायुर्वेद ९०,१००,१६१
हयग्रीव २००,३०९,३३५,३४३,३५९
हयवक्राभ ३०९
हर ८४,२२५,२२८
हरदोई ५०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हरप्पा संस्कृति २१८,२३०,२३३
हरि ६२,७३,२१३,२५१,२५५
२९२,३१५,३३८,३५३
हरि-कीर्तन २१२,२१३
हरि कृष्ण १३२
हरि क्षेत्र २७६
हरित ५७
हरिदास २१०
हरिद्वार ३८,२७२,२७४,२७६
हरिपूजा ३५३
हरिवंश (कृष्णमाहात्म्य) ५५,१९९
२९३
हरिवंश पुराण १९०,३२३
हरिवर्ष ९
हरिश्चन्द्र ५७,१४२
हर्यंग ६५
हर्यश्व १२,५७,५८,६९
हर्ष ४,१७८
हर्षवर्धन ९०
हर्ष-शंशाक युग १७८
हल ३२१,३५७
हलधर ३३०
हविष्यान्न १४९
हस्ति १६३
हस्तिप १६३
हस्ति-शिक्षा २९१
हस्त्यश्व १६१
हस्ती ६७
हाटक ३७
हाथी २,३,९९,१०७
हार ३४२,३८६
हारहूण ३६
हारीत ११७,२९३
हालाहल दैत्य २३६
हिडिम्बा ७३
हिताश्व ५७
हिन्दुकुश ३२
हिन्दू ९५
हिन्दू नीतिशास्त्र ८३
हिन्दू राजशास्त्र ४
हिन्दू समाज संस्थान ११९
हिन्दू स्वाधीनता २
हिमाचल ६,७,४१,४२
हिमाचलालयाम्लेच्छा १,३२
हिमाद्रि ४२,३३६
हिमालय २२,४२,१९३
२७३
हिमाह्वय ४२
हिमवत ४२
हिमवन्त प्रदेश ३७
हिमवान् ९,१४६
हिमशैल ४२
हिरण्मयी १४६
हिरण्याक्ष ३४४,३४५
हिरण्यकशिपु २००,३४४,३४५
३४९
हिरण्यगर्भ ३१५
हिरण्यनाभ ५८
हिरण्यवान् ९
हीन जातियाँ ११३,१२०,१३६
हीरक ३२०
हुविष्क २५२
हूण १७७
हृदिक ६४
ह्रस्वरोमा ५८
हृषीकेश १९३,२००,३३३,३३८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हृषीकेश (ऋषीकेश)	२७२	हेमन्त	१२५
हेतु	३०३	हेमवती	२३१,२९९
हेतुक	३९८	हेमप्रदेश	४३
हेतुशास्त्र	१९२	हेमभूषण	३४३
हेम	३७,६५	हेरम्ब	३६८
हेमका	३७	हेलिओडोरस	१९४
हेमकूट	९	हैदराबाद	४२
हेमकेशर	३४८	हैहय	६१
हेमचन्द्र	५६	होम	१२३,१४०,१८६

क्ष

क्षत्रधर्मा	६०	क्षिति-रक्षण	९२
क्षत्रवृद्ध	५९,६०	क्षीर	७
क्षपणक	३०७	क्षीराब्धि	२२९,२७३
क्षत्रिय	८५,८७,८८,८९,९४,९५	क्षीरोद	७
	९६,१०६,११३,११५	क्षुद्रक	५७,७१
	१३०,१४०,१६६	क्षुप	५६
क्षत्रियों	२,३०,१७८	क्षेत्रप	१३२
क्षत्रिय दंड	८८,१०६,१०७	क्षेत्रपाल	३५६
क्षत्रिय संघ	१०७	क्षेमक	७३
क्षत्रिय सिंह	३	क्षेमधन्वा	५८
क्षात्रधर्म	८९,१७९	क्षेमारि	५८
क्षात्र वृत्त	८९,२८७	क्षौम	१५०,१५१,१६८

त्र

त्रय्यारुण	५७	त्रिपिष्टप	४००,४०१
त्रय्यारुणि	६७	त्रिपुरा	२४०,३९१,३९२
त्रसदस्यु	५७	त्रिपुरान्त	३९८
त्राता (धर्मस्य)	१८३	त्रिपुरान्तकारी	३४९
त्रिकोण	४०१	त्रिपुष्कर	२७४
त्रिगर्त	२८,३	त्रिमूर्ति	३७६
त्रिदण्डी	१२६	त्रिवर्ग	१३२,१५३
त्रिदेव (त्रिमूर्ति)	२५१	त्रिविक्रम	१९३,३३३,३३५
त्रिधन्वा	५७	त्रिविधा भक्ति	२०८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

त्रिवेणी १५३,३२४
त्रिशंकु ५७
त्रिशूल ३९१
त्रिशूलधारी ३७६
त्रिशुलपाणि ३८१
त्रिष्टुप ३७१
त्रिसवन १२४
त्रेतायुग १७६
त्रैलोकेश ३७२
त्रैलोक्य ३४८
त्रैलोक्यमोहन ३६०,३६१,३६२
त्रैशूल ३७६
त्रैवेद (प्रासाद) ४००
त्र्यम्बक २२६,२२८,२४९,३६६

ज्ञ

ज्ञा (देवी) २३३
ज्ञाति १३५
ज्ञान १४४,१५४,१८४
ज्ञानार्णव महातंत्र ३०१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र १

उदयगिरि (म०प्र०) पृ० २५०

कैलाश निलय

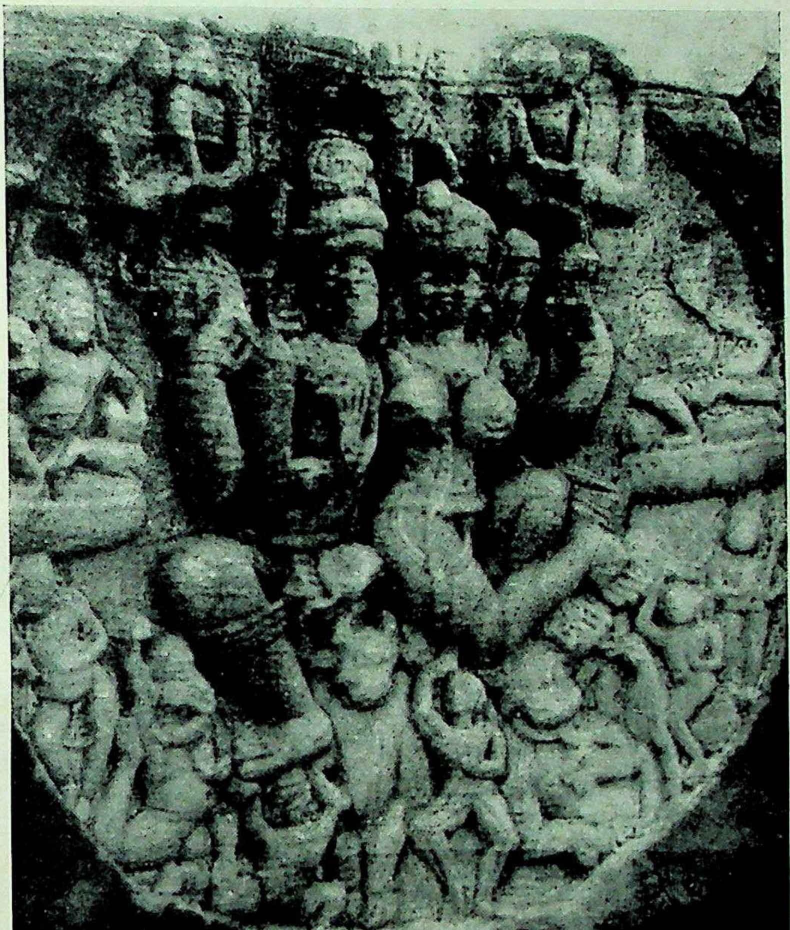

शर्वः साम्बः सह गणेश्वरैः

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र २

उमा महेश्वर

मुड़ियार (उ०प्र०)

(पृ० २५०)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र ३

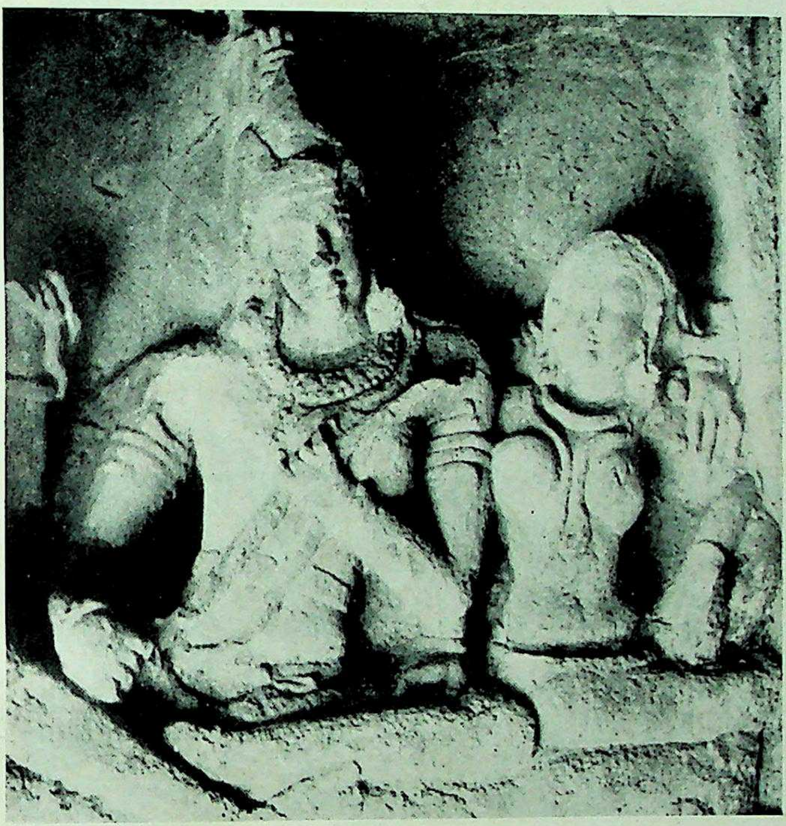

उमा महेश्वर
एलोरा (पृ० २५०)

चित्र ४ (पृ० २५४)
CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

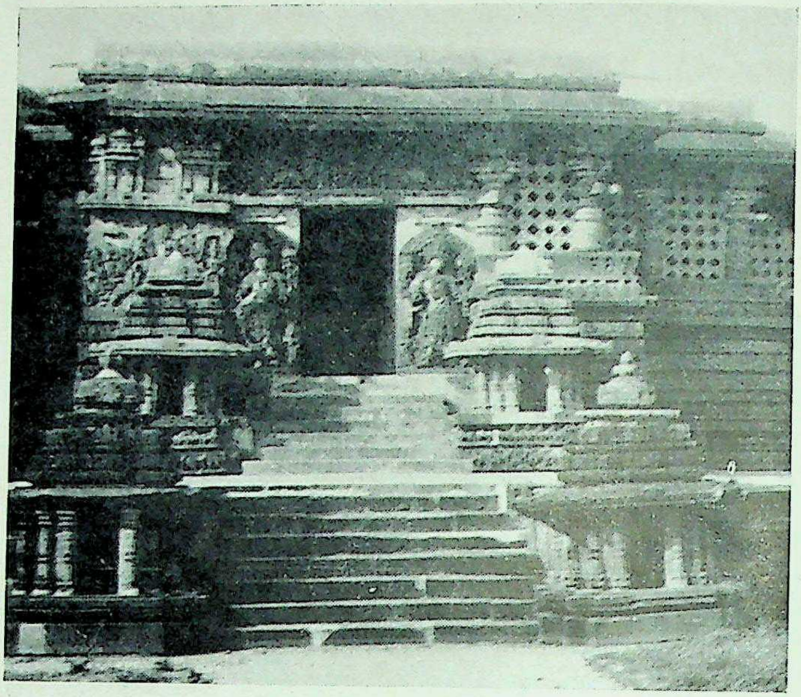

हलबीड मन्दिर द्वार

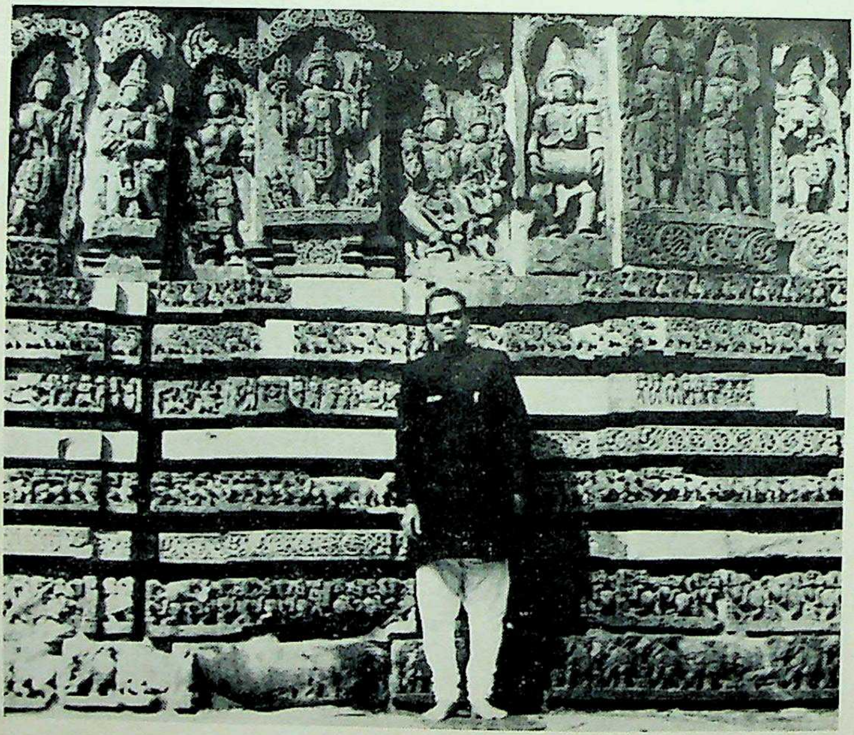

वहीं   पीछे की दीवाल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र ५

गरुड़
वेलूर (पृ० २५६)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र ६

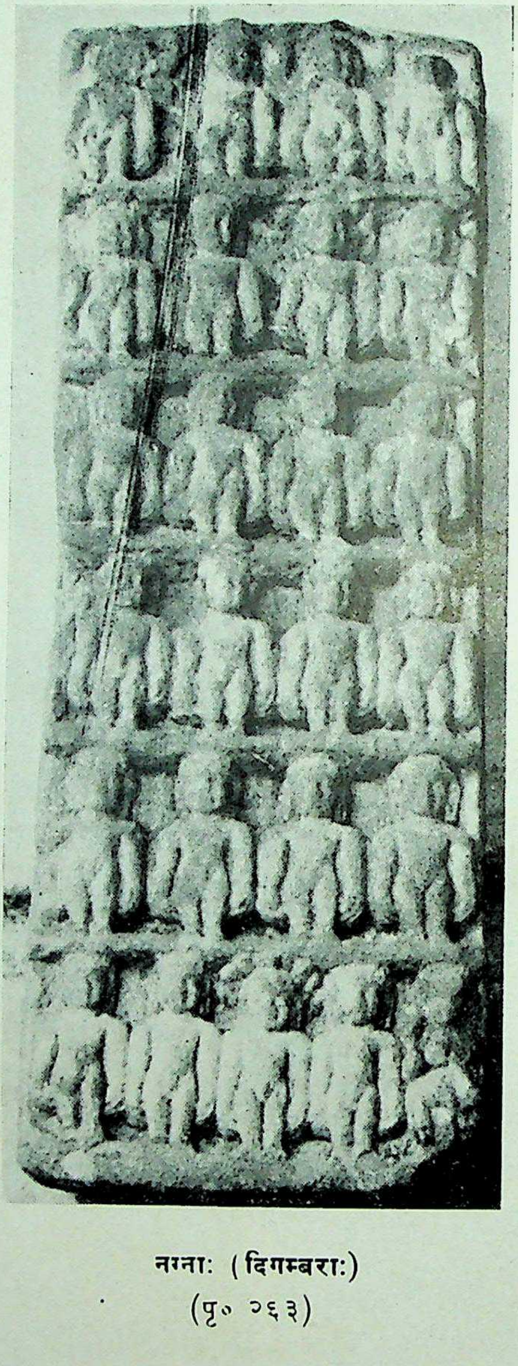

नग्ना: (दिगम्बरा:)
(पृ० १६३)

चित्र ७

पद्मासन

(पृ० ३४०)

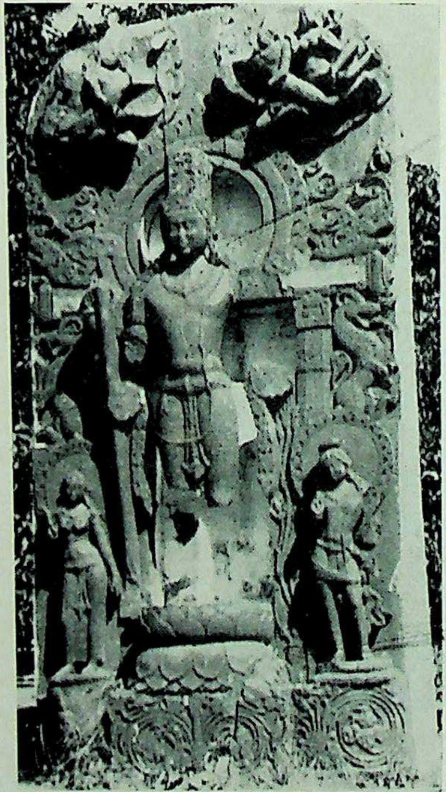

पद्मस्थ हरि

उत्फुल्ल पद्म

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र ८

(पृ० ३४४)

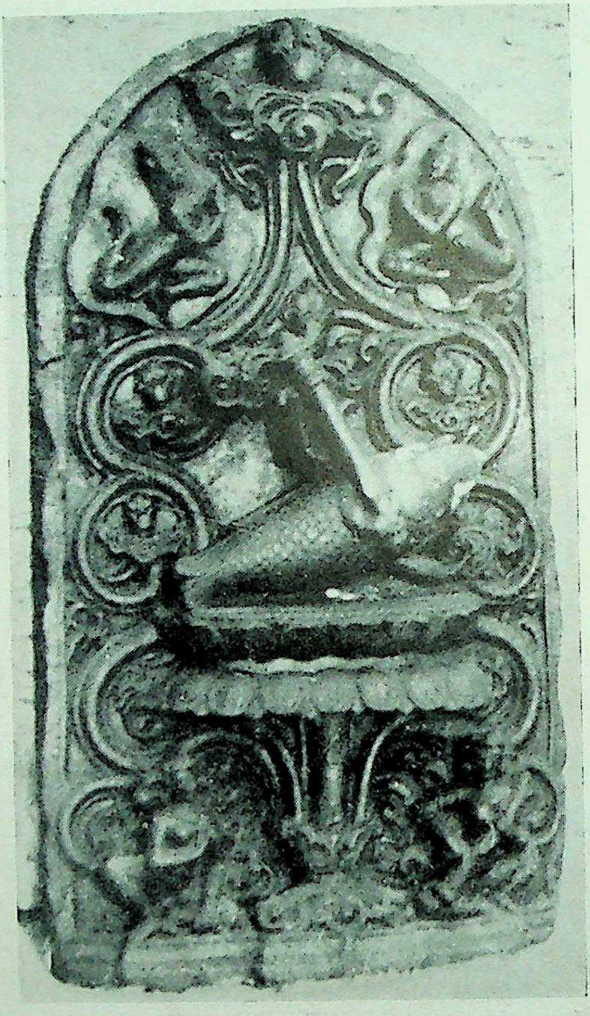

मात्स्यं रूपं

चित्र ९ (पृ० ३४४)

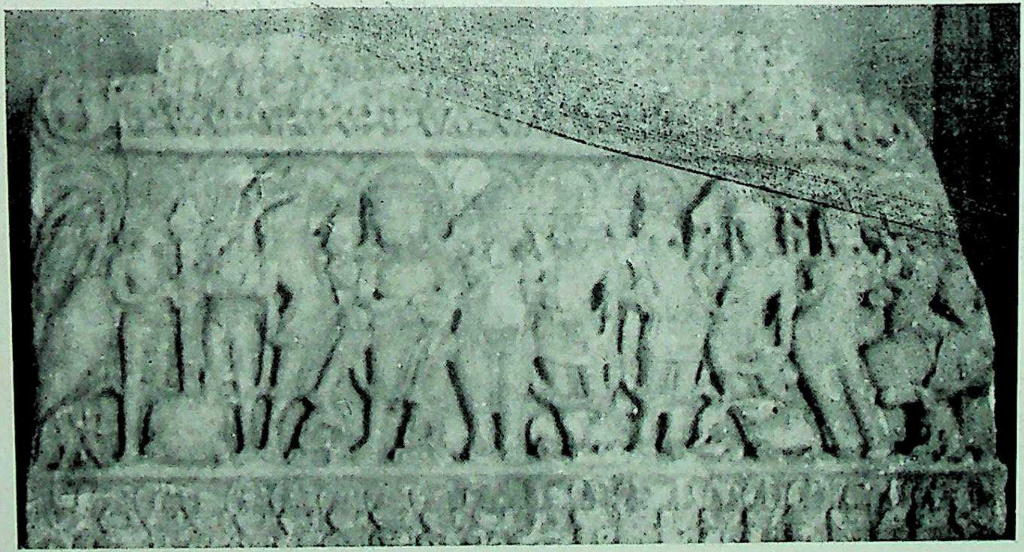

दशावतार (भरतपुर संग्रहालय)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र १०

उदयगिरि (म०प्र०) वराह
(पृ० ४४६)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र ११

मिटरगांव (उ०प्र०) वराह
(पृ० ३४४)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र १२

नरसिंह

हिरण्योरस्थलासक्तविदारणकरद्वयः

(पृ० ३४६)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र १३ (पृ० ३५१)
वामन-प्रतिमा (लखनऊ संग्रहालय)

मायावामनबटुः

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र १४

शान्तात्मा बुद्ध
(पृ० ३५८)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र १५ (पृ० ३५८)

विष्णु
लखनऊ संग्रहालय (नं० H 106)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र १६

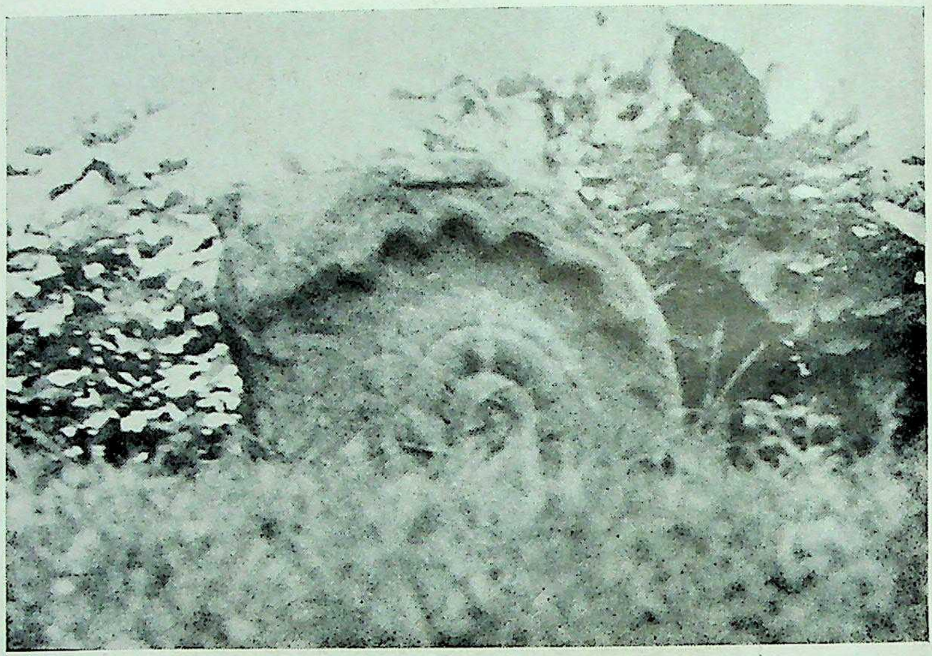

कालपदेव (पद्मस्वरूप)
(पृ० ३७२)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र १७ (१)
सूर्य (पद्महस्त)

मुड़ियार (उ०प्र०)
(पृ० ३७२)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र १७ (२)

कालप्रिय (सूर्यमूर्ति) पृ० ३७२

कालपी (उ०प्र०)

चित्र १८

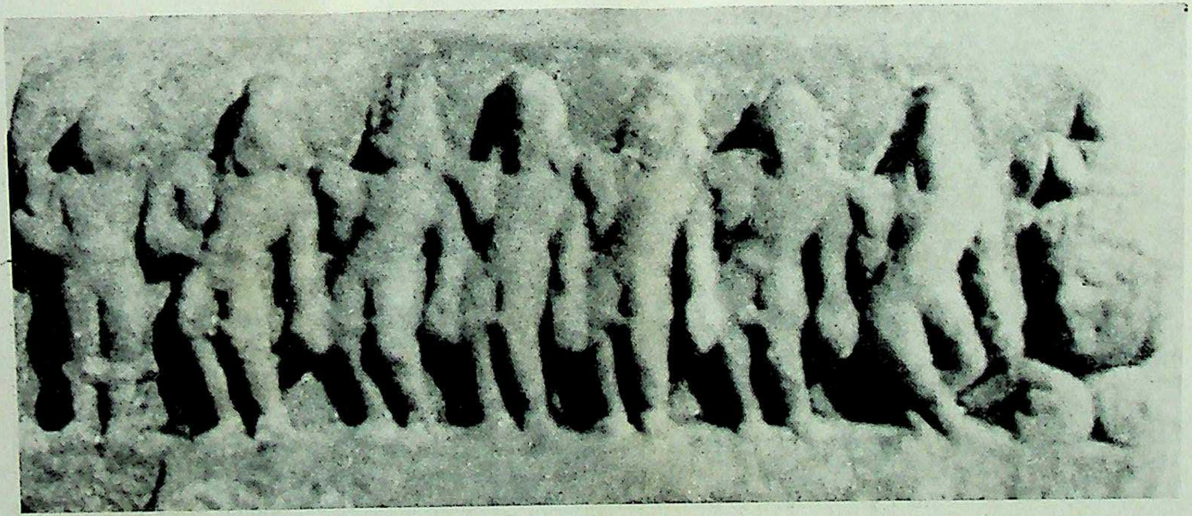

अष्टग्रह

नैनीताल (उ०प्र०)

(पृ० ३७४)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र १९

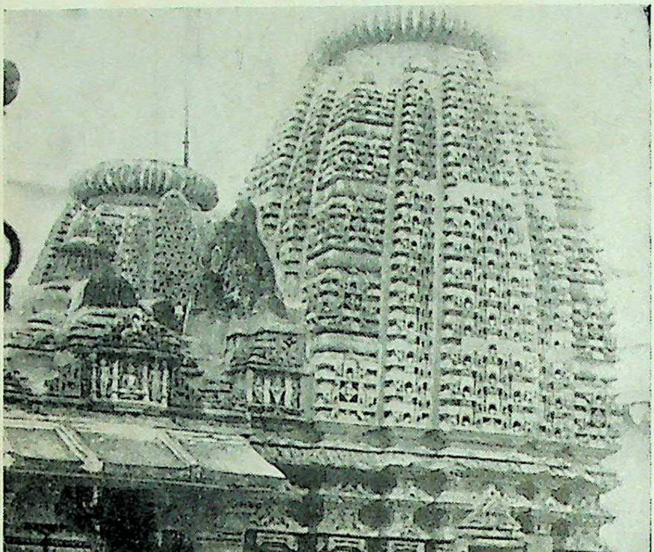

प्रासाद वास्तु की भव्यता
ओसिया (राजस्थान)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आवरण जी० डब्लू० लॉरी एण्ड कम्पनी द्वारा मुद्रित